स्वर्ण जयन्ती प्रकाशन 2013

BIHAR YOGA

स्वर्णिम संग्रह 6

बिहार योग परम्परा के मौलिक प्रकाशनों का संकलन



योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत

स्वर्णिम संग्रह 6



WORLD YOGA CONVENTION 2013

GANGA DARSHAN, MUNGER, BIHAR, INDIA

23rd–27th October 2013

स्वर्णिम संग्रह 6

बिहार योग परम्परा के मौलिक प्रकाशनों का संकलन



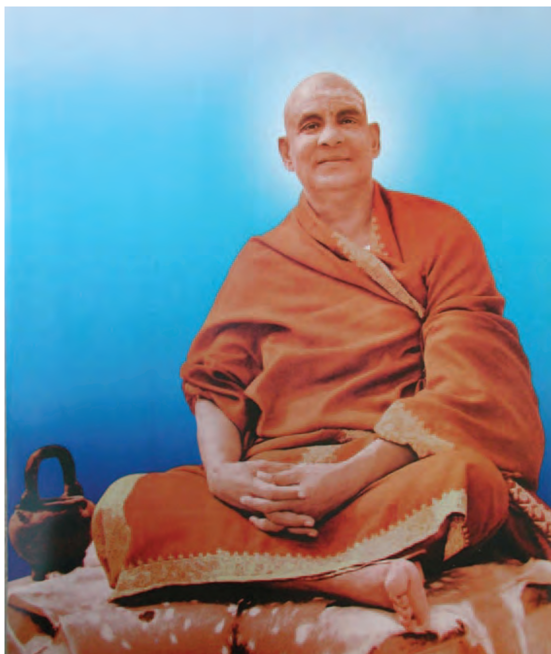
योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट द्वारा   प्रथम प्रकाशन 2013

ISBN: 978-93-81620-99-1

प्रकाशक एवं वितरक–योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट,
मुंगेर, बिहार, भारत
मुद्रक–एजीएन ऑफसेट प्रिंटर्स,
ग्रेटर नोएडा

वेबसाइट : www.biharyoga.net
www.rikhiapeeth.net



सविनय समर्पण

स्वामी शिवानन्द सरस्वती के चरणों में
जिन्होंने स्वामी सत्यानन्द सरस्वती को योग के रहस्यों की शिक्षा दी



नमो नारायण

योगविद्या भारतवर्ष की सबसे प्राचीन संस्कृति और जीवन-पद्धति है तथा इसी विद्या के बल पर भारतवासी प्राचीनकाल में सुखी, समृद्ध और स्वस्थ जीवन बिताते थे। जब से भारत में योग विद्या का ह्रास हुआ, तभी से भारतवासी गरीब, दुःखी और अस्वस्थ हैं। पूजा-पाठ, धर्म-कर्म से शान्ति मिलती है और योगाभ्यास से धन-धान्य, समृद्धि और स्वास्थ्य। भारत में सुख, समृद्धि, शक्ति और स्वास्थ्य के लिए हर व्यक्ति को योगाभ्यास करना चाहिए।

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती
रिखियापीठ, 2005

विषय सूची

सत्यम् स्मृति संग्रह

स्वामी सत्यानन्द अभिनन्दन ग्रन्थ

सम्पादिका–स्वामी शिवानन्द-कृष्णानन्द

दिव्य जीवन संघ, ऋषिकेश द्वारा प्रकाशन – 1954

बिहार योग विद्यालय द्वारा प्रकाशन – 2013



योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत

स्वामी सत्यानन्द अभिनन्दन ग्रन्थ

सन् 1954 में स्वामी शिवानन्द जी ने गुरु-शिष्य परम्परा में एक नया अध्याय जोड़ा जब उन्होंने अपने प्रिय शिष्य, सत्यम् के इकतीसवें जन्मदिवस पर एक भव्य समारोह आयोजित किया और इस अवसर पर एक विशेष अभिनन्दन ग्रन्थ भी प्रकाशित किया। इस ग्रन्थ में स्वामी सत्यानन्द जी के गुरु-भाइयों, शुभचिन्तकों एवं परिचितों ने भावभीनी श्रद्धांजलियों और स्तुतियों की गंगा बहा दी। किसी ने गगनगामी होमा पक्षी की उपमा दी तो किसी ने बुद्ध भगवान की तो किसी ने विदेहराज जनक के अभिनव अवतार की। यहाँ इस अनुपम ग्रन्थ के हिंदी एवं अन्य भारतीय-भाषी अंशों को मूलरूप में प्रस्तुत किया जा रहा है।

–सम्पादक

सम्पादकीय

मैं परमपिता परमात्मा और परमपूज्य गुरुदेव को हार्दिक धन्यवाद देती हूँ कि उन्होंने मुझे एक महान् आत्मा के प्रति समर्पित सुन्दर, सुरभित श्रद्धांजलियों और स्तुतियों की मनोहारी माला पिरोने का दुर्लभ सौभाग्य प्रदान किया। देश के सभी भागों और समाज के सभी वर्गों से आये इन पवित्र पुष्पों की माला गूँथकर, मैं इसे अत्यंत श्रद्धा, प्रेम, आदर और आनन्द के साथ श्री स्वामी सत्यानन्द जी के चरण-कमलों में समर्पित करती हूँ।

इन लेखों, कविताओं और संस्मरणों के अनुशीलन से मुझे जो आनन्द और लाभ मिला, वह अवश्य ही उन सबों को प्राप्य होगा जिनके हाथों में ईश्वर की कृपा, श्री स्वामी शिवानन्दजी महाराज के आशीर्वाद और अनेक जन्मों के पुण्य कर्मों से यह ग्रंथ पहुँचेगा। और यही इस ग्रंथ का प्रयोजन भी है।

यहाँ एक ऐसे नवयुवक का शब्दचित्र गढ़ा गया है जिसने अपने जीवन को औपनिषदिक ऋषियों के आदर्शानुरूप ढालकर, अपने संकल्प की तीव्रता, पुरुषार्थ की कठिनता तथा लगन की गहनता के बल पर आध्यात्मिक विभूतियों की सभा में अपना एक विशिष्ट, अमर स्थान बना लिया है। इसी ने हमें एक नया उपनिषद् दिया–*शिवानन्दोपनिषद्*; इसी ने हमें एक नयी गायत्री दी–*शिवानन्द गायत्री*। इसी ने हमें परब्रह्म सद्गुरु शिवानन्द जी महाराज की 'चैतन्य ज्योति' प्रदान की है। प्रस्तुत ग्रंथ में इस 'अध्यात्म-रत्न' को अनेक मनीषियों और विद्वानों ने अपनी अन्वेषी मेधा-किरणों का लक्ष्य बनाया है, जिससे इसकी कान्ति सर्वविदित और कीर्ति सर्वत्रप्रसारित हो सके।

इस ग्रंथ से आप वही सीखेंगे जिसकी खोज करेंगे, वही पायेंगे जो आप तलाशेंगे। लेकिन एक चीज निश्चित है। आप में उस कर्मठ और तेजस्वी योगी से मिलने की तीव्र उत्कण्ठा का प्रादुर्भाव अवश्य होगा, जिसके सर्वगुण-सम्पन्न व्यक्तित्व की यहाँ एक झाँकी मात्र दी गई है। उस व्यक्तित्व का विश्लेषण करके, उसका प्रत्यक्ष साक्षात्कार करके आपके हृदय में उसके जैसा महान् बनने की, अपने जीवन को उसके अनुरूप ढालने की इच्छा जरूर जागृत होगी। इस एकमात्र अभिलाषा के साथ मैं इस मंजुल-मंजूषा को उस विराट् पुरुष के पदकमलों में अर्पित करती हूँ, जो सभी प्राणियों के हृदय में विराजमान है।

–स्वामी शिवानन्द-कृष्णानन्द
सम्पादिका

सत्यं शिवं सुन्दरं तत्त्वमसि अहं ब्रह्मास्मि

26 जुलाई, 1954

नई नई उमर में बहुत कम ही वैराग्य की तरफ रजूह होते हैं। स्वामी सत्यानन्द जी, हकीकत में नचिकेता की ही तरह तो हैं। जिस काम पर वे हाथ डालते हैं, उसे पूरा करके ही चैन की आगोश में बैठते हैं। इनमें काम करने की शक्ति इतनी मुनव्वर है कि चार आदमी भी देख कर चकाचौंध हो उठते हैं। इनकी लियाकत और काबिलियत खुदादाद है, और ज़ुबान के मुआमला में गोया अबूर हासिल हो गया है। सादगी इनकी फितरत है और निष्काम सेवा का जज़बा मौजें मार रहा है। अगर कहा जाए कि मौसूफ डिवाइन लाइफ मिशन का सतून है, तो बेज़ा न होगा।

ईश्वर इन्हें सहत, दराजिये उमर, अमन, खुशहाली और रूहानी शादमानी से मालामाल करे।

—स्वामी शिवानन्द सरस्वती

हे यशस्वी! हे मनस्वी! हे तेजस्वी!

पुष्पों के दिल ज्यों बहलाने आती है मधुर बयार।
त्यों आज मेरे लघु मानस से उठता है मधु का ज्वार।
हे प्रणम्य!
बधाई का संदेश न करोगे स्वीकार क्या?
हिमशैलवासियों के उर की भावनाएँ
आज कुसुमित होकर, सजग होकर,
अभिनन्दन करती हैं तुम्हारा!
यावच्चन्द्र-दिवाकर,
हे शिव के पार्षद!
तुम्हारी विभूति की यवनिका रहे अच्युत
गर्वोन्नत रहो, तुम यशस्वी हे, मनस्वी हे, तेजस्वी हे!
भूति-भूषित-भुवन-भामिनी के पर्यंक पर,
तुम उल्लसित रहो हे!
भेजता हूँ अपनी शुभकामनाएँ, ललित-कल्पनाएँ,
मृदु-मुग्ध-मन्थर-मन्दाकिनी की लहरियों के साथ,
पूत-पुनीत-प्रभंजन की अनुचरियों के साथ,
यही कि युग-युग जीओ!
कविता-ख्याति के चातक हे!
सौन्दर्य रसानुस्यूत गीतानुगीतियों के कलगायक हे!
मोद की मधु बेला में यह लो मेरी ओर से भी,
श्रद्धा के दो सुमन, तदनन्तर
बहु धन्यवाद! बहु साधुवाद!
चित्र हो जिस सत्य के तुम, मैं उसी की हूँ निशानी।
खोजते फिरते हो जिसको, मैं उसी की हूँ कहानी।

—श्री स्वामी रामानन्द सरस्वती, उत्तरकाशी

मैं संन्यासी हूँ

देवों पर मनुष्य ने विजय पाई, समुद्रों को उसने पार किया, आकाश की असीमता को नापा, समुद्र की गहराई खोजी, प्रकृति के तत्त्वों को पहचाना, धर्मों को धारण किया, दु:खों पर विजय पाई, जीवन और मृत्यु के दोनों किनारों को जीवन की कड़ी से जोड़ा, देवत्व को पहचाना, अनन्त जीवन के परमाधार तत्त्व को खोज लिया। सब कुछ पाया, सब कुछ खोया, सब कुछ देखा। फिर भी मनुष्य अधूरा है, उसका जीवन अपूर्ण है, उसकी आशायें असन्तुष्ट हैं। मृत्यु उसका अंत है, और जन्म उस मृत्यु का अभियान।

जीवन के लिए मरण है, और मरण के लिए जीवन। न धर्म, न कर्म, न योग, न विज्ञान, न मंत्र, न तंत्र—कुछ भी नहीं, जो जीवन को पूर्ण बना सके। आत्म-निष्ठ जीवन के नाम पर, योग-निष्ठ जीवन के नाम पर मानी गई पूर्णता भी बन्ध्या-पुत्र के समान सम्पन्न और शिक्षित है (अर्थात् है ही नहीं)।

यह अभी तक समस्या है, इसका समाधान करने वाला अभी तक हुआ नहीं। योगी, तपस्वी, ज्ञानी, महात्मा, वैज्ञानिक सभी हार गये। अनन्त की असीमता के समान यह भी एक रहस्य है। हम या तो जीवन की व्यक्तिगत खोज में खो गये, या जीवन की भौतिक खोज में हार गये, या जीवन की आनन्दमयी सत्ता में सब कुछ भूल गये। किसी ने आत्मा को पहचाना, किसी ने परमात्मा को। किसी ने ईश्वर को जाना, कोई प्रकृति में भटकता रह गया; कोई अनन्त ब्रह्माण्ड को खोजने चला, किसी ने विशाल जलराशि के अन्दर छिपे हुए संसार को खोजा, तो किसी ने विशाल वायुमंडल की परिधि को। किसी ने शान्ति खोजी, किसी ने विप्लव मचाया। पर जीवन की अनन्तमुखी खोज आज तक किसी ने नहीं की।

जीवन का विकास कुछ ही कोणों तक सीमित रहा। हिन्दू मुसलमान नहीं बन सका, न मुसलमान हिन्दू। न गृहस्थ संन्यासी बना, न संन्यासी गृहस्थ। किसी ने संसार को सत्य बताया, किसी ने असत्य। किसी ने कहा, 'एक है', तो किसी ने कहा, 'बहुत', तो किसी ने कहा, 'है ही नहीं'। ज्यों-ज्यों हम खोजते गये, त्यों-त्यों हम खोते गये। जैसे-जैसे हमें ज्ञान मिला, वैसे-वैसे हम अज्ञानी बने। आज युगों की खोज के बाद भी, योगियों, ज्ञानियों, वैज्ञानिकों और महात्माओं की सम्पन्न परम्परा के बावजूद भी जीवन का रहस्य खुला नहीं। पर आज हमें इस जटिलता को दूर करना है।

हम समझ गये कि जीवन महान् है, जटिल नहीं किन्तु अत्यन्त सरल। हम समझ गये, जीवन पवित्र है; कलंक नहीं, अभिशाप नहीं, किन्तु एक सुन्दर वरदान। इन योगियों, वैज्ञानिकों, दार्शनिकों, ब्रह्मवेत्ताओं, तत्त्व ज्ञानियों, भक्तों और शास्त्रकारों ने जीवन को सँवारना चाहा। पर इससे क्या? जीवन का असली स्वरूप तो छिप गया न? हम जीवन के ऊपर चढ़े हुए युगों-युगों के इन रंगों को निकालेंगे; इनको बहा देंगे– धर्म रूपी उपाधियों को, वेदों और शास्त्रों की युक्तियों को, सन्तों की अनुभूतियों को और हम देख लेंगे जीवन का वास्तविक स्वरूप। जीवन सरल है, सादा, पवित्र, एक है। विशाल और कण-कण में ओत-प्रोत और अनुप्राणित है। जीवन व्यापक है और सत्यनिष्ठ। उसके ऊपर चढ़े हुए आवरण तो आडम्बर हैं, दंभ और पाखण्ड हैं।

अरे, जीवन को चलने दो, जैसे चलता है, चलना चाहता है। रहने दो अपना ज्ञान, अपनी फिलॉसफी, अपनी आध्यात्मिकता, अपना विज्ञान, अपना सामाजिक नियम और अपनी धार्मिकता। चलने दो मेरा जीवन, जैसे सुन्दर बचपन। मुझे पक्षियों की तरह उड़ना अच्छा लगता है। रहने दो मुझे अज्ञानी, मुझे नहीं चाहिए तुम्हारा ज्ञान। नहीं चाहिए तुम्हारी विद्वत्ता। मुझे तो जंगलों में बसना ही प्रिय है। पक्षियों की कल-कूजन के साथ गा लेने दो; मुझे रोको मत। सूखे पत्तों की चरमराहट में मुझे दौड़ने दो। रोको मत। उगते हुए सूरज के सामने मुझे प्रकृति की ओर दृष्टिपात करने दो। वन के पत्तों, सरिता के जल और आकाश की वायु पर मुझे जीने दो। रहने दो अपनी सभ्यता, रहने दो अपना बड़प्पन, रहने दो अपनी कीर्ति और अपना धर्म। मुझे बाँधो मत, मुझे जाने दो, जहाँ मैं चाहूँ। अपने सामाजिक नियमों के बंधन में मुझे मत बाँधो, अपने धार्मिक विश्वासों में मुझे मत भुलाओ, अपनी वैज्ञानिक खोज से मुझे हराओ मत।

मैं उन्मुक्त गगन का पंछी, मैं अजस्र अमृत की धारा,
मैं प्रशान्त सामोद सनातन, मैं खुशियों का दीप्त सितारा।
जा रे क्रन्दन विरह वेदने, ध्वस्त हुई कष्टों की कारा,
कहाँ रहे अब काँटे पथ पर, फूलों से पथ गया सँवारा ॥

मैं संन्यासी हूँ! मैं संन्यासी हूँ!

–श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

मैं मंदिरों से भी ऊँचा हूँ!

प्रार्थना करो; किन्तु एकान्त में, शान्ति और आत्म-तल्लीनता में। क्योंकि मैं नित्यमुक्त आत्मा हूँ, जिसे तुम अपने वैभव का लोभ दिखला कर, पुरोहितों से खचित घरों में कदापि नहीं पूज सकोगे। जब मैं तुम्हारी शब्द-रंजित, वाणी-विलासमयी और दिखलावटी प्रार्थना को सुनता हूँ तो मुझे प्रतीत होता है, मानो निर्जल घटा की व्यर्थ ध्वनि हो रही हो। वह ध्वनि मेरे मधुरश्रावक कानों के लिए कर्कश बन जाती है। अपने मित्रों की प्रशंसा करो, महिमा का बखान करो; जोर से, और जोर से, ताकि वे सुन तो सकें—किन्तु मुझे यह नहीं चाहिए; मैं तुम्हारी सच्ची और मूक प्रार्थना का भिखारी हूँ। तभी तुमको संसार की परमोच्च उपत्यका से ऊपर महामहिमामय प्रदेश की ओर ले जा सकता हूँ; जहाँ दो एक हो जाएँगे।

मैं कहते आ रहा हूँ कि मुझे चलते-फिरते मंदिर चाहिए, जहाँ मैं अपने को विशाल पूजा का प्रतीक बना सकूँ। यह मंदिर और यह मस्जिद तथा गिरजे, और यह पगौडे मुझे कभी नहीं पूज सकेंगे, जब तक प्रत्येक प्राणी ही सजीव मंदिर न बन जाये—ये तो केवल मिट्टी के ही रूप-विरूपान्तर हैं। 'जिस जगह बैठा हूँ मैं, वो ही मंदिर है मेरा' यह सच है और यही सच है। उसी मंदिर में मैं अपनी महिमा को व्यक्त कर सकूँगा और मंदिर के पुजारी को नित्य तृप्त और आप्तकाम बना दूँगा।

यदि मनुष्य सोचता है कि मंदिरों और मस्जिदों के देवता की शक्ति के बल पर वह विश्व की महोच्च महिमा को प्राप्त कर सकेगा, तो यह उसका दिवास्वप्न है। क्या घण्टी बजाने, धूप जलाने तथा दीपक दिखलाने से ही वह अपनी मुक्ति को सिद्ध कर सकेगा, जबकि अपने-अपने मंदिर में अंधकार है, दुर्वासना है और अरण्य विजनता है? यदि वह इसी पर विश्वास करता रहेगा तो वह मंदमति है—नहीं, नहीं महामूर्ख है। मंदिरों के बावजूद भी, नित्यप्रति दिनभर घंटियों के हिलते रहने पर भी युद्ध, क्रांति, अशांति और नरक-यंत्रणा वैसे ही रहेंगे। जब तक मनुष्य घट-घट में आत्मा की पूजा

नहीं करेगा, तब तक वह सच्ची शांति नहीं पा सकेगा और सच्चे जीवन में दीक्षित भी नहीं हो पाएगा।

मैं मंदिरों से ऊँचा हूँ और गिरजों और पगौडों और विहारों और मठों से भी ऊँचा–विश्व की सर्वोच्च उच्चता से भी ऊँचा–मुझसे ऊँचा और कोई नहीं। मुझे चलते-फिरते मंदिरों में बसना प्रिय है। मैं सत्य की रक्षा करने वाला हूँ। मेरा वरदहस्त वहाँ पर अवश्य है, जहाँ व्यक्ति ने अपनी आत्मा को स्वच्छ कर लिया हो, अपने मंदिर में ज्ञान की आरती जला ली हो और सद्‌गुणों की सुरभित धूप बाल ली हो और सद्‌विचारों की घण्टी भी बजा ली हो। अतः हे! आओ, मंदिर बनो–जहाँ मैं सदा बैठकर तुम्हें असत्य से सत्य, मृत्यु से अमरत्व और अंधकार से प्रकाश, विनाश से नवनिर्माण की ओर प्रेरित करते रहूँगा।

मंदिरों से ऊपर उठो–ऊपर और ऊपर। हाँ, अब मुझे पा सकोगे।

–श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती



श्रीसत्यानन्द-महिम्नस्तवम्

विश्वाधारो महादेवः सर्वज्ञज्ञानिनमुत्तमम् ।
करोतु दीर्घायुषं स्वामिसत्यानन्दसरस्वतीम् ॥1॥

योगवेदान्त-आरोग्यजीवनयोः सम्पादकः ।
सुयोग्यः पण्डितः शिष्यः शिवानन्दमहात्मनाम् ॥2॥

शान्तो नम्रस्वभावी च शुद्धवेदान्तवाचकः ।
लेखको ज्ञानग्रन्थानां निबन्धानां विधायकः ॥3॥

योगाभ्यासी तथा न्यासी परिचायकः स्तावकः ।
कीर्तिविस्तारकः श्रीमच्छिवानन्दमहात्मनाम् ॥4॥

स्वगुरोश्च कृपापात्रो बालसंन्यासिमोदनः ।
दर्शनीयो गुरुभक्तो गुरोरादेशपालकः ॥5॥

मृदुभाषी महात्मा वै सर्वसत्कारकारकः ।
वस्तुतो दान्तशान्तश्च सद्गुरोर्गुणगायकः ॥6॥

काम्यानां कर्मणां न्यासः संन्यासोऽस्य ह्युपासकः ।
स श्राद्धो जयतु स्वामी सत्यानन्दसरस्वती ॥7॥

–स्वामी गोविंदानन्द शास्त्री, दादुपंथी

सत्यम्! तव अभिवादन

निर्झरिणी के तू जीवन-रव
कल-गान-सदृश तेरा उद्भव
उद्गान-सदृश तव अमिय हास
वन-विटपों का सुमधुर सुवास
गंगा की इस अंगड़ाई में
अलका की इस नव अमराई में
उषा के मंद समीरों में
उद्वेलित सागर-तीरों में
शशि-चुंबित गिरि-वन-कानन में
हिम-मंडित भूधर-भालन में
पुष्पों की मधु-मुसकानों में
बुलबुल के मादक गानों में
तेरे ही तो होते दर्शन
तेरी ही सुषमा का वर्षण
तेरी ही तो उपमेय छटा
उपमान तुम्हीं ज्यों रजत घटा
अंजलि में अल्प प्रसून लिए
श्रद्धा-सिंचित संतृप्त हिये
सत्यम्! तव पदे अनेक नमन
तव अभिवादन! तव अभिवादन!!

—श्री स्वामी ज्योतिर्मयानन्द सरस्वती

महाविश्व के शिव साकार

महातिमिर की झंझा के रव में
देव! चलो तुम, चलें हम,
चले सकल संसार।
तुम करुणा के दीपक साकार;
तारों की झोली के उपहार;
आकुल जन के तप्त हृदय की
उन्मत्त पिपासा की जलधार!
तुम मानव के स्वर्ग विशाल;
वेद-शास्त्र की गीर्वाणी के
ज्ञान-प्रभा के तुम अवतार!
चलो चलो तुम
युगों युगों तक;
चले तुम्हारे पथ पर संसार।
तुम मानव के ईश्वर साकार;
मुक्ति, तुष्टि, पुष्टि के अवतार;
ऋद्धि, सिद्धि के तुम संसार;
जग-मग में बरसाते रहना
स्वर्ण-रश्मि, रजत-मणि के हार।
तुम सब के हो उन्नत भाल;
जग की मणि, मुक्ता के हार;
शशि के हीरक, नभ के दिनकर
महाविश्व के शिव साकार!

—स्वामी शिवानन्द-कृष्णानन्द

अभिनन्दनपुष्पाणि

निजवदनसरोजान्निर्गलत्सूक्तिधारा-निकरजनितदिव्यज्ञानयोगो जनानाम्।
निकटगतनराणां नित्यकल्याणदाता विजयति यतिवर्यः श्रीशिवानन्दयोगी॥

अविकलगुणधाम्नः सद्गुरोरस्य शिष्य-प्रवरविदितसत्यानन्दसार्थाभिधानः।
निजविनयविशेषाकृष्टलोको विपश्चिन्निवहमकुटहीरः साधुशीलो विभाति॥

निरवधिककलानां निस्तुलावासरंगो निरवसितनितान्तानर्घसौजन्यसिन्धुः।
निरवरतनिकामोत्कृष्टकर्मैकदीक्षो निरघगुणनिधीनामुत्तमोऽयं विभाति॥

यमनियमविधानैर्नित्यशुद्धो निकामं यमरिपुपदसेवासन्ततामोदितात्मा।
सुमतिनिवहगम्यः सुन्दराकाररम्यो जयतु जयतु सत्यानन्दसन्नामधेयः॥

सुविशदमतिशाली योगवेदान्तविद्या-सदनवनविराजन्मुद्रणागार-नाथः।
सुचिरमिह धरायामायुरारोग्यसौख्यान्वितमविरलकीर्त्या जीयतां दैवयोगात्॥

—श्री स्वामी ज्ञानानन्द, आनन्द कुटीर

ஸ்ரீ சுவாமி சத்தியானந்தஜீ

சத்திய நெஞ்சின் நிமிர் நன்நடையும்
நித்தியம் அஞ்சாப் போர் பேரிழுழக்கமும்
கர்ம யோகத்தின் கடும் உழைப்பு ஆர்வமும்
கணக்கிட முடியாச்சித்தியின் சாரமும்
பால்வடி வதனத்தின் பரவசப் பார்வையும்
பவள மேனியில் பார்த்திபன் ஆடையும்
திறனுடன் உழைக்கும் திவ்ய தீரமும்
தியாகத்தில் திகழும் குருதிரு சேவையும்
மின்னல் வேக வேதாந்த விவேகமும்
தர்க்கத்தை தன்வசமாற்றிடும் மேன்மையும்
கீதங்கள் பாடி மயங்கிடா மாண்மையும்
ஞானத்தை ஓதும் ஓங்கார வீரமும்
கொண்டதைத் துணிவுடன் சாதிக்கும் திறனும்
தெய்வத்தை தன்னிலே ஆட்டிடும் ஆர்வமும்
செல்வத்தை அன்புக்கு அழித்திடும் தியாகமும்
தன்னலமற்ற தனிப்பெரும் தகைமையும்
ஒருங்கே அமைந்த அனந்தசத்தியமும்
ஓர் திரு உருவாக அவதரித்தார் அவனியில்
சுவாமி சத்திய ஆனந்த சரஸ்வதி
வாழ்க அவர் வையகம் துலங்கிட!
வாழ்க அவர் குருசேவை பொழிந்திட!
வாழ்க வாழ்க அன்பும் அறமும் பொங்கிட!
வாழ்க வாழ்க சத்தியானந்தஜீ வாழ்க!
வாழ்க வாழ்க ஸ்ரீ சிவானந்த மகராஜ் !!

भाषा—तमिल *—श्री स्वामी शिवानन्द-मुक्तानन्द, जाफना, सीलोन*

Sri Swami Satyananda ji

Undaunted walk of a heart of truth
Unflinching call to arms day after day
Intense toil of karma yoga, earnest
Essence of siddhis, unaccountable
Disarming gaze of the face of beauty
Royal raiments on the golden body
Divine courage in skilful work
Sacred expression of guruseva offering
Lightning bolt of Vedantic discrimination
Ability to swing logic entire
Unflattered by songs of praise
Heroic spirit of Omkara wisdom
Fearless manifestation of all undertaken
Loving expression of God in Self
Sacrificing wealth for love
Unparalleled quality of selflessness
Come together in eternal truth
as divine form in this world
Swami Satyananda Saraswati
Live long as the universe continues!
Live long as the shower of guruseva!
Live long as the rising cadence of love!
Live long Swami Satyananda, live long!
Live long Swami Sivananda Maharaj!

–Swami Sivananda-Muktananda, Jaffna, Ceylon
(Translation of facing poem in Tamil)

सत्यं शिवं सुन्दरम्

गंभीर गगनगामी होमा पक्षी ने तीन-चार अंडे जने—शून्य आकाश में ही। वे गिरने लगे। रास्ते में ही इनसे पंख-युक्त बच्चे फूट निकले। कुछ तो चल पड़े आकाश की ओर—'माँ, माँ' की रट लगाते और एक चल पड़ा मर्त्यलोक की ओर, अमरत्व का संदेश सुनाने। और वही है सत्यम्—स्वामी सत्यानन्द सरस्वती।

* * *

अल्मोड़ा के स्वर्णिम प्रांगण में, जहाँ रातें चांदी-सी और दिन सोने के होते हैं, जहाँ कुहेलिकामयी ऊषा रहस्यमयी प्रहेलिका का निर्माण करती, जहाँ सायं सूर्य अपनी स्वर्णिम आभा से स्वप्निल समीरों का सृजन करता, वहीं कैलाश की गोद में इस शिशु-नभचर ने अपनी अर्द्धोन्मीलित आंखें खोलीं और सहसा उसके मुख से निकल पड़ा—सत्यं शिवं सुन्दरम्—वही था बालक धर्मेन्द्र।

* * *

सरस्वती ने उसे वरदान दिए। कोकिला ने अपनी मधुरता दी, चन्द्रमा ने अपनी ज्योत्सना और ऊषा ने दिए—अपने आभूषणों के उपहार। वह अल्पकाल में ही प्रतिभा-सम्पन्न विद्यार्थी हो गया—साहित्य-संगीत-कला-विशारद। तब उसका नाम था—धर्मेन्द्र सिंह नयाल 'पल्लव'।

* * *

दामिनी दमकी, स्वर्गिक सौंदर्य का प्रवाह फूट पड़ा; परन्तु घन-घटा के घनघोर घोष में वह विलुप्त हो गई। चाँद हँस पड़ा, परन्तु उसकी उसासों से अमावस्या की रात्रि सिक्त हो चुकी। वसंत की वासंतिकता शरद् की निष्ठुरता में परिणत हो गई। कुमुदिनी ने जल-समाधि ग्रहण की। मोहक सौंदर्य की विडम्बना ने शाश्वत सौंदर्य की अलख जगाई।

नरमेध का प्रारम्भ हुआ। रक्त की गंगा बही। मानवता ने दानवता के साथ नग्न प्रदर्शन किए। माली ने अर्द्धोन्मीलित पुष्पों को सहसा तोड़ दिया। जन-जीवन की दयनीय दशा देख विवेक और वैराग्य ने मोह का मूलोच्छेदन किया। वह 'शिवं' की खोज में चल पड़ा और पहुँचा—शिवानन्द आश्रम, ऋषिकेश।

* * *

कंचन का संन्यास कठिन है, कामिनी का संन्यास कठिनतर है और कठिनतम है यश और नाम का संन्यास। गृद्ध और चील भी आकाश में उड़ते हैं, परन्तु उनकी दृष्टि मृत्त-पिण्डों की ओर ही गड़ी रहती है। परन्तु यह पक्षी तो गम्भीर

गगन की स्वच्छन्दता का उपासक था। 'क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया' के गहन पथ पर सतत साहस के साथ चलते रहने की इसने भीष्म प्रतिज्ञा की और एक शुभ घड़ी में '... संन्यस्तं मया' की गम्भीर गुरु-गर्जना की। सुन्दरम् और शिवम् की खोज में चलने वाला युवक अव स्वयं 'सत्यम्' हो गया और उसका नाम पड़ा—स्वामी सत्यानन्द सरस्वती।

*　　　　*　　　　*

तारों से स्वत: प्रकाश नि:सृत होता, फूलों से स्वत: सौरभ खिल उठता है। सत्यम् से भी स्वत: 'शिवं-सुन्दरम्' के सन्देश का संचार होता है। हम इन्हीं की 31वीं वर्षगांठ मना रहे हैं। ईश्वर इन्हें चिरायु बनावें। मुक्त गगन का यह अमर पंछी युगों-युगों तक अपना वेद-गान सुनाता रहे।

—उपनिषद्-ब्रह्म श्री स्वामी ज्योतिर्मयानन्द

धन्य शृंग पर्वत गर्भज हे

धन्य यती श्री सरस्वती श्री सत्यानन्द महायोगी।
धन्य शृंग-पर्वत-गर्भज हे धन्य धन्य ओ निर्भोगी॥
क्षणभंगुर जीवन में सुख का लेश नहीं हैं पा सकते।
मायामय जीवन से प्रभु तक जीव नहीं हैं जा सकते॥
सूची के उस सूक्ष्म छिद्र में ऊँट भले घुस सकते हैं।
गंगा की प्रतिभामय कण से तेल भले ले सकते हैं॥
लेकिन मायासहित प्रभु तक कौन गया बतलाओ तो।
माधव विष्णु विरंचि शंकर प्राणी कौन दिखाओ तो॥
जग मिथ्या तत्-प्रपंच मिथ्या, मिथ्या सृष्टि सकल जहान्।
जीव के केवल अखिल विश्व में रक्षक मायापति भगवान्॥
इसी एक सद्ज्ञानमात्र से माया का संहार किया।
शिवानन्द-आनन्दकन्द से दीक्षा का संभार लिया॥
योगीश्वर श्री यती मुनीश्वर सभी तुम्हें हम पाते हैं।
दिव्य कान्तिमय चरणयुग्म के सौम्य गुणों को गाते हैं॥
आनन्द-साधना-दीप्तिमय जय ज्ञानाधारी नीरोगी।
धन्य यती श्री सरस्वती श्री सत्यानन्द महायोगी॥

—श्री जनार्दन प्रसाद द्विवेदी 'शास्त्री'

शिवगीता के शाश्वत गायक

धर्मेन्द्राय नयालाय, पल्लवाय महाकवे।
चैतन्याय क्रमेणेवं, सत्यानन्दाय ते नमः॥

शुभ दिन शुभ काल वह, शोभित यह मर्त्य धाम।
मर कर निज अंक में नूतन 'पल्लव' ललाम॥

स्थान भी था क्या विशेष, प्रकृति का आंचल महान।
हिमगिरि का प्रान्त देश, अल्मोड़ा सुकवि-खान॥

क्या थी वह दिव्य दृष्टि, जिसने किया धर्मेन्द्र नाम।
झाँकी या होनहार देख कर यह किया काम॥

किसलय सा मृदु परन्तु रागिणी-उर बही धार।
पल्लव से शोभमान बने ये यौवन-तरु-शृंगार॥

रख नहीं सका किन्तु, इनको जग कर्मजाल।
यद्यपि था वय किशोर, विज्ञों की चले चाल॥

तज निज बन्धु धाम, आए जहाँ 'शिव' महान्।
मुक्तहस्त रात दिन, कर रहे हैं ज्ञान दान॥

मन्दाकिनी वा यों कहें, सुरसरि के गई पास।
होना था एक रंग, अघ का कर सब विनाश॥

दीक्षित ये हुए लिए ब्रह्मचर्य व्रत कराल।
सचमुच चैतन्य सत्य, योग विधि नियम पाल॥

रहने जब जन जहान्, यौवन मदमत्त मूढ़।
करते ये साधन कठोर, विश्लेषण शास्त्र गूढ़॥

लखकर वैराग्य तप, इनकी मेधा विवेक।
'शिव' ने संन्यास दान कर दिया शुभ दिवस एक॥

जयन्ती थी हीरक वह धूमधाम समारोह।
अथवा यों कहें आप 'सत्यानन्द' ने तजा मोह॥

तब से फिर आज तक इनके गुणगण विशाल।
छपते प्रति दिवस वर्ष, करते यह देखभाल॥

मुद्रण सम्पादन वा, हिन्दी का सब विभाग।
लिखकर 'चैतन्य ज्योति,' अतुलनीय भक्ति याग॥

करके सम्पूर्ण यह, 'दिग्विजय' का सब काज।
कृती 'अध्यात्म रत्न' सचमुच हैं बने आज॥

'गुरुवर' ने 'प्रवचन प्रवीण,' इनका किया नाम।
मुग्ध जन गोष्ठी-गत, करते हैं यह तमाम॥

इनके अनुरूप ही सर्वोच्च दे आसन निवास।
'विश्वनाथ' प्रांगण में, रहते 'शिव' सदा पास॥

सुकवि ये तन्त्री निज, 'शिव' से कर एक तार।
उनका आनन ललाम, करते गाथा प्रचार॥

These words, Satyananda,
    Not even a fraction of thy glories tell
Content am I, however,
    That they humbly do dwell.

Fortunate art Thou
    In being an honoured Siva's Gem,
May you live to carry His mission
    For many a year to come.

–श्री वेदानन्द झा, एम.ए. बी.एल., छपरा

यह शिवनगर का चमत्कार!

सत भाषण सत आचरण, करे सदा सत काम।
यथानाम गुण युत तथा, सत्यानन्द शुभ नाम ॥1॥
लेखक वक्ता औ कवि, कलाकार पुनि जान।
विद्या बुद्धि बल तथा हैं गुणगण की खान ॥2॥
पूर्व जन्म संस्कार के बल से कर सुविचार।
वृत्ति ले वैराग्य की, छोड्यो निज घरबार ॥3॥
शिवानन्द सद्गुरु से, ऋषिकेश के माय।
ब्रह्मचर्य संन्यास की, दीक्षा लीनी आय ॥4॥
श्रद्धा भक्ति के सहित, रहकर गुरु के पास।
कर्म भक्ति अरु ज्ञान को, खूब कियो अभ्यास ॥5॥
हिन्दी, उर्दू, संस्कृत, इंगलिश अरु तमिल।
भाषाएँ बहु जानता, यह नवयुवक सुशील ॥6॥
क्या दिन में क्या रात में, नित ही आठों याम।
कर सेवा साजे सदा, कर्मयोग निष्काम ॥7॥
शिवानन्द दरबार में, नररत्नों की खान।
सत्यानन्द उनमें अहो, है इक रत्न महान् ॥8॥
अनुपम बुद्धि की अहा, कहो कहूं क्या बात।
लिख लिख ग्रन्थ अनेक ये, भये जगत्-विख्यात ॥9॥
अनुप्रास उपमा तथा, अलंकार में चूर।
'जान्सोन्यन' हिन्दी लिखें,भाव भरें भरपूर ॥10॥
सरितन में गंगा नदी, तारों में जिमि चंद।
चमकत है शिव नगर में, तिमि श्री सत्यानन्द ॥11॥
'दिव्य' कहे कि सत्य ही, है जीवन आधार।
करो अनुसरण सत्य का हो बेड़ा भव पार ॥12॥
त्रिपुर सुंदरी मात से, विनय करें सब आज।
चिरंजीवी होवें सदा, सत्यानन्द महाराज ॥13॥

–श्री स्वामी दिव्यानन्द सरस्वती

आज से पन्द्रह वर्ष पूर्व की कथा

आज से पन्द्रह वर्ष पूर्व की बात है, जब मैं अल्मोड़ा में विद्यार्थी जीवन व्यतीत कर रहा था। उसी समय मेरा परिचय धर्मेंद्र नामक एक अद्‌भुत बालक से हुआ। अल्मोड़ा में मुझे लोग 'नानू' के नाम से पुकारते थे। मेरा एक और मित्र था जिसका नाम अश्विनी कुमार पंत (आमी) था। धर्मेंद्र हमेशा से ही कविता की ओर आकर्षित रहे। उनकी अनेक कविताएँ कई पत्रिकाओं में प्रकाशित भी हुई थीं। उनके हिन्दी भाषा के ज्ञान को देखकर बड़े-बड़े साहित्यिक और अध्यापक भी आश्चर्य करते थे। उनकी प्रवृत्ति बचपन से ही पवित्र और चिन्तनशील थी।

धर्मेंद्र के पिता पुलिस के इन्सपेक्टर थे। एक छोटा भाई था, जिसका नाम था भूपेंद्र। अल्मोड़ा के नायाल खोले मोहल्ले में वे लोग रहते थे। सन् 1940 में धर्मेंद्र अचानक कहीं चले गये। बहुत पता लगाने के बाद भी कुछ पता न मिला। इन्हीं विचारों में तीन-चार माह व्यतीत हो गये कि एक दिन अकस्मात् ही धर्मेंद्र का पत्र मिला, जिसमें पता चला कि वे Veterinary Research Institute मुक्तेश्वर में थे। अपने मित्र से मिलने की तीव्र अभिलाषा को मैं दबा न सका और दूसरे ही दिन मुक्तेश्वर की ओर चल पड़ा। चौदह मील का रास्ता पार कर अपने अभीष्ट स्थान पर पहुँचा। ईश्वर की बड़ी कृपा हुई कि मैं समय पर पहुँच गया, नहीं तो धर्मेंद्र अपने ग्राम चले गये होते। उनके ग्राम का नाम गाज था, जो मुक्तेश्वर से चार मील की दूरी पर है। दो दिन के बाद मैं और धर्मेंद्र दोनों साथ ही अल्मोड़ा आये। वे मेरे साथ ही मेरे घर पर रहे। मेरे घर वाले उन्हें आदर और स्नेह की दृष्टि से देखते थे। एक दिन रहने के बाद वे फिर मुक्तेश्वर लौट गये और कीटाणु-विज्ञान (Bacteriology) का अध्ययन करते रहे।

इस प्रकार एक माह भी व्यतीत न हो पाया था कि एक रात अकस्मात् ही धर्मेंद्र आ गये। पूछने पर उन्होंने बताया कि उन्होंने सब कुछ त्याग दिया है। दो-चार दिन रहने के बाद एक दिन बोले कि मैं ऋषिकेश जाऊँगा। मित्र से बिछुड़ते हुए दुःख तो बहुत हुआ पर ईश्वर की यही इच्छा थी। जाते हुए मुझे अपनी एक फोटो देते गये, जो आज तक मेरे पास है। कुछ दिनों के पश्चात् उनका एक पत्र मिला, जो उन्होंने ऋषिकेश से लिखा था। उस पत्र में उन्होंने लिखा था, 'मित्र यह मेरा तुम्हारे लिये अन्तिम पत्र है। दूसरा पत्र तुम्हें उस समय मिलेगा, जब मैं सच्चा मनुष्य बन जाऊँगा।' उसी पत्र में उन्होंने यह कविता भी लिखी थी–

इन गीतों में सुख मेरा है, इन छन्दों में सूनापन है।
इन भावों में चिता सजग है, पर मुझमें तो पागलपन है॥

उस पत्र को पढ़कर मुझे तो रोना आ गया। उसके बाद सात वर्ष तक मुझे उनका पता न मिला। कितनों से पूछा, पर वे कुछ पता न दे सके। सन् 1950 में जब स्वामी शिवानन्द जी भारत भ्रमण के लिये निकले, उसी समय मेरे एक मित्र, आमी का पत्र मुझे मिला कि धर्मेंद्र श्री स्वामी शिवानन्द जी के शिष्य हो गये हैं, और वे सितम्बर में कलकत्ते आने वाले हैं। मैंने कलकत्ते में उनके दर्शन किये, वे वास्तव में एक महान् पुरुष हो गये थे। उनकी तेजोमयी दिव्य मूर्ति को देखकर मेरे नेत्र गौरव से भर आये। उनके उस तेजस्वी स्वरूप को देखकर मुझे सचमुच आह्लाद का अनुभव हुआ। मेरे जैसा मनुष्य भी कितना भाग्यशाली है। स्वामी जी की भेजी हुई 'आरोग्य जीवन', 'शिवानन्द दिग्विजय' तथा अन्य कितनी ही पुस्तकें मैंने पढ़ी। आज भी स्वामी सत्यानन्द जी का पवित्र स्वरूप सदा मेरे हृदय पटल पर अमर है। वह कोख धन्य हुई, जिसमें वे पले, वह भूमि धन्य हुई, जहाँ वे रहे और मैं तो भाग्यशाली हूँ ही, क्योंकि मैंने अपने जीवन के कई वर्ष एक 'जीवन संत' के साथ व्यतीत किये। वे अमर रहें।

–श्री के.सी. जोशी, अल्मोड़ा

सत्यम्! चिरंजीव रहो!

सत्यम्! ओ दिव्य जीवन के कलाकार
आज के शुभ दिन तुम इस जग में आये थे
तुम हो सत्यम्, शिवम् और सुन्दरम् के प्रतीक,
कर्म और शान्ति के अवतार,
भाषा, साहित्य और धर्म के प्राण,
महाप्राण गुरुदेव के तुम देवदूत,
तुम धन्य हो!
चिरंजीव रहो, और चिरन्तन युगों तक
अपनी कठोर तपस्या की शक्ति से,
पवित्र साधना की दीप्ति से,
विशाल ज्ञान के भण्डार से
अखिल विश्व का विशाल पथ
ज्योतित करते रहो!

–श्री महेन्द्र, प्रयाग

उनके साहित्यिक जीवन की एक झलक

आज से पन्द्रह वर्ष पहले की बात है। मैं उस समय गवर्नमेंट इन्टरमीडियेट कॉलेज, अल्मोड़ा में छठवीं कक्षा में पढ़ता था। इसी समय हमारे विद्यालय के कुछ उत्साही नवयुवकों ने 'माँ' नामक एक पत्रिका निकाली। वैसे तो उसमें अनेकों सुन्दर कहानियाँ, लेख और कविताएँ थीं, परन्तु 'हृदयहीन' उपनाम से लिखने वाले एक विद्यार्थी की कविताओं ने कुछ एक हलचल-सी मचा दी। लोगों को विश्वास नहीं होता था कि स्कूल का एक विद्यार्थी ऐसी सुन्दर व महान् रचनायें कर सकता है। उस समय मुझे भी इस ओर रुचि थी। मैंने भी 'माँ' में लिखना आरम्भ किया और शीघ्र ही 'हृदयहीन' से मेरी प्रगाढ़ मित्रता हो गई। यह हृदयहीन थे श्री धर्मेंद्रसिंह नायाल, तब नवीं कक्षा के एक होनहार विद्यार्थी।

कुछ दिनों बाद धर्मेंद्र ने स्वयं 'भारत' नामक एक पत्रिका का सम्पादन करना आरम्भ कर दिया। धर्मेंद्र के सत्संग ने मेरे हृदय में भी प्रोत्साहन उत्पन्न किया और उनके कहने पर मैंने भी 'अग्रगामी' नामक पत्रिका प्रकाशित की। सन् 1940 में जब प्रसिद्ध कवि सुमित्रानन्दन पन्त जी अपनी जन्म भूमि आये तो हमने उन्हें अपनी पत्रिकायें दिखाईं। उन्होंने हम लोगों के प्रयास की सराहना की परन्तु कहा कि यदि हम लोग सब मिलकर एक ही पत्रिका निकालें तो अधिक अच्छा होगा। इस पर मैंने और धर्मेंद्र ने साथ-साथ कार्य करने का विचार किया और 'अग्रगामी-भारत' पत्रिका संयुक्त रूप से प्रकाशित की। धर्मेंद्र से बहुत अनुरोध करने पर भी उसने प्रधान संपादक बनना स्वीकार नहीं किया और विवश होकर मुझे ही यह पद संभालना पड़ा। भले ही धर्मेंद्र सहायक के रूप में कार्य कर रहा था, परन्तु वास्तव में सम्पूर्ण सम्पादन व निरीक्षण उसी के द्वारा होता था।

हम बालकों के इस उद्योग से छोटे-बड़े सभी प्रभावित हुए और हमें प्रोत्साहन मिलता रहा। सुमित्रानन्दन पन्त जी ने स्वयं अपने हाथों से हमारी पत्रिका में कवितायें लिखीं। धर्मेंद्र ही पत्रिका की आत्मा था। उसने 'हृदयहीन', 'प्रेमी', 'निराला', 'वही' और 'पल्लव' नाम से अनेकों कवितायें, कहानियाँ व लेख लिखे। हिन्दी, संस्कृत और अंग्रेजी में उसकी योग्यता देख अध्यापक लोग तक दंग रह जाते। इसी समय उसने हिन्दी के मुख्य-मुख्य छन्दों व अलंकारों के प्रदर्शन करने के लिए कवितायें लिखना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रयास में उसे पूर्ण सफलता प्राप्त हुई। जिसने भी इन

कविताओं को पढ़ा, बिना सराहना किये न रह सका। 'पल्लव' की कविता अब पल्लवित हो चली थी।

इन्हीं दिनों कविवर सुमित्रानन्दन पंत जी के सम्मान में एक कवि सम्मेलन का आयोजन हुआ। 'पल्लव' की कविता सर्वोत्तम रही। पंत जी ने कहा, 'यह बालक अवश्य ही एक दिन हिन्दी साहित्य में अपना नाम उज्ज्वल करेगा'। पंत जी की वाणी आज सत्य सिद्ध हो गई है। बालक धर्मेंद्र आज स्वामी सत्यानन्द जी के रूप में अपना नाम हिन्दी साहित्य के चिदाकाश में उज्ज्वल कर रहा है।

हिन्दी के अतिरिक्त संस्कृत तथा अंग्रेजी से भी धर्मेंद्र को विशेष प्रेम था। उसने संस्कृत में भी लिखना प्रारम्भ कर दिया था। उसका विचार अंग्रेजी की भी एक पत्रिका निकालने का था। इतनी अल्पायु में तीन साहित्यों का विशेष ज्ञान होना वास्तव में अपौरुषेय था।

अब धर्मेंद्र का मन क्लास की निरर्थक पढ़ाई में बिल्कुल नहीं लगता था। जब अध्यापक अल्जेबरा अथवा ज्योमैट्री समझाया करते तो वह सब से पीछे की सीट में बैठा या तो कविता बनाया करता या अग्रगामी-भारत के लेखों का संशोधन करता रहता।

धर्मेंद्र और मैं बहुधा पहाड़ों में घूमते-घूमते बड़ी दूर एकान्त में चले जाते। धर्मेंद्र कभी-कभी हिमालय के अगम्य शिखरों को एक-टक देखते रहता और अपने आपको भूल-सा जाता था। मैं जब कभी उससे इस विषय में पूछता तो वह हँस कर टाल दिया करता था। क्या मालूम था कि वह हिमालय के उन शिखरों में अपने उस उज्ज्वल भविष्य को खोज रहा था, जो कि संतों के आश्रमों में निहित था।

एक दिन धर्मेंद्र एकाएक अल्मोड़ा छोड़कर चला गया। कहाँ और क्यों? किसी को भी नहीं मालूम।

इसी तरह सात साल बीत गये। धर्मेंद्र की आकृति स्मृति मात्र रह गई और जब कभी पुरानी घटनाएँ याद आतीं तो हृदय भर आता था, आँखों से आँसू गिरने लगते। पता नहीं कहाँ है, कैसा है।

सन् 1950 की बात है। मैं प्रयाग विश्वविद्यालय में एल.एल.बी. का छात्र था। एक दिन मुझे अचानक एक पत्र मिला, जिसमें लिखा था कि लेखक मेरे पिछले सात वर्षों के विषय में जानना चाहते हैं, और मेरा पत्र पाने पर अपना परिचय देंगे। कुछ देर तक मैं बड़ी उलझन में पड़ा रहा, लेकिन तुरन्त ही मुझे

धर्मेंद्र का ध्यान आ गया। पत्र के नीचे सत्यानन्द नाम के हस्ताक्षर थे। मुझे विश्वास हो गया कि यह स्वामी सत्यानन्द मेरा पुराना सहचर धर्मेंद्र ही है। मैं प्रसन्नता से पागल हुआ जा रहा था। मैंने तुरन्त ही पत्रोत्तर लिखा और मेरा विश्वास ठीक निकला। सात वर्ष पहले जो बालक धर्मेंद्र एकाएक अल्मोड़ा छोड़कर चला गया था, वही आज ऋषिकेश का तपस्वी स्वामी सत्यानन्द है। जिस बालक ने अपनी अलौकिक प्रतिभा से एक छोटी-सी पर्वतीय नगरी को चकित कर दिया था, वह आज सारे भारतवर्ष को अपने अनवरत परिश्रम द्वारा पूजनीय स्वामी शिवानन्द जी का पवित्र संदेश दे रहा है।

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के विषय में अधिक लिखना यहाँ पर अनावश्यक है। उनके असंख्य पाठक उनके संन्यस्त जीवन के विषय में जानते ही हैं। मैंने उनके पूर्वाश्रम की केवल एक झाँकी प्रस्तुत की है, जिसके विषय में बहुत कम व्यक्ति जानते हैं। यह मेरा अहोभाग्य है कि अपने जीवन के प्रारम्भिक वर्ष मुझे इस महापुरुष के सत्संग में व्यतीत करने का सुअवसर प्राप्त हुआ।

आज शिवानन्द नगर में उनकी 31वीं वर्षगांठ मनाई जा रही है, इस शुभ अवसर पर मैं अपनी शुभकामनायें भेंट करता हूँ। ईश्वर से यह प्रार्थना है कि स्वामी सत्यानन्द सरस्वती चिरायु रहें, और सदा अपनी अलौकिक लेखनी द्वारा अपने पूज्य गुरु, श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज का अमर पवित्र और कल्याणकारी सन्देश समस्त विश्व को देते रहें।

–श्री अश्विनी कुमार पंत, आमी एम.ए., एल.एल.बी. विशारद
भूतपूर्व सम्पादक, इलाहाबाद विश्वविद्यालय यूनियन पत्रिका, अल्मोड़ा



अभिनन्दन पत्र

कूर्माञ्चल की पुण्यभूमि के अमर तपस्वी!

ऋषि-प्रतिम पुण्यश्लोक महामंडलेश्वर स्वामी शिवानन्द सरस्वती के प्रिय शिष्य असाधारण शक्ति-संपन्न समदर्शी और सद्गुणालंकृत आपकी नित्यस्मरणीय 31वीं पवित्र जयन्ती के उपलक्ष्य में, मैं आज परमेश्वर के पास हार्दिक मंगल कामना करता हूँ। मेरी संकुचित और सीमित अनूभूति से आपकी गुणराशि का वर्णन करना 'गागर में सागर भरने' के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

जगद्विख्यात रामकृष्ण परमहंस के निकट आत्मसमर्पण कर स्वामी विवेकानन्द ने उनके आशीर्वाद से अपनी तेजोमयी प्रतिभा के द्वारा सारे संसार को जैसे चमत्कृत और उद्बुद्ध किया, वैसे ही उत्तराखंड के अन्तर्गत ऋषिकेश के योगीराज, जगत्-कल्याणकारी, महामना स्वामी शिवानन्द का शिष्यत्व स्वीकार कर आपने अपूर्व भक्ति और सेवा से अपनी प्रतिभा और कविता-शक्ति का परिचय, ग्रन्थ लिखकर प्रत्यक्ष रूप में दिया है। 'चैतन्य ज्योति' और 'शिवानन्द दिग्विजय' नाम के ये दो ग्रन्थरत्न हिन्दी-जगत् के लिये अमर कृति ही हैं। मानव को आध्यात्मिक भावना की ओर खींच लाने के लिए ये प्रदीप-आलोक की तरह प्रतीत होते हैं। ईश्वर के पवित्र राज्य में इस अमर कृति के लिए आपका योग्य पुरस्कार रखा हुआ है।

आध्यात्मिक स्वतन्त्रता के अटल प्रहरी!

सांसारिक ममता को सदा के लिए घृणा के साथ कुचल कर आपने संन्यस्त जीवन में अति अल्प काल के भीतर जो आध्यात्मिक महत्ता कर्मयोग के साधन से दिखाई है, यह सब से बढ़कर सराहनीय और सच्चे साधकों के लिए अनुकरणीय है। आपकी भावगंभीर शान्तमूर्ति से हृदय के अनुरूप गुण आसानी से ही प्रतीत होते हैं। संस्कृत में यह एक अमर उक्ति है कि 'यत्राकृतिस्तत्र गुणाः वसन्ति।' आपकी मति की कमनीय कान्ति और अनावृत प्रेमपूर्ण वचन से हृदय के सद्गुणों का प्रभाव तत्क्षणात् ही दूसरे के अन्तर पर पड़ता है। शांत, सरल, प्रीति और सद्भाव से भरा आपका हृदय सभी के अन्तर में नया आकर्षण पैदा करता है।

अध्यात्म-संग्राम के विजयी महारथी!

मुक्ति की अभिलाषा रखकर निरन्तर नारायण की उपासना करने वाले संन्यासियों का हृदय साधारणतया शुष्क और नीरस जान पड़ता है। किन्तु संन्यासी होकर नियमित अखंड ब्रह्मचर्य और निष्ठा के साथ संन्यास-धर्म का पालन करते हुए भी आपकी कविता और कला-विद्या में जो अपूर्व शक्ति है, इससे आपकी सरस प्रतिभा सर्वतोमुखी जान पड़ती है। मैं अपनी अनुभूति और विचार से इस विशेषता को ईश्वर का अमर वरदान ही समझता हूँ। भाषा-जननी देव-वाणी संस्कृत भाषा में भी आपकी असाधारण योग्यता सबसे अधिक प्रशंसनीय है।

अपनी दैहिक ममता का सम्पूर्ण त्याग कर कर्मयोगी के रूप में इस आश्रम की स्वार्थरहित पवित्र सेवा से आप केवल ऋषिकेश में ही नहीं, वरन् सारे भारत में अमर कीर्तिलाभ करने के एकमात्र अधिकारी हैं।

विदेहराज जनक के अभिनव अवतार!

आज आपकी इस सदा स्मरणीय पुण्य-जयन्ती के शुभ अवसर पर मैं अपनी ओर से भक्ति-पुष्प का सादर उपहार देते हुए जगत्-नियन्ता परमात्मा के पास हार्दिक प्रार्थना करता हूँ कि वे आपको अपूर्व शक्ति और दीर्घ-आयु प्रदान कर आपके चिर-अभिलषित आध्यात्मिक पथ को सुगम और सुन्दर बनावें।

सत्यानन्दाय शान्ताय सदा प्रसन्नचेतसे।
शिवमार्गानुगायास्मै दीर्घायुषं ददात्वीशः॥

—श्री गिरिधारी मिश्रा, राष्ट्र-भाषा-रत्न, साहित्याचार्य



दिव्य जीवन के महारथी

आज आपकी 'जन्म-जयन्ती' पर बधाई भेजने का परम सौभाग्य प्राप्त कर मुझे अपार हर्ष हो रहा है। वह दिन मुझे भली भाँति स्मरण है, जब आपने अपनी किशोरावस्था में ही संसार से पूर्ण विरक्त होकर 'आनन्द कुटीर' (ऋषिकेश) में पदार्पण किया था और परम श्रोत्रीय ब्रह्मनिष्ठ-सद्गुरु की कृपा तथा शरण प्राप्त कर निहाल हो रहे थे। ऐसे ही पुनीत अवसर पर जब मैं भी अपने पूजनीय भवभयहारी दयासागर श्री गुरुदेव के दर्शनार्थ जा पहुँचा तो आपकी उस लावण्यमयी प्रफुल्ल भव्य मूर्ति का दर्शन कर कृतार्थ हो गया, जिसकी स्मृति अभी भी हृदय पटल पर अंकित है। श्री गौरांग महाप्रभु की दिव्य छटा आपके श्रीमुखारविंद पर देख कर मेरा चित्त स्वत: आकर्षित हो गया और वह सद्य: मैत्रीभाव में परिणत हुआ था। तब से आज तक जब-जब मैं वहाँ पहुँचा हूँ, आपने जो सेवा, सहानुभूति तथा सहृदयता प्रदर्शित की है, उसके लिए मैं आपका चिर ऋणी तथा सदा ही कृतज्ञ हूँ।

अपनी इस अल्पावस्था में ही अध्यात्म-मार्ग में जो असीम प्रगति दिखलाकर आपने लोगों को अचम्भित कर दिया है, वह अत्यन्त ही श्लाघनीय है। आप जैसे योग्य आत्मानुभवी, ज्ञानी, विद्वान्, कार्यकुशल, महान् व्यक्ति को पाकर आज 'दिव्य जीवन मण्डल' धन्य हुआ है तथा बड़ी तेजी से अध्यात्म-विद्या के प्रसार में संलग्न है। आंग्लशिक्षा प्राप्त विद्वान् सदस्यों के मध्य में रहते हुए भी आपने हिन्दी भाषा में लिखकर तथा पत्र-पत्रिकाएँ निकाल कर अपनी मातृभाषा की जो सेवा की है और इसे अपनी संस्था में उच्च स्थान देने में जो सफलता प्राप्त की है, उसके लिए आपकी जितनी प्रशंसा की जाए, थोड़ी है। इस सेवा के लिए हिन्दी जनता की ओर से भी आपको बधाई है। हम सभी आपके इस उपकार को नहीं भूल सकेंगे; क्योंकि यदि इस प्रकार हिन्दी की ओर आपका ध्यान आकर्षित न हुआ होता तो अधिकांश साधारण हिन्दी के जानकार श्री स्वामी जी महाराज के समयानुसार दिव्य उपदेशों से वंचित ही रह जाते।

अन्त में आपकी इस 31वीं वर्षगांठ पर आपके परम सौभाग्य की सराहना करता हुआ हृदय से बधाई देता हूँ। परम पिता परम दयालु परमात्मा आपको जनता-जनार्दन की सेवा में निरत रखते हुए, आपको चिरायु प्रदान करें।

—श्री दुर्गा शरण लाल,
अध्यक्ष, दिव्य जीवन संघ शाखा, राजगृह, पटना

शिवानन्द जी का कोह-ए-नूर

रत्न की उत्पत्ति पत्थर में होने पर भी सर्व-पत्थरों में उसकी उपलब्धि नहीं हो सकती। उत्तम गजमोती का लाभ हाथी के गण्डस्थल पर होने पर भी वह हर एक हाथी में नहीं पाया जाता। चन्दन की भी उत्पत्ति जंगल में होती है, परन्तु हर एक जंगल में उसकी प्राप्ति सुलभ नहीं है। इसी तरह स्वामी सत्यानन्द जैसे सन्त पुरुष सर्वत्र नहीं हो सकते।

इस विराट्-रूप संसार में रोज कई आदमी जन्म लेते हैं, कुछ रोज रहते हैं और चले जाते हैं; जिनका नाम कुछ रोज रहता है और फिर चला जाता है। मगर जिसका नाम हमेशा प्रकाशित होता रहता है, उसे जनता नहीं भूल सकती। स्वामी शिवानन्द जी अंग्रेजी में लिखते हैं। हमारे देश में अंग्रेजी पढ़ने वाले, जनसंख्या के अनुपात में, एक प्रतिशत भी नहीं मिलेंगे। हमारे देश में अनेक भाषाएँ बोली जाती हैं, जिनमें हिन्दी प्रमुख है। स्वामी शिवानन्द जी के अंग्रेजी लेखों का सरल हिन्दी अनुवाद सत्यानन्द जी न करते तो मुझे ऐसा लगता है कि श्री शिवानन्द जी हम तक न पहुँच पाते। अंग्रेजी मैं भी पढ़ता हूँ, मगर जैसे हिन्दी समझ पाता हूँ, वैसे अंग्रेजी नहीं।

सत्यानन्द जी का नाम हिन्दी साहित्य में हमेशा अमर रहेगा; क्योंकि उन्होंने उच्चकोटि के हिन्दी साहित्य का निर्माण किया है।

शिवानन्द आश्रम में अनेक रत्न हैं, उनमें सत्यानन्द जी कोह-ए-नूर हैं। इस छोटी-सी तीस वर्ष की उम्र में इन्होंने खून का पसीना कर और रात का दिन कर जिस साहित्य का निर्माण किया है, उसे संसार नहीं भूल सकता।

मैं इस सुअवसर पर आशा करता हूँ कि स्वामी सत्यानन्द जी संसार में अनेकों वर्ष तक रहें और उनकी वर्षगाँठ मनाने का मौका हमें बार-बार मिले; और मैं चाहता हूँ कि स्वामी जी सदा काम में व्यस्त रहें और नवीन-नवीन साहित्य हिन्दी में लाने का प्रयत्न करें।

धन्य है वह माता, जिसने स्वामी सत्यानन्द जैसे पवित्र और वीर पुत्र को जन्म दिया और धन्य हों गुरु स्वामी शिवानन्द जी, जिन्होंने इन्हें मार्ग दिखलाया और इतनी छोटी उम्र में हिन्दी-प्रेमियों से परिचित कराया। आशा है कि स्वामी जी हिन्दी-सेवा का व्रत निभायेंगे।

मेरी उम्र स्वामी जी से कुछ महीने कम है, मगर अफसोस, उनकी बराबरी करना बहुत ही कठिन है। त्यागी व्यक्ति महान् और आदर्शवान् होते हैं।

प्रथम मेरा विचार अंग्रेजी में लेख लिखने का था, मगर इस हिन्दी अभिमानी वीर पुरुष को उसकी भाषा में अभिवादन कर पुष्पांजलि भेंट करनी चाहिए, इसलिए मैंने, हिन्दी न आते हुए भी उसी भाषा में लिखने का प्रयत्न किया है।

जब मैंने ब्रह्मचारी सत्यानन्द जी को देखा तो उनकी तेजस्विता मेरे मन पर हमेशा के लिए घर कर गई। इनकी हिन्दी पुस्तकें बहुत सरल हैं। इनके लिखे हुए लेखों को बार-बार पढ़ने की इच्छा होती है।

मैं आशा करता हूँ कि यह आर्य पुत्र संसार में अध्यात्म का महारथी बनेगा।

इस शुभ अवसर पर मैं हार्दिक प्रार्थना करता हूँ कि यह शुभ दिन स्वामी सत्यानन्द जी के जीवन में बार-बार आवे और यह संसार का महान् त्यागी चिरंजीव रहे तथा नित्य नवीन शक्ति से सम्पन्न हो; सत्य का उदय करे और करे मानवता की सेवा। बोलो स्वामी सत्यानन्द जी की जय!

–श्री सी.जे. मुनोत, सोलापुर

अद्वैतवाद के अभिनव भाष्यकार

सामान्यत: साठ-सत्तर वर्ष के बाद जयन्ती मनाई जाती है, परंतु सिर्फ तीस वर्ष के एक युवक शिष्य की जयंती मनाने का संकल्प करके जिस नये मार्ग का स्वामी शिवानन्द जी ने निर्माण किया है, इसमें हजारों वर्षों तक गुरुओं ने शिष्यों से जो सेवा ली है, उसका बदला चुकाने का मुझे संकेत लगता है। शिष्यों की सेवा लेने में अहंकार पैदा होने की संभावना है जब कि इस तरह की प्रवृत्ति अहंकार का नाश करती है और पवित्र आत्मा की रक्षा भी होती है; अत: मैं इस प्रवृत्ति का आदर करता हूँ।

श्री स्वामी सत्यानन्द जी गत वर्ष 'पाटण-नेत्रयज्ञ' के कार्यक्रम में उपस्थित हुए थे, जहाँ उनका सहवास प्राप्त करने का मुझे सौभाग्य मिला था। नौ-दस दिन वे वहाँ ठहरे थे और सुबह-शाम उनके व्याख्यान होते रहते थे, जिनका मैंने अच्छी तरह से लाभ उठाया। सुबह सूर्योदय के पहले वे हर रोज जंगल में घूमने जाया करते थे और एकांत में शांति का आस्वादन किया करते थे। एकाध दिन मैं भी उनके साथ हो लिया था, जहाँ मुझे उनके सामीप्य के आनन्द के साथ ज्ञानचर्चा में उनके विशिष्ट व्यक्तित्व का दर्शन हो पाया था।

गंभीर शान्त मुखमुद्रा, श्रुतिमधुर वाणी, मंडनात्मक व्याख्यान-शैली; सुसंबद्ध वाणी-प्रवाह, सर्वधर्मसमभाव-भरी उदारता और पूर्ण नम्रता उनके

गुण थे, जिससे स्वामी जी हर किसी को प्रभावित करके उनका हृदय जीत लेते थे।

एक बार अद्वैतवाद के बारे में मेरी स्वामी जी से काफी चर्चा हो रही थी, जोरदार दलीलें देकर मैंने कहा कि अद्वैतवाद कभी सिद्ध नहीं हो सकता।

स्वामी जी ने गम्भीर शांतिभाव से मुझे समझाया कि 'मैं आपके पास एक सप्ताह तक चर्चा करके अद्वैतवाद को सिद्ध कर दे सकता हूँ, परन्तु यह सब माथापच्ची की बात है। अद्वैतवाद का व्यावहारिक और सच्चा अर्थ तो प्रेमभाव है। विश्व के हर एक जीव के साथ प्रेम पैदा करना और जड़-चेतन विश्व को अद्वैत रूप से देखना और इस प्रकार जीवन को बनाना, यही अद्वैतवाद का संदेश है; वास्तविक तत्त्व क्या है उसकी माथापच्ची छोड़ो।'

अद्वैतवाद का यह नया अर्थ सुनकर मेरे दिल में एक नया प्रकाश हुआ और स्वामी जी के प्रति मैं आकृष्ट हुआ। यदि जगत् अद्वैतवाद का यह अर्थ अपना ले तो दुनिया में कैसी शान्ति और सुख बढ़ जाये!

मैं आशा करता हूँ कि वैराग्यमूर्ति स्वामी सत्यानन्द जी अपने इस सन्देश का प्रचार करने और शान्ति-सुख बढ़ाने के लिए तन्दरुस्त और दीर्घायुषी हों और दिन-रात ज्ञान-तप-शक्ति में आगे बढ़ते रहें!

—श्री रतिलाल मफतभाई शाह, मण्डल

भारतीय संस्कृति के देवदूत स्वामी सत्यानन्द

मैं इस पवित्र काशी नगरी से श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती जी को उनकी 31 वीं वर्षगांठ पर हार्दिक बधाई देता तथा अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ और साथ ही उनके गुरुदेव परम पूज्य स्वामी शिवानन्द महाराज को भी बधाई तथा अभिनन्दन भेजता हूँ। भगवान बुद्ध, जगद् गुरु शंकराचार्य तथा रामकृष्ण परमहंस की भाँति श्री स्वामी जी महाराज ने भी बहुत से आध्यात्मिक शिष्य बनाये हैं। ये शिष्यगण भारत के कोने-कोने में सच्ची भारतीय संस्कृति का प्रचार कर रहे हैं। श्री स्वामी सत्यानन्द जी उनके उन प्रमुख शिष्यों में से हैं, जिनके द्वारा 'दिव्य जीवन मण्डल' का इतने थोड़े समय में ही सम्पूर्ण विश्व में इतना व्यापक प्रचार हो गया।

श्री स्वामी सत्यानन्द जी 'योग वेदान्त आरण्य विश्वविद्यालय' के हिन्दी-संस्कृत-विभाग के अध्यक्ष तथा योग, वेदान्त, भक्ति, धर्म तथा सदाचार के

प्रचार के लिए प्रकाशित होने वाली हिन्दी मासिक पत्रिका 'योग वेदान्त' के प्रमुख सम्पादक हैं। आप हिन्दी की उन्नति में सदा ही तत्पर रहते हैं। आपको हिन्दी कविता और साहित्य से बड़ा ही प्रेम रहा है। आप बाल्यकाल से ही एक अच्छे कवि रहे हैं। आपने इस अल्पावस्था में ही हिन्दी की महान् सेवा की है। आपने कई पुस्तकें लिखी हैं, जिनमें 'चैतन्य ज्योति' तथा 'शिवानन्द दिग्विजय' की गणना अमर साहित्य में है। आपके लेख, आपकी कविताओं तथा आपकी वाणी में अद्भुत चमत्कार है।

श्री स्वामी शिवानन्द जी ने 'विश्व-धर्म-परिषद्' का आयोजन किया; उसमें आपने बहुत ही महत्त्वपूर्ण भाग लिया। उस समय का आपके द्वारा सम्पादित 'योग-वेदान्त' पत्रिका का 'विश्व धर्म परिषद्' नामक विशेषांक अवलोकनीय है।

इतने उदार, उच्च विचार के संन्यासी, नेता, कवि तथा आध्यात्मिक संत को अपने मध्य में पाकर हम अपने को गौरवान्वित मानते हैं। हमें पूर्ण विश्वास है कि आपसे हिन्दी भाषा की सच्ची उन्नति होगी तथा ब्रह्मविद्या का विश्व में डंका बजेगा। भगवान बुद्ध और शंकर का युग पुनः वापस आ गया है। ऐसे होनहार संन्यासी को भगवान विश्वनाथ चिरायु प्रदान करें।

–विद्याभूषण श्री देवी नारायण, एडवोकेट, बनारस

सर्व-योग-निष्णात स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

परम पिता परमात्मा को कोटिशः धन्यवाद है और श्री गुरुदेव की अपार कृपा है कि आज अपने एक गुरुभाई के जन्म दिवस के इस पवित्र अवसर पर अपनी यह भेंट अर्पित कर रहा हूँ।

श्री स्वामी सत्यानन्द जी का जन्म अल्मोड़ा के एक कुलीन एवं सुसम्पन्न परिवार में 26 जुलाई, 1923 के शुभ दिवस को हुआ। इनका पूर्व नाम धर्मेन्द्र था। इनके पिता पुलिस इन्सपेक्टर थे।

परमात्मा की कृपा से पूर्व-जन्मों के संस्कार एवं पुण्य कर्म अच्छे प्रबल थे, जिनके कारण और अधिक न पढ़कर वैराग्य का पथ अपनाया। माता-पिता, बन्धु-बान्धव तथा घर के सभी मोह, स्नेह तथा प्रेम को तिलांजलि देकर यहाँ आनन्द कुटीर (ऋषिकेश) में सन् 1943 में पूज्य श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज के चरणों में आ गये।

'होनहार बीरवान के होत चीकने पात' के अनुसार आगे चलकर संसार को इनके सेवा तथा परोपकारमय जीवन की महती अपेक्षा थी और इन्हें भी जीवन साफल्य की प्राप्ति का श्रेय मिलना था; इसी से यहाँ आने पर पूज्य स्वामीजी ने बड़े ही प्रेम से इनका स्वागत किया और प्रेम से अपने पास रखा।

धर्मेन्द्र काम में बड़े ही कुशाग्र बुद्धि थे। जिस किसी भी कार्य में इन्हें नियुक्त किया गया अथवा स्वेच्छा से ही जिस कार्यभार का उत्तरदायित्व लिया, उसकी कार्य प्रणाली का शीघ्र ही ज्ञान प्राप्त कर उसे बड़ी ही निपुणता एवं बुद्धिमत्ता से सम्पादित किया। स्मरण शक्ति बहुत ही तीव्र है। सभी उपनिषद् तथा स्तोत्रादि कण्ठस्थ कर लिए। सभी विभागों में काम किया और सब में बड़ी कुशलता के साथ। सदा ही सब के प्रेम और प्रशंसा के पात्र बने रहे। सबसे हिल-मिल कर रहने का इनका स्वभाव है।

मंदिर में श्री विश्वनाथ जी की पूजा-अर्चना बहुत काल तक बड़े ही प्रेम, श्रद्धा तथा सच्चे हृदय से की। जिस समय स्तोत्र तथा पुरुष सूक्त आदि का उच्चारण करते, श्रोता मंत्र-मुग्ध से हो जाते थे। बड़े ही मधुर स्वर में गान करते थे। कंठ सुरीला तथा उच्चारण सुस्पष्ट और शुद्ध है।

सत्संग तथा कीर्तन में बराबर भाग लेते थे। कीर्तन-भजन बड़ा ही सुन्दर करते थे। गाने-बजाने की कला पर इनका पूर्ण अधिकार है। सुनने वाले भावातिरेक से झूमने लगते हैं।

'शिवानन्द-प्रकाशन-विभाग' में भी काम किया और उसका पूर्ण भार बड़े ही सुचारु रूप से वहन किया। वहाँ पर ऐसी लगन के साथ काम किया कि अल्प काल में ही अपने सहकारियों के हृदय में प्रेम व सम्मान का स्थान प्राप्त कर लिया। श्री स्वामीजी इनके काम से अत्यन्त ही प्रसन्न और सन्तुष्ट थे। अभी तक किसी ने भी इतनी योग्यता के साथ इस विभाग में काम नहीं किया है। यहाँ एक बात लिखना अनुचित न होगा क्योंकि इससे इनकी योग्यता की एक झाँकी मिल जाती है। एक बार किसी कारणवश इन्हें 'प्रकाशन-विभाग' का काम छोड़ना पड़ा। फिर क्या था, उस समय यहाँ पर कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं था जो कि इस कार्य को संभाल सके। अन्ततः एक व्यवस्थापक को तीन सौ रुपये मासिक वेतन पर नियुक्त करना पड़ा। छः माह तक उसने इस कार्य को संभालने में यथाशक्य पूर्ण प्रयत्न किया; किन्तु सफल न हो सका और उसे इस पद से हटाना ही पड़ा। अधिक क्या लिखें, इन्होंने जिस किसी भी कार्य का भार अपने हाथों में लिया, उसे बड़ी लगन और सच्चे हृदय से पूर्ण किया।

श्री स्वामी जी ने इन्हें योग्य समझकर तथा विवेकवैराग्यादि में निपुण पाकर 12 सितम्बर 1947 को संन्यास की दीक्षा दी और उसी दिन से वे श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती हो गए।

'अन्नपूर्णा-विभाग' का भी पूर्ण प्रबंध अपने हाथ में लिया और उसे बड़ी सुयोग्यता से निभाया। इनके व्यवहार तथा सुप्रबंध से सभी प्रसन्न तथा संतुष्ट थे। इन्होंने कुछ समय तक औषधालय में भी काम किया। यहाँ कोई भी ऐसा विभाग न होगा, जिसमें इन्होंने काम न किया हो और उसमें पूर्ण सफलता न प्राप्त की हो। इन्हें किसी भी कार्यक्षेत्र में असफलता का सामना नहीं करना पड़ता।

इनका स्वभाव बहुत ही भला है। सभी के साथ प्रेम करने तथा सभी की सेवा करने का इनमें स्वाभाविक गुण है। दूसरों से काम लेने की कला का इन्हें पूर्ण ज्ञान है। किससे, किस प्रकार का और किस रूप से काम लेना चाहिए, यह भली-भाँति जानते हैं।

आजकल प्रकाशन विभाग के मुख्य व्यवस्थापक हैं। इसके साथ ही हिन्दी-संस्कृत विभाग के अध्यक्ष पद का भी कार्यभार वहन करते हैं। आपके ही सुयोग्य निरीक्षण में हिन्दी का कार्य सफलतापूर्वक सम्पन्न हो रहा है। इन्होंने ही 'योग-वेदान्त' पत्रिका का श्री गणेश किया। हम तो यह समझते हैं कि श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज के दिव्य कार्य को पूरा करने तथा उसके अभाव को दूर करने के हेतु ही इनका जन्म हुआ है और उसी कार्य की पूर्ति के लिए इन्होंने घर-बार का परित्याग कर (संन्यास लेकर) यहाँ रहना स्वीकार किया है।

श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज ने भारत तथा विदेश में अंग्रेजी भाषा-भाषी तथा शिक्षित जनता में जो अपूर्व जागृति पैदा की है, वह किसी से अज्ञात नहीं। शिक्षित वर्ग नास्तिकता की ओर झुक रहा था। सभी विलासिता के शिकार हो चले थे। ईश्वर से परांमुख होते जा रहे थे। प्रेम का नाम नहीं था। परस्पर लड़ाई, वैमनस्य, ईर्ष्या, द्वेष आदि की नग्न क्रीड़ा हो रही थी। सभ्यता नष्टप्राय हो चली थी। कहाँ तक लिखें, कलियुग का पूर्ण आधिपत्य स्थापित हो चला था। पूज्य श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज की कृपा से शिक्षित वर्ग में पुनः जागृति उत्पन्न हुई, आँखें खुलीं और कुछ सेवा, प्रेम, ईश्वर-भजन, कीर्तन की ओर उन्मुख हुईं, बहुतों के जीवन में कायापलट हुआ। लाखों ने उचित मार्ग का अवलम्बन ग्रहण किया। इन बातों को प्रायः सभी जानते हैं। आजकल हिन्दी की माँग बहुत हो चली है। जनता का प्रेम अंग्रेजी की अपेक्षा हिन्दी की ओर अधिक होने लगा है। इसके परिणामस्वरूप श्री स्वामी जी की पुस्तकों के हिन्दी

संस्करणों की माँग भी अधिक बढ़ चली। इस अभाव को हमारे आदरणीय गुरुभाई श्री सत्यानन्दजी ने (जिनकी आज 31 वीं जयन्ती मनाई जा रही है) पूरा किया और अनेक अभाव और कुभाव के होते हुए भी अब तक बीसों पुस्तकों का हिन्दी अनुवाद हिन्दी जगत् को भेंट किया। कुछेक का अनुवाद स्वयं किया और कुछ का दूसरों से करवाया। (स्वयं काम करना सहज है; किन्तु दूसरों से काम लेना और काम करवाना बड़ा ही कठिन है। इसके लिए बड़े ही चातुर्य की आवश्यकता है।) यह बात पूज्य स्वामी शिवानन्द जी से स्वामी सत्यानन्द जी ने अच्छी तरह सीखी। इन्हें सबसे काम लेने का ढंग खूब आता है।

आप एक लब्धप्रतिष्ठ और उच्च कोटि के सुयोग्य लेखक हैं। सुन्दर कवितायें भी रचते हैं। आप प्रथम श्रेणी के वक्ता हैं। स्वामी जी की जीवनी तथा योगासनादि पर कई मौलिक पुस्तकें भी आपने लिखी हैं। कविता में भी कुछ पुस्तकों की रचना की है।

आसन, प्राणायाम भली-भाँति जानते हैं। शरीर हल्का, स्वस्थ एवं फुर्तीला है। प्रत्येक काम को प्रसन्नता, योग्यता, शीघ्रता और लगन के साथ करते हैं। इनके गुणों का अधिक वर्णन न कर इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि ये सर्वगुणसम्पन्न हैं। प्रत्येक साधक को इनके जीवन से शिक्षा लेनी चाहिए और अपना जीवन सफल बनाना चाहिए।

ईश्वर इन्हें स्वस्थ और अच्छी तरह रखें तथा चिर आयुष्य प्रदान करें, जिससे यह संसार की अधिकाधिक सेवा कर सकें तथा गुरुदेव के दिव्य संकल्प को पूरा करने में सफल बन सकें। स्वामी सत्यानन्द सरस्वती दीर्घजीवी होवें!

—श्री स्वामी हरिशरणानन्दजी महाराज

शिवानन्द-प्रतिध्वनि

जो आगे चलकर महान् बनने वाले होते हैं, वे शैशवकाल से ही अपने जौहर प्रकट करने लगते हैं। वह जो अल्मोड़ा की भूमि है वह वास्तव में रत्नागिरी है। पत्थर के रत्न नहीं, वहाँ से नर-रत्न निकलते हैं। एक अनोखा रत्न उसमें से निकला—नाम था 'धर्मेंद्र', जो भविष्य में स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के नाम से प्रसिद्ध हुआ। पिता एक धर्मपरायण पुरुष थे; किन्तु धर्मेंद्र तो उनसे भी दो कदम आगे निकला और समस्त भूतल पर से माया के पर्दे को हटाने तथा वहाँ सुख और शान्ति का साम्राज्य स्थापित करने के लिए निवृत्ति-मार्ग का पथिक बना।

यह बालक है या एक पहेली

धर्मेन्द्र शुरू से ही जीवन की समस्याओं पर विचार करता। वह सोचता यह पंच भौतिक शरीर क्या है? माया क्या है? ब्रह्म कौन है? जीवात्मा कहाँ से आया और कहाँ को जायेगा? इन सब प्रश्नों का उत्तर वह जड़-विद्या को पढ़कर न पा सका, तभी तो उसने युवावस्था में ही परीक्षा-भवन में बहुत-से प्रश्न-पत्रों का स्पर्श तक न किया और पराविद्या की खोज में चला पड़ा। लोग कहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में कभी-न-कभी एक ज्वार उठता है और जो मनुष्य इस सुलभ अवसर को पकड़ लेता है, उसका बेड़ा पार हो जाता है। धर्मेंद्र के जीवन में जब यह ज्वार आया तो उसने खूब कस कर पकड़ा। चाहे जो हो, धर्मेन्द्र किसी सामाजिक या पारिवारिक बन्धन में नहीं रहेगा। वह हवा की तरह विचरेगा। पक्षी की तरह स्वच्छन्द आकाश में विहार करेगा। वह आँगन की चहारदिवारी के भीतर कभी समा नहीं सकता है। उसके हृदय में उस बीज का प्रस्फुटन हो रहा है, जिससे एक ऐसा विशाल वृक्ष उत्पन्न होगा, जिसकी सघन छाया में कुछ ही दिनों में लोगों को शांति मिलेगी। वह 'वसुधैव कुटुम्बकम् ' चाहता है। क्षत्रियों के वीर्य और ब्राह्मणों के तेज उसमें एकत्र हैं। उसकी नसें लोहे की और ज्ञान-तन्तु फौलाद के हैं। वह नरसिंह की भाँति वेदान्त धर्म की मर्यादा को अक्षुण्ण बनाए रखेगा, क्योंकि उसे प्राचीन ऋषि-मुनियों, महात्माओं और महापुरुषों की जीवनी एवं उनके कार्यों का ज्ञान है।

विकास के पथ पर

धर्मेन्द्र एक दिन अपनी सारी आशाओं और अभिलाषाओं को तिलांजलि दे, एवं भोग-सुखों का त्याग कर उत्तराखण्ड के तपोधनी स्वामी शिवानन्द सरस्वती का शिष्य हो गया और तब से वह स्वामी सत्यानन्द सरस्वती कहलाया। धर्मेन्द्र अब मानव जाति का सत्यानन्द हो गया।

गुरु ने अपने उपदेशों का दूर-दूर तक प्रचार करने के लिए एक दूत पा लिया। कृष्ण ने गीता का उपदेश देने के लिए एक योग्य पात्र पाया। छः साल के अन्तर्गत ही उन्होंने कठिन तपस्या की और इसी काल में उन्होंने हिन्दू धर्म की तमाम पुस्तकें पढ़ डालीं। शास्त्र-पुराण का सारा ज्ञान उन्होंने स्वयं स्वाध्याय और अन्तर्ज्ञान के बल पर प्राप्त किया। आज वे गुरुदेव स्वामी शिवानन्द जी के कार्य को सुचारु ढंग से कर रहे हैं और उनके पद चिह्नों पर चलकर उस अलौकिक पुरुष के दर्शन का प्रयास कर रहे हैं जो परमधाम का

मुकुन्द माधव है। यहाँ आने के कुछ ही वर्ष बाद श्री स्वामी सत्यानन्द जी ने 'योग वेदान्त' और 'आरोग्य जीवन' पत्रिकाओं के सम्पादन का कार्य लिया और उसमें अपूर्व चमत्कार दिखाया। 'दिव्य जीवन संघ' का कोई भी विभाग ऐसा नहीं, जो उनके प्रवेश से चमक न उठा हो। वे मानव माधव की सेवा का जो भी कार्य अपने हाथों में लेते हैं, वे सभी उनके स्पर्श से स्वर्ण हो जाते हैं।

स्वामी सत्यानन्द जी एक पूर्ण ऋषि हैं। उनके जीवन में ज्ञान, कर्म और भक्ति, तीनों योगों का सम्मिश्रण है। प्रतिभा रूपी पक्षी के दो पंख होते हैं— परिश्रम और अध्यवसाय। सत्यानन्द जी दोनों से सम्पन्न हैं। उनका एक क्षण भी व्यर्थ नहीं जाता है। वे हमेशा योग-सेवा, लोक-सेवा, और ज्ञान-चर्चा में तल्लीन रहते हैं। सभी योगों पर उनका पूर्ण आधिपत्य है। जनता की निन्दा-स्तुति की परवाह किए बिना वे कर्मयोग में अटल हैं। आप किसी भी समय उन्हें खाली नहीं पा सकते हैं। जनता-जनार्दन की सेवा हर तरह से करने के लिए वे सर्वदा प्रस्तुत रहते हैं। शंकराचार्य के श्लोक, गीता, उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र आदि धाराप्रवाहेण उनके मुखारविन्द से निकलने लगते हैं। वे पूर्ण रूप से इस सिद्धान्त से परिचित हैं कि सारा संसार मिथ्या है और इन सभी नाम-रूपों में एक ही अदृश्य शक्ति कार्य कर रही है—जो चिरन्तन सत्य या ईश्वर है। वे सुख-दु:ख, लाभ-हानि को समान समझ कर कर्मयोग में संलग्न हैं। स्थितप्रज्ञ के जो लक्षण हैं, वे सभी श्री सत्यानन्द जी में वर्तमान हैं। सभी मानवीय इच्छाओं का परित्याग कर वे आत्मा से ही आत्मा में सन्तुष्ट हैं। उनके राग, भय, क्रोध सभी नष्ट हो गये हैं। अपने मन और इन्द्रियों पर पूर्ण अधिकार रखते हुए विषयों के बीच में विचरण करते हुए वे धर्म परायण ही हैं—अहंकार, परुषता, मान-बड़ाई, दंभ, कपट, ममता एवं सभी आसक्तियों से परे हैं। उनके विषय में जितना ही कहा जाये सब थोड़ा ही होगा। उतनी डॉक्टरी इन्होंने पढ़ी नहीं, पर फिर भी रोग की पहचान एवं चिकित्सा-सम्बन्धी सलाह देने में किसी भी सफल डॉक्टर से कम नहीं हैं। गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी को वे ऐसे प्रिय हैं, जैसे किसी मनुष्य को अपना प्राण प्रिय होता है। वे एक अन्वेषी प्रकृति के व्यक्ति हैं और योग एवं दर्शन पर नित्यप्रति नये-नये आविष्कार करते जा रहे हैं।

स्वामी सत्यानन्द जी सिद्धहस्त लेखक, कुशल कलाकार और नाटककार भी हैं। उन्होंने दो पुस्तकें लिखी हैं—'चैतन्य ज्योति' एवं 'शिवानन्द दिग्विजय'। अलंकार, अनुप्रास, उपमा-उपमेय रहते हुए भी इन पुस्तकों में शब्दों का उचित और सुन्दर प्रयोग हुआ है और वे धार्मिक दृष्टिकोण से

लोकप्रिय बन गई हैं। इनके कथन में भाषा-सौन्दर्य तो है ही, साथ-साथ इनके सिद्धान्तों का हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ता है। 'शिवानन्द दिग्विजय' के विषय में तो किसी ने ठीक ही कहा है कि यह पंचम वेद है जो विश्व की झोली में ज्ञान का रत्न डालने के लिए खड़ा है। उनकी पुस्तकों में सत्य का निरूपण हुआ है तथा भावों की गहनता के साथ-साथ वे व्यक्ति के व्यावहारिक जीवन में भी उपयोगी सिद्ध हुई हैं।

सत्यानन्द जी अंगरेजी, हिन्दी, संस्कृत एवं अन्य कई प्रान्तीय भाषाओं में सारगर्भित भाषण दे सकते हैं, जो बड़ा ही प्रभावशाली होता है। वे जो कुछ मन में सोचते हैं, उस पर विचार भी करते हैं तथा बोलने के साथ-साथ उसे करते भी हैं। यदि आप इस महापुरुष से थोड़ी देर के लिए बातचीत करें तो आपको ऐसा प्रतीत होगा कि जैसे उन्होंने उस अलौकिक सत्ता का अपने जीवन में प्रत्यक्ष दर्शन किया है। 'अच्छा बनो और अच्छा करो' के श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती के सिद्धान्तों का इन्होंने अक्षरश: पालन किया है और तभी तो आज विश्व के लोगों एवं आश्रमवासियों के लिए वे एक आकर्षण बन गये हैं। संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि एक महापुरुष में जितने भी गुणों की आवश्यकता है, उनमें सब हैं।

आज उनकी 31वीं वर्षगाँठ के शुभ अवसर पर मेरी भगवान से यही प्रार्थना है कि वे सारे विश्व का आध्यात्मिक नेतृत्व करने में सफलता प्राप्त करें।

–गीता-व्यास श्री स्वामी ईश्वरानन्द सरस्वती

कूर्माञ्चल के बालतपस्वी

आज बड़ी खुशी की बात छ कि एक वीतरागी नवयुवक सन्त की जन्मतिथि ठुल समारोह का साथमा सम्पन्न हुनेर छ। यद्यपि सन्त-महात्मान की जन्मतिथि मनूना कि विशेष आवश्यकता नि छी, कसके कि उनन कन इन बातन् को कोई मतलब नि छ, तथापि संसारिक का वास्ता ये प्रकार का उत्तम कार्य करनालै लाभें हुनेर भे और सम्पादक महानुभावों का मन में खुशी हुनेर भई।

स्वामी जी को जन्म आज बटि 31 वर्ष पैलिक 26 अगस्त, 1923 का दिन अल्मोड़ा जिलमें भयो। आपुका इज़बोज्यू सम्पन्न एवं पठित छिया। यो वास्ता आपुका पालनपोषण में के प्रकार की कमी नी भेई। सब प्रकार कि सुलभ्य चीजले पालन-पोषण भयो। माता-पिता का पढ़ियाँ हुनाले नव जात

आपों की प्रकार कि शिक्षा यथा प्राचीन भक्त लोगन कि कथा तथा शिव पूजन करन क अभ्यास करायो। कुछ समझदार हुनापर तनर बोज्यूले तनन के प्रारम्भिक शिक्षा केन्द्र में पठायो, वां आपुले उन्नत का साथ प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त करि, ते बाद आपु के एक अंग्रेजी कालेज में भर्ती करायो। वां आपुले महान् परिश्रम का साथ पढ़नो प्रारम्भ करो। गणित छाड़ि सब विषयन में तथा खेल-कूद में अग्रगण्य रया। ये वास्ते अध्यापकों का लें कृपापात्र रया। तदनन्तर विद्यालय द्वारा उपाधि प्राप्त करि फिरि जन्मभूमि वापस आया। एक दिन न जाने के चीज का ध्यान में छिया। अचानक एक दिन कोलाहल द्वारा खिन्न हुनालें बिना कैकें सूचित करिये, शान्ति प्राप्त करन का वास्ते घर छाड़ी दिये। घर छाड़ि बेर अनेक तीर्थ, आश्रमों का भ्रमण करन उपरान्त, तपोभूमि ऋषिकेश पहुँचा। याँ आई आपू को विश्वविख्यात श्री स्वामी शिवानन्द का दर्शन भया। पाठकनों विदित हुना चेंछ कि वर्तमान समय मा भौतिकवाद का विरुद्ध अध्यात्मवाद को प्रचार करनेर एक मात्र भारतीय सन्त छन। स्वामी जी का दर्शन करना का बाद हमारा युवक स्वामी जी, स्वामी जी का पाद-पद्मों में नत् भे गया। श्री स्वामी जी ले आपुकें योग्य समझि बेर आपुकें स्वामि सत्यानन्द नाम दिवेर उनन के दीक्षा प्रदान करि। स्वामी जी हिन्दी-संस्कृत का भली प्रकार ज्ञाता हुनाले सब साधक वर्ग आपुकि बात ध्यानपूर्वक श्रवण करन लागा। आपुकन घर में ही लेख लिखना कि अभिरुचि राछी, फिर यां ऐबेर आपुलें हिन्दी-विभाग बटि योग वेदान्त मासिक पत्रिका को सम्पादन कार्य भली प्रकार निभायो और स्वामी शिवानन्द कि अंग्रेजी किताबन क अनुवाद आपुले लोकोपकारी भावनाले करो। आपुले अनेक पुस्तक लिखिन, उनन में चैतन्य ज्योति, शिवानन्द दिग्विजय प्रसिद्ध छन्। आजकल स्वामी जी ध्यान, भजन, कीर्तन, के साथ-साथ मानव जातिक कल्याणार्थ प्रेस का सम्पादन तथा अध्यक्ष व निरीक्षक क रूप में कार्य संलग्न छन। आपुमें सर्वतोमुखी हुन परले अभिमान क लेशमात्र तक नि छ। प्रत्येक परिचित व अपरिचित का साथ आपुं प्रेमपूर्वक भेंट करनी और आपुकि भाषण-शैली सरल और सरस छ। आपुंकि सेवाले निश्चय हमरा मानव-जाति को कल्याण अवश्यम्भावी छ। मैं अंतिम शब्दों में आपुंकि चिरायु होन कि कामना करनूं, आपुक जीवन सदा भारतीय जनता का वास्ते उपादेय छ।

भाषा – कुमाऊँनी *–श्री घनश्याम शास्त्री, अल्मोड़ा*

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती आणि त्यांचे काय

ज्या हिमालय मधून गंगा यमुना सिंधु सारख्या नद्या निधून ज्यानीं भारतवर्षाची भूमि सुपीक केली आहे, ज्या हिमालयांत प्रचंड वृक्षांची गंभीर अरण्ये आहेत, खाली पहातां क्षणीच नेत्राना अंधेरी आणणार्या खोल दर्या आहेत, ठिकठिकाणी सुंदर झर्योंचे पाणी झुर् झुर् बाहत आहै, जेथें चित्रविचित्र पक्षांचे मधुर आलाप ऐकू येतात, जेथें जिण्याच्या पायर्यां प्रमाणें असलेलीं छेते दृष्टीस पडतात, जेथें निरनिराले प्रकारचे फुलांचा सुगंध नेहमी द्वरवड़त असतो, ज्यांची गगनचुंबित बर्फमय उंचउंच शिखरें, सुवर्णकान्ति प्रमाणें सूर्य प्रकाशांत चमकत असतात, जेथें हजारों ऋषि मुनि यांनी तपश्चर्या करून जी भूमि पवित्र करून ठेवली आहे जेथें अझून योग्य साधकाना साक्षात्कार होतात अशा ह्या पुण्य भूमितिल अल्मोड़ा जिल्हयांत स्वामी सत्यानन्द जी यांचा जन्म 26 जुलाई 1923 रोजीं झाला।

पूढ़चें भविष्य जाणून की काय न कड़े त्यांचे पित्यानें त्यांचे नांव धर्मेन्द्र सिंह असें ठेविलें। बाड़ बोलू चालू लागल्या पासून त्याचे वडिल पोलिस इन्सपेक्टर असल्यामुड़े त्यास शिस्ताचें वड़ण लावण्यांत आलें। पुढ़े बाल मोटा झाल्यानंतर त्यास अल्मोड़ा एथिल इंग्रजी शालेंतटाकण्यांत आणें त्या शाड़ेत मागचे जन्मीचे अभ्यासमुड़े म्हणा किंवा पूर्व जन्मीचे पूण्याई मुड़े म्हणा, ह्यानी एक दोन वर्षोत संस्कृत व हिंदी ह्या दोन्ही भाषा शिकून त्यांत अतिशय प्रगति केली। इतक्या लहान वयांत मुलांचे बुद्धीचातुर्य पाहून मास्तर तर थक्क होऊन जात असत।

आमचे चरित्र नायक हे लहान पणापासूनच हिंदी मध्ये कविता करावयास लागले व अलंकारिक भाषेंत निबंध लिहावयास लागले। ज्या विषयांची त्यांना गोडी होती ते विषय ते अत्यंत थोड्या बेलांत आत्मसात करीत असत। लहानपणींच ते आपले शिक्षाकांस आपले अक्कल हुशारीने चकित करून सोडीत असत। त्याना गणित बीजगणित भूमिति यहा विषयांचा अत्यंत तिटकारा होता। ह्या मुड़े ह्या विषयांच्या प्रश्नपत्रिकेची उत्तरें देखील ते परीक्षेंत्र लिहीन नसत्। वाङ्मय विषयांत त्याना सर्व मुलापेक्षा पुष्कल अधिक गुण मिड़त असत ह्यांचें तेज वाङ्मयांत चमकत असे।

अध्यात्माची गोडी

पवित्र वातावरण मुड़े, पूर्व जन्मीच्या संस्कारा मुड़े व हिमालयातिल साधूंच्या संगतीमुड़े त्यांना अध्यात्माची गोडी लागली। त्यांनी संस्कृतात प्रगति करून

अध्यात्म विषयक ग्रंथाचें अध्ययान स्वताच सुरूं केलेंन ह्या अध्ययनामुणे ह्यांच्या मध्ये अध्यात्म विषया बद्दल इतकें प्रेम उत्पन्न झालें की व्यवहारिक शिक्षणांत त्यांचे लक्ष लागेना। आई बापाची इच्छा अशी कीं ह्यांनी व्यवहारिक शिक्षणांतचनांव कमवावें, पण हयांना व्यवहारिक शिक्षणाचा अत्यंत तिटकारा, सबब ह्यानी शायेस रामराम ठोकून सत्यान्वेषण करितां साधुसंताचें आगर असें जें ऋषिकेश क्षेत्र त्याचा मार्ग धरला। वाटेंत हाल अपेष्टा सोसून ऋषिकेश येंथे ते येऊन पोचले। यांचे चर्यवरील तेज व वैराग्य पाहून एका साधूने ह्याना स्वामी शिवानंद जी महाराजा कडे जान्यास सांगितलें। लगेच हे शिवानंद जी कडे आले। दृष्ट्वादृष्ट होताच गुरु शिष्याची ओणख पटली। श्री शिवानंदजी ने त्यांना अभय देऊन आपले जबड़ ठेवून घेतले।

गुरुगृहीवास व गुरुसेवा

शिवानन्दजीचे आश्रमांत आल्यावर ते मनोभावे गुरुसेवा करूं लागले व त्यांजच त्यांना प्रसन्नता व समाधान वटूं लागलें। गुरुकरितां जागा साफ करलें, गुरुजी चे कपड़े धुणें त्यांचे करितां स्वयंपाक करणें वगैरे कामें त्यानी अहंकाररहित, मनानें प्रसन्न होऊन केलीं। कांही दिवसांनी जसजशी गुरुजीस त्यांचें आंतरिक योग्यतेची कल्पना विशेष प्रकारे येऊं लागली, तसतसे गुरुजीनी त्यांना अतिथिसत्कार, विश्वनाथ मंदीराची पूजा व प्रकाशन संस्थेच्या व्यवस्थापकांची कामें त्यांचे कडे दिलीं व 1944 सालीं त्यांना ब्रह्मचर्य दीक्षा दीली। त्यांनी लाहोर व कलकत्ता येथें राहून स्वामीजीचें प्रकाशन कार्यास म्हणजे मासिक व पुस्तकें व निरनिराले संदेश प्रसिद्ध करण्याचें कामांत पुष्कड़ च मदत केली।

त्यांच्यां मधिल अभय सत्व संशुद्धि वगैरे सात्विक गुणाची झपाट्याने बाढ होत गेली। शेवटी 1947 साली त्यांची दैवीसम्पत फारच वाढल्यामुणे त्यांना स्वामीजीचे हिरक जयंतीचे वेड़ी संन्यास दीक्षा देण्यांत येऊन त्यांचे नांव सत्यानन्द सरस्वति असें ठेवन्यांत आलें। त्यांनी आपले प्रज्ञेनें सत्यप्रियतेनें आपलें सत्यानन्द सरस्वति हे नांव साथकेलें। त्यांनी आपले व्याख्यानांनीं व लेखांनी हजारों लोकांची मनें आकर्षित करून त्यांचें मनांत अध्यात्माचा दिव्यप्रकाश पाडला।

राष्ट्रभाषा हिन्दी झाल्यामुड़े व भारतवर्षातल पुष्कड़शा लोकांस इंग्रज़ी येन नसल्या मुड़े, आरोग्यजीवन व योगवेदान्त अशीं दोन मासिकें प्रकाशित

करण्याचें काम हयानी सुरूं केलें। श्री शिवानन्दचा संदेश इंग्रजी न जाणणाऱ्या लोकापर्यन्त पोचविण्याचें काम ह्या दोन मासिकांनी केलें। पुढे ह्यांचें व इतर दोन स्वामीचे म्हणजे श्री दयानन्द जी व श्री नित्यानन्द जी यांचे प्रयत्नाने स्वताचा छापखाना तयार करता आला। स्वताचा छापाखाना झाल्यामुणें परकीयगांवी पुस्तक छापण्यां मुड़े वेड़ीवेड़ी ज्यां अडचणी व अडथड़े येत ते दूर झाले, व पुस्तक प्रकाशनांचे काम झपाटयानें करतां आले। तेव्हां पासून ह्यांनी स्वामीजीचे इंग्रजी ज्ञान भंडार हिन्दी मध्ये आणून सर्वोस सुलभ करून देन्याचें काम जोरांत सुरूं केलें। ह्यांनी श्री शिवानन्द दिग्विजय हे पुस्तकसाहित्यकांनी माना डोलवाव्या अशा उत्तम व मनोरंजक भाषेत लिहिलें व इतर स्वामीजींच्या पुस्तकांची हस्ते परहस्ते भाषांतरे करून तीं हिंदी मधून प्रसिद्ध करण्याचा क्रम सुरू केला।

हल्ली हे छापखान्यार्चे काम पहातात, ह्यांनी आश्रमाच्या निरनिराण्या खात्यांत कामें केलीं आहेत। कोणते हि काम यांचे कडे दिलें तरी हे। ते काम अगदी मन लावून करतात। ह्यांची वृत्ति नेहमी शांत असते। हे नेहमी हंसत मुख असतात। हे सवांशी ममतालुपणानें वागतात; ह्यांचें बोलणें नेहमी गोड़ व प्रिय असेंच असतें। हें कोणाचें मन कधींच दुखवत नाहीत। ह्याच्या गरजा फारच कमी आहेत। हे सर्वांवर प्रेम करतात। यांची बुद्धी मोठी कुशाग्र आहे। ज्ञानाचा यांचे जबड़ भरपूर सांठा आहे। हे पट्टीचे लेखक व उत्कृष्ट वक्ते आहेत। यांची वाणी ओजस्वी आहे। हे लोकांची मनें आपल्या कडे सहज आकर्षून घेतात। ह्यांचे उपदेशाचे शब्द अंत:करणा पर्यन्त जाऊन भिड़तात। हे साहित्य, संगीत व कलाभिज्ञ आहेत। हे उत्तम कथा करणारे आहेत। हे प्रज्ञावंत कवि आहेत। यांची विद्वत्ता फार मोठी आहे। एवढ्या लहान वयांत ह्यानी फार मोठे कार्य केले आहे व ह्या पुढे ते आपलें अध्यात्मज्ञान दानाचें कार्य जोरांत चालू ठेवून। भारतवर्षास त्यांचे पूर्वीचे आध्यात्मिक वैभव व महत्व अरणून देतील असा भरवंसा वाटतो। अशा माणसांना जगाचा उद्धार करण्या करितां परमेश्वरच पाठवित असतो, व ह्यांचे कडून जगाचें कल्याण घडूवन आणतो। अशीच माणसें भारतभूमीचे पांग फेडतील व हल्ली भारतभूमीस अशाच माणसांची अत्यन्त गरज आहे, कारण परिस्थिती मुड़े धर्मग्लानि हल्ली फारच झाली आहे।

सत्यापरता नाही धर्म। सत्य तेंचि परब्रह्म॥

अशा वृत्तीचे आमचे स्वामी सत्यानन्दजी असल्यामुणे त्यांनी आपले नांव सत्यानन्द सरस्वती हें सार्थ केले आहे। अशा ह्या उदयोन्मुख तरूण स्वामीस परमेश्वर उदंड आयुष्य देऊन त्यांचे कडून लोककल्याण घडूवन आणवो हीच जगन्नियंत्या जवड़ माझी उत्कट प्रार्थना आहे।

भाषा– मराठी *–श्री स्वामी हरिओमानन्द सरस्वती*

संन्यासी

इस कलियुग में, पापों से बोझिल धरती पर अल्मोड़ा की सस्य-श्यामला भूमि में 26 जुलाई, 1923 को एक सुन्दर शिशु अवतरित हुआ।

उसका नाम धर्मेन्द्र था।

धर्मेन्द्र ने जीवन की क्षणभंगुरता का अनुभव किया; बुद्ध की तरह घर का त्याग किया, माँ की ममता का त्याग किया, इच्छाओं का त्याग किया। अपने त्याग से योगों के तत्त्वों को अपनाया। मिथ्या मोह, छली ममता और भीषण माया का अभेद्य कवच तोड़ ऋषिकेश की पावन भूमि में शिवानन्द जी की गोद में जा पहुँचा।

तेजोराशि युवक अतीन्द्रिय, चिदानन्द, चिन्मय, कैवल्य और कूटस्थ की मनोवांछा से चल पड़ा; वह त्यागी अनन्त की ओर चल पड़ा। महाशिवरात्रि के अवसर पर स्वामी जी के पुनीत कर-कमलों द्वारा ब्रह्मचर्य आश्रम में दीक्षित हुआ–'ब्रह्मचारी सत्य चैतन्य'।

ब्रह्मचारी ने ब्रह्मचर्य का कुलिष व्रत लेकर सत्यनिष्ठा को अंगीकार किया और माया के बन्धन त्याग दिए।

'...मैं संन्यासी हूँ'–पवित्र मंत्रोच्चारण कर विश्व कल्याण का स्वर्ण-विहान जगाने चला, योगक्षेम का अभियान उठाने चला।

वह स्वामी सत्यानन्द है।

–श्री सुशीला, एम.ए., दिल्ली



एक विशाल व्यक्तित्व

किसी भी आध्यात्मिक महापुरुष को यदि हम सत्य शाश्वत आलोक में देखने की कोशिश करें तो हम पायेंगे कि उनका सम्पूर्ण जीवन असाधारण तत्त्वों से निर्मित हुआ है। शैशव से लेकर पूर्णता तक उनके जीवन हमारे मानसिक धरातल पर एक अमर छाप छोड़ जाते हैं। इस संसार में जो व्यक्ति पूर्णत: सत्य के आलोक में आ चुके हैं, वस्तुत: उनके शैशव में ही हम वैराग्य का अंकुर पाते हैं, जिसका पल्लवित रूप उनके जीवन के अग्रभाग में मुकुलित होता है। मध्ययुग के किसी भी महापुरुष—कबीर, तुलसी, दादू, मीरा आदि के जीवन-दर्शन पर विचार करें तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि उनमें शैशवकाल से ही अध्यात्म की पिपासा इतनी प्रबल हो उठी कि निखिल सृष्टि की कोई भी शक्ति उन्हें माया के बन्धन में नहीं बाँध सकी थी।

श्री स्वामी सत्यानन्द जी महाराज के जीवन को देखें तो उनके शैशव में ही वैराग्य का अंकुर पूर्णत: परिलक्षित होता है। अल्मोड़ा की शुभ्र प्रकृति की गोद में पल कर भी प्रकृति की माया इन्हें बाँध नहीं सकी।

एक चिन्तनशील व्यक्ति जब जीवन की विभीषिका को देख कर कराह उठता है, तब वह अध्यात्म की गोद में जा गिरता है। अध्यात्म उसे अपनी विश्रामदायिनी गोद में बिठाकर इस कोलाहलमय जगत् से दूर, बहुत दूर ले जाता है; परन्तु उसे पलायनवादी तथा निष्क्रिय नहीं बनाता, बल्कि उसकी चेतना को सत्य के क्षितिज में ले जाकर धुली-पुछी मानवता के आदर्श निर्माण के लिए सचेत करता है।

विद्यालय के कटघरे में ये परविद्या के अजस्र तत्त्व का दर्शन नहीं कर सके। इन विद्यालयों में लौकिकता का आभास मिला, जो वस्तुत: उनके व्यक्तित्व के प्रतिकूल थी। प्रकृति की सुषमा ने उन्हें एक भावुक कवि बनने के लिए अनुप्राणित किया। अत: उनके सिद्ध-योगी का रूप एक कवि से प्रारम्भ होता है। 'पल्लव' उपनाम रखकर एक कवि के रूप में सर्वप्रथम उन्होंने प्रकृति में असीम तत्त्व का आलोक खोजने का प्रयत्न किया।

आगे चलकर इनका कवि रूप बहुत अधिक पल्लवित हुआ और ये कवि तक ही सीमित नहीं रहे। स्वामी श्री शिवानन्द जी महाराज के चरणों में बैठकर इन्होंने प्रथम उस असीम तत्त्व की विशालता में अपने अस्तित्व को विलीन करने का प्रयत्न किया और इन्हें ही उन्होंने गुरु-रूप में पूजा। यहीं से इनके योगी जीवन का अभियान चला। आज ये शिवानन्दाश्रम में हिन्दी-संस्कृत

विभाग और प्रकाशन मण्डल के अध्यक्ष तथा योग वेदान्त के सम्पादक हैं। हमारी पहली भेंट इनसे स्वामी जी के आश्रम में हुई। मैं स्वामी जी के पद कमलों के दर्शनार्थ तथा गुरु-दीक्षा के लिए गई थी। वहीं स्वामी जी के पवित्र आश्रम में उनकी दिव्य शौर्य मूर्ति को देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। मुझे बहुत प्रसन्नता हुई थी, उनकी दिव्य मूर्ति को देखकर। ये अध्यात्मवाद के एक प्रबल महारथी हैं। आध्यात्मिकता ही इनका जीवन अमृत है। इनके प्रत्येक कार्य में अध्यात्म का साकार दर्शन होता है। ये योग साधना में लीन रह कर भी अध्यात्म के तृषित व्यक्तियों की तृष्णा को दूर करते हैं तथा अन्धकार के कलुषित वातावरण में से आकुल मानवों को ज्ञान के आलोक में लाकर उन्हें परविद्या का तत्त्व बतलाते हैं। वे अपने विवेक, अन्तर्बोध तथा आध्यात्मिक अनुभूति के आधार पर इस सत्यता का निरूपण करते हैं। उन्होंने साधना द्वारा अपने आत्मदर्शन को संघटित किया है।

बालब्रह्मचारी योगी श्री सत्यानन्द जी महाराज के रोम रोम में हमने उस असीम का दर्शन किया है, जिसका आलोक जीवन को मानव के स्तर से दूर ईश्वरत्व का स्वर्णिम रूप दे सकता है।

आज विश्व को वस्तुत: ऐसे ही व्यक्तियों की आवश्यकता है, जो अपने विशाल व्यक्तित्व से मानव जीवन को चिरन्तन सत्य का पावन पथ बता सकें। उनका यह कार्य चिर अभिनन्दनीय है। ईश्वर उन्हें दीर्घायु बनावें, जिससे वे मानवों को नवीन पथ बतला सकें।

—श्रीमती अद्यावती सहाय, भागलपुर



बाल कुसुमांजलि

मार्गबन्धु-सत्यानन्द

स्वामी सत्यानन्द भारत का उद्धार कर रहा है॥
जनों को उचित मार्ग पर ले जा रहा है।
तपस्या और सेवा से ही भगवान को पा चुका है।
स्वामी सत्यानन्द भारत का उद्धार कर रहा है॥
शिक्षा ऋषिकेश में गुरु शिवानन्द से पाई है।
माता पिता ने त्यागी बनाकर संसार में चमकाया है।
स्वामी सत्यानन्द भारत का उद्धार कर रहा है॥
हमारे भारत का ताज बन रहा है।
बिजली की तरह चमक कर चांद बन रहा है।
स्वामी सत्यानन्द भारत का उद्धार कर रहा है॥
आओ इनके जन्मदिवस को हम मनायें।
इनके यश को हम फैलायें।
स्वामी सत्यानन्द भारत का उद्धार कर रहा है॥

–कुमारी पुष्पा शर्मा, शाहदरा, दिल्ली

हमारे योगीराज

सत्यानन्द भारत का प्यारा।
चमकता है भारत में योगी हमारा॥

अपने गुणों के कारण।
प्रसिद्ध है जगत् में।
नाम लेता है दुनिया में हर एक उसका।
चमकता है भारत में योगी हमारा॥

किसी के विरुद्ध द्वेष रखते न मन में।
कठिन काम देखकर घबराते न दिल में।
साहस है उनमें दुनिया का सारा।
चमकता है भारत में योगी हमारा॥

हमें भी है दर्शन की अभिलाषा उनके।
उन्हीं की तरह वीर बनकर चमकें।
जिससे हो रोशन नाम हमारा।
चमकता है भारत में योगी हमारा॥

–कुमारी सावित्री जैन, शाहदरा, दिल्ली

ऋषि सत्यानन्द

स्वामी सत्यानन्द जग को जगा रहा है
ऋषि सत्यानन्द देश को ऊपर उठा रहा है
बचपन में जिसने अल्मोड़ा को प्रसिद्ध किया है
वही देशप्रेमी जनता की सेवा कर रहा है
वह अपनी साधना को सफल कर रहा है
वह मानव प्रेमी भावना को प्रयोग कर रहा है
स्वामी सत्यानन्द जग को जगा रहा है
ऋषि सत्यानन्द देश को ऊपर उठा रहा है
वह ऋषिकेश में रह जग का कष्ट हर रहा है
वह अपने आप को ईश्वर में लीन कर रहा है
वह देश-हितकारी सब का हित कर रहा है
वह चाँद अपनी ज्योत्सना छिटका रहा है
स्वामी सत्यानन्द जग को जगा रहा है
ऋषि सत्यानन्द देश को ऊपर उठा रहा है

–कुमारी कुसुमलता गर्ग, शाहदरा, दिल्ली

यह देवदूत, यह मसीहा

प्यारे सत्यानन्द को भेजा है ईश्वर ने,
भारत को उन्नत करने के लिए।
गुरु सत्यानन्द को भेजा है ईश्वर ने,
लोगों को उपदेश देने के लिए॥

गुरु आपके द्वारा ही हमको,
शिक्षा है इस जग में पानी।
आप बड़े महान त्यागी हैं,
यह बात सबों ने है मानी॥

बहुत लोग आते हैं पास आपके,
आपके उपदेशों को सुनने के लिए।
कई आते हैं, कई जाते हैं,
आपकी मधुर वाणी का रस लेने के लिए॥

अपने आश्रम में रह कर आपको,
है परमेश्वर की आस।
ईश्वर के ही ध्यान में मग्न हैं,
न झूठ है, न छल है, न कपट है पास॥

–कुमारी सरिता कपूर, शाहदरा, दिल्ली

स्वामी सत्यानन्द गुरु सत्यानन्द

स्वामी सत्यानन्द, गुरु सत्यानन्द।
सूर्य बनकर चमक रहा है,
स्वामी सत्यानन्द दमक रहा है,
शान हमारी मान हमारा,
सज्जनों का सरदार सत्यानन्द।
स्वामी सत्यानन्द, गुरु सत्यानन्द॥

जन्म लिया अल्मोड़ा में,
शिक्षा प्राप्त की बचपन में,
अब हैं वह स्वामी श्रेष्ठ महान्,
बतलाते हैं उनके काम।
स्वामी सत्यानन्द, गुरु सत्यानन्द॥

देते हैं उपदेश वे ऐसे,
झड़ते मुँह से फूल हैं जैसे,

बच्चा बूढ़ा जवान और दीन,
'कृष्णा' भी जाकर हो गई लीन।
भारत माँ का दुलारा सत्यानन्द,
स्वामी सत्यानन्द, गुरु सत्यानन्द॥

–कुमारी कृष्णा महाजन, शाहदरा, दिल्ली

बलिहारी तेरी!

सत्यानन्द देश हितकारी।
तेरी हिम्मत पर बलिहारी॥

जन्म लिया अल्मोड़ा में,
शिक्षा पाई ऋषिकेश में।
सत्यानन्द देश हितकारी।
तेरी हिम्मत पर बलिहारी॥

वीर बना तू बचपन में,
धीर बना तू बचपन में।
शिक्षा को तूने ऐसा फैलाया।
जैसे रवि जग को चमकाया॥
सत्यानन्द देश हितकारी।
तेरी हिम्मत पर बलिहारी॥

आओ हम इनके गुण गायें,
अपना जीवन सफल बनायें।
कैसा सुहावना दिन आज आया,
सबने गुरु का जन्म मनाया॥
सत्यानन्द देश हितकारी।
तेरी हिम्मत पर बलिहारी॥

–सुदेश कुमारी, शाहदरा, दिल्ली

मंगलाचरण

सत्यानन्द भारत माँ का प्यारा,
सारी दुनिया की आँखों का तारा।

यह जन्मा है पृथ्वी पर,
मनुज रूप में अवतारा।
सारी दुनिया की आँखों का तारा॥

बचपन में गुरु से शिक्षा लीनी,
युवावस्था में जन के संकट हरे अपारा।
सारी दुनिया की आँखों का तारा॥

हम उनके उपदेशों का मनन करें,
जिससे हो हमारे जीवन का निस्तारा।
सारी दुनिया की आँखों का तारा॥

आओ हम सब मिल कर मंगलगान गायें।
कुशल रहे भारत माँ की आँखों का तारा॥

सत्यानन्द भारत माँ का प्यारा,
सारी दुनिया की आँखों का तारा॥

—कुमार कैलाश गौतम, शाहदरा, दिल्ली

आज बधाई हे गुरुवर

कण्ठ से यह निकल रहे स्वर
आज बधाई हे गुरुवर,

गगन में उमड़ रही मेघ माला,
छिप गया रवि खोकर उजाला,
किन्तु द्युति की रेख सुन्दर,
है खींचती कभी विधुबाला,

वेगविहित हो गए वे मेघ सारे,
हवाएँ जो बहती रहीं निरंतर।
आज बधाई हे गुरुवर॥

धरा पर जो बहती सलिल-धारा,
छूती सदा वह उदधि का किनारा,
रूप धरती का सदा लहकता,
कुण्ठन का न मिलता इशारा,

उलझती सी रही बहती धार वह,
किन्तु गति नृत्य में न आया अन्तर।
आज बधाई हे गुरुवर॥

निशा के तिमिर में ही चल पड़ा,
छोड़ अतीत का स्वप्न वह सरस,
कि न ला पाएँगे उसे फिर अरे,
भर दिया वर्ष का जो कलश,

गया जो न लौटेगा फिर कभी,
यह क्रम न हुआ कभी मन्थर
आज बधाई हे गुरुवर॥

-श्री महेश कुमार शर्मा, दिव्य जीवन संघ शाखा, उदयपुर



आनन्द कुटीर का चन्द्रमा

स्वामी सत्यानन्द आनन्द कुटीर का चमकता हुआ चन्द्रमा है। जिस समय स्वामी जी किसी को उपदेश देते हैं तो उनके शब्द चन्द्रमा की तरह सुनने वाले को शीतलता पहुँचाते हैं। बोलते वक्त ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे उनके मुख से चन्द्रमा की किरणों के समान शब्द रूपी फूल झड़ते हों। जिस प्रकार चन्द्रमा अपनी स्वर्ण रश्मियों से संसार को स्वर्णिम बना देता है, उसी प्रकार स्वामी सत्यानन्द जी अपने मधुर उपदेशों के द्वारा मनुष्यों को प्रभावित करके अमृत रूपी शब्दों की वर्षा करते हैं। जिस प्रकार चन्द्रमा आकाश पर सुशोभित होता है, उसी प्रकार स्वामी सत्यानन्द जी अपनी कुटीर में सुशोभित होते हैं। जिस प्रकार चन्द्रमा की प्रकाशयुक्त किरणें मानव के हृदय को प्रफुल्लित करती हैं, उसी प्रकार स्वामी जी के उपदेश सुनने से प्रत्येक प्राणी प्रफुल्लित हो जाता है। जब रात को चन्द्रमा चमकता है, तो वह रात का सारा अँधेरा अपनी रश्मियों से नष्ट कर देता है, उसी प्रकार स्वामी सत्यानन्द जी हमारे अज्ञान को दूर करके तथा हमारे अवगुणों को दूर करके संसार को प्रकाशित कर रहे हैं। अगर हमारे देश में स्वामी जी की तरह प्रकाशयुक्त तथा शान्तियुक्त व्यक्ति जन्म न लें तो हमारे देश में अन्धकार हो जाएगा। अत: संसार को प्रकाशित करने के लिए चन्द्रमा के समान महापुरुषों की आवश्यकता है। उनमें से एक स्वामी सत्यानन्द जी हैं, जो हमारे देश का अन्धेरा दूर करके संसार को अपने गुणों से प्रकाशयुक्त बना रहे हैं। ईश्वर हमारे स्वामी जी को चन्द्रमा के समान आयु प्रदान करे। स्वामी जी के जन्म दिवस पर ईश्वर से हमारी यही शुभ कामना है।

–कुमार कैलाश गौतम, शाहदरा, दिल्ली



अल्मोड़ा से चला सन्त इक...

अल्मोड़ा से चला संत इक छोड़ जगत का नाता।
साधू जा, जा, जा॥

शील शान्ति के रथ में बैठकर, रंग मजीठी ध्वजा फहराकर,
धर्म, अर्थ और काम मोक्ष के, पहिये है घहराता।
साधू जा, जा, जा॥

सत्य धर्म के अश्व जुताकर, ब्रह्मचर्य की रास थामकर,
क्षणिक सुखों को लात मारकर, जग को जगाने जाता।
साधू जा, जा, जा॥

'वसुधैव कुटुम्ब' का कवच पहनकर, स्वान्त:सुखाय का शस्त्र धारकर,
ब्रह्मानन्द का नाद बजाकर, धीरज ढाल सजाता।
साधू जा, जा, जा॥

मोह माया को दूर हटाकर, जग झंझट को कूद फांद कर,
दिव्य ज्योति आनन्द कुटी पर, रथ को आ ठहराता।
साधू जा, जा, जा॥

चार[1] मार, पच्चीस[2] को वशकर, पांचों[3] की शिर चोटी पकड़ कर,
अध्यात्मवाद के समरांगण में, विजय ध्वजा फहराता।
साधू जा, जा, जा॥

हीरे[4] को परख जौहरी[5] ने की है, स्वामि[6] हार की मणी बनी है,
स्व[7] प्रकाश से तम को हटाकर, ज्ञान ज्योति फैलाता।
साधू जा, जा, जा॥

बारह[8] सितम्बर सैंतालीस की पुण्य तिथि है भाई,
हीरक जयन्ती स्वामी जी की थी उत्तम पदवी[9] पाई।
अब परमहंस परिव्राजक स्वामी सत्यानन्द कहाता।
साधू जा, जा, जा॥

धर्म-सत्य के उभय-वाद से, फूटी आभा छब्बीस[10] अगस्त से,
अमर कीर्ति और अमर आप हो, ऐसा 'लादू' गाता।
साधू जा, जा, जा॥
अल्मोड़ा से चला संत इक छोड़ जगत का नाता।
साधू जा, जा, जा॥

—पंडित लादूरामजी, दिव्य जीवन संघ शाखा, उदयपुर

इस अष्टक में स्वामी श्री सत्यानन्द जी महाराज के संसार सागर के झंझटों से युद्ध कर विजय प्राप्त करने का रूप दिया हुआ है।

[1] *काम, क्रोध, लोभ और मोह।*
[2] *पच्चीस प्रकृति।*
[3] *पाँच तत्त्व।*
[4] *श्री स्वामी सत्यानन्द जी महाराज।*
[5] *श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज।*
[6] *श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज।*
[7] *श्री स्वामी सत्यानन्द जी महाराज।*
[8] *पूज्य स्वामी जी की संन्यास-तिथि।*
[9] *अध्यात्मरत्न की दीक्षा मिली।*
[10] *श्री सत्यानन्द जी की जन्म तिथि।*

भारत-भारती का पार्थसारथी शतायु हो!

हिमालय के चरणों में बैठकर और हिमालय के विश्वविख्यात संत शिवानन्द के सान्निध्य में आध्यात्मिक साधना और भारत भारती की सेवा का सौभाग्य प्राप्त करने वाले स्वामी सत्यानन्द सरस्वती जी का मैं उनकी जयन्ती के अवसर पर हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ।

कई वर्षों पहले जब मुझे महर्षि शिवानन्द के दर्शनों का सौभाग्य मिला तो उसी समय प्रथम बार स्वामी सत्यानन्द जी के भी साक्षात्कार का अवसर मिला। साधना और तन के ओज से चमकते हुए आपके पवित्र मुखमण्डल ने मुझे आकृष्ट किया। गैरिक वस्त्रों में आपका अध्यवसाय, साधना और तप मौन होकर भी जैसे-दिगन्त मुखरित हो उठा। 'ॐ नमो नारायणाय' के बाद स्वामी हरि ओऽम् आनन्द जी ने मुझे आपका परिचय देते हुए बताया कि आप हैं—स्वामी सत्यानन्द जी। फिर तो बहुत देर तक स्वामी जी से वार्तालाप होता रहा। आपने शिवानन्दाश्रम की विभिन्न प्रवृत्तियों का मुझे परिचय दिया। यह जान कर मुझे और भी प्रसन्नता हुई कि आश्रम के हिन्दी प्रकाशनों के सूत्रधार आप ही हैं। वार्ता के बाद एक ग्रुप फोटो भी हम लोगों का लिया गया। तब से स्वामी सत्यानन्द जी से विशेष पत्र व्यवहार न होने पर भी अखण्ड आत्मीयता चली आ रही है। आपसे साक्षात्कार और सम्पर्क के वर्षों बाद भी आज मैं यह अनुभव करता हूँ, जैसे हम कल ही मिले हों। इसका रहस्य आध्यात्मिक आकर्षण के अतिरिक्त और क्या हो सकता है?

योग वेदान्त आरण्य विश्वविद्यालय के संस्कृत-हिन्दी विभाग के प्रकाशनाध्यक्ष के पद पर रह कर आपने राष्ट्रभाषा हिन्दी में बड़े ही महत्त्व का आध्यात्मिक, दार्शनिक एवं नैतिक साहित्य जन-साधारण के लिए सुलभ किया है। महर्षि शिवानन्द की वाणी के 'सत्यं शिवं सुन्दरम् ' को भी राष्ट्रभाषा के माध्यम से प्रस्तुत करने का श्रेय आपको है।

'योग वेदान्त' के मासिक साहित्य द्वारा भारतीय दर्शन और संस्कृति का अजस्त्र स्रोत आपने हिन्दी भाषा-भाषी जनता के लिए सुलभ किया है।

हिमालय का ऐसा लोक-कल्याणकारी और कर्मठ संन्यासी शतायु हो, काशी विश्वनाथ से हमारी यही हार्दिक कामना है।

—श्री लक्ष्मी शंकर व्यास, एम.ए.
सहायक संपादक, 'आज' (दैनिक समाचारपत्र), बनारस

तुम्हें क्या-क्या कहूँ?

तुम्हें 'सत्य-आनन्द' कहूँ या, दिव्य-जीवन-पतवार कहूँ
या मंगल मूर्ति ईश कहूँ, या नव-जीवन की स्फूर्ति कहूँ ॥1॥

चैतन्य ज्योति का रूप कहूँ, या तुम्हें पूर्ण संपन्न कहूँ
या श्रुति का सार-स्वरूप कहूँ, या जग-जीवन का प्राण कहूँ ॥2॥

तुम्हें दिव्य अवतार कहूँ, या संस्कृति का आधार कहूँ
दिव्य सृष्टि रचने वाले, या तुम्हें दिव्य अवतार कहूँ ॥3॥

जी होता है वसुन्धरा का तुम्हें अचल सुहाग कहूँ
जी होता अध्यात्म-कोष की, निधि की अनुपम पूर्ति कहूँ ॥4॥

मिले आपकी भक्ति विश्व को, भक्ति का निर्माण करें
मिले आपकी शक्ति विश्व को, दिव्य-जीवन-आह्वान करें ॥5॥

मिले आपकी दिव्य प्रेरणा, मंगलमय सब काम करें
मिले आपकी दिव्य साधना, सत्यानन्द-गान करें ॥6॥

—श्री मंगी लाल शर्मा, दिव्य जीवन संघ शाखा, उदयपुर

आश्रम की एक महान् विभूति

हिमालय के चरणों में कल-कल ध्वनि करती हुई मन्दाकिनी बहती जा रही है। निरन्तर उठती हुई लहरें हृदय में एक हिलोर पैदा कर देती हैं। बड़े-बड़े वृक्ष, सचेत प्रहरी के समान, उन्नतमस्तक हो खड़े हैं। मैं भगवान की इस रचना को बड़ी तन्मयता से देख रही थी।

लेकिन मेरी यह तंद्रा कुछ देर तक ही रह सकी। मैंने देखा, एक अल्प-वयस्क संन्यासी काषाय वस्त्र लपेटे हुए जल्दी-जल्दी पग रखता हुआ उसी ओर आ रहा है। मैं चकित रह गई। यह अवस्था और संन्यास, यह त्याग! किसी ने ठीक ही कहा, 'धर्म के लिए कोई आयु नहीं।' ध्रुव ने पचास साल की प्रतीक्षा नहीं की; पाँच साल में ही तपस्या कर भगवान के दर्शन किए थे। आजकल तो बूढ़े भी इस संसार से विरक्त नहीं होते और यह एक युवक ...।

भगवान! इनकी आयु आकाश में चमकते हुए सितारों जितनी हो। जिसने संसार के समस्त भोगों को लात मार दी, जिसने अपनी आँखों के सामने से अज्ञान का पर्दा उठा दिया, वह आकाश के ध्रुव तारे की तरह अटल रहे।

* * *

दूसरे दिन जब मैं कमरे के बाहर टहल रही थी, मैंने फिर उसी संन्यासी को देखा, अपने काम में तन्मय। मैंने अन्दर आकर पूछा—'क्या आपका नाम ...? 'हाँ, हाँ, माता जी, मैं ही सत्यानन्द हूँ, आइये।' मैं बैठ गई—ज्ञानी के सामने एक अज्ञानी, उजाले के सामने अन्धकार। स्वामी जी ने मुझे पत्रिकायें दीं और कुछ पुस्तकें भी। मैं तो चकित हुई सब देखती जा रही थी। स्वामी जी बात-बात में पवित्र ज्ञान की बातें कहते जा रहे थे जो बातें शायद पुस्तकों में भी न मिलें। उन्होंने कहा, 'साधना में सफल बनने के लिए भावनाओं से ऊपर उठना चाहिए। भावनायें जीवन में महान् परिवर्तन ले आती हैं और यह परिवर्तन अच्छा नहीं होता। हृदय मधुर होना चाहिए, पर कठोरता के बिना काम नहीं चलता। भावुकता अभिशाप है और कठोरता वरदान; भावुकता में वज्र का अंश होना आवश्यक है।'

उनके मुख से अनायास निकले हुए यह शब्द जीवन की सच्चाई कह रहे थे। सांसारिक जीवन के लिए भी इसी वज्र कठोरता की आवश्यकता है—भावनाओं के प्रवाह में बहने से तो जीवन नष्ट हो जाता है—हम कर्त्तव्य से विमुख हो जाते हैं।

ओ कठोरता के पुजारी, तुम चिरकाल तक इस संसार को यह वज्र कठोरता सिखलाते रहो।

* * *

एक रोज मैंने उनके कुछ विचार पढ़े—'बहुत-से लोग तिल को ताड़ और राई को पहाड़ करना जानते हैं। पर बहुत तो ऐसे भी हैं, जो बिना तिल और राई के भी ताड़ और पहाड़ कर देते हैं।'

कितनी यथार्थता है इन शब्दों में। आजकल जिधर भी सुनो, एक-दूसरे की बिना बात बुराई करते हैं। बुराई करते समय उनकी जीभ नहीं थकती; उनकी आत्मा दु:खी नहीं होती। आगे जानते हो वे क्या कहते हैं? कितनी सुन्दर उक्ति है, 'समाज की तरफ से कान समेटो। बाप, बेटे और खच्चर की कथा सब जानते हैं। चतुर पुरुष दुनिया की तरफ कान नहीं करते।' धन्य है इस विचार-शक्ति को। संसार ने किसको छोड़ा है? सभी पर छींटें पड़े हैं। यही तो

संसार की देन है। संन्यासी की भी कटु आलोचना की गई है—संसारी की भी और त्यागी की भी। आलोचना, कटु आलोचना—सारा संसार कटु आलोचना से परिपूर्ण है।

लेकिन स्वामी जी के शब्द 'समाज की तरफ से कान समेटो' कहकर शरीर में एक स्फूर्ति और शक्ति का संचार करते हैं।

ओ संन्यासी महान् विभूति!
युग युग तक तुम इस शक्ति का संचार करते रहो!
मन्वन्तर तुम्हारी सत्यनिष्ठा का उपहार लेते रहें।
दधीचि की कोमल अस्थियों से बने हुए
असुर संहारी कठोर वज्र!
हमारे असुरों का भी मूलोच्छेदन करते रहना!

—श्रीमती सुशीला, एम.ए., दिल्ली

अल्मोड़ा के प्रांगण से सत्य और धर्म का अभियान

प्रकृति की मनोरम छटा में, उषा बेला के अंतिम-प्राची के परम पावन प्रभावान् प्रांगण से प्रभात के प्रथम प्रगति-पथ पर प्रभाकर का पदार्पण हो गया, एवं परम प्रभावान् की रक्तिम आभा नभमंडल में बिखर पड़ी। वीरभोग्या वसुंधरा भारत माता के हरिताम्बर पट पर मनमोहक मोदभरे मनोहर मोती बिखर पड़े।

अरे! देखो तो, आनन्दमय अरुण उदयाचल के सर्वोच्च शिखर से भक्तवत्सल भगवान भास्कर का देदीप्यमान् रथ आ रहा है। जिसे देखकर तिमिर बड़ी तेजी से भाग रहा है—दौड़ रहा है—जा रहा है। जा रहा है तीव्र गति से। गया। वह छिपा क्षितिज के उस पार। वह विलीन हो गया। हो गया विनाश, तेजोमय बालरवि के समक्ष तमोगुणयुक्त निशाचर प्रिय तामसी तम का।

अहा! हा! प्रकृति के प्रतिनिधि, परम मनोहर, पर्वतराज हेमरत्नराशि दृष्टिगोचर हो रहे हैं। ऐसे अद्भुत, अलौकिक, रमणीय अल्मोड़ा के अनुपम आंगन में अमरत्व आदान किए आनन्द का अखंड अवतार अपने अद्वितीय और अद्भुत आनन्द का अकाट्य, अभेद्य उपदेश प्रदान कर बाल वृन्द मंडल में अपनी अनुपम बाललीला को प्रसारित कर रहा है।

ठीक उसी समय सत्य और धर्म, इस महापातकी कलियुग से और पाश्चात्य प्रान्तों से आई हुई शोषण, अत्याचारी और स्वार्थमयी जलधितरंगों

से प्रपीड़ित होकर उत्तर की ओर उच्च धवल शृंगों के अभेद्य, अच्छेद्य शिलाखण्ड परिपूर्ण पर्वतराज हिमालय की महान् कंदराओं की शरण-प्राप्ति के हेतु दौड़ पड़े, लपक पड़े और भाग चले। हाँ, हाँ, भाग चले, अत्यन्त तीव्र गति से। दौड़ते-हाँफते सत्य ने धर्म को रोका और प्रसन्नचित्त हो बोल उठा, क्यों? क्योंकि उसने अल्मोड़ा के आंगन को उज्ज्वल करने वाले उस बालक के दर्शन कर लिए थे।

'अरे धर्मराज! तुम्हारे शरीर का बालरूप बालरवि-सदृश यह धूल-धूसरित हीरा कौन है?' सत्य ने प्रश्न किया।

धर्मराज ने आश्चर्य और मानों भूली हुई बात का स्मरण करने का अभिनय करते हुए कहा–'ओ हो! मुझे अपने दिए हुए वरदान का अब स्मरण हुआ। मैंने अल्मोड़ा के इस पवित्र परिवार को वरदान दिया था कि तुम्हारे यहाँ एक पुत्र होगा जो सत्य और धर्म की स्थापना करेगा।'

'तो हमें फिर अन्यत्र कहीं भी जाने की आवश्कयता नहीं है धर्मराज! इसी पवित्र वसुन्धरा की गोदी में पले हुए भावी भारत की महान् सन्तान, इस धर्मेन्द्र के हृदय में ही निवास करना चाहिए, एवं सत्य और धर्म का प्रसार करना चाहिए।'

* * *

अब बाल धर्मेन्द्र नहीं, धर्मेन्द्र केहरी है जो अपनी सद्गुणमयी दहाड़ से अज्ञान, अन्धकार और अत्याचार को भगा रहा है।

इधर सन्तसमाज चतुरकुल चूड़ामणि परिव्राजकाचार्य श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज ने अपने जीवन के कठिन अनुभवों को तपस्या से परिपक्व कर अध्यात्मवाद एवं ईश्वरवाद का शंख फूँका, जिसके आह्लादकारी महान घोष से हिमांचल की रग-रग जाग उठी और सन्त समागम की ध्वनि सारे संसार में गूँज उठी। इस प्रकार यह दुष्टदमनी, अज्ञान-तिमिर विनाशिनी, सत्पथ-दर्शावनी शंखध्वनि वीर-केहरी धर्मेन्द्र सिंह के कानों तक पहुँच ही गई।

फिर क्या था! यह वीर पुरुष इस समय अध्यात्मवाद के समरांगण में कूद पड़ने की प्रतीक्षा में ही था। निकल पड़ा, जैसे कि कलकल निनादिनी लघु सरिता महानदी माता जाह्नवी में सम्मिलित होने अथवा प्रविष्ट होने को।

–पंडित लादूरामजी, दिव्य जीवन संघ शाखा, उदयपुर

पूर्ण ऋषि–स्वामी सत्यानन्द

सत्यदेव जगदीश्वर के अभिन्न स्वरूप होने के कारण हमारे मित्र का नाम भी स्वामी सत्यानन्द पड़ा।

स्वामी सत्यानन्द जी के जीवन के (यहाँ जीवन शब्द का प्रयोग उनके संन्यस्त होने–सत्यानन्द नाम धारण करने के पश्चात् के जीवन के अर्थ में किया गया है) मुख्य तीन पहलू हैं–गुरु भक्त सत्यानन्द, कर्मयोगी सत्यानन्द तथा राष्ट्रभाषा का पुजारी सत्यानन्द। अत: उनके विषय में कुछ विचार प्रकट करने का तात्पर्य होगा, उनके जीवन के उपरोक्त पहलुओं की समीक्षा या विवेचना।

मैं अभी जिन दिनों की घटना का वर्णन करने जा रहा हूँ, वह आज से कई वर्ष पूर्व की है। एक दिन 'नेपाली क्षेत्र' से भिक्षा लेकर अपनी कुटी को जाते हुए, जब मैं चन्द्रभागा पुल पार कर रहा था तो अकस्मात् मेरी भेंट स्वामी सत्यानन्द जी से हो गई। यही हमारे वार्त्तालाप का सर्वप्रथम शुभ अवसर था।

इस घटना के पूर्व भी हमें स्वामी जी के दूर से दर्शन करने का सौभाग्य कई बार प्राप्त हो चुका था, क्योंकि उन दिनों मैं श्री भरत संस्कृत महाविद्यालय में एक छात्र के रूप में निवास करता था और वे भी 'रामाश्रम-ऋषिकेश' में ही रहते थे। उपरोक्त अभिवादन के आदान-प्रदान के अनन्तर हम दोनों चन्द्रभागा के पुल से होते हुए आगे चल पड़े। मार्ग में आपने हास्यपूर्ण ध्वनि में गीता का एक श्लोक पढ़ा, जो मुझे अभी तक स्मरण है। वह श्लोक है, *'बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।'* आपने कहा कि गीता के इस श्लोकार्ध का अर्थ इस प्रकार अधिक रोचक प्रतीत होता है–यद्यपि मेरे अनेक जन्म हुए, परन्तु केवल चार जून को!

शनै:-शनै: हमारी घनिष्ठता बढ़ चली। इस बीच में आपके वार्त्तालाप से पता चला कि आप उसी वर्ष श्री स्वामी शिवानन्द जी से शास्त्रानुकूल संन्यास की दीक्षा लेकर एक वर्ष परिव्राजक का जीवनयापन कर रहे थे और कुछ दिनों में ही आनन्द कुटीर वापस चले जाने वाले थे।

आनन्द कुटीर में कार्याधिक्य के कारण आप श्री स्वामीजी के पास रहने लगे। इस संसार-रूपी-रंगमंच पर आकर सभी को उस महान् सूत्रधार के इंगित पर अपने-अपने निर्दिष्ट पात्र का अभिनय करना ही पड़ता है। उन दिनों आप आश्रम के नियमादि को हिन्दी रूप-रेखा दे रहे थे तथा श्री स्वामी शिवानन्द जी की पुस्तकों का हिन्दी अनुवाद भी करते थे। इन कार्यों के अतिरिक्त 'योग-

वेदान्त' हिन्दी पत्रिका के सम्पादन का गुरुतर भार भी आप ही के सुयोग्य कंधों पर था।

श्री बुद्ध जयन्ती का शुभ पर्व आया। परम पावनी श्री भागीरथी के तीर पर श्री रामाश्रम में 'बुद्ध जयन्ती' मनाने का निश्चय किया गया और साथ ही 'सार्वभौम साधुमंडल' की स्थापना भी। इसी योजना को लेकर श्री स्वामी भास्करानन्द तथा भिक्षु महेन्द्र जी पधारे थे। सभा में बहुत-से विद्वान् महात्मा पधारे थे। सभापति का आसन श्री स्वामी शिवानन्द जी ने ग्रहण किया था। कीर्तन तथा कुछ महात्माओं के भाषण के पश्चात् श्री स्वामी जी ने सभापति के आसन से कहा, 'स्वामी सत्यानन्द, संस्कृत में भाषण करो।' आदेश पाकर श्री सत्यानन्द जी ने संस्कृत भाषा में बोलना आरम्भ किया।

'अयि समागत सन्तवृन्द! एवं भक्तमंडल! अद्य हि सौभाग्येन वयमत्र परमपावने सुरतटिनीतटे तिष्ठामः। सर्वे सम्यक् विदन्ति यज्जीवनस्योद्देश्यं मोक्षत्वमेव वर्त्तते। विना जीवनमुक्त्या न हि कश्चिदपि पुण्यमनन्तानन्दप्रदं स्थानं प्राप्तं समर्थः। भगवद्भक्तिरेव सुखकरा च मोक्षदा। अद्य त्वस्माभिः सर्वैरेकमनसा भूय सर्वेश्वर-परात्पर-निखिलकोटिब्रह्माण्डनायक-प्रभुः समभ्यर्थनीयस्तत्रैवास्माकं जीवनस्य लक्ष्यपूर्तिर्भवितुं शक्यते' इत्यादि।

उनके उस संस्कृत भाषण को सुनकर मुझे अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुआ। श्री स्वामी जी का संस्कृत भाषा में भाषण सुनने का मेरा यह प्रथम अवसर था।

एक बार वे ऋषिकेश में किसी कार्य से आये हुए थे, वहीं उनसे भेंट हुई। परस्पर अभिवादन के पश्चात् मैंने निवेदन किया, 'मैंने सुना है कि आप आजकल आश्रम में हिन्दी-संस्कृत विभाग के अध्यक्ष के रूप में हिन्दी पुस्तकों तथा पत्रिका के सम्पादन का कार्य कर रहे हैं। क्या आप हमारे लेखों को भी 'योग-वेदान्त' पत्रिका में स्थान प्रदान करने की अनुकम्पा करेंगे? आपकी स्वीकृति मिलने पर मैं भी अपने टूटे-फूटे शब्दों में कुछ पंक्तियों को आबद्ध करने का प्रयास करूँगा।' 'हाँ, हाँ, अपने लेखादि प्रेषित कीजिए। हम उन्हें यथास्थान प्रकाशित करेंगे।' आपने आश्वासनप्रद उत्तर दिया। स्वामी जी के उत्तर से प्रोत्साहित होकर मैंने कुछ छोटे-छोटे लेख भेजे, जिन्हें यथास्थान प्रकाशित कर उन्होंने हमारे उत्साह को बढ़ाने की कृपा की।

कहने का तात्पर्य यह कि श्री स्वामी जी इस भाँति मुझे कुछ-न-कुछ लिखने के लिए सदा प्रोत्साहित एवं प्रेरित करते रहे हैं। स्वामी जी ने मेरी केवल मौखिक सहायता ही नहीं की, वरन् पर्याप्त संख्या में विभिन्न विषयों

के ग्रंथ बिना मूल्य देकर मेरे ज्ञान की अभिवृद्धि में अमूल्य सहायता भी प्रदान की है।

वर्तमान समय में भौतिकवाद का बोलबाला है। उसके निवारणार्थ श्री स्वामी जी अपने शिष्यों को कर्मयोग का आदेश देते हैं और उनके प्रायः सभी शिष्य कर्मयोगी होते हैं। कर्मयोग के दो रूप हैं—एक सकाम तथा दूसरा निष्काम। इसमें प्रथम प्रकार का कर्म किसी कामना के उद्देश्य से किया जाता है। इसका क्षेत्र एकदेशीय तथा सीमित होता है। सब प्रकार की एषणाओं को त्याग कर केवल संसार के योगक्षेमार्थ जो कर्म किया जाता है, वह निष्काम कर्म कहलाता है। इसका क्षेत्र विशाल, व्यापक तथा असीम है। श्री स्वामी जी ने संन्यासी होने के नाते निष्काम कर्मयोग का ही वरण किया है। स्वत्व और परत्व के परिव्रजन का दूसरा नाम ही 'न्यास' है। इसमें 'सम्' उपसर्ग के योग से 'संन्यास' शब्द बनता है। स्वामी सत्यानन्द जी इस मार्ग का पूर्णतया पालन करते हैं। संसार को दिव्य-ज्ञान-प्रदानार्थ ही वे सतत् कर्म में रत रहते हैं। 'शिवानन्द आश्रम' के सभी महात्मा कर्मयोगपरायण हैं। उनमें से जिन लोगों के निकट सम्पर्क में आने का मुझे अवसर प्राप्त हुआ है, उनमें श्री स्वामी सत्यानन्द जी को निष्काम कर्मयोग के पालन में मैंने सबसे अधिक तत्पर पाया है। 'कर्मकरणमेवार्चनम्' के सिद्धान्त वाक्य के आप अनन्य पुजारी बन चुके हैं।

स्वामी सत्यानन्द जी निरे कर्मयोगी ही नहीं, वरन् एक प्रकाण्ड ज्ञानी भी हैं। मैं उन्हें अपना एक परम हितैषी तथा मित्र समझता हूँ, अतः अवकाश होने से मैं बिना उनके आवाहन के ही निस्संकोच भाव से उनके पास चला जाता हूँ और घंटों उनके पास बैठकर सामाजिक, धार्मिक, राष्ट्रीय एवं आध्यात्मिक विषयों पर वार्त्तालाप करता हूँ। इन विषयों में उनका अध्ययन अत्यन्त ही गंभीर तथा विचार अत्यन्त ही उत्कृष्ट एवं प्रौढ़ हैं। उनकी तर्क प्रणाली इतनी अकाट्य होती है कि वे बड़े-बड़े तार्किकों को सहज ही अपनी विचारधाराओं की ओर मोड़ लेते हैं। उनक सरल, सरस, सुमंजुल व्याख्या-विधि तथा हिन्दी की गद्य-पद्य रचना प्रणाली अत्यन्त ही परिमार्जित, रोचक एवं प्रंशसनीय है।

स्वामी जी के शरीर का गठन सुष्ठ, वर्ण गौर तथा व्यक्तित्व अत्यन्त ही आकर्षक है। आपके दर्शन से मनुष्य प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता।

मैं मित्रभाव से आपके आरोग्य, योगक्षेम और दीर्घायुष्य के लिये परमेश्वर से प्रार्थना करता हूँ।

—श्री स्वामी भीमानन्द 'शास्त्री'

अभिनव तरुण तपस्वी

ज्ञान-गवेषणीय मानव ने सृष्टि के प्रादुर्भूतोपरान्त अपनी त्रिपथ जिज्ञासा को उत्तरोत्तर आध्यात्मिक पथ पर अग्रसर किया। इस पथ की गौरवमालिका को औत्तरीय देवी वसुन्धरा के इतिहास के विशिष्ट पृष्ठों ने अपने सौहार्दिक हृदय से सम्मानित किया है। इस उत्तरापथ की आख्या अवर्णनीय है, क्योंकि *'हरिद्वारादूर्ध्वे वै स्वर्गद्वारं प्रचक्षते'*, जहाँ कि जगज्जननी सुरसरि का पावन प्रवाह विविध प्राणियों का परित्राण करता हुआ आध्यात्मिकता को जाग्रत करता है।

आध्यात्मिक एवं कर्मयोग की नक्षत्र पर्वमालिकायें परस्पर सम्मिश्रित-सी हैं। इन पुण्य पर्वों की निश्चित तिथियाँ हमारी विशुद्ध संस्कृति की दीर्घ पराकाष्ठा एवं आदर्श-पथ को व्यक्त करती हैं, जो कि जीवन के इतिहास में महत्त्वप्रद हैं। इन्हीं आदर्शप्रद सुमंगलमय नक्षत्र पर्व में अध्यात्मरत्न श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती जी महाराज का शुभ जन्म हुआ। जन्मग्रह-मालिका ही जातक की सुवंश गाथा एवं वैभव तथा यशस्विता को प्रकट करती है। ग्रह शुभ-सिद्ध-दर्शनार्थ भुवन-भास्कर स्वकीय राशि में अवतरित हो, ग्रहराज बृहस्पति को विकास में लाकर 26 अंशक जुलाई गुरु दिन में स्वनाम धन्य श्री स्वामी सत्यानन्द जी सरस्वती के समारम्भ वर्ष-पर्विका में सुखसमृद्धिप्रद पवित्र ज्ञान-विज्ञानमय प्रसार का आयोग देते हैं। चिरायु की रेखा पूर्व अंशों में विद्यमान है। विशिष्ट एवं श्रद्धासम्पन्न आध्यात्मिक जनप्रिय कार्यों का सन्नियोजन, कुशलता और सफलता इनमें स्वाभाविक ही पायी जाती है। *'कार्यं साधयामि किंवा शरीरं पातयामि'* इस गरीयसी प्रतिज्ञा को सदैव ही अपने विशाल हृदय में प्रथम स्थान देते हैं।

इनकी कुशाग्र बुद्धि का परिचय शिक्षित मानव 'शिवानन्द दिग्विजय' ग्रंथ से पा सकते हैं। प्रस्तुत ग्रंथ में प्रातःस्मरणीय पूज्यवर स्वामी श्री शिवानन्द जी महाराज की भारत भ्रमण की विशाल कार्यवाहिका एवं उनके बहूमूल्य प्रवचनों की रूपरेखा साद्योपान्त दूरदर्शिता से दर्शायी गई है। इनके द्वारा लिखित 'चैतन्य ज्योति' ग्रंथ भी मानो नवचन्द्र ज्योत्स्ना की प्रस्फुटित आभा है। इसमें उन्होंने पूज्यवर श्री सद्‌गुरु महाराज की सुकृतियों की सुन्दर अभिव्यंजना अलंकारोपमासहित नक्षत्रोद्यान में चारु-चन्द्र सी विकसित की है। वाचक इस ग्रंथ को प्रशान्त मानस में स्थान देंगे। मन की सहजता इनकी ज्ञान-गरिमा को सदैव चाहेगी। इस ग्रंथ की उपादेयता कितनी सरल और सुगम है। वस्तुतः

लेखक का अध्ययन और ज्ञान-गवेषणा ही इस ग्रंथ की कसौटी का प्रतीक है। अभी आध्यात्मिक जगत् ने बहुत कुछ श्री स्वामी सत्यानन्द जी महाराज से पाना है।

प्रात:स्मरणीय श्री स्वामी जी महाराज लिखित विविध योग-पथ-प्रदर्शक ग्रंथों की सुगम, सरल, भावगम्य, विशुद्ध हिन्दी रूपान्तर का दिव्य कार्य निरन्तर इन्हीं की सुलेखनी द्वारा सुसम्पन्न होता आ रहा है। ज्ञान-जिज्ञासु श्रद्धापन्न पाठकों ने दिव्य जीवनमालिका के हिन्दी भावान्तर का हृदय से स्वागत किया है। अनेक कठिन स्थल, योग-भूमिकाओं के जटिल प्रश्न पाठकवृन्द निज शंकाओं के समाधानार्थ अपनी प्रिय पत्रिका 'योग वेदान्त' के सफल सम्पादक माननीय श्री स्वामी सत्यानन्द जी महाराज की सेवा में सदैव प्रेषित करते रहते हैं। जिस ज्ञान, गाम्भीर्य और चातुर्य से योग के विषय का समाधान पूज्य सम्पादक साधकों के हितार्थ भेजते हैं, उनका सरल रहस्य साधक शीघ्र ही समझ लेता है। इनके सफल उपदेश हृदय-पटल पर सद्य: अंकित हो जाते हैं, जो कालान्तर में भी विस्मृत नहीं होते। यथा–

1. असार संसार की बाह्य वृत्तियों पर शनै:-शनै: नियंत्रण कर अपने मन की एकाग्रता को स्थिर करो।
2. सुरम्य जीवन का आदर्श शिक्षापूर्ण तथा उपदेशामृतों से विशेष प्रभावोत्पादक एवं सुखेन अनुसरणीय भी होता है। अत: भगवान के चरणारविन्द की पवित्र पांसु भवबन्धन से विमुक्त कर देती है।

स्वामी जी की सुरम्य चिरचिन्तनीय कविताएँ भी मुमुक्षुजनों के लिए अतीव पथ प्रदर्शक होती हैं। 'सदसत् का करो विवेचन, जिससे छूटे भव-भय-बन्धन' आदि।

मानव जिस वस्तु का अनुभव करता है, एवं जिस क्रिया में सतत् रहता है, उनके संस्कार उसके अन्त:करण में समुच्चयरूपेण विद्यमान रहते हैं। वे ही मानव को संसार में परिभ्रमित करते हैं। इनके निर्मूलन से ही मनुष्य मुक्ति पा सकता है। बुद्धि के विकसित होने पर अन्तर संसार-भ्रमित मानव को प्रकृति के यथार्थ रूप का प्रबोध कराता है। प्रकृति का वास्तविक ज्ञान होने पर योगी-पुरुष वैराग्य पथ पर अग्रसर होता है। कालान्तर में दूषित संस्कारों का अन्त:प्राय होकर योगमार्गी निश्चित ही मुक्तावस्था के समीप आ पहुँचता है। स्वामी जी के इन महत्त्वप्रद उपदेशों का श्रवण, मनन और निदिध्यासन कर लिया जाए तो असार संसार के आवागमन से अवकाश प्राप्त हो सकता है। आधुनिक युग

में ऐसे महत्त्वपूर्ण, मार्मिक सदुपदेशों की तथा पवित्र आदेश-संचालकों की आवश्यकता है। हमारी पौराणिक संस्कृति के परम प्रतीक, दिव्य जीवन संघ के देदीप्य विभाकर अभिनव तरुण तपस्वी श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती जी परमायु प्राप्त करें।

प्रभु से प्रार्थना है कि उनकी असीम भव्य भावना हमारे अन्तःकरण में सदैव ही परम ज्ञान का संचार करती रहे।

—वैद्य भास्कर आयुर्वेदाचार्य श्री सच्चिदानन्द मैथानी

युग संदर्शक यतिवर

यावत् रश्मिसमुज्ज्वला च गगने देदीप्तिचन्द्रार्कयोः ।
यावत् श्री यमुनासरस्वती तथा भागीरथी दृश्यते ॥
सत्यानन्दसरस्वतीति गुणवान् श्रीमान् सदा सर्वदा।
लोक सकरुणापरायणतया जीवन्तु भो स्वामिनः ।
लोकं यज्जायते क्लेशं तं नश्यन्तु अनस्विनः॥

सृष्टि का सम्पूर्ण कार्य किसी एक मूलांश पर अवलम्बित है। ब्रह्मा से लेकर जीवपर्यन्त सभी अपने संस्कारजन्य कर्मों के चक्र में पड़ कर इधर-उधर भटकते फिरते हैं। सभी प्राणियों का एकमात्र लक्ष्य प्राणी के अन्तरंग में है। किन्तु भुवनमोहिनी माया के बन्धन से बँधा हुआ प्राणी व्याकुल एवं संतप्त हो रहा है। प्रत्येक जीव का कल्याण भूतभावन भगवान की परम अनुकम्पा पर ही आधारित है। उन भगवान का महान् स्नेहपात्र उनका भक्तिपरायण ही हो सकता है।

सभी जीवों में मनुष्य को श्रेष्ठ माना जाता है, विचार वैभव का पाया जाना विशेष गुण है। प्रत्येक मनुष्य को ज्ञानाज्ञान का आभास होता है, लेकिन इतने पर भी वह अपने मस्तिष्क का सन्तुलन किसी एक लक्ष्य की ओर केन्द्रित नहीं कर सकता। मझधार में फँसी हुई तरणी की तरह वह किसी तारक का अन्वेषण करता है। वे तारक सन्तों के रूप में उन्हें दर्शन देते हैं।

उन्हीं सन्त समुज्ज्वल रत्नों में हमारे वन्दनीय श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती भी हैं। जब-जब अखिल ब्रह्माण्ड चतुर्दिक पापावरण से आच्छादित होता है, ठीक-ठीक उसी समय आनन्दकन्द भगवान इस आवरण को विदूरित करने के लिए सन्त रूप में अवतरित होते हैं।

सन्तवर्य श्री स्वामी सत्याननन्द जी किसी एक व्यक्ति के नहीं, अपितु सभी के पूज्य एवं मार्गदर्शक हैं। मुझे अल्पकाल से ही उनके दर्शन का अवसर प्राप्त हुआ है। उनकी अपार दूरदर्शिता तथा ज्ञानकोष को देखते हुए आश्चर्य होता है।

उनकी लेखनी से आज का मानव पूर्णरूपेण परिचित है। ये महानुभाव अपनी लेखनी से जीवन तथा ज्ञान का संचार करते हैं। अतः श्री सर्वानन्देश्वर अच्युत अविनाशी परब्रह्म परमेश्वर से प्रार्थना है कि वे अपने इन अंशस्वरूपी श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती महाराज को यावच्चन्द्रदिवाकर अक्षुण्ण बनाये रखें।

–पंडित जनार्दन प्रसाद द्विवेदी शास्त्री

शुभ दिन आया

शुभ घड़ी दिन लाया।

आकाश से उतर कर
इक उजाला नीचे आया।
जिस चमकते सितारे का,
हमने आज जन्म-दिन मनाया।

इस आधुनिक युग का,
वह है एक ऋषि,
दुनिया को सन्मार्ग पर,
लाने की है उसकी नीति,
दुनिया की आँखें खोलने के लिए,
वह दुनिया में आया।

अक्ल की अन्धी दुनिया
को उसने मार्ग दिखाया,
जिनके जन्म-दिवस पर,
हमने कविता से उस मृदु ग्रीवा पर,
मोतियों की मणियों का हार पहनाया।

शुभ घड़ी दिन लाया॥

–तृप्ता मेहता, दिल्ली

सरस्वती के वरद पुत्र

यह अनिवार्य नहीं कि ज्योतिर्मय की ज्योति का आभास, भौतिक शरीर के सम्पर्क से, उसके दर्शन द्वारा नयनाभिराम चेतना के अनुभव से ही हो। उनके श्रवण से भी हो जाता है और ऐसा स्थान भी तो कोई नहीं, जहाँ उसकी ज्योतित किरणों की पहुँच न हो। स्वामी सत्यानन्द के दुर्लभ दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त नहीं होने पर भी उपयुक्त कारण द्वारा ही यह सद्भाव-सुरभित श्रद्धांजलि भेंट करने का साहस मुझ से हुआ है।

यह किशोर, कमनीय कलेवरयुक्त संन्यासी संसार में सेवाधर्म लेकर अग्रसर हुआ है। इस संसार मरुस्थल में प्रत्येक प्राणी सुखरूपी मृगतृष्णा की खोज में भटकता-फिरता है। ऐसे भटके पथिकों का यह पथ-प्रदर्शक है। मानव हृदय किसी ऐसी शक्ति का अन्वेषण किया करता है, जो उसके सुख में तो सहयोग दे और दुःख से उसे निवृत्त करने के लिए सदैव तत्पर रहे। ऐसे ही महान् शक्ति इनके व्यक्तित्व में निहित है।

वे स्वामी होने योग्य हैं, क्योंकि वे स्वामी के समान रक्षा कर सकते हैं और मनुष्य के दोषों को शुद्ध कर उसके गुणों को उभार सकते हैं। वे सत्य और आनन्द के, उस अनिर्वचनीय प्रसन्नता के दाता हैं—इसका अनुभव उनसे मिलने वालों को पर्याप्त है। और, सरस्वती के भी वरदपुत्र हैं, इसमें तो कुछ सन्देह को स्थान रह ही नहीं जाता। इस प्रकार यह मानव सब प्रकार से महामानव, श्रद्धेय और पूजनीय है।

—श्रीमती राजेश्वरी माथुर, एम.ए., एकेडमी ऑफ साइंस, दिल्ली

मैंने क्या देखा

मैंने ऋषिकेश में, बुद्ध भगवान को देखा।
काषाय वस्त्र पहने एक योगी को देखा।
अध्ययन में लीन, सेवा में तत्पर,
एक तपस्वी को देखा।
मैंने ऋषिकेश में, बुद्ध भगवान को देखा।

* * *

इस धरती पर स्वर्ग की विभूति देखी,
उस ज्योतिर्मय भगवान की एक ज्योति देखी,
मैंने क्या देखा ....।
मैंने ऋषिकेश में, बुद्ध भगवान को देखा।

मैंने उस विभूति में, सख्य भाव देखा
मैंने उस योगी में बाल-हृदय देखा।
मैंने क्या देखा ....।
मैंने ऋषिकेश में, बुद्ध भगवान को देखा।

*   *   *

देखकर उन्हें मैं हो गया चकित,
झट उनके पास गया—नतमस्तक खड़ा रहा—
उस योगी ने मुझको प्यार किया,
वे मेरे साथी हैं, वे प्रिय हैं।

मैं उनका अनुगामी हूँ—उनका सहचर हूँ।
जो कुछ देखा मैंने सत्य देखा—
ऋषिकेश में बुद्ध भगवान के रूप में 'सत्यम्' को देखा।

—श्री सुदेश कुमार भटनागर, दिल्ली

आप लेखन कला में द्वितीय हर्ष हैं

विद्यावैभवभूषितं गुणगणैः पुष्पस्रजेवावृतम्।
अल्मोड़ाकुविकासभास्करकरं मान्यं महाकीर्तिकम्॥
सत्यानन्दमहोदयं सुमहसं वाक्चातुरीचर्चितम्।
सानन्दं शिवशिष्यकं प्रतिनुमः पुष्पाञ्जलयोः वयम्॥

सबको अपनी आत्मा समझने वाले हिमालय के महायोगी श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज से आज संसार के सभी लोग परिचित हो चुके हैं। वे क्यों और कैसे इस भाँति विश्वविख्यात हुए?

भगवान पतंजलि ने योग दर्शन में योग के आठ अंग बतलाए हैं। वे हैं—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि।

श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज उपरोक्त अष्टांग योग के मूर्त्तरूप हैं और यही उनके विश्वविख्यात होने का मुख्य हेतु है। यहाँ पर यह शंका हो सकती है कि आपको इस बात का पता कैसे चला और ऐसी शंका का होना ठीक तथा स्वाभाविक भी है। महाकवि श्रीहर्ष नैषध में लिखते हैं, *'विभारशास्त्राणि दृशं द्वियाधिकाम्'* अर्थात् मनुष्यों का तीसरा नेत्र शास्त्र है। उसके द्वारा भी चर्मनेत्रों की भाँति ही ज्ञान प्राप्त हो जाता है। इसके अतिरिक्त एक नीति-विशारद का भी कथन है, *'अकारैरिंगितैगत्या चेष्टया भाषणेन च नेत्रवक्त्रविकारैश्च लक्षतेऽन्तगतं मनः।'* इस उक्ति से भी शास्त्रों के परिशीलन से सम्यक् प्रकारेण ज्ञान होना सिद्ध होता है। ऊपर जो बात मैंने उद्धृत की है, इस प्रकार के शास्त्रीय ज्ञान के आधार पर ही की है।

वे जो कुछ भी करते हैं, राजा जनक की भाँति लोक-संग्रहार्थ ही करते हैं। वैसे स्वयं तो वे महर्षि पतंजलि के वचनों का अनुसरण करते हैं– *'परिणामताप-संस्कारदुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः।'* अक्षिपात्रकल्प ही योगी होता है, उसके लिये तो सूक्ष्म दुःख भी हिमालय के सदृश हैं। अतः स्वामी जी महाराज संसार में रहते हुए भी संसार से परे हैं। यह सूक्ष्म बात इस विषय के जिज्ञासु ही जान सकते हैं।

ऐसे ही सुचरित्र पवित्र महापुरुष के चरण-प्रसाद तथा आदेश-प्राप्त स्वामी सत्यानन्द जी हैं, जिनकी 31वीं जयन्ती हम आज मना रहे हैं। 'बड़ी रात्रि के बड़े ही तड़के होते हैं'—इस कहावत के अनुसार आप भी पूज्य स्वामी जी के सदृश ही गुणी तथा विद्वान् हैं। न्यायशास्त्र में एक उक्ति है, *'कारणगुणाः कार्यगुणान् आरम्भते।'* कारण गुण ही कार्य में आते हैं। स्वामी सत्यानन्द जी भी उन्हीं गुरु चरणों के गुणों को सतत् अनुसरण करते हैं।

श्री स्वामी सत्यानन्द जी 'यथा नाम तथा गुण' हैं। उनके नाम के श्रवणमात्र से ही हृदय में शान्ति की अनुभूति होती है। 'सत्यानन्द' शब्द के उच्चारणमात्र से ही *'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'* तथा *'आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्चन'* इत्यादि अर्थ समुपस्थित होता है।

श्री स्वामी सत्यानन्द जी शिक्षा प्राप्त करने के अनन्तर विषय पदार्थों को दोषयुक्त पाकर श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज के पूज्य चरणों में आत्मज्ञान-पिपासा को शान्त करने के लिए उपस्थित हो गये तथा संन्यास दीक्षा स्वीकार की। उसके अनन्तर आप स्वयं अभ्यास करते तथा दूसरों का भी लेख तथा प्रवचन द्वारा अभ्यास कराते हैं। आप लेखन कला में द्वितीय श्री हर्ष हैं—श्री हर्ष

ने लिखा है, *'मितं च सारं च वचो हि वाग्मिता'* अर्थात् शब्द कम हों और अर्थ बहुत, तभी वाक्पटुता समझी जाती है। आप तदनुसार ही लेखक व गण्यमान्य प्रवक्ता हैं। पूज्य श्री चरणों की अनुकम्पा से स्वल्पायु में ही आपने अपरिमित गुणनिधि प्राप्त कर ली है।

जिस प्रकार स्वामी रामकृष्ण परमहंस के शिष्य, परमोदात्त विचार के स्वामी विवेकानन्द जी महाराज हुए, जिन्होंने देश-विदेशों में जाकर शांकर-वेदान्त के अध्यात्मवाद को प्रत्येक प्राणी के हृदय में बैठा दिया तथा जिस प्रकार विश्ववन्द्य महात्मा गाँधी के परमप्रिय शिष्य विश्व में अद्वितीय परमोदात्त विचार वाले लोकप्रसिद्ध भारत के वर्तमान प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू जी हैं, उसी प्रकार पूज्य शिवानन्द जी महाराज के भी अनुरूप शिष्य स्वामी सत्यानन्द जी हैं। आप विवेक, वैराग्य, षड्सम्पत्ति तथा मुमुक्षुत्व से सम्पन्न हैं। अल्पायु में ही आपने पूर्णता प्राप्त कर ली है। अध्यात्मवाद में आपके विचार सर्वथा मौलिक हैं। आप भगवती सरस्वती के पूर्ण कृपापात्र तथा अनेक पुस्तकों के लेखक हैं।

मैं आपके इस 31वें जन्मदिवस के उपलक्ष्य में हार्दिक बधाई देता हुआ उस परम पिता परमात्मा से आपके दीर्घायु की कामना करता हूँ।

मोदस्व वर्धस्व यशो लभस्व!

—श्री नृसिंह देव शास्त्री, व्याकरणाचार्य, सर्वदर्शनाचार्य, कनखल

आनन्द कुटीर की एक आनन्दमूर्ति

जीवन की विविध कल्पनाओं के मध्य कुछ मधुर स्मृतियाँ सजग हो उठी हैं। हिमालय के चरण कमल का स्पर्श करती हुई आनन्द कुटीर की शोभा आध्यात्मिक जीवन की प्रखर ज्योति है। यहाँ आकर सांसारिक वासनायें और शिक्षित भावनायें ईश्वरीय सोपान का आलिंगन करती हैं। इस महान्, पवित्र एवं वात्सल्यमय वातावरण में मेरा स्वामी सत्यानन्द जी से साक्षात्कार हुआ। यद्यपि यह कुटीर संन्यासी वर्ग की बाहुल्यता का प्रतीक है, फिर भी सांख्य योग की पूर्ण परिधि के अन्दर रहने वाले कुछ महर्षियों में आप रवि-सम प्रकाशित हैं। आपकी बहुमुखी विद्वत्ता अपनी अन्तर्मुखी आध्यात्मिकता के प्रकाश में प्रस्फुटित तथा पल्लवित होती है। अपने इस विशेष गुण के कारण अहंकार का दर्शन आपमें नहीं होना आध्यात्मिक उपलब्धि का द्योतक

है। सरल चित्त और हँसमुख चेहरा ब्रह्मचर्य की महिमा का गुणगान करते हैं। समय की बहुमूल्यता का दिग्दर्शन आपकी कृतियों में ढूँढ़ा जा सकता है। गुरुभक्ति की अभूतपूर्व झाँकी आपसे मिलने पर ही दर्शित होती है। जब जनसमुदाय आपके गुणों का वर्णन आपके ही सामने करता है, तब अध्यात्मगुरु श्री शिवानन्द जी के चरणों में अपनी सभी सफलताओं को अर्पण कर देना आपके लिए साधारण कार्य है।

पूज्य स्वामी सत्यानन्द जी अध्यात्म जीवन के जीवित-मानव हैं। आपका संन्यासाश्रम केवल वस्त्र-परिवर्तन ही न होकर हृदय-परिवर्तन की सुन्दर भूमिका तैयार करता है। संयम और संकोच का मधुर दर्शन आपसे मिलने के साथ ही दिखलाई देता है। कामनाओं का त्याग और सुख-दु:ख को समान समझना, यह ईश्वरीय-पथ की वाटिका है, जहाँ से निष्कामता का पुष्प प्राप्त करके परम पिता परमेश्वर के चरणों को अर्पण करके महान् सिद्धि की प्राप्ति की जाती है।

मैंने श्री सत्यानन्द जी से बातों-ही-बातों में अपने निवास स्थान पर कुछ काल के लिए विश्राम करने का अनुरोध किया। आपने अपनी उसी साधारण मुस्कान के साथ एक शर्त सामने रखी। शर्त का नाम सुनकर मेरे अन्त:करण में भय का भास हुआ, क्योंकि वर्तमान महात्माओं को देहातों में रखना एक कठिन परिस्थिति को ही जन्म देना होता है। फिर भी स्वाभिमान की रक्षा के लिए मैंने अपनी स्वीकृति दे दी। उन्होंने पुन: हँसते हुए कहा, 'देखिए, मैं केवल साधारण रोटी-चावल ही भोजन करूँगा। अगर आप विलासी भोजन में मुझे उलझा देंगे तो साधना की प्राप्ति में कठिनता होगी।' मैंने इस बालयोगी का महान् चित्र हृदयांकित कर लिया। इसलिए नहीं कि यह केवल साधारण चावल-रोटी ही खाता है, बल्कि इसलिए कि इस व्यक्ति का भोजन एक यज्ञ है। इसका सांसारिक-कार्य परमात्म-पथ की सीढ़ी है। यद्यपि आपका सोना, खाना, बैठना और बातचीत करना हमारे और औरों के ही समान होता है, फिर भी कुछ मौलिक भेद है। एक तरफ हमारी क्रियायें अन्त:करण से प्रेरित होकर सांसारिक सिद्धि की ओर लालायित हैं; किंतु आपके कार्यकलाप केवल शारीरिक क्रियामात्र हैं। आपकी आत्मा परमात्मा के चिन्तन में व्यस्त है। आँखें सम्पूर्ण पदार्थों में परमात्म-दर्शन करती हैं।

वास्तव में सत्यानन्द जी का जीवन पूर्णतया सांख्ययोग से ओतप्रोत है। किसी भी क्रिया का बोझ इनके कार्यों में नहीं दिखलाई पड़ता। अगर

क्रियाओं में चिड़चिड़ापन या क्रोध का दर्शन हो तो यह प्रत्यक्ष ही कार्य-लोभ या कार्य-बोझ का ही दुष्परिणाम दृष्टिगोचर होता है। यद्यपि आपके कार्यों की अधिकता सीमा से भी अधिक है, फिर भी निर्लिप्त होने के कारण किसी भी प्रकार की घबराहट का दृश्य उपस्थित नहीं होता है। इन सब महान् तथ्यों के आधार पर हम देखते हैं कि आप गीता के अनुसार स्थितप्रज्ञ की दिशा में उन्मुख हैं।

परमात्मा आपको दीघायु बनायें, जिससे आपकी जीवन-ज्योति स्थित-प्रज्ञावस्था को प्रकाशित कर सांसारिक अंधकार को छिन्न-भिन्न करने में सहायक हो—यही हम भारतवासियों की हार्दिक कामना है।

—श्री शंकर नारायण शास्त्री, बी.ए., शाहबाद

उस सीधे-सादे संन्यासी से भेंट

मैंने सामने ही एक संन्यासी को देखा। वेशभूषा साधारण थी। अत: मैंने ध्यान नहीं दिया। मैं तो एक महान् व्यक्ति से मिलने जा रहा था। उसकी महानता और तड़क-भड़क की कल्पना भी कुछ विचित्र ढंग से कर रहा था। सामने बैठे उस संन्यासी से मैंने गर्वीली भाषा में पूछा, 'स्वामी सत्यानन्द कहाँ मिलेंगे?' उस व्यक्ति के मुखमण्डल पर एक हल्की-सी मुस्कुराहट दौड़ गई। उसने पूछा, 'किसलिए?' कुछ उपेक्षित भाव से मैं बोला, 'सत्यानन्द जी से मिलना है। मैं दो दिन से आश्रम में आया हूँ, स्वामी शिवानन्द जी ने मुझे हिन्दी विभाग में उनका सहयोग करने के लिए भेजा है।' उस व्यक्ति ने कहा, 'बैठिए।' वरदहस्त बढ़ाकर उसने मुझे प्रेम से बैठा दिया। वह स्पर्श पाकर हृदय में एक बिजली-सी दौड़ गई। अब मुझे समझते देर न लगी कि जिसकी उपेक्षा मैं साधारण सोचकर कर रहा था, यह वही महान् सत्यानन्द हैं।

मेरी आँखें अब उस सीधे-सादे संन्यासी पर एकटक लग चुकी थीं, जिनकी गति में था अन्वेषण। मैंने देखा, उनके अंग-प्रत्यंग में बालसुलभ चंचलता थी—हाँ, कोमलता भी। मुखमण्डल पर उत्कट गंभीरता मधुर स्मिति के साथ खेल रही थी। देखता ही रहा—एकटक देखता ही रहा, जब तक उनके मधुर शब्दों ने ध्यान न तोड़ दिया। कुशल-क्षेम, निवास इत्यादि वे कुछ ऐसी भाषा में पूछ गए कि उनका कोई पूर्व परिचित था। आत्मदर्शन करने वाले साधु के लिए कौन अपरिचित है।

मैं उनकी कुटिया में आया। इसमें आकर सहज ही एक पुस्तकालय का सा भ्रम हो जाता है; चारों ओर पुस्तकें सजी थीं। पत्र-पत्रिकाओं का ढेर-सा लगा था। हाँ, सोने के लिए फर्श पर बिछा हुआ एक साधारण-सा कम्बल, उसी के पास रखा हुआ एक पात्र और घड़ा ही निवास का चिह्न था। मेरा जी भर आया, हृदय गद्‌गद् हो गया। उनके सरल जीवन ने मुझे ठग-सा लिया।

आदर्श शिष्य

उस दिन बहुत देर तक बातें होती रहीं। बाद में मुझे एक कमरा दिया गया। यहाँ मैं लगभग एक मास तक रहा।

श्री सत्यानन्द जी में शिष्योपयोगी आशातीत गुण भरे पड़े हैं। स्पष्ट शब्दों में कहा जा सकता है कि आज जगद्‌गुरु शिवानन्द जी की जो कुछ देन हिन्दी जगत् को मिल रही है—वह सत्यानन्द जी के परिश्रम का ही फल है। आपने इस प्रकार गुरुसेवा का एक महान् व्रत लिया है। मैंने देखा है कि गुरु जी के अंग्रेजी साहित्यों का हिन्दी अनुवाद करते समय आपकी समाधि लग जाया करती है। मुझसे आपने प्रसंगवश एक बार कहा था—'मैं तो चाहता हूँ कि स्वामी जी की कृतियों का अनुवाद हर भाषा में हो जाए। इसलिए नहीं कि एक प्रोपगेण्डा (Propaganda) हो, वरन् इसलिए कि इस वैज्ञानिक युग को उसकी आवश्यकता है।' उनके इस कथन में ओज था, सार था। ये शब्द उनके अन्तःकरण के प्रत्येक कोने से निकल रहे थे।

आप गुरु की प्रतिमूर्ति हैं। वही मस्ती, वही मुस्कान, वही कर्मठ जीवन आपने पाया है—जो शिव में है। फिर भी आपमें अहं नहीं। नित्यप्रति आप गुरु का दर्शन करने जाते हैं। उस समय एक अद्भुत छटा छिटक जाती है। वहाँ आप छाया के समान खड़े होते हैं। जान पड़ता है कि शरद् के चन्द्र का प्रतिबिम्ब धवल जल में पड़ रहा है। उस समय आपका बालस्वरूप फूटकर बह पड़ता है। विचित्र होता है वह समय।

स्वतंत्र व्यक्तित्व

कुछ शिष्य गुरुभक्त होते ही नहीं, और कुछ होते हैं तो अन्धे पुजारी। उनका कोई स्वतंत्र जीवन नहीं होता। इस कारण गुरु के अवसान के बाद उनकी भी नाव डूब जाती है। श्री सत्यानन्द, जिन्हें लोग 'सत्यम्' भी कहते हैं, ऐसे शिष्यों में से नहीं हैं। गुरु आदर्शों को आपने गले उतारा है। उससे एक स्वतंत्र

व्यक्तित्व का इन्होंने निर्माण किया है। आपकी गुरु के स्थूल शरीर में श्रद्धा है, प्रेम है—मोह नहीं। इनका निज का व्यक्तित्व है। किन्तु गुरु की सर्वतोमुखी प्रतिभा की धातु से ही वह बना हुआ है। आनंद कुटीर में रहकर गुरु को देखे बिना उन्हें चैन नहीं मिलता। परन्तु जब कभी उन्हें स्वामी जी की आज्ञा से बाहर जाना होता है तब वे 'कीर के कगार ज्यों नृप चीर' की भाँति कुटीर छोड़कर चल देते हैं। उस समय वे कुटीर की ओर मुड़कर देखते भी नहीं, वरन् कुटीर की छवि उनके साथ हो लेती है।

इनका योग

स्वामी शिवानन्द जी के शिष्यों का आभूषण है—कर्मयोग। श्री सत्यम् भी एक उत्कट कर्मयोगी हैं। आपकी दिनचर्या अनुकरणीय है। आप सदा व्यस्त रहते हैं। सहयोगियों के साथ आपका व्यवहार निश्छल और सरल होता है। हिन्दी का पूरा प्रकाशन विभाग आपकी देख-रेख में है। आप सम्पादकीय कार्यों में व्यस्त रहते हुए भी प्रूफ देख लेते हैं, टाइप कर लेते हैं, विद्यार्थियों को कुछ पढ़ा देते हैं, लेख लिखते हैं, इत्यादि। इस प्रकार कार्य-परिवर्तन करते हुए आप दिन-रात कार्य में संलग्न रहते हैं। फिर भी आपका अधिक समय 'योग वेदान्त' की व्यवस्था तथा स्वामी जी की कृतियों का अनुवाद करने में ही बीतता है।

स्वकीर्ति की भावना आपसे कोसों दूर है। स्वामी जी के अनेक ग्रंथों का हिन्दी अनुवाद करने पर भी आप अनुवादक बन कर स्व-नाम प्रकाशन नहीं करते। हिन्दी जगत् को स्वामी जी का आध्यात्मिक संदेश आपने ही दिया है। आश्रम आगन्तुकों को भी आप इस कार्य के लिए उत्साहित करते रहते हैं तथा समय-समय पर उन्हें सहयोग भी देते रहते हैं। धन्य है आपकी हिन्दी सेवा!

आज मैं आपसे दूर हूँ—सैंकड़ों मील दूर। परन्तु हृदय में आप सदा खड़े हैं। आपका सरल जीवन, वह कर्मयोग, वह मस्ती हृदय में सदा एक संस्फुरण करता रहता है, पर आँखें इस लम्बी दूरी को देखती हैं तो एक टीस उठती है, दाह होता है, मोह होता है—क्योंकि मैं तो हूँ एक मानव!

—श्री शंकर नारायण शास्त्री, बी.ए., छावन, जिला शाहबाद

मैं उन्हें कभी नहीं भूल सकता

यह एक महत्त्वपूर्ण और हर्ष का अवसर है कि श्री स्वामी सत्यानन्द जी महाराज की 31वीं वर्षगाँठ आनन्द कुटीर में मनाई जा रही है। मुझे श्री स्वामी सत्यानन्द जी महाराज के दर्शन आनन्द कुटीर में दिसम्बर 1953 में करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था, साथ-ही-साथ उनके अमूल्य एवं प्रभावशाली उपदेशों द्वारा मेरा जीवन आध्यात्मिकता से ओतप्रोत हो उठा था।

इसके बाद 'दिव्य जीवन समिति' की उदयपुर शाखा के कार्यकर्त्ताओं के प्रयास द्वारा 'साधना समारोह' उदयपुर में मनाया गया। इस शुभ अवसर पर मुझे पहली बार श्री स्वामी जी महाराज के निकट सम्पर्क में आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

स्वामी जी महाराज की पवित्र जीवनचर्या से मेरे हृदय में एक ऐसी विचारणा का संचार हो उठा कि किस प्रकार इस कुमार ने राजसी वैभव को त्यागकर वैराग्य भेष धारण कर लिया।

वास्तव में 'लाल गुदड़ी' में कब तक छिपे रहेंगे। परम पिता परमात्मा को यही स्वीकृत था कि इस हीरे की चमक द्वारा संसार में शीघ्र ही प्रकाश की किरण का प्रसार होना चाहिए।

उदयपुर दिव्य जीवन समिति के समारोह में श्री स्वामी जी महाराज ने समय-समय पर मानव जीवन को दिव्य जीवन में परिणत करने के सदुपदेश दिये; जिससे श्री स्वामी जी महाराज की अमिट छाप मेरे हृदय-पटल पर अंकित है। आप जिस विषय पर विचार प्रकट करते थे, उसको इस तरह से व्यक्त करते थे कि सारा-का-सारा वातावरण सजीव हो उठता था।

इसके पश्चात् उदयपुर से अजमेर तक पूज्य श्री स्वामी जी महाराज के सम्पर्क में रहकर मुझे सेवा करने का अवसर प्राप्त हुआ। स्वामी जी महाराज की सौम्यता तथा उनके दिव्य-प्रभापूर्ण जीवन से मुझे इस मानव जीवन के लिए जो उपदेश मिले हैं, उन्हें मैं कभी नहीं भूल सकता।

मैं इस नित्यस्मरणीय अवसर पर पूज्य श्री स्वामीजी महाराज को श्रद्धापूर्वक पुष्पांजलि अर्पित कर अपने को कृतार्थ मानता हूँ।

—श्री भैरवलाल भुनवालिया, दिव्य जीवन समिति शाखा, उदयपुर

वे हमारे लिए एक आदर्श हैं

पाश्चात्य विद्वान् श्री सोलन् ने कहा था कि मनुष्य की वास्तविक योग्यता का सही ज्ञान मृत्यु के बाद ही हो सकता है—यह जहाँ बहुतांश में सत्य है, वहाँ यह भी सत्य है कि मनुष्य के वर्तमान कार्य, व्यवहार, विचार, चरित्र एवं निष्ठा उसके भावी जीवन के द्योतक होते हैं। आज के विचार और कार्य कल के जीवन के स्वरूप को प्रकट करते हैं। इस कसौटी से श्री स्वामी सत्यानन्द जी का जीवन बहुत ही होनहार रहा है। अपने जीवन में अभी तक जो प्रगति वे कर पाये हैं, आगे चलकर वह अधिकाधिक प्रस्फुटित एवं विकसित होगी, इसमें संदेह नहीं है।

श्री स्वामी सत्यानन्द जी की त्याग वृत्ति, विद्वत्ता, सरलता एवं सौम्य स्वभाव के बारे में हमारे जामाता श्री अखिल विनय जी हमसे प्राय: चर्चा करते रहते हैं। वे उनकी सद्‌वृत्तियों से अत्यधिक प्रभावित हुए हैं। अत: उनके श्रेष्ठ गुणों की वे सदैव प्रशंसा करते रहते हैं। यद्यपि श्री स्वामी जी अपने जीवन के 31वें वर्ष में ही प्रवेश कर रहे हैं और उन्हें अभी बहुत कुछ करना है, तथापि उनकी कृतियों से परिश्रमशीलता, सच्चाई एवं विद्वत्ता झलकती है। उनके ग्रंथ 'चैतन्य ज्योति' एवं 'शिवानन्द दिग्विजय' इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। उनकी संस्कृतनिष्ठ शैली भावाभिव्यंजना ने किसे आकृष्ट न किया होगा। इन चार वर्षों से उनके सम्पादकत्व में 'योग वेदान्त' मासिक का प्रकाशन भी उनकी योग्यता पर यथोचित प्रकाश डालता है। उनकी श्रेष्ठ देन हिन्दी संसार में यह है कि वे अपने गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज के सद्‌ग्रंथों को हिन्दी में अनुवादित कर हिन्दी जगत् को उनके विचारों से अवगत करा रहे हैं।

अल्मोड़ा में प्रकृति का आह्लाद दृष्टिगोचर होता है। पर्वत की गोद में हरी-भरी उस भूमि में ही धर्मेन्द्र का जन्म हुआ, वह वहीं पला और वहीं बड़ा हुआ। इक्कीस वर्षीय उस युवक के मन में वैराग्य संपादित हुआ तथा वह शिवानन्द आश्रम में चला आया। ज्ञान और वैराग्य के प्रति तो उसकी निष्ठा थी ही, सतत् साधना ने उसमें और चार चाँद लगा दिए। नवयुवक संन्यासी सत्यानन्द आज कई बातों में हमारे लिए आदर्श बन गया है, जो अति प्रसन्नता की बात है। श्री स्वामी जी की जन्म कुण्डली में जो राज प्रव्रज्या योग है, वह प्रत्यक्ष दर्शित है।

हमारी शुभ कामना तथा शुभाशीर्वाद है कि श्री भगवती जी की कृपा से वे दिनोंदिन प्रगति करें और मानवता की सेवा करें। इस 82 वर्षीय ब्राह्मण की

शुभ कामना एवं हार्दिक आर्शीवाद है कि आज सन् 1954 का 26 अगस्त है, इसी भाँति सन् 2054 का 26 अगस्त श्री स्वामी सत्यानन्द जी के जीवन में आवे और दिग्दिगंत में अहर्निशि उनकी कीर्ति व्याप्त हो और वे जन समुदाय का कल्याण करते रहें।

–दैवज्ञ शिरोमणि, ज्योतिषाचार्य श्री गणेश दत्त शर्मा (सारस्वत), गदरवाड़ा

शिवानन्द साहित्य के महाभगीरथ

श्री स्वामी सत्यानन्द जी के हिन्दी अनुवादों ने ही पूज्य स्वामी शिवानन्द जी के दर्शन, कृपा और शिक्षा का लाभ जनसाधारण को दिया है। यदि ये हिंदी में अनुवाद न करते तो हम अंग्रेजी न जानने वाले श्री स्वामी शिवानन्द जी की शिक्षा और उनके दिव्य जीवन से अपरिचित ही रहते।

उनके ही जन्मदिन के शुभ अवसर पर प्रार्थना है कि वे पूज्य स्वामी जी की सभी पुस्तकों का अनुवाद हिन्दी में कर डालेंगे और हिन्दी के इस स्वर्णयुग में स्वामी शिवानन्द जी का नाम सर्वत्र फैलाने की कृपा करेंगे। आपकी हिन्दी सन्तानों पर महती कृपा है। हिन्दी उनका ऋण क्या कभी चुका सकेगी, जिन्होंने उसके कलेवर को शिवानन्द साहित्य के आभूषणों से सुसज्जित किया?

–श्रीमती ब्रह्मा देवी, बम्बई

पवित्रतानी प्रतिमूर्ति

स्वामी श्री सत्यानंद माटे तो हुंशुं लखुं? एमनां दर्शन करवा माटे आंखो तलसे। एमने सांभड़ता कान थाकेज नहीं। एमनां शब्दो तो एवा मीठां लागे के वरसों सुधी अन्तरमां रम्याज करे। आपणने एम थाय के आपणे एनी पासे बेसी रहिये।

सो वर्ष करतां पण बधारे वर्ष लोकोनी सेवा करवा प्रभु एमने अहिं राखे, एज प्रार्थना छे।

भाषा– गुजराती *–श्रीमती जयाबेन अध्वर्यू, पाटन*

आपका मार्ग श्रेष्ठ है

आपका मार्ग श्रेष्ठ है; क्योंकि उसमें आत्मा का विस्तार सम्भव है। यदि मेरी शुभकामनायें और मेरा स्नेह आपके साथ हो सकें तो वे युगों-युगों आपके साथ रहेंगे, यह निश्चित है।

श्री स्वामी जी की पुस्तकें प्राप्त हुईं। इस कृपा के लिए आपका आभारी हूँ। आशीर्वाद दीजिए कि उनका समुचित उपयोग भी कर सकूँ।

आशा है आपके सुरभित शब्दों की छाया में मुझे शान्ति अवश्य मिलेगी।

—श्री जगदीश चन्द्र जोशी, एम.ए., अल्मोड़ा

हार्दिक वन्दना

यह जानकर अत्यन्त हर्ष हुआ कि पूज्य श्री स्वामी सत्यानन्द जी की 31वीं वर्षग्रन्थि पर एक 'अभिनन्दन-ग्रन्थ' प्रकाशित किया जा रहा है। स्वामी जी ने योग और वेदान्त के हेतु लोक-कल्याणार्थ जिन कार्यों को आज तक किया है, उनकी प्रशंसा शब्दों में नहीं की जा सकती। मैं हार्दिक सफलता चाहता हूँ।

—डॉ. बालकृष्ण नागर, कल्प वृक्ष कार्यालय, उज्जैन

शिव-गंगाना महाभगीरथ

26मी ओगस्ट, सत्यानन्द स्वामीजी नी 31मी बरसगांठ नो दिन केवल आश्रमने माटे ज सुवर्ण-दिन ने महापर्व नथी परन्तु समस्त विश्व माटे छे। सत्यानन्द स्वामीजीए करेलां अनुपम, अद्भुत अने महान् कृत्योथी गुरुदेव स्वामी शिवानन्दजीनु नाम एमने उज्ज्वल कर्युंछे।

आश्रमना विध विध विभागोने आबाद बनावी, निरंतर रात-दिन तेमां नि:स्वार्थ भावे तनमनथी लगातार एमां ओतप्रोत बनी, निरासक्तिथी काम करो, प्रवृत्तिमां रातदिन रहेवा छतां पण सदाय ध्यानमग्न रहेनार, मानसिक समतुलन राखनार, सर्वनी साथे योग्य, अनुकूल अने समान भावे वर्ती सर्वेने प्रसन्न राखंनार, सत्यानंद स्वामीजी जेवा महान कर्मयोगीने कोण ने पूजे?

प्रेसमां मैनेजर तरीके महान निपुणता अने एकनिष्ठाथी सेवा करी जगतने स्वामीजीनी ज्ञानगंगानो अद्भुत लाभ आपता स्वा. सत्यानन्दजीनु ऋण शुं जगत कदापि पण चुकवी शकशे?

अनेक देशोमां जई स्वामी शिवानंदजी नो धर्म-संदेश जनतामां फेलावनार, अद्भुत वक्ता, ज्ञानी उपनिषद, गीता अने वेदमां प्रवीण, महान तत्त्वचिंतक स्वा. सत्यानंदजीने प्रभु दीर्घायु, आरोग्य अने सुख बक्षे। भगवान दिनप्रतिदिन एमना संतजीवनमां प्रगतिनुं पूर लावें।

आवां, कर्मयोगी, ज्ञानयोगी संतमहात्माना जन्मदिने एमने चाहतां, एमने पूजतां सर्व मित्रवर्ग एमनां सदगुण अपनावी सदगुण रूपी भेंट एमने न्यौछावर करे।

भाषा – गुजराती *–श्रीमती कलावती बी. मोतीवाला, बम्बई*

अभिनव शुक ब्रह्म

श्री स्वामी सत्यानन्द जी सरस्वती गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द महाराज के एक विद्वान् शिष्य हैं, जो अपने बाल्यकाल से ही मुनि शुकदेव के समान ज्ञानी हैं। उनका जन्म अल्मोड़ा में 26 अगस्त 1923 को हुआ। उनके माता-पिता आर्यसमाजी थे, किन्तु गीता पठन के भी पूर्ण समर्थक थे। इनकी शिक्षा अंग्रेजी स्कूल में हुई और साथ-साथ रामायण, महाभारत, बाइबिल तथा संस्कृत का सूक्ष्म अध्ययन आपने किया। गृहत्याग के पूर्व गीता आपको कंठस्थ थी और पूज्य महात्माओं और संतों का संपर्क आपको बड़ा लाभप्रद सिद्ध हुआ। आप विद्यार्थी जीवन में ही अध्ययनशील तथा कुशाग्र बुद्धि रहे हैं तथा साहित्य में विशेष अभिरुचि प्राप्त करने के साथ-साथ आप उच्च कोटि के कवि भी हैं।

संन्यास के हेतु उदयपुर, हरिद्वार, देहरादून और ऋषिकेश में स्वर्गाश्रम, कैलाशाश्रम होते हुए गुरुदेव के चरणों में सन् 1943 में आये। संन्यास लेने के हेतु उत्सुक होने के कारण गुरुदेव ने इन्हें आते ही शिष्य-शिक्षा दे दी और पुन: आश्रम में आपने मन्दिर-सेवा, बगीचे आदि में शारीरिक-सेवा-प्रधान कार्यों से लेकर साहित्यिक-सेवा, योग-वेदान्त पत्र का संपादन-कार्य आदि अत्यन्त कुशलता के साथ सम्पन्न किया। अभी आप आश्रम के हिन्दी विभाग के प्रमुख हैं तथा 'योग वेदान्त आरण्य विश्व विद्यालय' के प्रकाशन विभाग के सर्वेसर्वा हैं। आपकी लिखी हुई मूल पुस्तक 'चैतन्य ज्योति' है। पूज्य गुरुदेव के कई ग्रंथों का हिन्दी रूपान्तरण भी आपने किया है। 'शिवानन्द दिग्विजय' का संकलन भी आपके कर-कमलों से ही हुआ है।

–श्री महेशचन्द्र भट्ट, एम.ए. बी.एड., उदयपुर

शुभ कामना

आज 26 अगस्त के शुभ अवसर पर मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ स्वीकार करें। आपके कर्मठ और लोककल्याणपर जीवन में इस प्रकार के वसन्त सौ से अधिक बार आवें, यह हमारी कामना है।

–श्री लक्ष्मी शंकर व्यास, एम.ए., सहायक संपादक, आज, बनारस

हार्दिक वन्दना

बड़ी प्रसन्नता का विषय है कि पूज्य श्री स्वामी सत्यानन्द जी की जयन्ती मनाई जा रही है। मेरी हार्दिक वन्दना भी स्वीकार करें।

–श्री कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, सहारनपुर

मेरी प्रेरणा के स्त्रोत

स्वामी सत्यानन्द जी को मैंने समीप से देखने का सौभाग्य प्राप्त किया है। उनका शान्त, मुदित और क्रियाशील जीवन मुझे निरन्तर प्रेरणा देता रहा। आप इनका 'अभिनन्दन-ग्रन्थ' तैयार करके उनकी गुणावली को सर्व-साधारण तक पहुँचा देंगे–यह प्रसन्नता का विषय है।

–श्री रमेश बेदी, संपादक, गुरुकुल पत्रिका, गुरुकुल कांगड़ी

शुभ कामना

कृपया पूज्य श्री स्वामी सत्यानन्द जी की 31वीं वर्षगाँठ के शुभ अवसर पर हार्दिक बधाई स्वीकार कीजिए।

भगवान से प्रार्थना है कि वे पूज्य स्वामी जी को चिरायुष्य प्रदान करें और वे इसी प्रकार जन-कल्याण की भावना से ओत-प्रोत हो, मानव-कल्याण के लिए कार्य करते रहें।

–श्री देवेन्द्र विशारद, चरित्र निर्माण कार्यालय, ऋषिकेश

हजारों वर्षों तक जिएँ

आज स्वामी सत्यानन्द जी की 31वीं वर्षगांठ मनाई जा रही है। बड़ी धूमधाम से, बड़ी खुशियों से और एक बहुत बड़ी ताकत से–जो इस रूहानी आसमान को मुनव्वर करती हुई आगे बढ़ी जा रही है–एक ना खतम होने वाली हद तक, जिसका सिलसिला लामितनाही है–लाज़बाल है, कायिनात से परे है–उस पर वह ताकत बढ़ी जा रही है और उसे साथ-साथ रोशन करती भी। वह ताकत स्वामी शिवानन्द जी का वजूद है। कितनी बड़ी बात है यह कि स्वामी शिवानन्द जी खुद, जो इतनी बड़ी शक्ति के संचालक हैं, स्वामी सत्यानन्द जी के जन्म दिन पर हिस्सा ले रहे हैं–और दिल की गहराइयों से इनके जन्म दिन पर प्रसन्न हैं। इसी से ही स्वामी सत्यानन्द की शख्सीयत का पता चल सकता है कि मौसूफ अनगिनत खूबियों का मालिक है। आओ हम सब भी मिलकर इनके जन्म दिन में हिस्सा लें, और ईश्वर से प्रार्थना करें कि स्वामी सत्यानन्द जी हजारों वर्षों तक जियें ताकि आध्यात्मिक जनता उनसे फैजयाब होती रहे।

–श्री कमलाज जुगरानबी, नई दिल्ली

आज मंगल-याम, गा ले गीत मंगल-भारती

आज मानव की धरा पर देवता देते चरण,
आज धरणी अंक में विश्वेश का करती वरण,
आज भूला है दिवस भी, बावरी री शर्बरी,
कूज ले, जी खोल कर, तू कूज ले, कादम्बरी।

आज से तीस वर्ष पहले इस बालरवि की रश्मियों से अल्मोड़ा की धरती स्वर्णिम हुई, जिसका नाम था धर्मेन्द्र। सुसम्पन्न माता-पिता की सन्निधि में शैशव बीता और फिर तो पूर्व जन्म संस्कारों का बाँध टूटा और इस बालक ने अल्पकाल में ही भूत-भावी का परिज्ञान कर लिया। अल्मोड़ा की शस्य-श्यामला भूमि में विहरण करता हुआ यह बालक धर्मेन्द्र जीवन के चलचित्रों से विज्ञ होता जा रहा था। विद्यालय के शुष्क और अश्रेयस अध्यापन से भला वह पिपासा कैसे प्रशमित हो सकती थी? लौकिक ज्ञान से अनन्त ज्ञान का ज्ञान कैसे हो सकता था? भूमिनाग पर धरणी का भार कैसे रखा जा सकता था? विपिन प्रान्तरों की हरितामयी पादपावलियाँ, उत्तुंग शैलशृंग की शुचि शोभा,

मलयानिल का श्रान्त संचरण और पार्वत्य विलक्षण सुषमाओं का पुटपान करता हुआ वह शैशवता का अतिक्रमण कर युवावस्था में पदार्पण कर चुका।

अल्मोड़ा की धरती साहित्यकारों की जननी है। उत्तराखण्ड का यह भू-भाग तीर्थों का अधिष्ठान है, जहाँ नयनों को सौंदर्य का वरदान मिलता है, क्लान्त पंथी को अद्भुत विश्रान्ति मिलती है और शुष्क हृदय को कविता का उपकरण। हमारे कलाकार धर्मेन्द्रसिंह नयाल ने वहीं कला का मर्म सीखा। उषा के अरुणाभ और संध्या की मरकत मधु-प्याली ने इन्हें कविता का वरदान दिया। कवि ने क्षत-विक्षत तुहिन शय्या पर जीवन की क्षणभंगुरता का, प्रात:किरण के साथ विहगावलियों के कलगायन में अज्ञात आह्वान का और विटपावलियों के 'सर् सर्' में मार्मिक अनुभूति का आभास पाया। कल्पना की बाढ़ में कवि ने एक कल्पित नाम रख लिया 'पल्लव' अर्थात् धर्मेन्द्र सिंह नयाल 'पल्लव'—पल्लव की कविता पल्लवित हो चली थी और प्रतिभा के शिशिर शीत-समीरण में से परिरंभित होकर वातावरण में उल्लास का सर्जन कर रही थी। अल्मोड़ा का कवि प्रकृति का ही उपासक होता है। उदाहरण में पंत जी को ही रख लें, और आप फिर परम्परा से विशृंखलित क्यों होते? प्रकृति में जीवन का बिम्ब देखना ही कविता का तत्त्व रहा। पर इतना ही नहीं, वह इस अन्वेषक की ओर भी प्रतिलक्षित होता गया कि क्या प्रकृति के परे भी कोई सत्तात्मक विभूति है अथवा प्रकृति ही एकमात्र अधिष्ठात्री है। इस उधेड़बुन में कविता के कुसुम-कोमल-कुन्तलों का शृंगार विशृंखलित हो चला था और कवि की मनसा उस अन्तर, एक अद्वैत और सनातन की उपलब्धि करने की हुई, जिसके परिज्ञान के उपरान्त कोई ज्ञातव्य शेष नहीं रह जाता।

और इधर तपश्चर्या की वन-वह्नि से निकल कर स्वामी शिवानन्द ने अध्यात्मवाद और ईश्वरवाद का तूर्यनाद किया। शून्यवाद के पंक से लथपथ मानव को आदि-सभ्यता, संस्कृति और योग के समीचीन तत्त्वों का परिदर्शन कराना प्रारम्भ किया। एक ओर से मिथ्या मोह, ममता और माया का अभेद्य कवच तोड़ कर स्वामी जी के प्रति हृदय में सत्य, प्रेम, समता और ज्ञान का समावेश कराना आरम्भ किया। कालनिद्रा से जाग-जाग कर मानव स्वामी जी के चरणारविन्द-मकरन्द का आस्वादन करता और आत्मविभोर होता जाता था। 'तत्त्वमसि' आदि के अटूट सिद्धान्तों से जब स्वामी जी हमें घन-गर्जन की प्रेरणा देते हुए कहते कि हम मृगशावक नहीं, वास्तव में वनकान्त-केसरी

हैं तो इसी दुर्द्धष नाद का एक शब्द, इसी स्पंदन की एक लघु लहर और इसी आवाहन का एक दारुण स्वर उस मुमुक्षु युवक के कर्णपुट पर रेंग गया। संदेश बोधगम्य था, जिसका भावार्थ था–कि तुम जिसे सलिलालय समझते हो, वह मृगमरीचिका है; तुम जिसे सुखदायिनी संसार समझते हो, वह क्लेशकर विकट बन्धन है और तुम जिन्हें माता, पुत्र और प्रेयसी समझते हो, वे सहज ही मिट्‌टी के पुतले हैं...एक बार उन्मीलित आँखों से विश्व को स्वप्नवत् देखा और उन्निद्रित, उत्फुल्लित और उमंगित होकर अनजान दिशा की ओर प्रयाण कर दिया। बुद्धदेव की कथा का प्रतिस्मरण करता, भर्तृहरि के जीवन-यात्रा पथ पर, 'अवधूत गीता' के चरणों को गाता–पूर्णयौवनावस्थाऽवस्थित तेजोराशि युवक उस असंग, अतीन्द्रिय, चिदानन्द, चिन्मय, कैवल्य और कूटस्थ की मनोवांछा से चल पड़ा–जिसकी जिज्ञासा कोटिश: मानवों में से एक को और प्राप्ति वैसे कोटिश: में से एक को होती है।

सन् 1943 के शरद्काल में, जैसे किसी दीर्घवाहिनी सरिता में एक छोटी निर्झरणी आ मिली, हमारे पल्लव जी स्वामी जी के चरणों में आकर नतमस्तक हुए। स्वामी जी के प्रगाढ़ आलिंगन से जीवन सार्थक हो गया। नरेन्द्र को देखकर जितनी प्रसन्नता श्री रामकृष्ण को हुई थी, उतनी ही प्रसन्नता धर्मेन्द्र को देखकर स्वामी जी को हुई। पल्लव जी के अलौकिक व्यक्तित्व को देखकर स्वामी जी ने अनुमान कर लिया कि वे अपने दिव्य अध्यात्म सन्देश को विश्व के हृदय-प्रदेश तक पहुँचाने के लिए एक देवदूत पा चुके हैं। जिस प्रकार राजेन्द्र प्रसाद को महात्मा गांधी ने अपना अंग कहा था, उसी प्रकार स्वामी जी ने 'पल्लव' को अपने शिष्य-समुदाय में सर्वोच्च आसनासीन किया। कृष्ण और अर्जुन अथवा नर और नारायण की उपमा भी अतिशयोक्ति नहीं प्रतीत होती, जब कि पल्लव जी के अमानुषीय कार्यकलाप का चिन्तन करते हैं। उनके हृदय में पूर्वार्जित सुसंस्कारों का स्त्रोत सीमा तोड़ चला था और तभी तो युवक-कवि के दो-तीन मास व्यतीत भी नहीं हुए थे कि महाशिवरात्रि के अवसर पर स्वामी जी के पुनीत कर-कमलों द्वारा ब्रह्मचर्याश्रम में दीक्षित हुए और पुनर्नामकरण हुआ 'ब्रह्मचारी सत्य चैतन्य'। यावज्जीवन ब्रह्मचर्य का कुलिष व्रत लेकर सत्य चैतन्य ने सत्यनिष्ठा को अंगीकार किया। 22 वर्ष की तरुणावस्था में, जब कि संसारी युवक या तो किसी प्रेमिका के पीछे प्रमत्त रहते हैं या टी.बी. की औषधियों का विज्ञापन ढूँढा करते हैं, हमारे सत्य चैतन्य ने लौहमयी काया पायी और अपूर्व बल और पौरुष का आदर्श

प्रकट किया। हठयोग की विविध क्रियाओं में परिनिष्णात सिद्ध हुए। लगन थी और विद्वत्ता भी। दोनों के सामंजस्य से आप दिनभर योगपाठों के मनन, अनुशीलन और सक्रिय अभ्यास में परायण रहते। आश्रम में ही 'सत्यम्' की मर्यादा परिमित नहीं थी, अपितु उन्होंने अपनी कला का जीवन्त प्रमाण अपने व्याख्यानों द्वारा समीपवर्ती बन्धु-बान्धवों को दिया और जिससे सबके सब अत्यन्त लाभान्वित हुए। आश्रम में तमिल-भाषाभाषियों का भी आधिक्य था। श्री सत्य चैतन्य ने सबकी जिह्वा को हिन्दी का वरदान दिया और स्वयं भी उन सबों की भाषा पर पाण्डित्य प्राप्त किया। वे तो अपना सर्वस्व गुरु के ही चरणों में अर्पण कर चुके थे। केवल यंत्रवत् उनकी आज्ञा का पालन करना ही शेष रह गया था।

यहाँ आते ही आपने गुरुदेव का बृहद् और एक प्राकृत मानचित्र खींचना चाहा, जो सर्वप्रथम अप्रतिम, अतुल और अद्‌भुत हो। अभिनव और अभिराम ग्रन्थरत्न 'चैतन्य ज्योति' उसी अभिलाषा का मूर्त रूप है, जिसे औपन्यासिक अभिव्यंजना से आपने अभिनीत किया है। इस ग्रन्थ के निर्माण के लिये कहना नहीं होगा कि आपने स्वामी जी के अनेकानेक अनुसंधान किए। अगणित पुस्तकें छान डालीं और निर्देश के लिए व्यक्ति-व्यक्ति से पूछताछ की। पाठक जानते ही होंगे कि ग्रन्थकार की भाषाशैली कैसी अभिवन्दनीय है। लेखक अनुप्रास और उपसर्ग के पीछे पागल है। छायावाद और रहस्यवाद से आपने यद्यपि ग्रन्थ को रिक्त कर प्रगतिवाद और वास्तविकता की कसौटी पर उतारने का प्रयास किया था तो भी उसकी झाँकी कदाचित् आ ही जाती है। जो भी हो, प्रकृति के पलने पर झूलने वाला कवि बहकती कल्पनाओं का पराभव कर ठोस अध्यात्मवाद को अपना ले, यह भी एक पहेली है।

श्री सत्य चैतन्य स्वामी जी के उन अंतरंग शिष्यों में से थे, जिन पर स्वामी जी उत्कट स्नेह, आन्तरिक विश्वास और अक्षय प्रीति रखते थे। 12 सितम्बर सन् 1947 की पुण्य-तिथि को श्री स्वामी जी ने आपको साधना-पथ का एक उत्तमाधिकारी बनाया। अध्यात्म के सर्वोच्च शिखर पर समासीन करते हुए स्वामी जी ने सत्य चैतन्य को संन्यास की दीक्षा दी और नूतन नामकरण हुआ–'स्वामी सत्यानन्द सरस्वती'। आज इस परमहंस संन्यास की सुगम सुकृति का श्री-गणेश कर 'स्वामी जी' चतुर्थ-आश्रम में उपविष्ट हुए। उसी दिन महर्षि की 'हीरक जयन्ती' का पुण्यपर्व भी था, जिसके उत्सव से आनन्द कुटीर के आँगन में आनन्द सदेह विराजमान था। दो हर्ष एक ही साथ आ

मिले। यह संगम भी चिरस्मरणीय रहेगा। इस शुभ मुहुर्त्त से स्वामी जी विगत जीवन का विस्मरण कर चुके और अपने गुरुदेव के परम पावन आदेशों-उपदेशों को दैनिक आचार-विचार में घटित करते हुए उस परा-वैभव की सदिच्छा से सम्पन्न हुए, जिसका उफान उनके अन्तस्सागर में बाल्यकाल से ही प्रादुर्भूत था। स्वामी सत्यानन्द जी के शील, सौजन्य और शौर्य से प्रभावित होकर स्वामी जी ने उनको 'योग वेदान्त आरण्य विश्वविद्यालय' की ओर से क्रमश: दो उपाधियाँ प्रदान कीं—'अध्यात्मरत्न' और 'प्रवचन-प्रवीण' जिसके आप वास्तव में अधिकारी थे।

सन् 1948 में जब 'योग वेदान्त आरण्य विश्वविद्यालय' का जन्म हुआ तब आप हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष हुए और अपनी महती योग्यता से अपने तरुण स्कंधों पर कार्यभार संभाला। अभी भी यह कार्यवाही आपके ही कर-कमलों द्वारा परिचालित है। आपने श्री स्वामी जी के साथ हिमालय से सिंहल द्वीप-पर्यन्त यात्रा की और श्री स्वामी जी के प्रवचनों को लेखनीबद्ध किया।

आज भगवन्नाम के सदृश स्वामी शिवानन्द जी का नाम आबाल-वृद्ध के अधरों पर है और स्वामी जी के नाम के सदृश स्वामी सत्यानन्द जी की श्लाघा उनके परिचित पाठकों के उर-अन्तर में। 'शिवानन्द दिग्विजय' सदृश महाग्रन्थ के लेखन का उत्तरदायित्व एक ऐसे ही अनातुर, आत्मसंयमी और सुधीर लेखक ही वहन कर सकते हैं।

आध्यात्मिक दृष्टिकोण से उनकी रचनाओं की महत्ता उतनी ही है, जितनी प्राचीन पुराणों और शास्त्रों की; क्योंकि उनकी ही वाणी का यह सरल और सुपाठ्य रूप है। संस्कृत वाङ्मय, पौराणिक भाषा का माधुर्य, काव्यमयी धाराप्रवाह वाणी का लालित्य तथा अनुच्छेदों-उद्धरणों का एक बृहद्-कोष सब एक ही ग्रन्थ में पा लेते हैं। साथ ही स्वामी जी के सद्वचनों का एक सारपूर्ण संग्रह—जो उनकी दो सौ पुस्तकों का एक लघु चयन है; फिर अध्यात्म के गहनतम और गूढ़तम शंकाओं का सरल समुचित समाधान। इसके अतिरिक्त स्वामी जी द्वारा लिखित उनका दुर्लभ संदेश। इससे अधिक और क्या अपेक्षित है। दिव्य जीवन के कर्णधार एक यशस्वी लेखक द्वारा प्रणीत यह ग्रन्थ स्वाध्याय की वस्तु है। 'योग वेदान्त' के पाठक और 'शिवानन्द साहित्य' के प्रेमी तो अपने स्वामी जी को पहचानते ही होंगे, जिनके अनवरत परिश्रम के उपरान्त ही वे स्वामी जी के सदुपदेशों को घर बैठे पा रहे हैं। हिन्दी की कई पुस्तकों को मूल से भाष्य करने का श्रेय भी इन्हीं महापुरुष को है।

'दिव्य जीवन मंडल' के सिद्धपीठ का यह पथ-प्रदर्शक हमें चिरन्तन प्रकाश में लाये। हिन्दी-राष्ट्र की सन्तान होने के कारण हिन्दी-सेवा का व्रत निभाये और युग-युग जीवे!

आज कर लें कोटि-कोटि समूह यह अभ्यर्थना,
अर्चना आराधना नीराजना पदवन्दना
स्नेह की बेला मधुर यह हो न शान्त-प्रशान्त भी
कोटि-कोटि युगान्त में, कल्पान्त के उपरान्त भी

–श्री स्वामी रामानंद सरस्वती, उत्तरकाशी

दिव्य विभूति – स्वामी सत्यानन्द

मुझे आश्रम में श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती तथा श्री स्वामी शिवानन्द-कृष्णानन्द सरस्वती का सब से अधिक सम्पर्क प्राप्त करने का सुअवसर मिला है। दोनों के विशाल तेजस्वी व्यक्तित्व ने मुझे प्रथम दर्शन में ही अवर्णनीय प्रभावित किया; अब इनके प्रतिदिन के सुसंस्कृत, सुशील तथा विनम्र व्यवहार से यह धारणा और भी दृढ़तर हो गई है कि इतनी छोटी-सी आयु में ही इन्होंने एक असाध्य देवत्व प्राप्त कर लिया है।

आज पूज्य श्री स्वामी सत्यानन्द जी की 31वीं शुभ जयन्ती पर श्रद्धांजलि भेंट करने में अपने आपको अति भाग्यवती समझती हूँ; किन्तु फिर भी इनकी महानता के सम्मुख अपनी लेखनी का बोध हृदय में संकोच-सा भर देता है।

स्वामी जी में सभी दैवी गुण चमक-चमक कर अपनी सत्ता दिखला रहे हैं और दर्शक को अनायास ही अपनी ओर आकृष्ट कर लेते हैं। इनके विशाल क्रांतिद्रष्टा नेत्र इनकी अद्भुत सर्वतोमुखी प्रतिभा और विस्तृत दृष्टिकोण के द्योतक हैं; इनका गंभीर, शांत मुखारविन्द इनकी आत्मिक, शारीरिक तथा मानसिक बुद्धि और विकास का प्रतीक है; फुर्तीली और तेजयुक्त गति इनकी कार्य-कुशलता और कार्य-दक्षता की परिचायक है।

इनका गहन, गम्भीर अध्ययन इनके प्रत्येक वार्तालाप में झलकता है। यह वेद, शास्त्र, स्तोत्र, गीता और उपनिषदों आदि के सुविख्यात ज्ञाता हैं और इतने आत्म-विश्वास से संभाषण करते हैं कि श्रोताओं को मंत्रमुग्ध-सा कर देते हैं। इनके विचार मौलिक तथा बुद्धि-सुमज्जित, कुशाग्र और अति

परिपक्व हैं; प्रत्येक आचरण में नवीनता, सत्यता और मौलिकता का अनोखा सम्मिश्रण दर्शाते हैं। उच्च कोटि के वक्ता हैं जो वार्त्तालाप के विषय को इतना स्पष्ट और सुगम बना देते हैं कि हम स्वयं अपनी बुद्धि क्षमता पर चकित होने में बाध्य-से हो जाते हैं।

इनकी सर्वतोमुखी प्रतिभा और सर्वगुण-सम्पन्नता का परिचय न केवल इनके वार्तालाप और सहवास में ही मिलता है; बल्कि इनकी लेखनी की मर्यादा तो असीमित-सी ज्ञात होती है। ये हिन्दी, उर्दू, संस्कृत, तमिल, गुजराती और पहाड़ी आदि अनेक भाषाओं के विज्ञाता हैं। प्रत्येक भाषा अत्यन्त सहज और सुचारू रूप से प्रयोग करते हैं। इनका प्रत्येक लेख अत्यन्त कुशाग्र बुद्धि, विचक्षण अन्तर्दृष्टि, सरस्वती की निरन्तर साधना और भगवद्-कृपा का साक्षात् प्रसाद-रूप है; जिसका अमृतपान पाठक को केवल प्रभावित ही नहीं करता, बल्कि उस पर आचरण कर अपने आप को उन्नत और विकसित करने का मूक-संदेश सा देता हुआ प्रतीत होता है। 'योग वेदान्त आरण्य विश्वविद्यालय' के हिन्दी-संस्कृत विभाग के अध्यक्ष और 'योग वेदान्त' पत्रिका के प्रमुख सम्पादक होने के कारण परम गुरु श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती जी के प्रत्येक वाक्य और आचरण को लेखनीबद्ध करने का, इससे तथा अपने मौलिक और नवीनतम सत्य आदर्शों द्वारा सुषुप्त जनता में जागृति संचार करने का श्रेय इन्हीं को है। पुस्तकें, लेख, नाटक और कविताएँ इन्होंने असंख्य लिखी हैं, जिनमें 'चैतन्य ज्योति' और 'शिवानन्द दिग्विजय' विशेषतया उल्लेखनीय हैं। पाठक इन पुस्तकों का अमृतपान कर स्वयं इनकी महान् विद्वत्ता और प्रतिभा का अनुमान लगा सकते हैं। इन पुस्तकों की समग्र सामग्री, सुन्दरतम भावनाएँ, विलक्षण शब्द-चयन और भाषा का अनवरत प्रवाह अनोखा और अनुपमेय है।

इनकी अटल गुरु-भक्ति इनके निजी सद्गुणों को द्विगुणित दिव्य बना रही है। गुरु-गुणगान में तो आत्म-विभोर से हो जाते हैं। गुरु की आज्ञा के पालन में ही इनका सर्व आनन्द निहित है। गुरु जी की इच्छानुसार इन्होंने आश्रम के प्राय: सभी विभागों में पूर्ण दक्षता और कार्यतत्परता दिखलाई और आज भी 'योग वेदान्त कार्यालय' का कार्य जिस लगन, भावना, कर्मनिष्ठा और निपुणता से कर रहे हैं, वह इनके एक उच्चकोटि के अधिकारी होने की साक्षी देता है और ऐसे सर्वगुणसम्पन्न संन्यासी की ओर मस्तक स्वत: ही झुक जाता है।

इनमें प्राचीन भारतीय कला और संस्कृति के प्रति अगाध और अटूट श्रद्धा है। ये उच्चकोटि के वैज्ञानिक और संगीतज्ञ भी हैं। इन्होंने केवल आत्मिक और मानसिक विकास ही नहीं किया, बल्कि शारीरिक विकास में भी आश्चर्यजनक प्रगतिशील रहे हैं। इनके शरीर का हल्का-फुल्कापन और उत्तम स्वास्थ्य, योग-आसनों में सिद्धहस्त होने की ओर इंगित करता है। तैराक तो प्रथम श्रेणी के हैं। 13-15 मील तक एक ही हाथ से तैरना तो इनके बाएँ हाथ का खेल है।

हठयोग, राजयोग, ज्ञानयोग और कर्मयोग के पूर्ण ज्ञाता होते हुए भी कर्मयोग में सबसे अधिक श्रद्धा रखते हैं। इनका कथन है, 'कर्म से आत्मा शुद्ध होती है' और 'कर्म ही तो मेरा जीवन है।' जहाँ भी हों, काम पूर्ण लगन से करते हैं। अनथक परिश्रमी हैं। इन्हें दूसरों से काम लेने की कला का भी सुन्दर ज्ञान प्राप्त है। मैंने तो इन्हें कभी आराम करते नहीं देखा। शायद काम ही इनका विश्राम है।

इनके विचार से हमारे भारत के पतन का मुख्य कारण लोकधर्म को अन्ध परम्पराबद्ध करना है और जब तक निरर्थक रूढ़ियों का गला काट कर भौतिकता तथा अज्ञान से छुटकारा नहीं पाया जाता, तब तक विकास तो क्या, रत्ती भर उन्नति की आशा करना भी व्यर्थ है। इन्हीं के शब्दों में 'वास्तविक धर्म मनुष्य को पूर्ण आत्म-अनुशासन में ढाल देता है। ऐसा मनुष्य किसी भी बाह्य शक्ति पर निर्भर नहीं रहता। वह तो अन्तर्मुखी होकर अपने दुर्गुणों का नाश कर और सद्‌गुणों को विकसित कर पीड़ित जनता की सेवा में अनवरत तत्पर रहकर परम सिद्धि की ओर अग्रसर होता है!' कैसा सुन्दर अर्थ समझाया है धर्म का। आज कराहती और भटकती जनता को ऐसे ही धर्म की आवश्यकता है।

किन-किन गुणों का वर्णन किया जाये। भगवान जाने इन्होंने कैसे इतने अल्प समय में इतने सुन्दर गुणों का समावेश कर लिया। सहृदयता, त्याग, उदारता, सत्य, प्रेम, स्नेह, बाल-सुलभ भोलापन, विनम्रता, गंभीरता और दूरदर्शिता इनमें कूट-कूट कर भरे हुए हैं। वास्तव में इनके आदर्श और सिद्धान्त अनुकरणीय हैं।

धन्य है वह माँ, जिसकी कोख से इस पुत्र-रत्न ने जन्म लिया! धन्य है वह मातृभूमि, जहाँ इनके संस्कारों और विचारों का पालन हुआ और धन्य है वह महान् गुरु! जिन्होंने इस सत्य स्वरूप को पहचाना और इन्हीं के चुने हुए

मार्ग में प्रगतिशील होने को उत्साहित किया और धन्य है यह युवा संन्यासी, जिन्होंने अपनी उज्ज्वल आत्मा के प्रकाश से अनेकों को सत्यपथ दिखलाया, अनेकों को दिखा रहे हैं और भगवान इन्हें इतनी क्षमता दें कि ये विश्व को इस जटिल-तिमिर से निकाल सतत् अमर प्रकाश के दर्शन करावें!

ऐसे सत्यस्वरूप को हमारा कोटिशः प्रणाम!

–कुमारी मालती चंडोक, एम.ए., अमृतसर

जीवन-साधना के साकार प्रतीक

रात्रि के निबिड़ अंधकार को चीरता पौष का तीखा पवन पर्वत-शृंग से उतर तरु-पत्रों के अंक में सिहरन उत्पन्न कर गंगा के कछार की ओर भाग रहा था। टप्-टप् कर तरुओं से वृष्टि-बूँद टपक एक विचित्र प्रवाह में अपना सारहीन अस्तित्व अंकित करने की विफल चेष्टा कर रहे थे। संभवत: वर्षा समाप्त हुए अभी अधिक समय नहीं हुआ था। हिमालय के अंक में उपस्थित इस आश्रम के अंक में समाई ठिठुरन का अनुभव बहुत कुछ मैं प्राप्त कर चुकी थी। कम्बलों की लिपटन में सिमटी धीरे-धीरे यहाँ के अद्भुत जीवन पर विचारण करने लगी। शीत की सिहरन में कठिनाई से अगोरी नींद उठ कर चली गई थी। कुटिया की भीति पर निर्मित खिड़की के कपाट खोल मैंने बाहर उझक कर देखा। चहुँ ओर घनीभूत अंधकार था। संध्या की बेला में कजरारे मेघों की पृष्ठ-भूमि में जिन विशाल तरु-वृन्तों ने मन्थर गति से झूम-झूम कर एक अद्भुत सौन्दर्य की सृष्टि कर डाली थी, उस समय चित्रपट पर बिखरी काली स्याही के धब्बे के अनुरूप प्रतीत हो रहे थे। उनकी ऊँचाई, खड्डों की गहराई और दूर दृष्टिगत गंगा के धीर वक्ष की सीमा केवल पवन की हहर-हहर से परिव्याप्त थी। एक विचित्र आकर्षक विभीषिका फैली हुई थी।

मन के भीत भाव की अपेक्षा कर धीरे से द्वार खोल मैं बाहर आई। इतने बड़े आश्रम का संसार संपूर्ण दिवस के कर्म के श्रम को विश्रांति के अंक में डाल लीन था। कुछ नीचे ढाल की एक कुटिया से प्रकाश झाँक रहा था। पवन के झकोरे के साथ तानपूरे के तार झनझना उठे। मैंने अनुमान लगा लिया कि संगीत-साधक अपनी साधना में लीन होंगे। एक-दूसरा झकोरा एक ताल में तरंगित खटा-खट के शब्द को समेटे भाग रहा था। कितने ही झकोरों के साथ पुन: बारंबार वही ताल-ध्वनि सुनाई पड़ने लगी। उत्सुकतावश उसी दिशा की

ओर मैं बढ़ी। कुछ सीढ़ियों को पार कर ऊपर पहुँची। भजन हाल के सम्मुख प्रकाशपुंज झिंझरियों की चादर से बाहर बिखर रहा था। मैं समझ गई, यहाँ छपाई का कार्य चल रहा है। कार्य की इस अविराम गति के मध्य किसी प्रकार का व्यवधान उत्पन्न कर देने के भय से मैं बाहर से ही कार्य-शृंखला देखने लगी। तापसी और वैरागी जीवन-धारा के प्रवाह में यंत्रयुग की यह स्थापना निश्चय ही कौतुकीय थी।

सहसा खट् से द्वार खुला और एक शांत सौम्य मूर्ति ने मुझे अंदर आने का आमंत्रण दिया। मन-ही-मन मुझे ग्लानि हुई कि संभवत: मैंने यहाँ आकर इनके कार्य में विघ्न उपस्थित किया है। फिर भी मैं अंदर चली गई। तेजस्वी तपश्चर्या के ताप से निखरी दुर्बल युवा मूर्ति और उनके मुख की गम्भीरता निश्चय ही उनके प्रति जिज्ञासा जागृत कर रही थी। उनके छोटे कमरे के चारों ओर छपी हुई नवीन पुस्तकों के ढेर लगे हुए थे। मेज पर कितने ही कागज-पत्र, फोटोग्राफ, छोटे-बड़े पत्रों की कटिंग्स पेपरवेट के नीचे रखी हुई थी। बीच में उपनिषद् ग्रन्थ खुला हुआ था। रात्रि के द्वितीय प्रहर में इतने सब कार्यों के बीच उपनिषद् के गम्भीर पृष्ठों ने मुझे उनका सब कुछ परिचय दे डाला। संसार के विविध ऐश्वर्यों की गोद में पालन-पोषण होने के उपरान्त भी जिस प्रकार वे अपने मन के एकान्त में अपनी साधना के अनुराग में वैरागी की भांति जीवन व्यतीत करते रहे हैं, उसी प्रकार इतने कार्यों के मध्य अपने उपनिषद्-अनुराग को स्थिर रख उसकी गहनता में लीन हो पाते हैं। उनका जीवन वास्तव में साधना का साकार प्रतीक है। गेरुआ वस्त्रों के कर्मनिष्ठ वैराग्य का मूल्य उन्होंने भली प्रकार समझा है।

ब्रिटिश शासनकाल के पुलिस कर्मचारी पिता के घर में जन्म लेकर अतीव प्यार-दुलार एवं अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त कर भी वे शृंग पर विरमते मेघ की भाँति सरल और स्वतंत्र रहे हैं। उन्होंने अल्मोड़ा के शीतल सौंदर्य के तुहिनकणों से आवेष्ठित पर्वतखंडों से स्वाभाविक शीतलता और शांति, निर्जन निकुंज में अविराम गति से प्रवाहित निर्झरों से गति और प्रवाह, पर्वतों के वक्ष पर मिट्टी के पाथेय की शून्यता में भी स्थिर खड़े हो अपने को विशाल बनाने की क्षमता से दृढ़ता और उनके किसलयों पर बिखरी उषा और संध्या की अरुणाई एवं विहगावलियों के कलगायन के सौंदर्य से अभिभूत हो अनंत के प्रति अनुराग की अनुभूति प्राप्त की। अल्मोड़ा के प्रांगण का जन्म इनके जीवन में विभूति बन बिखर उठा। प्रकृति-निदर्शना की अनुभूति से बालक धर्मेन्द्र कवि पल्लव

बन गया और कविता की कमनीयता की चरमता ने अज्ञात का आह्वान कर उसे जगत् से दूर देवालय के द्वार पर पहुँचा दिया।

सन् 1943 के शरद् काल की वह बेला अभूतपूर्व थी, जब सांसारिक परिमित गृहसीमा का परित्याग कर वे एक विराट् गृह की खोज में चल पड़े थे। युग-युगान्तर के संस्कार आज प्रबल हो उनका पथप्रदर्शन कर रहे थे। योग और वैराग्य की कामना किसी एक जन्म की उपलब्धि नहीं। मोक्ष-फल-फलित इस वैराग्य-वृक्ष के बीज कितने ही जन्मों में अंकुरित हो फलते-फूलते हैं। अध्यात्म की प्रबल प्रवेगमयी भावना इनके अन्तर में निश्चय ही चिरंतन थी। कहते हैं जब पर्वत का वक्ष तोड़ प्रवाह को धारण कर वेगवती सरिता निकल पड़ती है, तो कहीं-न-कहीं उसे सागर का कूल मिल ही जाता है, जहाँ की अनंतता में वह अपने समस्त आवेग-प्रवेग का विसर्जन कर लीन हो जाती है। 20 वर्षीय युवक भी एक दिन आनन्द कुटीर के द्वार पर आ पहुँचा! ज्ञान की किरणें बिखेरने वाले गुरु ने विस्मित हो युवक के अन्तरतम तक निहार लिया। 1945 में ब्रह्मचर्य की दीक्षा से दीक्षित कर उन्होंने उसे अपने विराट् परिवार में सम्मिलित कर लिया। भाषा और ज्ञान का अनुरागी युवक शीघ्र ही शास्त्र-ज्ञानार्जन में दत्तचित्त हो गया। आत्मसंस्करण, सेवा, ज्ञान आदि विविध सोपानों को पार कर 12 सितम्बर, 1947 को 'परमहंस संन्यास' की दीक्षा पा स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के नाम से अलंकृत हुआ। 'सत्य', 'आनन्द' और 'ज्ञान' के संयोजित आभरण से विभूषित कर गुरु ने साधक के सच्चे स्वरूप को सबके सम्मुख ला दिया।

आश्रम-जीवन में सत्यानन्द जी के अनेकों कार्यक्षेत्र रहे हैं। गुरु और जन-सेवा के साधारण-से-साधारण कार्य, लेखन, पाठन, पठन, भजन, संकीर्तन और कठिन साधना—सभी वे समभाव से पूर्ण करते रहे हैं। आश्रम में कई तमिल-तेलगू-भाषाभाषी साधक भी हैं। उन्हें हिन्दी भाषा से परिचित करा उन्हें उत्तर दिशा के अधिक समीप लाने का श्रेय एकमात्र इन्हीं को है। अपने गुरु के आदेशों और आदर्शों को जनता के सम्मुख रख उनके कर्म को स्पष्ट करना भी इनका कार्य रहा है। उनकी कितनी ही पुस्तकों का हिन्दी में अनुवाद कर ये उन्हें साधारण जनता के सम्मुख रख उनके कर्म को स्पष्ट करना भी इनका कार्य रहा है। योग वेदान्त आरण्य विश्वविद्यालय की स्थापना में सहयोग देकर वहाँ की पुस्तकों के प्रकाशन-कार्य आदि की देखभाल इन्होंने सदैव की। आरण्य विश्वविद्यालय प्रेस की संस्थापना के बाद तो वे इसके सर्वेसर्वा हो गये। तब से यही उनकी दिवस-रात्रि की साधना का स्थल इनके गुरु-मंत्र का

परम पाथेय रहा है। निरन्तर कर्म में लीन—किन्तु कर्मजाल से परे बाल्यावस्था में शृंगों पर विरमते मेघों की भाँति आज भी वे निर्लिप्त हैं।

उस रात्रि जन-जीवन और जगत् पर विविध प्रकार की वार्त्ता होती रही। जीवन और धर्म के प्रति उनके स्वतंत्र विचार जान कर परम संतोष हुआ। संसार के प्रति उदासीनता होते हुए भी जीवन के प्रति अनुराग और उसकी उत्तरोत्तर वृद्धि के कारण प्रत्येक क्षण को अगोरने के आग्रह की भावना उन्हें केवल संन्यासी कह कर चल देने वाली नहीं। किसी भी क्षेत्र में हो, कर्म मान्य है, जीवन मान्य है, और जीवन देने वाले के प्रति श्रद्धा व भक्ति मान्य है—यही जैसे उनका सौजन्य व्यक्त करता हो!

उनके जन्मदिवस के शुभ अवसर पर हमारी सतत् कामना है कि वे दीर्घजीवी हों, अपने महागुरु की दीक्षा के महामंत्र की आभा से समस्त विश्व को उद्भाषित करें।

—कुमारी माधुरी निगम, एम.ए., कलकत्ता

हमारे युग के मुनि शुकदेव

जब से स्वामी सत्यानन्द सरस्वती जी महामण्डलेश्वर स्वामी शिवानन्द जी महाराज के आश्रम में पधारे हैं, तभी से इस सेवक का परिचय उनसे है। आश्रम की भी जो सेवा इनको दी गई है, इन्होंने रात-दिन एक करके उस कार्य को ऊँचे शिखर पर पहुँचा दिया है। अपने स्वास्थ्य का भी तनिक ध्यान नहीं किया, मगर अपने कार्य की लगन को हर समय सामने रखा और उस कार्य को सफल करके ही छोड़ा। जब कभी वे किसी विषय की व्याख्या करते हैं तो सारी सभा उनके भाषण पर मुग्ध हो जाती है। मुनि शुकदेव जी ने राजा परीक्षित को श्रीमद्भागवत सुनाकर इस क्षण-भंगुर संसार से मुक्त किया था। मगर स्वामी सत्यानन्द सरस्वती जी इस समय सारे जगत् का कल्याण स्वामी शिवानन्द जी महामण्डलेश्वर के अमृतभरे उपदेश पुस्तकों द्वारा छपवाकर कर रहे हैं, जिसको पढ़ और धारण करके संसारी जीवों का आवागमन छूट रहा है। इस मनुष्य जीवन में अपना कल्याण तो हो सकता है, मगर दूसरों के कल्याण में और आवागमन के छुटकारा कराने में उदार हृदय से ये ही सेवा कर रहे हैं। ईश्वर इनको इससे भी अधिक शक्ति देवें।

—श्री लाभराम शर्मा, देहरादून

रुबाइयात

रूहानी आसमान का इक सितारा है तू सत्यानन्द,
शादमानी आरमान का इक सहारा है तू सत्यानन्द,
फिर क्यों न हों तेरे मुअतकद खुशोखर्रम,
जबकि ज़िन्दगानी इखलास का किनारा है तू सत्यानन्द।

आज इकतीसवां है जन्म दिन क्या खूब,
ग़र्वत भी हंस रही क्या खूब,
अहले आश्रम के चेहरों पर चहल कदमी है,
भंडारे की है लगन क्या खूब।

सत्यानन्द जी का जन्म दिन मुबारक हो,
इनकी इकतीसवीं वर्षगांठ मुबारक हो,
लेकिन क्या सीखा अहले मज़हब तूने,
तुम्हें तेरी ही ज़बां मुबारक हो।

–श्री कमलाज जुगरानबी, नई दिल्ली

तुम शिवानन्द के लाड़-प्यार

धन्य धन्य सत्यानन्द औतार ॥टेक॥

धन्य 31वीं जन्म जयन्ती
धन्य धन्य धर्मेन्द्र औतार।।
चिरंजीव करे ईश्वर तुम्हें
यह प्रार्थना है बार बार ॥1॥

हे योग वेदान्त के सम्पादक
जय धर्म शास्त्रों के प्रकाशक
अर्पण करे यह 'रत्न' तुमको
पुष्प माला हार हार ॥2॥

26 अगस्त जन्म दिन में
कृष्ण जन्म की यादगार
ईश्वर उपाधि तुमको मिली
तुम शिवानन्द के लाड प्यार ॥3॥

धन्य है माता पिता को
धन्य धर्मेन्द्र साहित्यकार
धन्य अल्मोड़ा धरणी,
ऋषिकेश की गंगधार ॥4॥

पूज्य संन्यासी बने तुम
दान सेवा पूर्ण भार,
अर्पण करूँ तो क्या करूँ
यह 'रत्न' माला गले हार ॥5॥

–कवि-रत्न श्री छेदी लाल, लखनऊ

गीतामय-सत्यानन्द

श्री स्वामी सत्यानन्द जी सरस्वती!
सत्य और ज्ञान के भंडार तथा सरस्वती के अवतार!

आप पूर्णरूपेण सत्य के पुजारी हैं और सतत् आनन्द-विभोर रहते हैं। आपके मुखमण्डल पर कभी भी क्रोध की लेशमात्र झलक नहीं दीख पड़ती; कितनी ही विघ्न-बाधायें उपस्थित हों, किन्तु आपके चित्त पर उनका रंचमात्र प्रभाव नहीं पड़ता। आप 'स्थिरबुद्धि' पुरुष की भाँति, सुख-दु:ख, हानि-लाभ में समान दृष्टि और भावना रखते हैं। आप शत्रु तथा मित्र में समान भाव रखते हैं; 'निर्वैर: सर्वभूतेषु' तथा 'तुल्यनिन्दास्तुति' आपके आध्यात्मिक सिद्धान्त हैं।

स्वामी सत्यानन्द जी न केवल एक संन्यासी ही हैं, वरन् एक निष्काम कर्मयोगी भी हैं–

अनाश्रित: कर्मफलं कार्यं कर्म करोति य:।
स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रिय:॥

यद्यपि आपके सम्पूर्ण शुभाशुभ कर्मों का ज्ञानाग्नि द्वारा नाश हो गया है, तथापि 'लोकसंग्रह' रूपी कर्म करने में आप सतत् संलग्न हैं।

गुरुदेव स्वामी शिवानन्द जी महाराज के 'ज्ञान-यज्ञ' का संचालन इनके द्वारा किस प्रकार होता है, वह भारतवासियों को, विशेषकर हिन्दी-संसार को भलीभाँति ज्ञात है। स्वामी जी महाराज की रचनायें अंग्रेजी भाषा में होती हैं; यदि स्वामी सत्यानन्द जी उनका हिन्दी में भाषान्तर न करते तो हिन्दी जानने वाली जनता इस ज्ञान से अवश्य वंचित रह जाती। हिन्दी-भारतवासी इस संन्यासी-पंडित के कठिन परिश्रम द्वारा ही गुरुदेव के ज्ञान-रूपी-अमृत का पान करने में समर्थ हो पाते हैं।

स्वामी सत्यानन्द जी जहाँ संस्कृत तथा हिन्दी भाषा के पंडित हैं, वहाँ अंग्रेजी भाषा के भी प्रकाण्ड विद्वान हैं। इसके अतिरिक्त कई प्रान्तीय भाषाओं का भी आपको ज्ञान है। क्यों न हो, गीर्वाणी आपकी वाणी में सतत् विहार जो करती है। आपकी अमृतमयी वाणी का जिस व्यक्ति ने एक बार भी श्रवण किया हो, उसका अज्ञान समूल नष्ट हुए बिना नहीं रहता। कोई व्यक्ति कैसी भी शंका लेकर उनके पास आया कि उसकी शंका तिरोभूत हुई। आप एक महान् तार्किक भी हैं, किन्तु न्याययुक्त तर्क ही होता है आपका। आपकी लेखनी पर तो हिंदी जगत् मुग्ध है। भाषण देने में आप विचक्षण हैं; आप कई घण्टे लगातार धाराप्रवाह व्याख्यान दे सकते हैं। भाषण के समय आपके अनेकों ग्रन्थों के प्रमाण उद्धृत करने से ज्ञात होता है कि आपको सभी वेद-शास्त्रों का पूर्ण ज्ञान है। उपनिषद् और गीता तो आपके दैनिक-व्यवहार में रम चुकी है; आपका जीवन गीतामय-जीवन है।

'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन'—गीता का निष्काम कर्मयोग यही तो है, इस युवक-संन्यासी ने इसी वाक्य को पूर्णरूपेण अपनाया है। किसी भी सत्कार्य की पूर्ति में ये इस प्रकार संलग्न हो जाते हैं कि अपने निजी किसी भी कार्य का ध्यान नहीं रहता; खान-पान की भी इनको विशेष चिन्ता नहीं रहती। सुधि रहती है, केवल गुरुदेव के ज्ञानयज्ञ की पूर्ति की।

गुरुदेव ने भी अपने कर्मयोगी शिष्य की कार्य-कुशलता देखते हुए आपको प्रेस-प्रबन्धक के पद पर नियुक्त कर ही तो दिया। भगवान ही जानता है कि इस युवक संन्यासी ने कब और कहाँ, इस प्रकार प्रेस के काम में कुशलता प्राप्त की। आश्चर्य है! मुझे 25 वर्ष इसी काम को करते हुए बीत गये, पर अभी भी मैं कोई-न-कोई नई बात इनसे सीखते रहता हूँ।

कुछ मास पूर्व की बात है, गुरुदेव ने एक रात में ही एक पुस्तक आरम्भ कर समाप्त करने का विचार किया और इसी महारथी को आदेश दिया (उस समय स्वामी सत्यानन्द जी ही अब की भाँति प्रेस मैनेजर थे)। अपने गुरु की प्रतिज्ञा पूरी करना इसी कर्मयोगी का कौशल था; क्योंकि वह कार्य इतने कम समय में इस प्रेस के लिए कठिन ही नहीं, वरन् असम्भव था। धन्य है इस वीर स्वामी की कार्य-कुशलता! प्रेस के कर्मचारियों के प्रति इनका व्यवहार सराहनीय है। क्यों न हो, इनका ध्येय 'आत्मवत्सर्वभूतेषु' है न!

अपने योग्य शिष्य की सफलता पर गुरुदेव को बड़ी प्रसन्नता हुई; स्वामी सत्यानन्द जी को आशीर्वादसहित 'प्रेस-स्तम्भ' की उपाधि से सुशोभित किया। मुझे तो इनकी कार्य-कुशलता तथा बुद्धिमत्ता पर आश्चर्य हुआ करता है! मैं जब गुरुदेव का ज्ञानयज्ञ-कार्य स्वामी सत्यानन्द जी द्वारा सम्पादन हुए देखता हूँ तो महाभारत की कथा याद आ जाती है—'न तो शिवानन्द-रूपी-व्यास ग्रन्थ-रचना में थकते और न सत्यानन्द-रूपी-गणेश मुद्रण में।'

इतनी अल्प आयु में इस युवक-संन्यासी में इस प्रकार दिव्य गुणों का विकास आश्चर्यजनक है! निस्सन्देह गीता के अनुसार यह पूर्व-योगी पुरुष लोकहित करते हुए पृथ्वीतल पर, स्वतंत्रतापूर्वक विचरण कर रहा है।

इस शुभ अवसर पर जब कि हमारे प्रिय तथा पूज्य श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती जी महाराज की 31वीं वर्षगाँठ का उत्सव मनाया जा रहा है, मैं परम पिता परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ कि हमारे स्वामी जी दीर्घायु हों, और इसी प्रकार पवित्र यज्ञ में सतत् आहुति देते रहें!

—श्री राधे लाल शर्मा, योग वेदान्त आरण्य विश्वविद्यालय प्रेस

लोकहित-निरत वीतराग महात्मा

योग वेदान्त आरण्यक विश्वविद्यालय प्रेस के व्यवस्थापक श्री स्वामी सत्यानन्द जी के अधिक निकट रहने का मुझे सौभाग्य प्राप्त है और उनका अद्‍भुत व्यक्तित्व देखकर कभी-कभी तो हृदय अत्यन्त आश्चर्यान्वित हो मुग्ध-सा रह जाता है।

मेरे जीवन के 35 वर्ष विभिन्न स्थानों (सेना विभागीय तथा व्यक्ति-विशेष से सम्बन्धित मुद्रणालयों) में व्यतीत हुए हैं और इस प्रकार अनेकों मैनेजरों के सम्पर्क में कार्य करने का अवसर मिला; किन्तु स्वामी जी की अद्‍भुत

कार्यक्षमता और कर्मचारियों से कार्य लेने की आत्म-वात्सल्यमयी अलौकिक प्रतिभा देखकर हृदय में पवित्र श्रद्धा उत्पन्न होती है।

स्वामी जी की सौम्य मूर्ति सरलता और प्रसन्नता की प्रतिकृति सी जान पड़ती है, जिसके प्रभाव से सभी कर्मचारी बालकों की सी उत्सुकता और तीव्रता लिये हुए दो घण्टे के कार्य को भी एक ही घण्टे में सम्पन्न करते हुए, किसी प्रकार की विरसता का कभी अनुभव नहीं कर पाये।

वीतरागी सन्त होने हुए भी आपमें जो लौकिक व्यवहारपटुता है, उसमें आप सच्चे अर्थ में लोक-कल्याण-निरत महात्मा के रूप में ही अवतरित से जान पड़ते हैं। यह हम सब लोगों के लिये गौरव का ही विषय है।

मैं स्वामी जी के 31वें जन्म-दिवस के अवसर पर सर्वशक्तिमान् परमात्मा से यह प्रार्थना करता हूँ कि वे हमारी इस 'विभूति' को चिरायु बनायें।

—श्री उमानन्द देवरणी, योग वेदान्त आरण्य विश्वविद्यालय प्रेस।

जैसा मैंने स्वामी जी को देखा

(मुझे तीन साल 'योग वेदान्त आरण्य विश्वविद्यालय प्रेस' आनन्द-कुटीर में हो गये; जब से प्रेस का श्रीगणेश हुआ था। उसी समय से अब तक जैसा मैंने स्वामी जी को देखा।)

स्वामी सत्यानन्द जी के विषय में जितना भी कहा जाए, थोड़ा ही रहेगा। जब प्रेस का श्रीगणेश हुआ, उस समय श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज ने स्वामी सत्यानन्द जी को प्रेस-मैनेजर नियुक्त किया था। स्वामी सत्यानन्द जी ने तन-मन से प्रेस का कार्य निभाया। स्वामी जी में सबसे बड़ी बात तो यह है कि वे निष्पक्ष, समद्रष्टा और उदार हृदय के हैं। स्वामी जी को चंद दिनों में ही प्रकाशन-कार्य का इतना अनुभव हो गया जितना साधारण व्यक्ति को दस-पन्द्रह साल में भी प्राप्त नहीं हो सकता। अन्य कार्यवशात् कुछ समय बाद स्वामी जी ने प्रेस के कार्य से अवकाश ले लिया। करीब एक साल के अन्दर हमारे प्रेस में आश्रम के ही स्वामीगणों में से एक स्वामी जी आये। उन्होंने तन-मन से प्रेस का कार्य करना चाहा; मगर उनसे वह कार्य सन्तोषजनक रीति से न चल सका। इसी प्रकार और कई स्वामी इस कार्य को चलाने के लिए आए। मगर किसी से भी प्रेस का कार्य सन्तोषजनक न चलता देखकर श्री स्वामी शिवानन्द जी ने स्वामी सत्यानन्द जी को ही इस कार्य का भार सौंपा। स्वामी

सत्यानन्द जी 'हिन्दी-संस्कृत' विभाग के अध्यक्ष तथा 'योग-वेदान्त' हिन्दी मासिक पत्र के सम्पादक तो थे ही, इसके साथ-साथ प्रेस-मैनेजर का पद-भार भी आपको ही सम्भालना पड़ा। इतना काम होने पर भी आप कभी थके मालूम नहीं होते; आप में शक्ति का अनन्त भण्डार है।

मेरी भगवान से प्रार्थना है कि वे आपको दीर्घायु रखें!

—श्री सेवक राम गोयल, योग वेदान्त आरण्य विश्वविद्यालय प्रेस

सब जग जीता, पर न जीता जब तक गुरु का प्रेम न जीता

कौन सा पुरुष देश अल्मोड़े के बारे में नहीं जानता, जहाँ अनेक प्रकार के सुन्दर और रमणीक स्थान देखने में आते हैं; मानो वह इन्द्रपुरी हो। सुनते हैं, उस सुन्दर और रमणीक स्थान को देख कर मन एकदम फूला नहीं समाता है। जैसे सावन की ऋतु में गंगा जी की लहरों को उछलते-कूदते हुए देखने का जी चाहता है, उसी तरह उस अल्मोड़े को देखकर मन एकदम खिलखिला उठता है। आज से तीस वर्ष पूर्व उसी पवित्र भूमि में एक सन्त और ऋषि का जन्म हुआ। वहाँ अनेक प्रकार के वैभव थे, पर सन्त को वहाँ रहना ठीक नहीं लगा; अतः गुरु-भक्ति और ज्ञान की ओर दौड़ पड़ा, जहाँ कि ज्ञान तथा धर्म का प्रचार होता है। वहीं उसने अपनी पवित्र वाणी से हिन्दी और अंग्रेजी में धर्म का प्रचार किया, जिससे लोग समझ गए कि संसार में ईश्वर एक चीज है। आपने अपने अनेक लेखों में लिखा और मानव को चेतावनी दी। आज उसी ऋषि, मुनि और योगी के चरण-कमलों में कुछ समर्पण करने का सुअवसर मिला।

जय हो महामुनि की

जय हो मुल्क अलमोड़ा तेरी
प्रणाम है मेरा, यह आरती मेरी,
हुआ भक्त का जन्म, भरी गोद तेरी,
शुभ दिन आया 26 अगस्त मँझारी
मानो जैसा रामराज्य शुभकारी,
धन्य धन्य तेरे मात-पिता को,
धन्य तेरी मधु मातृभूमि को,
नाम धर्मेंद्र तूने नाम पाया,

राम के सतयुग का सन्देश सुनाया,
बचपन में विद्या भी सब कुछ पाई,
प्रेम भाव से साधना कर पाई,
छोड़ा घर-बार जब प्रभु की आज्ञा आई,
मनोकामना तज भक्ति जगाने आई,
प्रभु ने भक्त को सुनाया संदेश,
मन में जगा फिर ज्ञान का दिनेश,
माता पिता को हुआ शोक भारी,
इष्ट मित्र भी दुखी थे भारी,
जब प्रभु ने रची यह माया भारी,
भक्त हुए वे चैतन्यकारी,
हुए विख्यात स्वामी सत्यानन्द भारी,
वेदों में लिखा है, यही तपस्या भारी,
पगले मानव! प्रभु ध्यान धर ले,
सुख से तू कल्प बिता ले,
स्वामी सत्यानन्द के नव गुण गा ले,
कुछ तो धर्म का ज्ञान पा ले,
योग वेदान्त में सब कुछ लेखा,
भक्ति का ही सब मार्ग देखा,
'नन्द' क्या करे है जीवन भारी,
लगी गुरुचरण की उसे लगन सदा ही।

तुम जगत् के गुरुदेव

जब हिन्दी की मासिक पत्रिका अपनी सुरीली तान से और अपनी मन्त्रध्वनि से विचित्र शब्दों का रस निचोड़ कर एक शब्द के अनेक अर्थों पर अपना प्रभाव डालती थी और भक्त लोग उस पत्रिका की ओर मन लगाते, और उपदेश की प्रतीक्षा में थे कि अभी तक ज्ञान तथा धर्म की पत्रिका छप कर क्यों नहीं आई। पर मानव ने यह नहीं सोचा कि इस युग में वही पत्रिका कई गम्भीर ग्रन्थों का सामना करेगी और स्वामी जी ने संसार के ग्रन्थों का सारा रस एकत्र कर उसी पत्रिका में सारा अमृत भर दिया। उस पत्रिका का नाम है, योग वेदान्त– जिसको पढ़कर मन फूला नहीं समाता।

मेरा मन न जाने कहाँ से एकदम उस छपती हुई पत्रिका पर पड़ा जब एक सुरीली चाल पर, मशीन उस पत्रिका का आनन्द रस लेकर छाप रही थी; दिल में सोचा तो सही कि कुछ लिखूँ, पर अपने पर विश्वास नहीं हुआ; और मैं कुछ भी नहीं जानता था—मैं भक्त की हैसियत पर नहीं था। मैं था प्रेस का एक कर्मचारी। तो भी मन में सोच ही लिया...

वाणी दी भगवान ने, मीठे वचन उचार।
स्वामी सत्यानन्द नाम भजन खोले मुक्ति का द्वार

जय हो सत्यानन्द सरस्वती की,
भक्त योगी और महामुनी की,
सुनो सत्यानन्द सरस्वती की,
योगी, मुनी, महामुनी की,
26 अगस्त जब शुभ दिन आया,
सूर्य भी देख हँसता आया,
आज स्वामी सत्यानन्द का जन्म दिवस है,
मानो जैसा राम-संदेश मिला है,
देश देश के ऋषि मुनि आए,
स्वामी सत्यानन्द के गुण गाने,
योगों से लेकर सब वेद लिखे,
हिन्दी अँग्रेजी में स्वामी ने सन्देश दिए,
उनके गुण से सब विद्या सीखी,
मीठी वाणी सुनो स्वामी सत्यानन्द की,
जब आवाज गूँजती है, मधुर मुनि की,
योग वेदान्त लिख कर, मानव को जगाया,
हिन्दी का प्रचार, सबको सुनाया,
बचपन से घर-बार छोड़ा,
माया मोह से नाता तोड़ा,
गुरु शिवानन्द के पास आए,
सुचारु वेष ग्रहण कर पाए,
'नन्द' क्या करे, वह तो तेरा भक्त,
तेरी तपस्या से जगता है सारा जगत्
आज स्वामी जी का जन्म-दिवस है

गाओ मंगल सरस्वती के
देश देश के ऋषि मुनी आए
स्वामी सत्यानन्द के गुण गाने
आज स्वामी जी का जन्म-दिवस मनाने
आनन्द कुटी की शोभा बढ़ाने
स्वामी सत्यानन्द के गुण गाने॥

–श्री महिमानंद, योग वेदान्त आरण्य विश्वविद्यालय प्रेस

ज्ञान के देवता

जब-जब संसार में चारों तरफ से अज्ञान-रूपी बादल छा जाते हैं, तब-तब कोई महान् विभूति इस संसार में अवतरित होकर इस अज्ञान-रूपी अंधकार को अपने बल, पौरुष तथा ज्ञान के द्वारा नष्ट करती है। स्वामी सत्यानन्द जी आज के युग के महान् व्यक्तियों में से एक हैं। आपने भोग-वासना को त्याग कर वैराग्य का वल्कल सहर्ष अंगीकार किया है। आप जगद्गुरु शंकराचार्य की तरह महान् ज्ञानी और त्यागी हैं। आपकी ज्ञान-रूपी प्रतिमा को देखकर यही प्रतीत होता है मानो ब्रह्मा ने ज्ञान और सुन्दरता की सारी पूंजी स्वामी जी को ही अर्पित कर दी है। स्वामी जी अपनी गुरुभक्ति और मधुरतापूर्ण प्रेम से इस अंधकारयुक्त संसार को आलोकमय बना रहे हैं।

आज से 30 वर्ष पूर्व अल्मोड़ा की पुण्य भूमि में एक महानात्मा ने जन्म लिया। इनके बचपन का नाम धर्मेन्द्र था। विद्यालय की शुष्क आधुनिक शिक्षा से इनकी ज्ञान-रूपी पिपासा शान्त न हुई। अगर यह पिपासा शान्त हो सकती थी तो सिर्फ एकान्त स्थान में प्रभु का चिन्तन और साधना करके ही। अत: शैशवकाल से युवावस्था में पदार्पण करते ही मायावी सांसारिक क्षणिक वस्तुओं की ओर दृष्टि किये बिना ही इस युवक ने गृह-त्याग करके स्वामी शिवानन्द जी की शरण ली। बालरवि प्रचंड सूर्य बन कर चमकने लगा। गुरु के कथनानुसार स्वामी जी के जीवन का लक्ष्य मनुष्यमात्र की सेवा करना है। कवि तो थे ही, अब दार्शनिक भी हो गये। सेवा, परिश्रम और सत्य से ही हम अपने परम लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं; ईश्वर को पाने का यही सरल मार्ग है। आओ, हम भी स्वामी जी के उपदेशों पर मनन करते हुए जीवन-पथ पर अग्रसर हों।

–कुमारी कृष्णा भल्ला, दिल्ली

तपोवन के तपस्वी

संसार में असंख्य मानव जन्मते और मरते हैं, परन्तु ऐसे महापुरुष, जो केवल लोकहित के लिये जन्म लेते हैं, बहुत थोड़े होते हैं। इन्हीं में से एक हैं, हमारे पूजनीय स्वामी सत्यानन्द सरस्वती, जिन्होंने मानव-जाति के उद्धार का श्रेय ग्रहण किया है।

इसी एकमात्र उद्देश्य से बालक धर्मेन्द्र अपने स्वजनों को तिलांजलि देकर *'परोपकाराय सतां विभूतय:'* के अनुसार सम्पूर्ण विश्व को ब्रह्ममय समझता हुआ, भयंकर हिंसक जन्तुओं से युक्त अरण्यों में विचरता, घूमता और तपस्या करता श्री 108 स्वामी शिवानन्द जी के आश्रय में पधारा और उनसे संन्यास की दीक्षा ली; तब से पुनर्नामकरण हुआ, स्वामी सत्यानन्द सरस्वती। वे अब हमारे सम्मुख हैं, जिनसे मैं गत तीन वर्षों से अच्छी तरह परिचित हूँ।

श्रद्धेय स्वामी जी के मधुर हास्य, कर्मठता, साधुता, विद्वत्ता, दयालुता आदि सद्गुणों से आकृष्ट होकर हम उन्हें साक्षात् भगवद्गीता और उपनिषदों की प्रतिमूर्ति के रूप में पाते हैं।

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जीजिविषेच्छतं... (ईशावास्योपनिषद्)

अनाश्रित: कर्मफलं कार्यं कर्म करोति य:।
स संन्यासी च योगी न निरग्निर्न चाक्रिय: ॥ (गीता)

इस सिद्धांत का आदर्श संसार में रखते हुए, साथ ही इस युवास्था में सांसारिक व्यसनों से अनासक्त रहकर ज्ञान, कर्म और उपासना की त्रिवेणी में विश्व-मानव को स्नान कराते हुए 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' के रूप में हम उन्हें एक महान् तपस्वी, महान् ज्ञानी और महान् कर्मठ के रूप में पाते हैं।

मैं भी पूज्यपाद श्री स्वामी महाराज की अध्यक्षता में संचालित 'आरण्य विश्वविद्यालय मुद्रणालय' के हिन्दी विभाग का एक कर्मचारी हूँ। तत: मैं उनके असीम सद्गुणों से प्रभावित हुआ हूँ। उन सबका वर्णन मेरे द्वारा शब्दों के रूप में असम्भव है; किन्तु फिर भी मैं उनके विषय में इतना अवश्य कहना चाहता हूँ कि उनकी हमारे प्रति जो महती सहानुभूति, दयालुता और भ्रातृत्वमय व्यवहारशीलता है, वह अत्यन्त प्रशंसनीय है। उनकी अध्यक्षता में आनन्दपूर्वक कार्य करते हुए हमें समय के बीतने का भी ज्ञान नहीं रहता।

भारत-भारती की जिस तरह से वे सेवा कर रहे हैं, वह किसी से भी अज्ञात नहीं। मैं तो सौभाग्य समझता हूँ अपना और राष्ट्रभारती हिन्दी का भी, जो कि इनका आश्रय पाकर फूल चुके और फल रहे हैं।

आपकी इस 31वीं वर्षजयन्ती के उपलक्ष्य में, मैं हार्दिक बधाई देता हूँ और आशा करता हूँ कि श्री स्वामी जी दीर्घजीवी होकर, आध्यात्मिक ज्ञान द्वारा मानवता व विश्वशान्ति का दिगन्तर-प्रचार करेंगे।

—श्री मुनीश्वर दत्त शर्मा, योग वेदान्त आरण्य विश्वविद्यालय प्रेस

सम्पर्क के संस्मरण

पूज्य स्वामी सत्यानन्द जी से मेरा प्रथम सम्पर्क अक्तूबर सन् 1951 में हुआ, जब कि मैं प्रेस में काम करने के लिए आया; उस समय प्रेस के प्रबन्धकर्ता स्वामी सत्यानन्द जी ही थे।

तब से अब तक मैंने श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज की कई पुस्तकें, जो अंग्रेजी में थी, इनके द्वारा हिन्दी में अनूदित की हुई पढ़ीं। पढ़ते समय मन में ऐसा विचार आया कि इतनी छोटी अवस्था में स्वामी सत्यानन्द जी का घर को त्यागना और शीघ्र ही संन्यासी के वेष में आ जाना और उसे निभाना कोई सरल कार्य नहीं है।

पूर्व जन्म के संस्कारों के गौरव से ही स्वामी जी कवि, लेखक, कलाकार और साथ-साथ कर्म, भक्ति और ज्ञानयोग को मुख्य ध्येय मान कर मन, कर्म और वचनों द्वारा गुरु-सेवा में तत्पर हैं।

स्वामी जी का काम कराने का ढंग बहुत ही सरल है। इतना सरल मैंने अपनी इस नौकरी की हालत में कहीं नहीं देखा; और गुरुदेव के हर कार्य का वे नियत समय से पूर्व ही सम्पादन कर देते हैं। कर्मचारियों के साथ इनका व्यवहार प्रशंसनीय है। मृदु तथा सरल स्वभाव होने के कारण ये कर्मचारियों और आश्रम-निवासियों को अति प्रिय हैं। प्रसन्न रहना और दूसरों को भी प्रसन्न रखना, यह तो इनका मुख्य गुण है।

बाहर से कई व्यक्ति स्वामी जी के दर्शन तथा उपदेश सुनने आते हैं। स्वामी जी उनकी सब शंकाओं का समाधान करते तथा उनको उन्नति के मार्ग पर अग्रसर करते रहते हैं।

हमें स्वामी सत्यानन्द जी की 31वीं वर्षगाँठ के उपलक्ष्य में अत्यन्त हर्ष होता है, और हम परम पिता परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि स्वामी जी दीर्घायु हों और इसी प्रकार लोक-हित करते हुए इस पथ पर अग्रसर रहें!

—श्री सूरज प्रकाश गाँधी, योग वेदान्त आरण्य विश्वविद्यालय प्रेस

मैं देऊँ बधाई!

मैं देऊँ बधाई, नीको है नीको अवसर आज को ॥टेक॥
सत्य कहूँ मैं झूठ नहीं कुछ सुण जो सब सरदार!
सत्यनारायण को ही जानो, सत्यानन्द अवतार जी–मैं देऊँ बधाई ॥1॥
वर्षगांठ तो थी पहले पर कारणवश कछु काज।
शिवानन्द गुरु के सनमुख तो जलशो है यह आज जी–मैं देऊँ बधाई ॥2॥
साथी प्रेमी भेंट करेंगे तेरी आज अनेक।
भेंट मेरी स्वीकार करीजे, श्रद्धांजलि यह एक जी–मैं देऊँ बधाई ॥3॥
शिव आश्रम के संत अतिथी विनय करें सब आज।
चिरंजीवी होवे श्री स्वामी सत्यानन्द महाराज जी–मैं देऊँ बधाई ॥4॥

–श्री स्वामी दिव्यानन्द सरस्वती

दीर्घायु बनो

सत्यानन्द स्वामी सन्यासि शास्त्र विशारदुंडु योग वेदान्त प्रेस मेनेजर योग्यु डितडु लोक-पूज्यडु शिवानन्द स्वामी जी शिष्य-लोकु मंदु ख्याति गांचिन यट्टि प्रशान्त विख्याति इतडु शान्ति चिरु नव्वु प्रेम-सद्गुण-म्बुलु इतनि यंदुन निवास योग्य मय्ये अट्टि पूज्य संन्यासि युवकुनि आनन्दमयुनि जन्म दिनम्बु नेडु वेडकु मीरगा जर्गु चुंडे धन्युडवु नीवु श्री सत्यानन्द धर्मवर्य ब्रोचु गावुत निन्नु भगवानुडु प्रीती तोड वत्स-रम्बुलु शतम्बुनु पृथ्विलो वरस गानु पूज्य गुरुदेवुडयिन स्वामी जी प्रेम मीर नोसंगु नट्टि ब्लैसिंग्स् पोन्दि नोप्पुगानु सत्यानन्द जी वर्धिल्लु मय्य-संपूज्यनीय

भाषा–तेलगू *श्री के. सीता देवी*

धन्युडवो धन्युडवो

धन्युडवो धन्युडवो सत्यानन्द स्वामि धन्युडवो।
शिवुनि यवतारमेत्तिन शिवानन्दुनि
प्रिय शिष्युंडवै प्रेस्सुनंदुन्टिवि
प्रख्याति गांचितिवय्य सुरगंधर्वमुनुलु बोगडमा ॥धन्यु॥

जन्म दिनमय्ये नेडु सत्यानन्दुनि
श्रृंगार बैनांलंकार बुतोआनन्दमोदवेरा नेडु ॥धन्यु॥

भाषा—तेलगू *श्री के. सीता देवी*

अनुगान

'असमय में तू कैसे विकसित हो गई सरसिजे!'

'विस्मय न मानो इसे पथिक!'

'और नहीं तो क्या?'

'समाई तो जाती है निंदिया मेरी पलकों में, पर देती हूँ टाल इसे, कारण कि भीति है, जाग न पाऊँ प्रात: किरण के अभ्यागम से पहिले।'

'तब क्या कोई पदार्पण करेंगे देवता?'

'यूँ ही कुछ होगा।'

'बताओगी न क्या मुझे?'

'सुनोगे पथिक!'

'क्यों नहीं?'

'त्यौहार है कल एक।'

'कैसा?'

'और जहाँ है विस्फुरन मेरा अपरिहार्य।'

'वह कैसा?'

'मैं हूँ तूलिका जिसके कला की, मैं हूँ उपकरण जिसके गीतों का, मैं हूँ पुष्प जिसके भगवान का, कल उसकी जयन्ती मनाई जाएगी...'

'रुक क्यों गई पंकजे!'

'...हाँ मैं हूँ जिसके हृदय की लालिमा, मैं हूँ जिसकी कविता का आस्वाद, मैं हूँ जिसकी वेदना का आश्वासन, और मैं हूँ जिसकी भावनाओं का आवसथ, जानते हो पथिक! कल उसका जन्म दिन है। ...मैं हूँ जिसके उछाह का मोल, और गीत है जिसका निर्मित होता मेरे वस्तुत्व की चोटी से, जानते हो पथिक! कल उसके अभिनन्दन का स्वर्णयाम आने वाला है।'

'...होगा बहुत कुछ। पर तुम तो भावुक हृदय हो नहीं पथिक! भावुक बन जाने की कला का उपहार यदि लेने की चाह हो तो, जाओ चले मेरे अभिनायक की सन्निधि में। देगा वह दर्द का परिहार, और हर्ष का उपचार। हे पथिक!

जिन्दगी में दुःख-सुख तो आते हैं सबके, पर जो व्यक्त किये देता है, वही कवि है। हे पथिक! संसार है पीड़ा का पर्याय पर जानता नहीं इस तथ्य को कोई। इसे जानने वाला जो है, वह कवि होता है।'

'किन्तु नीरजे! जान भी लिया तो क्या होता है? वेदना जीवन की देन है, नियन्ता का उपहार है, मानव का अधिकार है और निराकरण के अयोग्य है यह तो।'

'पर हे पथिक! सारी समस्याओं के सुलझन तो हैं अवश्य। भूल-भुलैया की राह पर चढ़कर पार उतरना होता है अवश्य।'

'जाने दो इन बातों को। कल क्या होगा और?'

'कल की बात न पूछो पथिक! हृदय का मर्म आहत होगा तुम्हारा।'

'कुछ तो सही।'

'कल किसी के चरणों की रज में मिल जाने के लिए ही आज तपस्या की तमिस्त्रा में उग पड़ी हूँ। आशीर्वाद दो पथिक! जिससे यह सार्थक कर पाऊँ मैं—कि बलिदान भी वरदान है।'

'......'

'उठ जाने दो तिमिरामयी के घूंघट को। और देखोगे पथिक! आयेगा मालिन का बेटा। सजा कर ले जाएगा निज चंगेरी में मुझे। दुरवस्था होगी मेरी बेशक ही। तड़फड़ाऊँगी। पंखुड़ियों का अंगराग विकीर्ण हो जाएगा। पर सोच लो पथिक! मैं कह लूँ जीवन-अवधि की अतिक्रान्त बेला में—'हे सत्य! अभिनन्दन तुम्हें।'

'......'

'डर तो नहीं रहे हो पथिक! श्री सत्य के चरणों में बलिदान के लिए भी स्थान है नहीं मेरा। इस भौतिक देह से मिलन दुःसह है। दिव्य देह से मिलन की सम्भावना है। इसलिए तो पंखुड़ियों का मोह छोड़ कर मिलन की प्रत्याशा तीव्र कर ली है।'

'पथिक! सुनते हो?'

'श्रुतिमधुर है तुम्हारी वाणी सच!'

'किन्तु न जानूँ। एक बात नई सी उठ आई अभी-अभी।'

'न क्या व्यक्त करोगी उसे?'

'व्यक्त तो करना ही होगा उसे!'

'फिर...?'

'मैं बताऊँ क्या पथिक! हृदय के तार-तार हिले जा रहे हैं। पुलकन-सा समाता है। चिन्तित हूँ, यूँ सुधि न आए मृत्यु की बेला में उनकी तो क्या-से-क्या हो जाएगा? दिव्य देह न मिल पायेगी मुझे। इसीलिए तुम ऐसा करो पथिक!—विलग कर यों मुझे निज के पर्यंक से, और ले जाओ उनके चरण रज की सन्निधि में। उनकी धूली में मिल जाना मेरी क्रीड़ा का पर्याय है। इसीलिए पथिक! जब तक मालिन का बेटा नौका लिए आता है नहीं, जलाशय बीच मेरी अभिलाषा से; इसके पहिले तोड़ लो मुझे और ले चलो उनकी भूमिका पर, अलका में यानि।'

'ऐसा ही करूँगा।'

'धन्यवाद!'

'किन्तु इसके पहले एक गीत बनाकर गा लूँ। अप्रिय तो लगेगा नहीं पथिक, तुम्हें...।'

'बेशक नहीं।'

'हृदय की तंत्री मेरी है क्या? अलि का आलाप मेरा साहचर्य देगा। गाऊँ तो फिर—'

सत्य का मैं हूँ पुजापा।

ध्वंस की मेरी पिपासा।
अस्तमिति मेरी शुभाशा॥
जिन्दगी के पार है क्या?
राह का आधार है क्या?
गा सकूँ बलि की सुगीता।
पा सकूँ संसृति पुनीता॥
आज रज की गोद मधुमय।
मिल सकेगी क्या न सुखमय?
धन्य मेरी कामनायें।
धन्य मेरी भावनायें॥
धन्य मेरी चिर पिपासा।
धन्य मेरी चिर शुभाशा॥
सत्य का मैं हूँ पुजापा।

—श्री स्वामी रामानन्द सरस्वती, उत्तरकाशी

तुम देवता हो!

'कौन न आया है ज्ञान की बात सुनाने
स्वामी सत्यानन्द के गुण गान गाने
थी यही धुन और लगन चरचा सभी को
दर्शन करें स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के
भरी सभा थी सन्त और मुनियों की
लगी मोहे गुरुदर्शन की अति झनझारी।'

आज 26 अगस्त का मैंने प्रभात देखा तो मुझे ज्ञात हुआ कि आज हमारे पूजनीय स्वामी श्री सत्यानन्द सरस्वती जी महाराज का जन्मदिवस, वार्षिकोत्सव अथवा वर्षगांठ है। उस समय प्रभात-फेरी हो रही थी और अनेक साधु-सन्त, गृहस्थी तथा संन्यासी लोग प्रभात-फेरी में श्री स्वामी सत्यानन्द जी के जन्मोत्सव में भाग ले रहे थे और नाना प्रकार के विवेचनात्मक श्लोकों की ध्वनि गूंज रही थी। आश्रमभर में यही एक चर्चा हो रही थी कि आज अल्मोड़े के सन्त महामुनि श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती का जन्म दिन है।

यद्यपि कुछ ही साल हुए, जब से मैं श्री स्वामी जी को भली-भाँति जानता हूँ, मगर स्वामी जी जैसे महानुभाव और आदर्श सन्त मुझे अभी तक कहीं नहीं मिल सके और शायद न मिलेंगे। श्री स्वामी जी जैसे सन्त मुनिवर का मिलना असम्भव ही है। श्री स्वामी जी के उपदेश सुनने की सभी लोगों को एक प्रेम-प्रेरणा रहती है और साथ-ही-साथ दर्शन की भी। ऐसे मुनियों का प्रभाव इस जगत् पर अच्छा पड़ता है।

आप सरस्वती के अवतार हैं और मन-हृदय की कण्ठमाला की तरह आपके अन्दर सरस्वती का वास है। धन्य हैं आप, कि स्वभावतः आपके मुख से एक भी क्रोधित शब्द नहीं निकलता। महर्षे, आप जैसे महामुनि का वर्णन कौन कर सकता है? आप स्वयं हमारे प्रभु हैं और हैं एक पूजनीय देवता, जो कि इस अन्धकारमय संसार में ज्ञान-ज्योति छिटकाते हैं। महामुने गुरुदेव! आपका नित्य प्रसन्न वदन, मधुर वचन, प्रेम का प्रभाव तथा ज्ञान की बातें—ये सभी हमारे लिए एक प्रकार की अमूल्य वस्तु हैं, जिन्हें आप हमें सुनाते तथा जिनका विवरण पुस्तकों में प्रकाशित करते हैं।

महामुने! आज 26 अगस्त को आपका जन्मदिवस सभी मना रहे हैं। आपका प्रभाव संसार पर अच्छी प्रकार से पड़ चुका है, जो कहते नहीं कहा जा

सकता है। आपने कविता तथा अन्यान्य पुस्तकें लिखी हैं। देश का भला कौन-सा कवि अथवा लेखक है, जो आपको न जानता हो। आपकी कविता एक मधुर ध्वनि से तरंगित हो गूंजती है, जिसको सभी लेखक और कवि मान्यता प्रदान कर चुके हैं। भाषा की सरलता आपकी एक रोचक शैली है, जिस शैली को विरले ही लेखक या कवि जानते हैं; अत: वे अचम्भे में पड़ते हैं। आपकी सर्वत्र प्रशंसा होती रहती है। धन्य हैं आप।

महर्षिवर! आप जैसे सन्तों का यहाँ रहना आवश्यक है, जो अपने ज्ञान के भण्डार से इस संसार पर एक प्रकार का पवित्र प्रभाव डालते रहते हैं। आप ऊँची श्रेणी के एक महात्मा हैं और अचल हैं। आपके जीवन-चरित्र से मन में एक प्रकार का अपूर्व आनन्द तथा अनहत उत्साह प्राप्त होता है कि आप कितने बड़े तपस्वी हैं।

—श्री रामसेवक भट्ट, योग वेदान्त आरण्य विश्वविद्यालय प्रेस

शान्ति तथा सत्य की प्रतिमा

इस चंचल भव-सागर में शान्ति कहाँ? ऐसी बहुत-से लोगों की धारणा है। किन्तु ऐसा नहीं सोचना चाहिए। इस समुद्र की अभिलाषा रूपी लहरें चंचल हैं; किन्तु समुद्र गंभीर है। यदि हम अपने मन को शान्त कर लें तो हमें शान्ति प्राप्त हो सकती है। कभी-कभी यह भी देखा गया है कि घर के माया-जाल को छोड़ कर भी शान्ति नहीं मिलती। ज्ञानी हो गये, किन्तु हृदय में चैन नहीं— शान्ति नहीं। शान्ति प्राप्त करने के हेतु विविध वस्तुओं तथा व्यक्तियों से सम्बन्ध जोड़ लेते हैं, इतने पर भी शान्ति नहीं। धन उनके पास है, पर उससे अधिक धन-प्राप्ति की इच्छा करते हैं। इस भाँति विविध क्षेत्रों में ढूंढते हुए भी वे शान्ति को प्राप्त नहीं कर सकते।

श्री स्वामी सत्यानन्द जी आज के युग के महान् व्यक्तियों में से एक हैं। आपने गृहस्थ आश्रम को छोड़कर संन्यास आश्रम का परिधान सहर्ष धारण किया। आप श्री स्वामी रामतीर्थ की भाँति एक महान् त्यागी तथा शान्ति के भण्डार हैं। आपके समान कार्यकुशल, देशभक्त, गुरु-भक्त तथा ज्ञानी मिलना सहज नहीं। मानो भगवान ने सब चीजों का भण्डार आपके ही पास सौंप दिया हो। आप अपने मधुर एवं प्रभावशाली वचनों द्वारा अध्यात्म-पथ के पथिकों को मार्गदर्शन प्रदान कर रहे हैं।

आज से तीस वर्ष पूर्व अल्मोड़ा माँ की गोद में इस महान् ऋषि ने जन्म लिया। आपने अच्छे-से-अच्छे स्कूल तथा कॉलेज में शिक्षा प्राप्त की; किन्तु आपका मन इस प्रकार की शिक्षा में न रमा, क्योंकि आप एक उच्च कोटि का ज्ञान प्राप्त करना चाहते थे, जो कि केवल पराविद्या द्वारा प्राप्त हो सकता है। श्री स्वामी जी के बचपन का नाम धर्मेंद्र था। बचपन से युवावस्था में पदार्पण करते हुए इस वीर बालक ने सांसारिक भोगों का उपभोग किये बिना ही गृहत्याग कर एक महान् ऋषि की शरण ग्रहण की। जिस भाँति सूर्य के उदय होते ही कमल का फूल खिल उठता है, उसी प्रकार श्री स्वामी सत्यानन्द जी के आगमन से सारा आश्रम चमक उठा।

स्वामी सत्यानन्द जी केवल एक संन्यासी ही नहीं; वरन् एक दार्शनिक, कवि तथा निष्काम कर्मयोगी भी हैं। ये सभी गुण एक ही व्यक्ति में कदाचित् ही प्राप्त हों। आपकी लेखन-शैली इतनी मधुर तथा सरल है कि पाठक मन्त्रमुग्ध-सा रह जाता है। आपने हिन्दी जगत् की जो सेवा की है, वह किसी से अपरिचित नहीं। श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज अंग्रेजी भाषा के विद्वानों में से एक हैं। यदि श्री स्वामी सत्यानन्द जी पूज्य स्वामी जी के अंग्रेजी-साहित्य का अनुवाद हिन्दी भाषा में न करते तो आज अधिकांश भारतीय न केवल श्री स्वामी जी के इस अमूल्य ज्ञान से ही वंचित रहते, वरन् श्री स्वामी जी से परिचय न होने के कारण वे उनके निकट सम्पर्क में भी न आ सकते। श्री स्वामी सत्यानन्द जी ने इस भाँति अपने हिन्दी तथा अंग्रेजी, दोनों भाषाओं के महान् पाण्डित्य द्वारा श्री स्वामी जी की पुस्तकों का हिन्दी रूपान्तर कर, सर्वसाधारण की कितनी बड़ी सेवा की है, इसका अनुमान सहज में ही नहीं लगाया जा सकता। इन दिनों आप 'योग-वेदान्त' नामक हिन्दी पत्रिका के सम्पादक हैं।

श्री स्वामी सत्यानन्द जी हिन्दी तथा अंग्रेजी के प्रगाढ़ पण्डित तो हैं ही, साथ ही वे संस्कृत के भी बड़े विद्वान हैं। आपको कई अन्य भाषाओं का भी प्रचुर ज्ञान है। आपकी योग्यता का पार पाना कठिन है। जिस प्रकार मनुष्य मोतियों को प्राप्त करने के लिए समुद्र में, जोकि इतना गहरा है, गोते लगाता है और वे उसे कठिनता से प्राप्त होती हैं, उसी प्रकार श्री स्वामी सत्यानन्द जी के ज्ञान रूपी कोठरी का पता लगाना कठिन ही है। यदि कोई मनुष्य उनके ज्ञान एवं प्रेम-रूपी सागर में गोता लगाये तो वह सुगमता से ही उसकी थाह नहीं पा सकता है। जिसे भी श्री स्वामी जी की मधुर वाणी का आस्वादन करने का

सौभाग्य प्राप्त होता है, उसका अज्ञान तत्क्षण नष्ट हो जाता है। आप सदा न्याय-युक्त तर्क पर ही अपने विचारों को प्रकट करते हैं।

श्री स्वामी सत्यानन्द जी सत्य तथा शान्ति की तो मूर्ति ही हैं। कहा जाता है, *'यथा नामस्तथा गुण:'*। श्री स्वामी जी का जैसा नाम है, तदनुरूप उनके अन्दर गुण भी विद्यमान हैं। क्रोध को तो आपने अपने पास फटकने तक नहीं दिया। आप शान्ति के भण्डार हैं। यदि कोई विघ्न-बाधा आपके सामने उपस्थित हो तो आपकी मुखाकृति पर उसका आभास तक नहीं मिलता। वे विघ्न-बाधायें आपके सूर्य के समान चमकीले मुख को देखकर स्वयं ही पलायन हो जाती हैं। आपकी उच्च भावनाएँ दूसरों के प्रति प्रेम की वृष्टि करती हैं।

आप सब के सुख-दु:ख में हाथ बँटाते रहते हैं। किसी भी मनुष्य के प्रति आप अशिष्ट बर्ताव नहीं करते। शत्रु तथा मित्र के साथ समान व्यवहार करते हैं। परनिन्दा करने वालों को तो आप अपने पास फटकने तक नहीं देते। आपने अपने एक लेख में लिखा है कि 'सबसे बड़ा शत्रु वही है जो आपके पास दूसरों की निन्दा करता है। आप उसी को पकड़िये और उसकी खबर लीजिये।'

योग्य तथा अनुभवी होने के नाते प्रेस की बागडोर आपको ही सौंपी गई है। श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज ने प्रेस का कार्यभार अन्य स्वामियों को भी दिया, किन्तु वे उसे सुचारु रूप से चलाने में असफल रहे, अत: उन्हें यह कार्य आपको ही सौंपना पड़ा। आप बड़े उत्साह तथा धैर्य के साथ इसे संभाले हुए हैं। आपके कार्य कराने का ढंग बड़ा ही विचित्र है। आपकी बुद्धि तथा योग्यता की छाप समस्त कर्मचारियों के मस्तिष्क में पूर्ण रूप से अंकित हो चुकी है। इतने बड़े प्रेस तथा इतने कर्मचारियों का पूरा कार्यभार आपने सफलतापूर्वक संभाल रखा है।

आज छब्बीस अगस्त को श्री स्वामी सत्यानन्द जी महाराज का 31वाँ जन्मोत्सव मनाया जा रहा है। दूर-दूर के सम्माननीय महानुभाव इस शुभ अवसर पर यहाँ पधारे हैं और वे श्री स्वामी जी को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित कर रहे हैं। मैं भी उनके साथ एक स्वर हो कर जगत्-पिता जगदीश्वर से हार्दिक प्रार्थना करता हूँ कि वे श्री स्वामी सत्यानन्द जी महाराज को चिरायु प्रदान करें।

—श्री महेशानन्द 'ऋषि', योग वेदान्त आरण्य विश्वविद्यालय प्रेस

जय हो सत्यानन्द सरस्वती की

भारत के अधिकांश लोग अल्मोड़ा से परिचित हैं, यह एक सुन्दर तथा रमणीय स्थान है, जिसे देखकर लोगों का हृदय हर्ष से फूला नहीं समाता। जिस भाँति सूर्योदय होने से कमल-पुष्प विकसित हो उठता है उसी भाँति अल्मोड़ा को देखकर लोगों का हृदय हर्ष से प्रफुल्लित हो जाता है। अल्मोड़ा ने एक सन्त को जन्म दिया, जो आज श्री स्वामी सत्यानन्द जी के नाम से विख्यात है।

श्री स्वामी जी की गणना महान् व्यक्तियों में की जाती है। आप बड़े तपस्वी और महामुनि समझे जाते हैं। आपका मुखमण्डल सूर्य की भाँति चमकता हुआ दृष्टिगोचर होता है। आप वर्तमान काल में परमात्मा-स्वरूप हैं। आप समस्त प्राणियों में प्रेम तथा मैत्रीभाव रखने वाले और दयालु हैं। आप परम पूजनीय सरस्वती माता की पूर्ण कृपा के अधिकारी हैं। श्री स्वामी जी हिन्दी साहित्य के एक धुरन्धर विद्वान् हैं। हिन्दी के ही नहीं, संस्कृत तथा अंग्रेजी के भी विद्वान् माने जाते हैं। आप 'योग-वेदान्त' पत्रिका के संचालक तथा संपादक हैं, जिसे पढ़ने से लोगों के हृदय को आनन्द तथा जीवन को प्रेरणा प्राप्त होती है।

अल्मोड़ा सुन्दर तथा अच्छा स्थान होने पर भी आप को वहाँ रहना पसंद न हुआ और आपने संन्यास धारण कर लिया। आज आपकी वर्षगाँठ के सुअवसर पर हम लोगों को बड़ी खुशी हुई। प्रात:काल प्रभात-फेरी के समय अनेक साधु-सन्त तथा गृहस्थ एकत्रित हो प्रभात-फेरी करने लगे; उस समय प्रभात-फेरी की ध्वनि खूब गूंज रही थी। धन्य हैं आप, जो कठिन तपस्या करके इस जीवन-सागर में निर्लिप्त रहे हैं। धन्य हैं आप जैसे तपस्वी एवं मुनिवर।

इन दिनों आप प्रेस के संचालक हैं। मैं भगवान से यही प्रार्थना करता हूँ कि भविष्य में भी आप ही इस कार्य-भार का इसी भाँति सुचारू रूप से वहन करते रहें। भगवान आपको दीर्घायु रखें।

श्री स्वामी सत्यानन्द जी के प्रति श्रद्धांजलि

जय हो सत्यानन्द सरस्वती की।
जय हो उस योगी महाऋषि की॥
छब्बीस अगस्त को प्रथम प्रभात देखा।
फिर सूर्य की किरणों ने हँस कर देखा॥

चलो सब जन दर्शन पाने।
आज उस महामुनि के गुण गाने॥
धन्य है उनके मात-पिता को।
धन्य है उस कूर्मांचल भूमि को॥
धन्य हो स्वामी तुम ज्ञानदीप दिखाने वाले।
धन्य हो तुम सबको सिखलाने वाले॥
विद्या बुद्धि सब कुछ पाई।
साधना करके आपने दिखाई॥
आप बड़े विद्वान् कहलाते हैं।
सभी आपके दर्शन पाने आते हैं॥
उस तपस्वी का नाम आज मैं ले रहा हूँ।
जिसका जन्म दिवस मना रहा हूँ॥
दूर दूर देशों से आते हैं।
सभी आपका सुमिरन करते हैं॥
सत्यम् सत्यम् सभी कहते हैं।
सभी आपका गायन करते हैं॥
हमारे भाग्य हुए उदय हैं।
जोकि दर्शन आपके पाते हैं॥
वह आशा के दीप जल चुके हैं।
लगन थी दर्शन की, सो पा चुके हैं॥
विद्या का दीप आपने जलाया।
अंधकार को आपने दूर भगाया॥
ली कलम परम संतोषकारी।
आप हैं अहिंसा के व्रतधारी॥
'जगत' आपके यश को गाता।
रहे आपके अनुकूल विधाता॥

–श्री जगत राम रयाल, योग वेदान्त आरण्य विश्वविद्यालय प्रेस

हे देव-मण्डली के सत्यदेव!

मैंने आपकी 31वीं वर्षगांठ के शुभ महोत्सव पर आपके लिये गीर्वाणी की मञ्जरी का एक हार गूँथा है, उसमें आपके ही प्रेम-दिव्य-माधुर्य-कीर्ति-कुंज के अंग में नयनों ने जिन-जिन मञ्जरियों को निहारा, हाथों ने उन्हें ही चुन-चुन कर पिरोया है। क्या आप, नाम के ही नाते से, इस हार को अपना कण्ठाभरण बनावेंगे?

आनन्द कुटीर के स्तम्भ! गर्व है इस विशाल दिव्य अट्टालिका को जो, गंगा-तीर पर उच्च मस्तक किये खड़ी है, क्योंकि इसने सुरसरि से भी पवित्र हृदय वाले, हिमालय से भी चिरस्थित, दृढ़-संकल्पी और मधु से भी मधुतर वाणी वाले देव-स्तम्भ का सहारा लिया है।

दिव्य जीवन संघ के आधार! धन्य हैं ये दिव्य जीवन के सदस्यगण, जिन्होंने आध्यात्मिक मार्ग पर आप जैसे कर्मयोगी, ज्ञानवान्, विवेकशील, सत्यभाषी, समदर्शी, कामनारहित, सद्भावुक, दयावान्, मन-कर्म तथा वचन से पूज्य गुरुदेव के बताये हुये आदेशों का आचरण करने वाले और मन को अपनी प्रतिभा द्वारा आकर्षित करने वाली नव प्रेम की मूति को पाया है।

संसार-समर के योद्धा! धन्य है आप की यह अल्प आयु और लज्जित है यह यौवन; क्योंकि यह सांसारिक समर में भोग-विलास के सुदृढ़ रथ पर सुशोभित होते हुए भी आपके आध्यात्मिक बाणों द्वारा पराजित हुआ, और अब इसमें सामर्थ्य नहीं कि यह आपके सामने अपना मस्तक उच्च करे; क्योंकि आपकी तपस्या, ब्रह्मचर्य, ईश्वर-भक्ति की तीक्ष्ण किरणों ने इसे युग-युगान्तर के लिए विदग्ध कर दिया है।

अनासक्त नर-रत्न! आश्चर्यान्वित है विधाता, आपके सुकर्मों को देख कर; क्योंकि उसने आपको निर्लेप ही रचा। आप अपने मन को, ज्ञान-रूपी अग्नि में सोने के समान शुद्ध कर, संसार-रूपी जल में कमल के पत्ते के समान—संसार में रहते हुए भी सांसारिक वस्तुओं से अनासक्त हो रह रहे हैं।

हिन्दी साहित्य महारथी! इस रथ को ले जाने में आप कितने प्रवीण, बुद्धिमान और इस विद्या के आप कितने पारंगत हैं। इसका मार्ग जितना ही अधिक दुर्गम है, आप उतने ही अधिक वेग से इसे लिये चले जा रहे हैं।

अपनी इस छोटी आयु में ही आपने संस्कृत और तमिल जैसी कठिन भाषाओं के साथ-साथ हिन्दी, अंग्रेजी आदि भाषाओं का महान् ज्ञान प्राप्त किया है, जो मनुष्य की बुद्धि को विस्मित करता है। 'योग-वेदान्त' पत्रिका

को जन्म देकर आप जिस निरन्तर प्रयत्न से उसका सम्पादन कर रहे हैं, वह अत्यन्त ही सराहनीय है। आपकी विद्वत्ता की झलक आपके द्वारा रची गई—शिवानन्द दिग्विजय तथा चैतन्य-ज्योति—इन दो पुस्तक रत्नों में मिलती है। आपकी इस कठिन और अनवरत हिन्दी सेवा के लिए हिन्दी जगत् चिरकाल तक आपका आभारी रहेगा।

आपके गुणों और सुकर्मों की व्याख्या करना जितना श्रोताओं और मनन करने वालों के लिए आनन्दप्रद है, उतना ही वक्ता और लेखक के लिए दुष्कर। ईश्वर से मेरी हार्दिक वन्दना है कि मेरे इस हार में, नव-पल्लवित मंजरियों के समान, युगों तक जगत्-कल्याण के हेतु ईश्वर आपको सुदृढ़ स्वास्थ्य और आध्यात्मिक विचारों के साथ अमर करे।

रवि चन्द्र रहें नभ में जब तक।
हो सुयश अमर तेरा तब तक॥

—श्री वासुदेव शर्मा, योग वेदान्त आरण्य विश्वविद्यालय प्रेस

परमहंस संन्यासी

विश्व जितना विशाल है, मानव इसमें इतना ही लघु है और असंख्यों की संख्या में है। क्या इस विश्व में निवास करने वाले प्राणियों पर आज तक किसी ने पूर्ण विजय प्राप्त की है? नहीं, फिर भी इस विश्व को शस्त्र या बाहुबल द्वारा तो किसी ने परास्त नहीं किया। लेकिन समय-समय पर कुछ ऐसे महान् व्यक्ति अवश्य अवतरित हुए हैं, जिन्होंने विश्व के प्राणी मात्र पर समस्त रूप से अमर विजय पाई है। उन्होंने केवल उसी युग में अवतरित मानवों पर ही विजय नहीं पाई; किन्तु कालान्तर में प्रादुर्भूत होने वाले मनुष्यों पर भी सहस्रों वर्ष पूर्व अवतरित भगवान बुद्ध की भाँति अपने समय से लेकर आज तक के प्राणियों के हृदय पर अमिट निशान अंकित किये और करते आये हैं।

क्या उन्होंने अपनी प्रेम-विजय शस्त्रों-अस्त्रों द्वारा प्राप्त की थी? क्या उन्होंने विदेशों में युद्ध किया था? क्या भगवान बुद्ध की सेना लंका, मलाया, चीन, जापान, बर्मा, इन्डोनेशिया आदि देशों में गई थी? क्या भगवान बुद्ध ने कभी शस्त्र धारण किये? क्या वे कभी शस्त्र धारण कर समरांगण में गए थे? कदापि नहीं।

उनकी अमर विजय का क्या रहस्य होगा? शान्ति, अहिंसा, सत्य, ज्ञान, उपदेश, परोपकार, दया, प्रेम आदि द्वारा उन्होंने विजय प्राप्त की। असहायों को सहारा दिया, सच्चे मार्ग से विचलित मनुष्यों को सच्चा पथ दिखाया, रोते हुओं को हँसाया, पतितों को उठाया, विलगों को मिलाया, अविश्वास, अधर्म और भौतिकता को जलाया, दुःख, शोक और ग्लानि का दहन करके सुख, शांति और सत्य का साम्राज्य स्थापित किया। संसार से घृणा करने वालों के सामने संसार के वास्तविक प्रेम का दिग्दर्शन किया। उन्होंने प्रेम से पत्थर को भी नरम बना दिया। अपने सुखों को त्याग कर जिस प्रकार उन्होंने स्वयं लौकिक भलाई करने का बीड़ा उठाया, उसी प्रकार उन्होंने दूसरों को भी इस मार्ग पर चलने को कहा। उनके उपदेश केवल उपदेश ही नहीं थे, बल्कि वे पहले स्वयं उन पर चलकर अनुभव प्राप्त करते थे; फिर उन्हीं अनुभवों को उपदेशों का रूप ग्रहण करवाते थे।

बस यही उनके अस्त्र-शस्त्र थे, जिनके द्वारा वे मानव-हृदयों पर चिरकाल के लिए विजयी रहेंगे। जिस प्रकार वे अपने युग में पूज्य थे, उससे भी अधिक आज हैं और भविष्य में इससे भी अधिक पूज्य रहेंगे।

भगवान बुद्ध के समान, समय-समय पर और भी कुछ महान् आत्माओं ने पृथ्वी पर पदार्पण किया; जैसे ईसा मसीह, मुहम्मद साहब, श्री शंकराचार्य जी, श्री रामकृष्ण परमहंस और इस युग में श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज। इन महापुरुषों को चाहे अवतार कहें या देवदूत, इसमें कुछ सन्देह नहीं कि ये सभी ईश्वर की एक विशेष शक्ति हैं। इन महापुरुषों ने परोपकार के लिए विश्व के कोने-कोने में आध्यात्मिक विचारों और शान्ति का प्रचार करके विश्व के दुःखी प्राणियों को जीवन-दान दिया है।

जिस प्रकार भगवान बुद्ध अपने ज्ञानरूपी-रथ में संसार के प्राणियों को बैठाकर, जोकि अपने पथ से भ्रष्ट हो चुके थे, पुनः सच्चे मार्ग का ज्ञान कराने के लिए, आध्यात्मिक मार्ग द्वारा ले चले थे, कई और महापुरुषों ने उसे और आगे बढ़ाया। आज भी उसी रथ को स्वामी शिवानन्द जी लिए जा रहे हैं।

लेकिन आपके शिष्यगणों में एक तपस्वी ने तो प्रण सा ही कर लिया है कि इस रथ को इसके निश्चित लक्ष्य तक पहुँचा कर ही रहूँगा। इस तपस्वी का निश्चय है कि 'ये प्राणी, जो अपना सच्चा स्वरूप भूलकर भौतिक दुनिया के अनित्य सुख में रम रहे हैं, उनको समस्त प्राणी मात्र का जो मूल स्वरूप ब्रह्म

है, वह जरूर ज्ञात कराऊँगा।' इस तपस्वी को देखकर ऐसा ज्ञात होता है कि विधाता ने इन्हें विश्व में किसी महान् कार्य के लिए ही भेजा है।

इस तपस्वी ने जीवन प्रभात के प्रथम प्रहर में ही उच्च कोटि के गुरु को खोज कर अपना समस्त जीवन उन के चरणों पर न्यौछावर किया। शिवानन्द आश्रम में खुद स्वामी जी से इन्होंने सच्चे जीवन की शिक्षा पाई। इस बालक ने अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए घोर अध्ययन किया। सरस्वती की प्राप्ति के साथ-साथ ब्रह्मचर्य, सत्य, अहिंसा, परोपकार, सेवा, दया और प्रेम का जीवन अपना कर साक्षात्कार किया। इतना ही नहीं, इतनी बाल्यावस्था में संस्कृत, अंग्रेजी, हिन्दी, तमिल आदि कई भाषाओं के पूर्ण विद्वान् बने।

ईश्वर की कृपा और गुरु के आशीर्वाद से सरस्वती ने इन्हें पवित्र वाणी दी, चन्द्र ने शीतलता और दिवाकर ने ज्ञान का प्रकाश। आपका मनो-नियन्त्रण तथा धैर्य अत्यन्त ही सराहनीय है। आपके प्रफुल्लित मुँह को देखकर आपकी ओर प्रत्येक का आकर्षित हो जाना एक प्राकृतिक बात बन गई है। आपकी वाणी में इतनी मिठास है कि उससे कानों की प्यास तृप्त ही नहीं होती।

आपने संसार के प्राणियों को अनेकों पुस्तक-रत्नों का दान दिया है। आपकी लिखित 'शिवानन्द दिग्विजय' और 'चैतन्य ज्योति' पुस्तकों को पढ़ने पर मनुष्य आपकी विद्वत्ता के अथाह समुद्र में गोते लगाने लगता है। अनेकों पुस्तकों को आपने एक भाषा से अन्य भाषाओं में अनुवाद किया है। मातृभाषा हिन्दी के उन्नति-क्षेत्र में आपने चिर-स्मरणीय कार्यों को किया है। जितने अच्छे आप लेखक हैं, उतने ही उत्तम कवि और वक्ता भी।

सामाजिक तथा लौकिक हितों की उन्नति के साथ-साथ आपको अपना निश्चय पूर्णतया याद है; आध्यात्मिक मार्ग के प्रत्येक मोड़ तथा अंग में आपने पूर्णतया ज्ञान प्राप्त किया है। इसीलिए आप आध्यात्मिक मार्ग पर ज्ञान, सत्य, शान्ति, परोपकार आदि के साथ एक तेजस्वी पथ प्रदर्शक की भाँति सुशोभित हैं; और जिनके हृदय में जीव को ब्रह्म से मिला देने की आकांक्षा हिलोरें खा रही है, वे हैं कर्मयोगी!

अपने जीवन-प्रभात के धर्मेन्द्र
वर्तमान के स्वामी सत्यानन्द सरस्वती
और भविष्य के एक परमहंस संन्यासी

धन्य हैं आपके माता-पिता! धन्य हैं आपके शुभ कार्य! धन्य हैं आपके पूज्य गुरु! और धन्य हैं आप और आपकी आयु, तथा अहोभाग्य हैं मेरे, जो मैं आपकी 31वीं जन्म-गांठ पर सम्मिलित हो रहा हूँ। भक्त वत्सल भगवान आपके प्रण की प्रतिष्ठा बढ़ावें, तथा युग-युगान्तर तक जीवों के कल्याण हेतु आपको निरोग तथा अपने कर्त्तव्य पर दृढ़तापूर्वक अमर रखें! मेरी भगवान् से यही हार्दिक आकांक्षा है।

—श्री केशव दत्त पाण्डे, योग वेदान्त आरण्य विश्वविद्यालय प्रेस

जन-जन के जीवन-उन्नायक

सौंदर्यालंकृत अल्मोड़ा नगरी के पर्वतीय गर्भ में आज से तीस वर्ष पूर्व एक महान् पुरुष ने जन्म लिया, जिसका नाम था धर्मेन्द्र। जीवन-प्रभात के जागने के साथ-साथ परमात्मा ने उनमें सूक्ष्म रूप से वैराग्य का अंकुर रोप दिया।

फलतः एक दिन सहसा वे घर त्याग कर चल पड़े—ज्ञान की खोज में, गुरु-भक्ति से पवित्र होकर अपने कल्याण के लिए। सत्य की खोज में वे ऋषिकेश की तपोभूमि में आये, जहाँ वे स्वामी शिवानन्द से दीक्षा प्राप्त कर स्वामी सत्यानन्द बन गये। स्वयं स्वामी शिवानन्द जी से ज्ञान पाकर उन्होंने जगत् को ज्ञान की ज्योति से आलोकित किया। संन्यास ग्रहण कर संन्यासियों के शिरोमणि बने, शिष्य बन कर गुरु और शिष्य दोनों का नाम यशस्वी किया, और आज धर्मप्रवर्त्तक बन कर उन्होंने अपनी उपदेशमयी वाणी को जन-जन में प्रसारित कर दिया है।

ईश्वर ने इस संसार में जितने भी महापुरुषों को जन्म दिया, उनमें स्वामी सत्यानन्द जी एक अलौकिक व्यक्तित्व हैं, जिन्होंने सोते हुए समाज को जगाया और अशान्त-मानस को शान्त किया है।

आज वे अपने जीवन के नए वर्ष में प्रवेश कर रहे हैं; उनके जीवन का प्रत्येक क्षण एक अपूर्व महत्त्व रखता है। मानवता के लिए वे क्षण इतिहासों के आश्चर्य बन गये हैं। मैं इस शुभ अवसर पर स्वामी जी को अपनी ओर से बधाई और कोटि-कोटि धन्यवादों की माला अर्पित करता हूँ और प्रार्थना करता हूँ कि स्वामी जी चिर-यशस्वी बने रहें।

—श्री हर्षमणि कुकरेती, योग वेदान्त आरण्य विश्वविद्यालय प्रेस

बहुजनहिताय बहुजनसुखाय

हिमालयोपत्यकायां पतितपावनीभगवतीभागीरथीदक्षिणे तटे स्वर्गाश्रम-सम्मुखे मुनिकीरेतीनाम्नि पवित्रे तीर्थे तपोवने विश्ववन्द्यैः श्री 1008 जगद्गुरुभिः महामण्डलेश्वरैकपदमलंकुर्वाणैः श्रीस्वामिशिवानन्दपूज्यपादैः व्यतीते अष्टादशवर्षे एकः पवित्रः शिवानन्दाश्रमः स्थापितः।

यद्यपि श्रीपूज्यपादाः स्वामिमहोदया स्वीयं महैश्वर्ये सर्वस्वं च विहाय नवयुवावस्थायामेव ब्रह्मणि लीना क्वापि एकान्तस्थाने हिमालयकन्दरे तपस्यां कुर्वाणा असारसंसारं मायाकल्पितं जलबुद्बुदोपमं मरुमरीचिकामृगतृष्णासमं मिथ्या मत्वा सर्वथा संसारतो विरक्ता आसन् तथापि 'यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्', 'कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः' इति भगवत्-उक्तिं सार्थिकां कर्तुं 'बहुजनहिताय बहुजनसुखाय' इति आर्षसिद्धान्तं श्रीबापूसम्मतं समादृत्य भौतिकविज्ञानतमोग्रस्त्रानामणुबमादिसंहारास्तद्द्वारा विश्वमानवोपरि साम्राज्यस्थापकानां मानवानां हृदयेषु प्रकाशं दातुं भगवान् बुद्धशंकरसमः आध्यात्मिकज्ञानज्योतिषा अनासक्तकर्मफलेषु च विश्वशान्त्यै न केवलं स्वमोक्षमात्रेण सर्वमोक्ष इति समीक्ष्य पूर्वोक्ताश्रमस्थापनाय प्रयत्नं कृतवन्तः।

विंशतिवर्षाणि व्यतीतानि अहमपि तदानीं टिहरीमहाराजानामौषधालये कार्ये कुर्वाणो न्यवसम् तत्र। बहुधा श्रीस्वामिनामसीमानुकृपया सत्संगति विदधान एकदा तत्राश्रमे साधनासप्ताहमहोत्सवे एकं 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' षोडशवर्षीयविपश्चितं बालकमपश्यम्।

योमहानुभावोऽल्पेवयस्येवपूर्वजन्मपुण्यसंचयेन, 'अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम्' इति नियमेन धनिनां विदुषां च गृहे जातोऽपि

यौवनं धनसम्पत्तिः प्रभुत्वमविवेकिता।
एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम्॥

इति अपवादकतां सम्पादयन् 'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः' इति च विचारयन्—

अल्पे वयसि यः शान्तः स शान्त इति मे मतिः।
धातुषु क्षीयमाणेषु शमः कस्य न जायते॥

इति सदुक्तिमनुसृत्य सांसारिकमायाकल्पितं मिथ्याबन्धनं त्यक्तुम् इतस्ततः परिभ्रमन् तपस्यया स्वशरीरं जीर्णशीर्णीकुर्वन 1008 स्वामिपादानामाश्रमे समागतो दृष्टः। अहमपि तत्र हिमालयवासिनं शिवस्वरूपं वटुं समीक्ष्य

आश्चर्यनिमग्न एवं प्रष्टुमकामयम्, 'यत्कथं श्रीमता भवता एतावति अल्पवयस्येव स्वजन्मभूमिः मातापितरौ च विरहीकृताः? कथं च संसारं त्यक्तुमिच्छुः सांसारिकसुखानि विहायात्र तपोवने समागतः?' एतस्य प्रश्नस्योत्तरे प्रत्युक्तमनेन बालकेन, 'यदहं धर्मेन्द्रनामा स्वीयं कूर्माञ्चलदेशं स्वीयं सर्वस्वं च त्यक्त्वा सांसारिकमिथ्यादुःखैः दुःखितः उद्विग्नमनाः 'अद्य मम माता मृता पुत्रो मृतः भार्या रुग्णा पुत्री दुःखिता' इत्यसारसंसारं विविच्य 'किं तेनाहं करवाणि येन नाहममृता स्याम्' इति च स्मारं स्मारं 'तमेवं विदित्वाति मृत्युमेति' इति सत्यं सुखमन्वेष्टुं 'दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिं नाशयितुं चेहागतः।'

इति श्रुत्वैव ममायं विचारो दृढीभूतो यन्नूनं अयं बालको ध्रुवप्रह्लादशुकदेवसदृशी भविष्यति! तदा प्रभृत्येव बालको धर्मेन्द्रः 'पल्लवोपनामा' श्रद्धेयजगद्गुरुस्वामिशिवानन्दमहोदयानां पादयोः स्वीयं सर्वस्वं 'त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये' इति समर्पितवान्।

श्रीजगद्गुरुभिः स्वामिभिरपि कतिपयकालपर्यन्तमयं साधु परीक्ष्य ब्रह्मचर्याश्रमे दीक्षितः। ब्रह्मचारी सत्यचैतन्य इति च नामकरणं कृतम्। अस्यामवस्थायां ब्रह्मचारी सत्यचैतन्यस्तत्रत्यान् बालकानपि अपाठयत् सदाचारशिक्षां च अददात्। एवं च महातपस्यया स्वाध्यायेन ब्रह्मवर्चसा सदाचारेण यमनियमासनप्राणायामब्रह्मचर्यादिव्रतम् पालयन्, आंग्लसंस्कृत-हिन्दीभाषायां च आचार्यपदं लभमानो ब्रह्मसूत्रोपनिषद्गीतादिग्रन्थान् अधीत्य गुरुसेवायामेव समयं व्यतीतवान्।

इदानीं ब्रह्मचारीसत्यचैतन्यो द्वाविंशद्वर्षवयस्क आसीत्। एतादृशी तरुणावस्था सुन्दरं गौरवर्णशरीरं यस्यामवस्थायामाधुनिकपाश्चात्यदीक्षाशिक्षा-दीक्षिताः यमनियमसदाचारब्रह्मचर्यव्रतरहिताश्चरित्रभ्रष्टा नवयुवका इतस्ततः वीथीकासु वाटिकासु नवयुवतीः पश्यन्ति, प्रत्यहञ्च चलचित्राणिईक्षन्ते स्वसंस्कृतिसभ्यतां च विहाय सर्वथा पथभ्रष्टा भवन्ति। परंच धन्योऽयं ब्रह्मचारी चैतन्यः! येन सर्वसाधने सत्यपि विषयान् विषवत् परित्यज्य भूयांस्यो भाषा अधीत्य स्वीयमगाधं पाण्डित्यं स्थापितम्। अथ च पाश्चात्यदीक्षादीक्षितानां जनानामुपकाराय हिन्दीसंसारे श्रीस्वामिभिः रचितानां पुस्तकानामनुवादं विधाय स्वलेखनीं श्रीगणेशवत् संगृह्य श्रीव्यासस्वरूपगुरुशिवानन्दमहानुभावोप-दिष्टानि भूयांसि ग्रन्थान् प्राकाशयत्। कतिपया हिन्दीपत्रिका अपि सम्पादयन्।

एवञ्च एतस्य महानुभावस्य पूर्वोक्तगुणैः तपस्यया चाकृष्यमाणैः श्रीस्वामिभिः 'यदहरेव विरजेत् तदहरेव प्रव्रजेत्' इति शास्त्रानुसारेण

संन्यासाश्रमे दीक्षितः। एवञ्च तपस्यापाण्डित्यसदाचारगम्भीरतोदारतादिसर्व-गुणैः सम्पन्नोऽयम् महानुभावोऽद्य प्रभृति श्रीस्वामिसत्यानन्दनाम्नाऽलंकृतः श्रीस्वामिमहाभागैः।

अथ च श्रीजगद्गुरुभिः श्रीस्वामिवर्यैः सह अयं महानुभावः दाक्षिणात्यजनपदेषु स्वीयं संस्कृतिं सभ्यतां धर्मे च प्रचारयितुं प्रस्थितवान्। तत्र तत्र यात्राया यादृक् धर्मप्रचारः कृतः तेन तत्रापि मानवानां हृदयेषु श्रीसाक्षाद्जगद्गुरूणां शंकराचार्याणां स्मृतिर्जागरिता। न केवलं भारत एव प्रत्युत मलयादिविदेशेष्वपि विजयपताकाः स्थापिताः।

पूर्वोक्तदिग्विजययात्राविषये च स्मारकस्वरूपः एको महान् ग्रन्थो हिन्दीभाषायां लिखित्वा प्रकाशितः।

यथैषां वाचि वीर्यं तथा लेखनेऽपि शक्तिः विद्यते। इदानीन्तनानां हिन्दीभाषायाः प्रसिद्धलेखकानां सम्पादकानां च सर्वे गुणा अस्मिन् महानुभावे सन्ति। लेखने भाषासौन्दर्ये प्रसादगुणः अनुप्रासोपमोत्प्रेक्षादयः अलंकारा भवन्ति। कवितानिर्माणेऽपि स्वाभाविकी बुद्धिरेषा अतएव पल्लवोपनामसार्थकतां घत्ते।

अस्मिन् मासि षड्विंशतिदिनांकेऽस्य महानुभावस्य एकत्रिंशद्वर्षजयन्ती आश्रमवासिभिरन्यैश्च परमभक्तैः अभिनन्दनग्रन्थसमर्पणेन विधीयते। अतो मयापि कतिपयाः शब्दा एतेषां स्तुतौ प्रस्तुताः न तत्र कापि अतिशयोक्तिः।

आशासे यदयं महाभागः श्रीभगवतोऽसीमकृपया श्रीगुरुवराणां स्वामिनां चाशिषा च चिरञ्जीवी शतायुभूर्यात्। अथ च भाविसमये बुद्धशंकरदयानन्दसम एव संसारे आध्यात्मिकज्ञानज्योतिषः प्रकाशेन विश्व युद्धभौतिकवादविभीषकाभीतानां मानवानामज्ञानध्वान्तं दूरीकृत्य सम्पूर्णविश्वे विश्वबन्धुता विश्वनागरिकता विश्वशान्तिराध्यात्मिकता मानवता च येन स्यात् चिरायुषी तथा प्रयतेत। भूयाच्चैतादृशी शक्तिरस्मिन् महानुभावे यया 'कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः' इति वेदमन्त्रोऽपि सार्थको भवेत्। समर्थयेच्च सम्पूर्णविश्वमानवो भारतीयमहर्षीणामादर्शनादं गान्धीवादमिमम् सर्वोदयसम्मेलनाय।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभाग्भवेत्॥

–पंडित विष्णु दत्त शास्त्री, वेदान्ताचार्य, वैद्य-वाचस्पति, ऋषिकेश

विवेकचूडामणिः

मिष्टालाप-परायणोऽतिसरलो नानागुणालंकृतः।
विद्यामार्जितशेमुषी च कुशलः कान्तः सुशान्ताग्रणीः॥
सद्भावप्रतिपन्नशेखरस्तु सततं सौम्योति कर्मक्षमः।
सेवाधर्मदयादिमंडिततनुमुक्तो भवान् बन्धनात्॥

जिह्वा मेऽतिशयाक्षमा तव गुणान् गातुं प्रयत्नं मुधा।
त्वन्मार्गंपरिमार्गितुं हृदि च मे शक्तिः समागच्छतु॥
मायापल्वलवारिपानतृषितं दुष्टं मनो मेऽनिशम्।
त्वत्कारुण्यगभीरवारिधिजलं पीत्वा तु पूतं भवेत्॥

कान्तां ते लपनाकृतिं मधुमयीं वाचं सुधावर्षिणीं।
नित्यं स्मेरमुखं कलाकरतनुं ज्ञानाग्निदीप्तां पुनः॥
दृष्ट्वा को मुदितो भवेन्नहि सदा कुर्वीत वानादरं।
हे संन्यासिशिरोमणे तव कृपाभाक् वै भवेयं क्षणं॥

त्वद्भक्त्या परितुष्टमानसगुरुब्रह्माग्निदीप्तः शिवः।
नित्य प्रेम प्रदीयतेऽमरतनुं कुर्वन्श्च तेजोमयीं॥
क्षेमं ते परिचिन्तयन् स्वहृदयेऽज्ञानान्धकारं मुहुः।
नश्यन् पुत्रवदेव रक्षति च ते दीर्घायुषं वांछति॥

सेवाभावपरायणे त्वयि गुरोः प्रीतिः प्रभूता सदा।
दृष्ट्वा ते कविताकलां च सरलं शान्तस्वभावं पुनः॥
सर्वराश्रमवासिभिश्च सुमुदा संन्यासिभिः प्रीयसे।
अद्याहं परिपूजयामि चरणं भक्तिप्रसूनैर्मुदा॥

मत्वेदं भवबन्धनं विषमयं भोगांश्च सांसारिकान्।
संन्यासं शरणं गतोऽसि पितरौ हित्वा च सद्बान्धवान्॥
मार्गेऽस्मिन् सततं हिमाचल इव स्थित्वा स्वशक्त्या पुनः।
ध्यात्वा श्रीशपदाम्बुज गुरुपदं लक्ष्यं लभस्वाशु ते॥

अद्येऽस्मिन् शुभवासरे परिमले प्रेमाम्बुभिः सज्जनाः।
एते ते कुशलाभिलाषिण इति सिंचन्त्वभीक्ष्णं मुदा॥
त्वच्छ्रेयोऽभिलषंतु ब्रह्मपदवीसेवापराः योगिनः।
आयुस्ते द्विगुणं करोतु भगवान् चन्द्रार्द्धचूडामणिः॥

विश्वेशः परिपालयत्वविरतं शश्वत् स्वधर्मे मतिं।
दत्वा ते कुशलं करोतु मनसस्तापं विनाशयन् विभुः॥
अज्ञोऽहं महतां यशो रसनया गातुं न शक्यः कदा।
सत्यानन्दगुणावलीं तु सततं ध्यात्वा भवेयं सुखी॥

–श्री गिरिधारी मिश्रा, राष्ट्रभाषारत्न साहित्याचार्य

चिरंजीवतु!

सत्यानन्द महामते सच्चित्सुखार्णव प्रिय।
मुक्ताम्बिकाननागतां श्रुत्वा गिरं शुभंकरीम् ॥1॥

तत्ते प्रीतिकरं जन्मदिनमहोत्सवं प्रति।
तुष्टा चितिस्वरूपा मे सा नन्दति ह संततम् ॥2॥

एकत्रिंशत्तमे तत्ते जन्मोत्सवतिथौ सुहृत्।
शिवंकरं शिवानन्दं प्रार्थयेऽभीष्टसिद्धये ॥3॥

शिवानन्द स्वामिन् तवचरणयोः संस्थपटुधीः।
चतुर्वेदी सत्यः सुललितवपुर्मुद्रणपरः ॥4॥

स्वभक्त्या चोत्कृष्टो बहुगुणगणैर्मण्डितमहान्।
स सत्यानन्दोऽयं तव करुणया जीवतु चिरम् ॥5॥

–श्री स्वामी तुरीयानन्द सरस्वती

अनुग्रहप्रदर्शनम्

सानुग्रहविशेषं प्रहितं पुस्तकत्रयं प्राप्य परमानन्दमन्वभुवम्। आत्मज्ञानानुभवं स्वामिपादैः सम्पादितः जगदुद्दिधीर्षया पुस्तकरूपेण भक्तानां परमात्मज्ञान-सम्पत्तये भुवमभितः प्रसरतीति महदिदं भागधेयं मन्ये नानाविधतापत्रयपीडित-जीवकोटिष्वन्तर्गतोऽहम्। प्रापञ्चिककर्त्तव्यविशेषेषु व्यग्रचित्तोऽप्यहं मध्ये मध्ये लभ्यमानेऽवकाशे तत्पठनेन जन्मनः सार्थक्यमधिगन्तुं प्रयतिष्ये।

–के.वी.कृष्णमूर्ति शास्त्री, डेक्कन कॉलेज रिसर्च इन्स्टीच्यूट, पुणे

सत्यानन्दमहामतिर्विजयते

सच्चित्सुखं सदैकं यच्छिवानन्द इति श्रुतम् ।
आत्मानमखिलाधारमाश्रयेऽभीष्टसिद्धये ॥
भक्त्या लालयति प्रभुः सहचरानेकात्मदृष्ट्या ननु
त्यक्त्वा स्वात्महितं तथा प्रियकरः सत्कर्मकृत्तत्परः ।
स श्रीभिः परिमण्डितश्च गुणवान् विख्यातकीर्तिर्विभुः
सत्यानन्दमहामतिर्विजयते वेदान्तपारंगतः ॥1॥
शान्तात्मा द्युतिमान् क्षमी स्थिरसुहृद्गीतप्रियोऽयं सदा
आत्मज्ञानोपचयं हि वांछति परं सर्वेषु च प्राणिषु ।
स स्वक्षो बहुकाव्यकृत् सुवचनः क्षिप्रप्रसादो महान्
सत्यानन्दमहामतिर्विजयते वेदान्तपारंगतः ॥2॥
सेवाज्ञः कुरुते परां गुरुवरस्यांघ्र्यब्जसेवामतिं
त्यक्त्वा स्वास्थ्यविधिं प्रियेन सकले स्वेनैव वा कर्मणा ।
सत्पूज्यो जलदैवजो मम सुहृद् वीर्यान्वितोऽयं सुखी
सत्यानन्दमहामतिर्विजयते वेदान्तपारंगतः ॥3॥

(जलदैवजः–पूर्वाषाढानक्षत्रजः)
हयारूढे चन्द्रे नृमिथुनगते चासुरगुरौ
तथार्कौ पाथोने ज्ञकुतनयसंगै दिनपतौ।
कुलीरे जूकस्थे तदनु च गुरौ होदयगते
त्वगौ सिंहे जातः स्फटिकहंससत्यो विजयते॥

–श्री स्वामी तुरीयानन्द सरस्वती

तत्त्वज्ञस्वामिसत्यानन्दवर्यः

सत्यभक्तं सदा शान्तं तत्त्वज्ञं चैव योगिनम्।
शिवानन्दं च तच्छिष्यं सत्यानन्दं नमाम्यहम्॥

अद्य हि परमानन्दसन्दोहश्रोत्रियब्रह्मनिष्ठसकलदर्शनशास्त्ररहस्यज्ञविशुद्ध-बुद्धिसमस्तजनसमभ्यर्चितपतितपावनीसुरतटिनीतटे हिमगिरीमार्गस्थानन्द-कुटीरनिवासिनां श्रीयोगीश्वरस्वामिशिवानन्दवर्याणां शिष्यवर्यस्य मन्मित्र-कविवरयोगवेदान्तन्यायसांख्यपुराणेतिहासतन्त्रकाव्यनाटकतत्त्वज्ञ-श्रीस्वामिसत्यानन्दस्य जन्मतिथिः समुपस्थिताऽस्ति, अतः सर्वैभक्ताग्रगण्यैः, मोक्षकामुकैः, सत्यासत्यविवेचकैः, भारतभारतीपाठकैर्महानुभावैरेकमनसा दत्तचित्तेन वा जन्मतिथिरियं सम्पन्ना कार्या।

सर्वप्रथम मिलित्वा मातुः भागीरथीदेव्याः कलिमलविध्वंसशक्तिर्गीयतां यतः सा शक्तिदा बलदा चैव ज्ञानविज्ञानदा तथा मोक्षप्रदा शिवोपास्या च सत्यरक्षका सदा, न हि तावत् कश्चिन् महानुभावो यो गंगा गंगा इति न ब्रूयात्, तस्मादेव सर्वे पाठकाः सादरं प्रार्थ्यन्ते, गीयताम्।

पतितपावनीं चैव विष्णुचरणसम्भवाम्।
विबुधैः पूजितां नित्यं भागीरथीं भजामहे॥

सर्वजागतिकास्तथैव स्वर्गीयाः प्राणिनः चारुतया विदन्ति यत् जीवितं क्षणिकं नश्वरं दुःखपूर्णं भगवद्भक्तिरेवामृतमयानन्ददायिनी सुखकरा शाश्वता मोक्षप्रदा च परंच विदन्नपि सहस्रेषु कश्चिदेक एव भगवन्तं कायेन वाचा मनसा भजते मुक्तिं च शाश्वतां प्राप्नोति। पाठकेष्वधिकतराः सदैव कृष्णमुखोच्चरितां कृष्णद्वैपायननिबद्धां रचितां वा गीतामधीयन्ते परन्तु तेषु कतिपया एव तात्त्विकभावेन गीतामनुव्रजन्ति य अनुसरन्ति त एव भगवद्भक्तिं भजन्ते निर्वाणत्वं च व्रजन्ति नहि सर्वे अपि।

मानवेष्वधिकतरमहानुभावाः स्वीययथार्थजीवनोद्देश्यमपहाय दन्द्रम्य-माणा इतस्ततो म्रियन्ते जायन्ते च। अधुनापि सर्वत्र सर्वे मानवा अथपरा एव दरीदृश्यन्ते द्रव्यार्जनार्थं सर्वाननुचितानुपायान् स्वायत्तीकृत्य कायेन मनसा वाचा सदैव प्रयतन्ते। अथतरविषये वार्तामपि कर्तुं न कामयन्ते। यस्य कस्य सर्वस्य मुखात् विना धनसम्बन्धिकं शब्द एकोऽपि न निःसरति।

अर्थपरा मर्त्याः पुरापि सर्वथासन्नेव, अधार्मिका अन्यायात्याचारिनास्तिका आसन्नेव। अन्यथा भगवता गोपालकृष्णेन गीतायामित्थं किं लिखितमासीत्–

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारतेत्यादि मिलति। अतः सिद्ध्यति यद् भारतस्य गौरवकाव्यनाटकसाहित्यसंस्कृतिसभ्यतायोगवेदवेदान्तकर्मधर्मदर्शन रक्षणाय युगे युगे युगावतारा भवन्ति, जनान् पाठयन्ति पुरातनविद्यावैभवादयः स्मारयन्ति, अध्यात्मविद्यां शिक्षन्ते च। वार्त्तमानिकशताब्द्यां खलु तावत् संसारस्य सर्वेषु भागेषु अशान्तेः स्थायिसाम्राज्यं दृग्गोचरायते तत्प्रमुखकारणं तु स्वार्थपरायणत्वमेव मन्ये यतः सर्वदेशीयाः स्वीयराष्ट्रोन्नतये परानन्नपराधान् हन्तुमिच्छन्ति तस्य निराकरणाय कौपीनधारिणो भारतीयाः साधव एव प्रभविष्यन्ति मनागपि तत्र सन्देहो न कार्यः।

तत्त्वमवगच्छति वेत्ति जानाति तत्त्वज्ञः कथ्यते, किं नाम तावत् तत्त्वमित्याशंकायाम् 'पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशादिरूपतत्त्वम्, जीवब्रह्माभेद-प्रतिपादकज्ञानं तत्त्वम् सत्यत्वावच्छिन्नत्वं नित्यत्वावच्छिन्नवत्त्वं तत्त्वम् भवति' यथा योगवेदान्तशब्दकोषेपि तथैवार्थो मिलति–

तत्त्वम्= Element, Reality, Truth, Essence, Principle.

अस्माकं प्रबन्धस्य नायकः समुचितरूपेण तत्त्वमवगच्छति ज्ञापयति च। सदैवौपनिषदिकज्ञानं परमार्थरूपेण साधकेभ्यो वितरति। गीतोपनिषद्भागवत वेदान्तन्यायान् नित्यं युक्त्या बुद्ध्या तर्केण च शिक्षयति।

तत्त्वज्ञानी श्रीस्वामिसत्यानन्दस्य अगस्तमासस्य शुभे वासरे त्रिंशत्सम्वत्सरेभ्यः प्राक् 1923 शताब्द्यां देवभूमावल्मोडामण्डलान्तर्गते स भगवद्गीतावाक्यानुसारेण सभ्यसंस्कृतपठितधनधान्यादि 'सुसम्पन्ने वंशे' जन्म लेभे। यद्यपि खल्वस्मिन् मरणशीले संसारे नानाप्राणिनो जायन्ते विविधानि कर्माणि कुर्वन्ति म्रियन्ते च परंच जीवितं तस्यैव साफल्यमाप्नोति यो मुक्तये सदैव परात्परपरमेश्वरं जपति भजते स्मरति कीर्तयति चिन्तयति च नान्येषां मायामोहजनिताज्ञानतिमिरपतितानां भगवद्भक्तिपरांमुखानां स्वार्थमतिमतामर्थ-पराणाम् वा।

नहि तावन् मानवो मुच्यते विना ज्ञानेन, ज्ञानाभावत्वमेव जन्ममृत्युत्वम् ज्ञानाप्तये प्रयत्नावश्यकं कथितं यतः प्रयत्नेन सिद्ध्यन्ति कार्याणि न तु प्रतिज्ञा-मात्रेण तस्मात् सिद्ध्यति यत् जीवनमुक्तये प्रयत्नानां महत्यावश्यकता भवति प्रयतमाणो जीवः कालानन्तरं संसारदुःखबन्धनात् मुच्यते तद्यथा, 'कालेनात्मनि विन्दति' एकजन्मनि जीवो न मुच्यते प्रत्युत, 'अनेक जन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम्।' तत्रापि स एव मुच्यते यः सन्ततं निरन्तरं तथा तपः कुरुते नान्यः। मया बहवः पुरुषाः कथयन्तः श्रुता यत् प्रखरप्रयतमाणेष्वपि साफल्यं न मिलति

परंच ते मुधैव तथाऽऽलपन्ति यतो हि भगवती गीतायामंकितं प्रकटितं वा, 'नहि कल्याणकृत् कश्चिद् दुर्गतिं तात गच्छति'। परंचात्र श्रद्धाविश्वासाभ्यामेव कार्यसिद्धिर्जायते। 'श्रद्धावान् लभते ज्ञानं' अश्रद्दधाना न कुत्रापि सुखं न ज्ञानं न च मोक्षं, ते तु खल्वसारे संसारेस्मिन् मशककीटपतंगमृगाखुवज् जायन्ते म्रियन्ते च। प्रबन्धनायकोऽस्माकमसाधारणत्वेनानायासेनैव ज्ञातव्यवस्तूनां ज्ञानमाप्तवान्। बहुविधैः सुमधुरदुग्धदधिघृतनवनीतफलमेवं मिष्ठान्न-कपेटिकौदनसूपशाकादिभिः पितृभ्यां शिशुरयं सानन्देन सोत्साहेन च संबधितः तथा सुशिक्षितमातृपितृभ्यां स प्राथमिकशिक्षया सुशिक्षितः।

माध्यमिकशिक्षोपलब्धये शिशोरस्य पिता तं आंग्लविद्यालयं निनाय यत्र स स्वीयशक्त्यनुसारेण सर्वा विद्या अधीतवान्। तथा कृते सति स स्वीयादरणीय-भवनमगमत्। स सदैव भगवद्भक्तिं क्रियमाणः कालमतिवाहितवान्। प्रकृतिप्रियोऽयं बालः प्रकृतेश्चित्रणं कर्तुमारब्धवान्, फलतः कतिपयस्वाभावि कसुमधुरसारगर्भितसरसालंकारध्वनिव्यंजनायुक्तान् पद्यान् रचितवान्।

एकदा विना किमपि सूचयित्वा स एकाकी गृहान्निर्गत्य जीवनप्रहेलिकायाः समाधानार्थमचलत्। देशदेशान्तरेभ्यः संभ्रम्य व्यग्रचेतसा तपोभूमिं हृषीकेशमगमत्। स दक्षं शान्तं शुद्धं ब्रह्मकोविदं ध्यानपरायणं सत्यपथप्रदर्शकं गुरुवर्यमानन्दकुटीरनिवासिनमनन्तविभूषितं संसारविश्रुतं श्रीस्वामिशिवानन्द-वर्यं प्राप्य परिव्राजकत्वमग्रहीत्—तुर्याश्रमं स्वीकृतवान्।

तदारभ्याद्यावधि स्वामिसत्यानन्दवर्यः सदैव स्वीयगुरुपादौ समभ्यर्च्य तत्त्वज्ञानपरायणो यतीन्द्रः 'शिवोऽहं शिवोऽहं' जपति। नित्यमेव सत्यानन्दः सत्यान्वेषी योगवेदान्तप्रचाराय कायेन वासा मनसा शिवाज्ञया प्रयतमानो जाह्नवीकूलमुपतिष्ठते भजते च।

शिवो माता शिवस्तातः, शिवो भ्राता शिवो गुरुः।
शिवो ज्ञानं शिवो ध्यानं, शिवो मोक्षं शिवः सुखम्॥

लेखको यदा कदा प्रबन्धपात्रं स्वामिसत्यानन्दं मिलति तेन सह चिरकाल-पर्यन्तमीश्वरविषयकं लोकविषयकं राज्यविषयकं व्यापारविषयकमध्यात्म-विषयकं च प्रश्नं पृच्छति फलतः स सर्वेषां प्रश्नानां याथातथ्यं क्रमशस्तर्कबुद्ध्योत्तरं ददाति।

श्रीस्वामिसत्यानन्दवर्यः केवलतत्त्वज्ञ एव नास्ति प्रत्युत सामाजिकराष्ट्रिय-अन्तर्राष्ट्रियराजनैतिकव्यापारिकसाहित्यिकधार्मिकाध्यात्मिकोन्नतये स प्रयतते स्वीयानवरतगामिन्या लेखन्या लेखाः प्रबन्धान् कविताश्च लिखति। कदाचित्

पाठकैः शिवानन्द-दिग्विजयस्य तथा चैतन्यज्योतेः पठनस्यावसरमवश्यं लब्धं भवेत्। इमे पुस्तके सुन्दरे सारगर्भिते च स्तः।

नहि तावदधिकलेखनोपि तस्य महत्त्वं प्रकटितुं समर्थोस्मि। इच्छामि तं शिवाज्ञां परिपालयन्तं स्वस्थशरीरिणं चिरजीविनं लोककल्याणं कुर्वन्तं सदा प्राप्ततत्त्वज्ञानरक्षकं भगवच्चिन्तकं सत्यासत्यविवेचकं तत्त्वज्ञ-स्वामिसत्यानन्दवर्यं कुशलं परमात्मा कुर्यात् इति प्रार्थये तदर्थम्—नित्यं शिवं शान्तम् स्वीयपूज्यपादगुरुवर्यं तथैव च।

परोपकारतत्त्वज्ञं कार्यदक्षं च कोविदम्।
सत्यानन्दं सुसंज्ञकम्, स्वीयमित्रं नमाम्यहम्॥

—श्री स्वामी भीमानन्द शास्त्री, ऋषिकेश

सद्वर्याणां योग्यः शिष्यः

सर्वे विद्वद्वर्याः परमार्थपरायणाः सज्जनाः साधवो जानन्त्येव यत् परमहंसश्रीमत्-स्वामिशिवानन्दमहाराजाः सम्प्रत्यस्मद्देशे भारतवर्षे हिमालयस्यानुपमाः सन्तः सन्ति। तेषामप्रतिमप्रतिभामवलोक्य वैदेशिका अन्यान्यदेशीया अपि नतमस्तकाः सन्तः मुक्तकण्ठेन कीर्तेर्गानं कुर्वन्ति। ते हिमालयतः पुनः शान्तिसंस्थापनार्थं बहूनि मासिकसाप्ताहिकपत्राणि निष्कासयन्ति। तेषु 'योग-वेदान्त-आरोग्यजीवनसंयुक्त' नाम पत्रं प्रगाढपाण्डित्येन, अपरिमिताध्ययनेन, प्राचीनार्वाचीनसभ्यतासंस्कृतिसाहित्यसमन्वयेन चास्माभिः सम्मान्यः श्रीमत्-स्वामिसत्यानन्दसरस्वतीमहानुभावः संचालयत्यधुना। तत्पत्रसम्पादकस्य विषये एवाद्याहं किञ्चिल्लिखितुमारभे।

एकदाऽहं शिवानन्दनगरान्तर्गते योगवेदान्तआरण्यविश्वविद्यालये गतवान्। तत्र च श्रीस्वामिसत्यानन्दमहानुभावेन साकं मे वार्तालापो योगवेदान्त-हिन्दी-मासिकपत्रमवलम्ब्य समभवत्। तदा मम मनस्येकः प्रश्नः संजातः। तदुत्तरे स्वामिना सम्पादकमहोदयेन स्वपरिचयस्त्वित्थंप्रकारेण दत्तो यत्—'अस्य शरीरस्योत्पत्तिः अल्मोड़ामण्डले जाता। विद्यालये श्रेणिनिर्धारितपाठ्य-क्रमानुसारेणैव मया संस्कृतभाषा पठिता। नाहं यस्यां कस्याञ्चित् संस्कृतपाठशालायां संस्कृतभाषामध्यैयि। मम परिचारकाः मातृपित्रादयोऽपि संस्कृतभाषायाः पूर्णज्ञा विद्वांसः आसन्। अतो मया गृहे एव किंचित्संस्कृतभाषाया ज्ञानं प्राप्तम्।' अलम्, एतावन्मात्रपरिचयादवगतोऽहम्। नाहं यत्रकुत्राप्यपठं

यत्कस्मिन् संवति, कस्यां जातौ, समुत्पन्नः, कदा श्रीमत्स्वामिशिवानन्द-महाराजेन दीक्षितः, कदा च क्व न्यवसत्, कदा च का परीक्षोत्तीर्णा कृता, कदा च कस्मिन् देशे भ्रमणं कृतम्। जानाम्यहं तु केवलमेतदेको भगवच्छ्रीकृष्णस्य गीतोक्तादेशस्य 'नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः', 'तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर', 'असक्तो ह्याचरन् कर्म परमाप्नोति पूरूषः', 'कुर्याद्विद्वांस्तथासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम्', 'काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः', 'सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः', 'यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते', 'कर्माणि संगं त्यक्त्वा फलानि च कर्त्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम्' पूर्णरूपेण-अनुगामी-पालकोऽस्ति; अतोऽयमेकः सत्संन्यासी, महात्मा वर्तते। सर्वैः सद्विचारकैः सज्जनैश्चानेन सह वेदान्तविषयक-वार्तालापः संगो हि विधेयः। एतद्विषये केवलमेतदेव श्रुतं यत् स्वामिशिवानन्दैः अस्य दीक्षादानकाले चोक्तं–'यदद्य मया मनोऽभिलषितो योग्यः शिष्यः प्राप्तः। भविष्ये मे कार्यविस्तारेऽयं सहायकः सफलश्च भविष्यति।' पुनश्च परीक्षानन्तरे श्रीसत्यानन्दस्वामिनं सर्वथा सुयोग्यं मत्वा कालानन्तरे योगवेदान्तारण्यविश्वविद्यालयन्त्र-(प्रेस)-सम्बन्धीनि सर्वाणि कार्याणि चास्याधिकारे कृतानि स्वामिशिवानन्दपरमहंसैः। अधुना स्वबुद्धिबलेन, विनम्रस्वभावेन, कार्यकुशलतया च सर्वाणि तत्सम्बन्धीनि कार्याणि शोभनप्रकारेण संचालयति स इति जानन्त्येव तत्सम्बन्धानुविधायिनः। योगवेदान्तमासिकपत्रसम्पादकत्वे नास्ति कापि त्रुटिः। स्वामिवर्यस्य पाण्डित्येन प्रतिदिनं पत्रस्य महत्त्वाधिक्यमेवावलोकयामहे।

श्रीस्वामिसत्यानन्दसरस्वतिः युवा संन्यासी संस्कृत, हिन्दी, आंग्ल, गुजरातीत्यादिभाषाणां विद्वानस्ति। यत्र कुत्र मया तेन विरचिता बहवः स्फुटविषयकाः श्लोकाः पठिताः। येऽस्य पाण्डित्यप्रकर्षं प्रकटयन्ति। रचनाशैली चास्यातीवमनोहारिणी। इह तावत्तस्यैका रचना दीयते, यस्यां स्व-गुरुश्रीशिवानन्दस्वामिनां परिचयः स्तुतिरूपेण निबद्धोऽस्ति।

गंगातटस्थं चिरयोगिराजं योगे रमन्तुं शुचिशान्तमूर्तिम्।
आनन्दसंस्थं विपिने वसन्तं काषायवन्तं सततं नमामि॥
ज्ञाने विशालं क्षितिदेहभालं पूर्णाभिरामं परिपूर्णकामम्।
योगिशिवानन्दमनन्तरूपं कैवल्यवासं सततं नमामि॥
कल्याणहेतुं कृतधर्मसेतुं श्रीविश्वनाथस्य कृतप्रतिष्ठम्।
धर्मावतारं विमलप्रकाशं विश्वस्य भासं सततं नमामि॥

इत्यादयः। एतैः श्लोकैर्ज्ञायते यत्तेषां पाण्डित्यविषये विशेषपरिचयस्य काप्यावश्यकता न विद्यते। तेन हिन्दीभाषायां 'चैतन्यज्योति' आदीनि बहूनि पुस्तकानि लिखितानि। हिन्दीभाषायां श्रीशिवानन्दस्वामिलिखितग्रन्थानामनुवादं व्यरचयत्। तस्य भाषा परिष्कृता संस्कृतनिष्ठा पाण्डित्यपूर्णा अस्ति। अस्माकं आध्यात्मिकपुरुषाणामेको नियतो नियमो विद्यते यत् 'ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः' तावदस्माकं शरीरं सर्वेषामेव अनित्यं क्षणभंगुरम्। अतोऽस्य देहस्य कः परिचयः। इति पूर्वोक्तमहापुरुषाणां सिद्धान्तं पुरस्कृत्यैव मया श्रीस्वामिसत्यानन्दमहात्मनो भौतिकपरिचयस्य आवश्यकता न स्वीकृता। नैव च तस्य परिचयस्यानुसन्धानमलभे। निजश्रेष्ठगुणानुसारेण श्रीस्वामि-सत्यानन्दसरस्वतिः सर्वेषां सर्वथा सम्मान्यव्यक्तिरस्ति। अतः उपरोक्तैः कतिपयश्लोकैश्च सश्रद्धसम्मानः प्रदीयते मयापि।

—श्री स्वामी गोविन्दानन्द शास्त्री 'दादूपंथी', ऋषिकेश



सत्यम् स्मृति संग्रह

योगविद्या में प्रकाशित सत्यम् स्मृतियों का संग्रह

बिहार योग विद्यालय द्वारा प्रकाशन – 1963-2009, 2013



योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत

सत्यम् स्मृति संग्रह

अपनी स्वर्ण जयन्ती के अवसर पर बिहार योग विद्यालय अपने संस्थापक और प्रणेता, श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती को समर्पित स्तुतियों, प्रशस्तियों और स्मृतियों का चयनित संकलन प्रस्तुत कर रहा है। विगत पाँच दशकों में योगविद्या पत्रिका वह माध्यम बनी, जिसके द्वारा शिष्य, भक्त, मित्र, शुभाकांक्षी, प्रशंसक और सहयोगी उस महान् युगद्रष्टा योगी और गुरु के प्रति अपनी हार्दिक भावनाएँ अभिव्यक्त कर पाए। चाहे वह जीवन की दिशा बदल देने वाली एक व्यक्तिगत भेंट का संस्मरण हो, या रोग-निदान के लिए दी गई अचूक विधि की स्मृति या जीवन के झंझावातों को झेलने की अजस्र प्रेरणा, इन सभी कृतियों में श्री स्वामीजी के प्रति असीम प्रेम, श्रद्धा, आत्मीयता और कृतज्ञता की भावना स्पष्टतया परिलक्षित होती है।

–*सम्पादक*

सत्यम् स्मृति संग्रह

मुंगेर की मिट्टी और संन्यासी का तप

आज की धार्मिकता अपने गौरव को छोड़ हल्की हो गयी है। माँ दुर्गा अथवा माँ काली की जय हम जिस महत्ता को लेकर करते थे, अब वह नहीं रही, हमारी धार्मिकता लाउड स्पीकर की कर्ण-कटु आवाज में सिमटने लगी है।

पर रामनवमी का त्योहार मुंगेर के लिए उसी प्राचीन गौरव की गरिमा को लेकर आश्रम में होते देखा। करीब ढाई सौ व्यक्तियों को, जिनमें अधिक संख्या में बड़े घरों की शिक्षित महिलाएँ थीं, राम नवमी के दिन बिहार योग विद्यालय में जागरण, रामायण पाठ के समावर्तन समारोह पर श्री स्वामी सत्यानन्द जी के साथ रामधुन गाते देखा गया, वातावरण शान्त व सौम्य था।

एक लड़की आगे बढ़ी, अपने व्यक्तित्व को स्वयं में समाहित किये। उसने भजन गाया, सुमधुर स्वर में तुलसीदासजी को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए, स्वर धीरे-धीरे मन्द होता गया, फिर अपनी सौम्य आकृति से वह अपने स्थान पर लौट आयी, वहाँ किसी ने ताली नहीं बजायी, शान्त व पवित्र वातावरण था, फिर श्री स्वामीजी का प्रवचन हुआ और उसके बाद प्रसाद वितरण।

आज से कुछ महीने पहले, इस स्थान की अवस्था क्या थी? कोई भी व्यक्ति इस स्थान में आने-जाने में हिचकता था, और आज अलाउद्दीन के चिराग जैसे, यह स्थान एक छोटे आश्रम में परिवर्तित हो गया। एक मंदिर के रूप में, जहाँ कोई मूर्ति नहीं, केवल शान्ति से एक दीया, जो जला, सदा जलता रहेगा। योगियों के योगी स्वामी शिवानन्द जी के स्मृति स्वरूप इस मंदिर में कोई मूर्ति नहीं, कोई आडम्बर नहीं, कोई शृंगार नहीं, सिर्फ ऋषिकेश के संत शिवानन्द जी की मंद मुस्कान को छोड़कर।

यह सुन्दर भवन और युवक संन्यासी, जिन्होंने अपने सम्पूर्ण जीवन को योग के पुनरुत्थान के लिए अर्पण किया, श्री केदारनाथ जी गोयनका के दान-स्वरूप है। ठीक उसी तरह, जिस तरह शिवालय, धर्मशाला और चण्डिका स्थान, आदि मुंगेर की जनता के लिए गोयनका परिवार के दान-स्वरूप हैं।

इस परिवार ने जनता और समाज को सब कुछ दिया है। सदा से उपेक्षित वह स्थान जो कुछ अधूरा-सा लगता था, अकस्मात् आश्रम बनने के बाद जीवित हो उठा, मानो शिवालय की पवित्रता और सौन्दर्य को द्विगुणित करने के लिए ही साकार रूप पाया हो।

आज हर व्यक्ति अपने मन की अशान्ति और शरीर का कष्ट लेकर वहाँ जाता है, और उस वातावरण से प्रभावित होकर एक अपूर्व शान्ति पाता है। हर आने वाले के लिए आश्रम की दुनिया ही दूसरी है, शान्त व पवित्र।

ऐतिहासिक महत्त्व की वस्तुओं की रक्षा होनी चाहिए, जिससे कि अतीत का गौरवमय इतिहास प्रत्यक्ष बना रहे। इससे हम न केवल अपनी ऐतिहासिकता की रक्षा करेंगे, बल्कि नगर का सौन्दर्य भी बढ़ जाएगा, और यह स्थान भी दर्शनीय हो जायेगा। हो सकता है आज के इस आधुनिक योग स्कूल और इसके ठीक सामने का प्राचीन ऐतिहासिक खण्डहर-स्थल, कल विदेशियों के लिए आकर्षण का केन्द्र हो जाए, और तभी मुंगेर की मिट्टी की पवित्रता लौटाई जा सकेगी।

–श्री देवेन्द्रनाथ गुप्ता, 1964

आत्म-चिन्तन

गत कुछ वर्षों से परमहंस स्वामी सत्यानन्द जी के सम्पर्क में आकर मुझे कुछ महत्त्वपूर्ण साधना करने का अवसर मिला तथा प्राप्त हो रहा है। इन साधनाओं को अपने जीवन में उतारकर मैं ऐसा अनुभव करती हूँ कि ईश्वर की ओर जाने का जो वास्तविक मार्ग है, उसका पता मुझे लग गया है। हो सकता है यह मेरा भ्रम हो, पर मैं चाहती हूँ कि मेरा यह भ्रम बना रहे।

स्वामीजी सदा यह कहा करते हैं कि प्रकाश और अंधेरा दोनों हैं जरूर, परन्तु एक-दूसरे से दूर। जहाँ प्रकाश है, वहाँ अंधेरा नहीं मिलेगा। परन्तु प्रकाश का अनुभव तभी करोगे जब तुम पहले अंधेरा देख चुके हो। प्रकाश और अंधेरे के समान प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में दु:ख और सुख की छाया सदा बनी रहती है। इन दोनों को समझने के लिये भी एक कला की आवश्यकता होती है। यदि किसी व्यक्ति को सुख की प्राप्ति होती है तो अवश्य ही इसके पहले दु:ख का अनुभव उसने किया होगा। यदि सुख-दु:ख को उसने एक समान समझा होगा या ऐसा कहा जाए कि वह सुख-दु:ख से तनिक भी

प्रभावित न हुआ तब यह तय है कि इस सुख-दु:ख के झमेले से दूर हटकर उसने एक अजीब-सा आनन्द प्राप्त किया होगा। यह आनन्द सिर्फ उसी को मिल सकता है जिस व्यक्ति का चित्त शान्त और संतुलित है।

मेरे गुरु, स्वामी सत्यानन्द जी हमेशा कहा करते हैं कि गृहस्थ जीवन में रहकर भी स्त्री या पुरुष ईश्वरीय आनन्द का अनुभव कर सकते हैं। ईश्वर का स्मरण करते हुए हम अपने छोटे-बड़े जनों के बीच में रहकर उनके प्रति अपनी श्रद्धा, प्रेम तथा सेवा की भावना दर्शाते रहें तथा अपने कर्त्तव्य पर दृढ़ रहकर अपने सारे कार्य करते जाएँ। स्वामीजी के जितने भी शिष्यगण हैं वे सभी करीब-करीब सम्पन्न परिवार के हैं। बहुतों की तो बहुत बड़ी गृहस्थी है।

आज यदि उन शिष्यों से पूछा जाए कि स्वामीजी के सम्पर्क में रहकर उन्होंने क्या प्राप्त किया तो उन लोगों का वही उत्तर होगा जो मेरा है। लोग कहते हैं कि साधु-संतों के सम्पर्क में रहने से गृहस्थी चौपट होती है। पर जब से मैंने स्वामीजी के चरण-कमल पकड़े हैं तब से जीवन की वास्तविकता को पहचाना है। उनकी शरण में आकर अपने विचारों को सरल बनाकर परिवार में सुख और शान्ति लाने का सुगम मार्ग निकालने की विधि सीखी और शारीरिक एवं मानसिक लाभ उठाया और हमेशा उठाते ही रहेंगें। मेरे बच्चों और पति को श्रद्धेय स्वामीजी का आशीर्वाद सदा प्राप्त हो रहा है। इससे बढ़कर मुझे और क्या शान्ति मिल सकती है! मुझे विश्वास है कि गुरुदेव के निर्देशन में साधना मार्ग की जितनी भी उत्तम सीढ़ियाँ हैं, उन सब पर धीरे-धीरे अवश्य ही चढ़ पाऊँगी। जिस मंजिल पर मुझे गुरुदेव पहुँचाना चाहते हैं, वहाँ पर एक दिन मैं अवश्य ही चढ़ जाऊँगी। फिर शायद मैं अपने गुरुदेव की आवाज में ये शब्द सुन पाऊँ, 'आनन्द के वास्तविक रूप को अब तो तुमने देख लिया है न?' और उस शुभ घड़ी की प्रतीक्षा में मैं आसन लगाये बैठी रहूँगी। मैं ईश्वर से प्रार्थना करती हूँ कि जब भी वह उचित समय आवे मुझे समाधिस्थ अवस्था में लीन करके अपने में समा लें।

—एक साधिका की डायरी से, जनवरी 1965

गुरु की अपूर्व अनुभूति

शास्त्रों में गुरु की महिमा और महत्त्व कितना श्रेष्ठ ठहराया गया है इससे प्राय: सभी विज्ञ परिचित हैं। पर मुझे इसका जो अनुभव हुआ वह आपके सामने है।

जब-जब मुझे दैनिक पूजा में सच्चे हृदय से प्रार्थना बन पड़ी तब-तब भीतर से ऐसी आवाज मिलती थी कि किसी दैवी आत्मा से मेरी प्रत्यक्ष भेंट होगी।

और, सचमुच में वह समय आ ही गया! वे यहाँ (खामगाँव) आये हैं, इसका मुझे ज्ञान नहीं था। पर सोने, खाने, पीने, बैठने में एक विचित्रता महसूस होती थी। अचानक दैव वहाँ ले गया।

उन्हें देखा तो देखता ही रह गया। लोग उनसे वार्ता में मस्त थे। मैं उन्हें देखने में मस्त था। ऐसा लगा जैसे इनकी-मेरी बहुत वर्षों से पहचान है। बरबस मस्तक इनके चरणों में चला गया। मीठी वाणी में आशीष मिला। उस समय की स्वर्गीय अनुभूति को पार्थिव लेखनी क्या व्यक्त कर सकती है।

पामिस्ट्री के बहाने बातें करने का अवसर मिला। पर वे ठहरे संन्यासी। वे मुझे ताड़ गये और समझ गये और अपने नेत्रों द्वारा उन्होंने मुझे अपनी राह से परिचित करा दिया।

कर्मक्षेत्र में लौटते समय प्रसाद मिला। स्पर्श मिला, स्फूर्ति, प्रेरणा, मार्गदर्शन सभी उसी रूप में मिला।

जैसे-जैसे स्पर्श याद आने लगा, शरीर में रोमांच उठ आया। मन अपने आप 'इष्ट' पर केन्द्रित होने लगा। मेरी आँखें बरबस ही आह्लाद अश्रु से भींगने लगीं। उन आंसुओं को मेरी सभ्यता और चतुराई नहीं रोक सकी। मुझे याद आया 'ज्यों-ज्यों बूड़े श्याम रंग त्यों-त्यों उज्ज्वल होय'। अब अभ्यास के बाद मन मस्त होने लगा है। मौलिक रूप से उन्होंने शिष्य के रूप में नहीं स्वीकारा है। शायद वह घड़ी (दीक्षा की) आने वाली है। पर आध्यात्मिक रूप से वे मेरे हैं, हमारे हैं, सबके हैं। श्रद्धा और स्मरण अनुसार दर्शन देते हैं और मार्गदर्शन करते हैं। कबीर ने सच ही कहा है 'मन दिया मन पाइये मन बिन मन नहीं होय'।

–ज्योतिषाचार्य पंडित श्रीबंसालाल पुरोहित, महाराष्ट्र, फरवरी 1965

श्री गुरुदेव

पुण्यश्लोक श्री गुरुदेव के भक्त, शिष्य, मित्र व स्नेही लगातार अनुरोध करते हैं कि मैं गुरुदेव के विषय में कुछ लिखूँ। श्री गोयनका जी ने 1961 में यह अनुरोध किया था। स्वामीजी की जीवन कथा को छपवाने की उन्हें इच्छा थी। मैंने भी इन्हें शीघ्र लिखकर देने का वचन दिया इस विश्वास पर कि श्री

स्वामीजी मुझे तथ्यों के संग्रह, संकलन व लेखन की अनुमति दे देंगे। परन्तु गुरुदेव के इस ओर कोई दिलचस्पी न लेने के कारण इस विचार को स्थगित कर देना पड़ा। उनकी जीवनी प्रकाशित करने का जब तक अवसर न आवे मैं गुरुदेव के व्यक्तित्व के कुछ अंशों पर प्रकाश डालूँगी।

1961 वर्ष के शुरू की बात है। एक बार छपरा में आर्य समाज के मैदान में श्री स्वामीजी का प्रवचन चल रहा था। मैदान ठसा-ठस भरा हुआ था। योगी को देखने के लिये उत्सुकतावश, जिज्ञासा से और मुमुक्षु होकर लोग आए हुए थे। बहुत बड़ा मंच था। भाषण तो योगासनों के सम्बन्ध में था, किन्तु मैं देखती थी अपार जनसमूह को और गुरुदेव को। गुरुदेव का गेरू वस्त्र, मुंडा हुआ सिर, गेरुआ रंग, कंधे पर काषाय चादर बिल्कुल बौद्ध भिक्षु जैसे। सूर्यास्त के समय जैसे सुनहली आभा चारों ओर छिटक पड़ती है वैसे ही गुरुदेव के गेरुए मुख और वस्त्र से आध्यात्मिक आभा चारों ओर छिटक रही थी। मुझे ऐसा मालूम हुआ कि एक नये युग का निर्माण-कार्य शुरू हो रहा है।

1961 में गुरुदेव के निकट मेरा जाना नया-नया ही शुरू हुआ था। मैं मूक दर्शक की तरह नित्य लोगों का गुरुदेव के पास आना, बातचीत करना और सन्तुष्ट होकर लौट जाना देखती। अशान्त, शान्ति लेकर जाते; पीड़ित दवा लेकर जाते और भक्त साधना का प्रोग्राम लेकर जाते। अध्यात्मोपचार द्वारा शरीर, मन और आत्मा, तीनों का प्रतिदिन निदान होता।

गुरुदेव के आगमन के पूर्व छपरा में सर्व-साधारण को योग का ज्ञान नहीं के बराबर था। लोग योग को गुप्त और रहस्यमयी क्रिया एवं पलायनवादियों की विद्या समझते थे। बहुत-से लोग यौगिक क्रियाएँ जानते और करते तो थे, परन्तु अपने गुरु की आज्ञानुसार इसे गुप्त ही समझते थे। श्री गुरुदेव के आगमन से अधिकाधिक लोगों को योगासनों एवं विविध क्रियाओं का ज्ञान होने लगा। हजारों अभ्यास भी करने लगे। अनेकों की खाँसी, श्वास, कफ, वायु और पित्त की बीमारियाँ दूर होने लगीं।

मैंने विशेषकर विद्यार्थी समुदाय का कल्याण होते हुए देखा। अनेक विद्यार्थी और युवक स्वामीजी के पास आकर घंटों बैठते और उनकी छोटी-से-छोटी सेवा करने में तत्पर रहते। न मालूम गुरुदेव में क्या आकर्षण था। वे बूढ़ों के गुरु और बच्चों तथा युवकों के शुभचिन्तक थे। सब की भावनाओं को स्वामीजी समझते और कद्र करते। सभी को सम्मान और स्नेह देते थे। उनके निकट कभी किसी को क्षुद्रता का अनुभव नहीं हुआ। इसके विपरीत

गुरुदेव के निकट रहने से सबकी आत्मशक्ति प्रज्वलित होने के लिये वैसे ही तैयार दिखती थी जैसे अग्नि के निकट काष्ठ। गुरुदेव के व्यक्तित्व में अद्भुत आध्यात्मिक आकर्षण है जो श्रद्धालु व्यक्तियों को अपनी ओर खींचता है।

हाँ, तो प्रवचनों के समय वे बुद्ध की भाँति दिखते थे। न केवल वेशभूषा, गौरवर्ण और आकृति से ही वरन् शिक्षा, उपदेश और प्रचार कार्य के दृष्टिकोण से भी वे बुद्ध ही प्रतीत होते हैं। समदर्शी, तथागत और अनीश्वरवादी। हाँ, अनीश्वरवादी भी। क्यों? वे नास्तिकों के भी गुरु हैं। एक कम्युनिस्ट को भी परिवर्तित कर संन्यास दे देने की क्षमता उनमें है। तर्क के समय तो वे अनीश्वरवाद के पक्ष में अकाट्य तर्क प्रस्तुत करते हैं, परन्तु किसी अन्य मौके पर उनसे पूछिये तो तुरन्त कहेंगे मैं साकार ईश्वर को भी मानता हूँ। बड़ी विचित्रता हैं उनमें। सिद्धान्तवादियों के लिये वे पहेली हैं। वे हर एक पक्ष के वैज्ञानिक तथ्य को स्वीकार कर कट्टरपंथियों और प्रगतिवादियों दोनों का कुशल नेतृत्व करते हैं। केवल अध्यात्म ही नहीं—चिकित्सा, मानसिक एवं पारिवारिक समस्याओं एवं अन्य विषयों पर भी वे अपनी निष्पक्ष सम्मति एवं आध्यात्मिक निर्देश देते हैं।

बुद्ध की भाँति उनका जोर दु:ख-निरोध याने cessation of suffering पर अधिक है। वे मानव के दु:खों का निदान चाहते हैं। दु:खों का कारण वे शारीरिक और मानसिक आलस्य और जीर्णता बतलाते हैं। उन्हें दूर करने का माध्यम और भव रोगों के नाश का अस्त्र है योग। यदि बुद्ध ने निर्वाण को दु:खों के नाश का उपाय समझा तो गुरुदेव योग के विभिन्न अभ्यासों से दैहिक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक तापों की शान्ति कर जनकल्याण करना चाहते हैं।

अनेक आवश्यक प्रश्नों पर गुरुदेव को यदि वे 'गप-शप' की मुद्रा में नहीं हैं, मैंने मौन रह जाते हुए देखा है। मौन का यह अर्थ भी हो सकता है कि उन्हें उन प्रश्नों के उत्तर का ज्ञान नहीं है। बुद्ध के बारे में भी ऐसा ही कहा जाता है। भगवान बुद्ध से जब भी लोग आत्मा सम्बन्धी या जगत् की शाश्वतता और नित्यता या ईश्वर के ससीम और नि:सीम होने के बारे में प्रश्न पूछते थे तो वे प्रश्नों को निरर्थक समझकर मौन रहते थे।

वास्तव में मौन का कारण यह है कि सभी मनुष्य तत्त्व ज्ञान को समझने में असमर्थ हैं। इसीलिये अनेक जगहों पर अधिकारी शिष्य को ही उपदेश देने

की बात पाई जाती है। गुरुदेव को तो मैंने कभी मौन भी रहते देखा और कभी रात-रात भर उन्हीं विषयों को समझाने की निष्ठा भी देखी है।

बुद्ध ने जनभाषा में अपने ज्ञान का प्रचार किया। गुरुदेव को भी मैंने अलग-अलग ग्रुप के लोगों में अलग-अलग दृष्टिकोण से अलग-अलग भाषा में विषय का स्पष्टीकरण करते देखा।

बुद्ध ने स्त्रियों के लिये भी अध्यात्म का दरवाजा खोला। गुरुदेव भी नि:शंक होकर लड़कियों-स्त्रियों सभी को योगासन, प्राणायाम, जप, ध्यान, नादयोग, त्राटक, अजपा आदि अभ्यास करने की निरन्तर प्रेरणा देते रहते हैं। पण्डितों की यह घोषणा कि स्त्रियों को प्रणव का उच्चारण नहीं करना चाहिये, योग साधना नहीं करनी चाहिये, के बावजूद भी स्वामीजी 'ॐ' का जप सभी से कराते हैं। षट्कर्म—नेति, शंख प्रक्षालन, जल धौति आदि स्वास्थ्य-सुधारक क्रियायें सभी को सिखलाते हैं। स्त्रियों के लिये कोई क्रिया कभी भी वर्जित नहीं है, ऐसा बतलाते हैं। गुरुदेव के अनुसार अध्यात्म और योग का रास्ता स्वास्थ्य, शान्ति और आनन्द का है, जिसका अधिकार प्रत्येक प्राणी को है।

बुद्ध युग-सुधारक थे। अपने युग की समस्याओं का विश्लेषण और समाधान उन्होंने चार आर्य सत्यों के रूप में बतलाया। दु:ख निरोध मार्ग में आठ सुन्दर उपाय—सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वाक्, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् आजीविका, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि बतलाये। गुरुदेव भी युग की आवश्यकतानुकूल योग जैसे नीरस और कठिन विषय को आधुनिकता के मोहक आवरण में आवेष्टित कर सबके लिये कुछ क्रियाएँ आवश्यक बतलाते हैं। जैसे आसन, प्राणायाम, त्राटक, जप, ध्यान, नेति, शंख प्रक्षालन और योगनिद्रा सबके लिये जरूरी है।

गुरुदेव एक मिशनरी साधु हैं। उनके कुछ उद्देश्य और ध्येय हैं, जिनकी पूर्ति ही उनके जीवन का लक्ष्य है। 'योग-धर्म' की स्थापना एक नये ढंग से हो रही है जिसमें मतवाद और सिद्धान्त का पचड़ा नहीं। योग मनुष्य का मनुष्य से सम्बन्ध जोड़ता रहा है। एक स्थान पर गुरुदेव ने योग की परिभाषा इस प्रकार दी है—Yoga is plus, addition, getting together. हम सब मनुष्य जाति के हैं, इसलिये सब एक हैं।

—माँ योगशक्ति, जुलाई 1965

कुछ प्रिय संस्मरण

कई बार कुछ-कुछ लिखा है किन्तु आज जो लिखने जा रही हूँ उसके पूर्व एक तीव्र प्रार्थना चल रही है कि मेरी लेखनी में वह शक्ति आवे जो मेरे भावों को प्रकट कर सके। जैसे सीधी लकीर खींचना कठिन है, ठीक उसी तरह है अन्तर्तम के भावों को व्यक्त करना। मेरा यह केवल प्रयत्न भर है। काश! यदि ये अनुभव किसी के प्रेरक बन सकें। आगे बढ़ने के लिए बहुतों को राह नहीं भी मिलती है, उन्हें शायद राह मिल जाय... नम्रता के साथ मैं अपने कुछ अनुभव प्रस्तुत कर रही हूँ। सरल रहेगा, यदि मैं अपनी डायरी के कुछ पन्ने यहाँ पर रख दूँ।

मई 1964

नयनहीन को राह दिखा प्रभु,
पग-पग ठोकर खाऊँ मैं
तुम्हरी नगरिया की कठिन डगरिया,
चलत-चलत गिर जाऊँ मैं।

सितम्बर 27, 1964

मुंगेर जा रही हूँ। आसन, प्राणायाम, ध्यान आदि यौगिक क्रियाएँ वहाँ सिखायी जाती हैं। पन्द्रह दिन का कोर्स है।

अक्टूबर 1, 1964 (रात के 12 बजे, मोमबत्ती के प्रकाश में)

अपूर्व स्थान है। यहाँ सब कुछ है मेरे लिए। ... भावनाओं को रोका नहीं जा सकता ... मैं अपनी कल्पना की सृष्टि यहाँ देखती हूँ। स्वामीजी, आपके पास मुझे भेजने के लिये कुदरत ने बहुत खेल दिखाए। मेरी सब तड़पन समाप्त हो रही है। आज विद्यालय में आने का दूसरा ही दिन है। कितना negative attitude था, सब गल गया। मेरी कल्पना के देव! आखिर में तुम मुझे मिले। मेरे अपराध क्षमा करें, मैं अपने आप आगे बढ़ने का दर्प रखती थी। किसी का अवलम्बन नहीं चाहती थी। अवलम्बन से मौलिकता का ह्रास होता है, ऐसा मानती थी। आज अपने ही आप ये किले चकनाचूर होते जा रहे हैं; मैं उसे एक प्रेक्षक की भाँति देख रही हूँ। देव, मुझे क्षमा करो। ईश्वर, मुझे सच्ची शक्ति और भक्ति का दान दो। असतो मा सद्गमय:।

अक्टूबर 3, 1964

यहाँ प्राय: मौन रहता है। जरूरत से ज्यादा बातें नहीं। अपने को व्यक्त करना मुश्किल है। स्वामीजी में क्या नहीं है? गुरु हैं, मां हैं, पिता हैं, मित्र हैं। संन्यासियों में कभी ऐसी कल्पना नहीं की थी। कितनी सम्हाल, कितना प्रेम! हम सबके साथ खाना खाते हैं। हम सभी ठीक आराम से सो जावें, तब हमें देखकर सो जाते हैं। सुबह तीन बजे 'हरि ॐ तत्सत्' कहकर उठाते हैं। हर प्रकार का काम करते हैं। सतत् काम, सतत् काम, अविराम काम, कर्मयोग का सबक प्रत्यक्ष रूप से।

यहाँ के दैनिक कार्यक्रम में आसन, प्राणायाम, ध्यान, गीता पाठ, उपनिषद् पाठ, लिखित जप, त्राटक, योगनिद्रा, गीता प्रवचन आदि हैं। शरीर, मन और प्राण, तीनों को प्रकृति के साथ ट्यून करने का तरीका बताया जाता है बिहार योग विद्यालय, मुंगेर में।

यहाँ देश के जुदा-जुदा इलाकों से आए हुए बीस व्यक्ति हैं। कुछ शारीरिक बीमारी से परास्त होकर आये हैं, कुछ मानसिक व्याधि वाले हैं, हिस्टीरिया आदि के भोग बने हुये हैं और कुछ आध्यात्मिक उन्नति के लिये आये हुए हैं।

आश्चर्य की बात यह है कि ऐसा महसूस होता है जैसे सभी को सम्पूर्ण recognition मिला हुआ है। जादू है स्वामीजी का और यौगिक क्रियाओं का।

योग के बारे में लोग गलत धारणा बनाये रखते हैं। कुछ लोग योग को केवल आसन आदि से ही सम्बन्धित मानते हैं। कुछ लोग इसे ऊँची विद्या समझते हैं जिसका अभ्यास केवल योगीजन ही कर सकते हैं। पर यहाँ आकर देखा, योग तो सभी के लिये है। योग का अर्थ होता है मिलना, त्रुटि की पूर्ति करना। चाहे ये त्रुटियाँ शारीरिक हों या मानसिक या आध्यात्मिक।

प्रकृति की प्रक्रियाओं को समझना और उनके मुताबिक अपने को ढालकर अपनी त्रुटियाँ दूर करना—आज मुझे ऐसा अर्थ दिखाई देता है योग में। कैसे-कैसे दर्दी आये हुये हैं, स्वामीजी सभी को उनके मन की कमजोरियों का ख्याल दिलाते हुए उसे मजबूत बनाने के लिये कहा करते हैं।

स्वामीजी की विधियों का असर भी पड़ता है। आसन द्वारा शरीर को एक ऐसे स्तर पर लाया जा सकता है जो प्रकृति माँगती है। प्राणायाम फेफड़ों के साथ सम्बन्ध रखता है तथा उससे मन को केन्द्रित करने और ध्यान करने में सहायता मिलती है। ध्यान में मन को केन्द्रित करना पड़ता है। यह अच्छा

लगता है। त्राटक इसमें सहायक है। योगनिद्रा द्वारा स्थूल शरीर से एक कदम आगे बढ़ा जा सकता है। इसे करने में नवीनता भी लगती है, आनन्द भी आता है। कभी लगता है इस क्षेत्र का दरवाजा मेरे लिए एकदम बंद था। एक नई दृष्टि मिली। किन्तु सबसे अधिक प्रभावशाली है यहाँ का वातावरण, रहन-सहन और स्वामीजी का सान्निध्य।

अक्टूबर 5, 1964

द्वन्द! भावों के बीच में। समर्पण और अहं के बीच? ... जीवन में अपने आपको कभी किसी के प्रति समर्पित नहीं किया। अपने आप स्वयं चली आयी हूँ। देव! मुझे कोई ध्वनि इस ओर प्रेरित करती है। मेरी मंजिल इस ओर है ऐसा 'कोई' कहता है। आप स्वीकारेंगे? कहने की हिम्मत नहीं करती। व्यक्त करने में संकोच होता है। शायद थोड़ी मानहानि हो। तो भी दूसरी ओर एक मन्द आवाज आती है, इस magnetic personality के आकर्षण में तो नहीं बही जा रही हूँ। जीवन का लक्ष्य यहाँ पूरा नहीं हो सकता। यह द्वन्द! ओह ... इसका उत्तर...? यह प्रश्न ही क्यों? ... नहीं यह द्वन्द नहीं, यह अहं की जागृति है। कितना चाहती हूँ, यह प्रश्न स्वामीजी के पास ही क्यों न रखूँ? उनसे ही उत्तर माँगूँ।

अक्टूबर 7, 1964

कल स्वामीजी क्रियायोग सिखलाएँगे। आनन्द से विभोर हो उठी। मैं अपने मन को शुद्ध करके उन्हें अर्पण कर दूँ। 'गुरु'! यह शब्द अनेकों महिलाओं से सुना था। कभी अल्प-सा विचार तक उस पर नहीं किया था। आज यह मेरे लिये सर्वस्व-सा हो चुका है। भले ही यह भावना का बहाव हो। मेरी यह मंजिल है। देव, मेरे अपराधों को क्षमा करना। 'शरणागत किंकर भीत मने, गुरुदेव दयाकर दीन जने।'

अक्टूबर 8, 1964

क्रियायोग का प्रथम भाग सिखाया गया। देव! भक्तिभाव से वंदन करती हूँ 'मन लीन रहे तव श्री चरणे।' न द्वन्द है, न विचार है, न लालसा है। आज प्रतीत होता है मात्र समर्पण हो तो अधिक कुछ करने का नहीं रहता।

अक्टूबर 13, 1964

दिन-प्रतिदिन भावों में प्रबलता आती है। फिर भी मन की शिथिलता का पता चलता है। गीता प्रवचन अद्‌भुत है। मन की क्रिया-प्रक्रिया और खेल जब समझ में आते हैं, एक अद्‌भुत ज्ञान खजाना मिलता है। कर्मयोग पर जोर देने वाले स्वामीजी! आप स्वयं प्रत्यक्ष रूप से यह दिखला देते हैं।

आपने दो मन्त्र दिये और सिखाए– कर्मकुशलता और चित्तस्थिरता। दोनों सदैव बने रहें, यही आप चाहते हैं। आप चाहते हैं अठारह घंटे मैं कर्मयोग में लगी रहूँ। ... मेरा प्रयत्न रहेगा।

क्रियायोग मेरे नये जीवन का द्वार है। बहुत कुछ सुना, बहुत कुछ पाया। बहुत कुछ अपेक्षाएँ भी सुनीं। सब हृदय में अंकित कर विदा ले रही हूँ, इस शरीर से।

– कुमारी शान्तिशाह, एम.एस.सी. एम एड., अक्टूबर 1965

महायोगी स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

किसी भी युग-पुरुष के अनुष्ठानों के उचित मूल्यांकन के लिये तद् विषयक विभिन्न परम्पराओं का अध्ययन अपेक्षित होता है, जिससे वह सम्बन्धित होता है। वास्तविकता तो यह है कि परम्परा से विच्छिन्न कर किसी भी युग-पुरुष को, खास कर योगी को समझा ही नहीं जा सकता है। परम्परानुमोदित योगी की क्रियाओं और कृत्यों की तो बात ही क्या? जब किसी युग विशेष की प्राणशक्ति के क्षीण होने पर युगद्रष्टा योगी परम्परा का नवीनीकरण कर नये युग के इतिहास की सृष्टि करता है, तब इस नये संदर्भ का भी परम्परा से अटूट सम्बन्ध बना रहता है और इसी परम्परा की पृष्ठभूमि में किसी युग-स्रष्टा योगी के अनुष्ठान प्रयासों का सही मूल्यांकन किया जा सकता है। विदेह की नगरी मुंगेर की आध्यात्मिक परम्परा की एक ज्योतिर्मयी कड़ी के रूप में मिले हैं युग-स्रष्टा महायोगी परमहंस स्वामी सत्यानन्द सरस्वती, जिन्होंने जंगल-कंदरा से योग को निकालकर उसकी स्थापना नगर के कोलाहलपूर्ण वातावरण में करने का स्तुत्य प्रयास किया है।

परम्परा से प्राप्त इस योग साधना में बिहार योग विद्यालय, मुंगेर का अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व है और परम्परा की पृष्ठभूमि पर योग की अभिनव व्याख्या का एकान्त श्रेय महायोगी सत्यानन्द जी को है, जिन्होंने 'योग: कर्मसु कौशलम्'

की अभिनव व्याख्या का मूर्तस्वरूप विद्यालय को दिया। इस कौशल का प्रयोजन इस बात से है कि संसार में रहते हुए भी सांसारिकता के जहर से हम मुक्त रह सकें। सांसारिक संस्कार हमारे लिये कहीं बाधक नहीं सिद्ध होता। सांसारिक कर्मरूपी मधु का पान तो हम यथेष्ट करें पर अनासक्ति के आवरण से देह को ढक कर ही; क्योंकि ऐसा नहीं करने से मधुमक्खियों के दंश से बच नहीं सकते। राष्ट्रीय महत्त्व का आदर्श स्वामीजी के इसी कौशल से सम्बद्ध है।

मुंगेर का यह योग विद्यालय भारत के आध्यात्मिक इतिहास का अपर स्वर्ण प्रभात है। बिहार की कर्मभूमि पर कई पावन चरित महापुरुष अलग-अलग उत्तरदायित्व लेकर अवतरित हुए हैं। स्वामी सत्यानन्द जी भी इन्हीं में एक महा प्रतिभामण्डित महापुरुष हैं। इतिहास बताता है कि हर युग की एक आवश्यकता होती है। उसी के अनुसार युग पुरुष अपना स्वरूप ग्रहण करता है। हम अच्छी तरह जानते हैं ज्ञान सदा एकरस है। वह काल के बन्धन से बाहर है। बुद्ध, शंकर, रामानुज आदि के आध्यात्मिक चिन्तन सामयिक प्रभाव से पुष्ट हैं। शासन बदला, अंग्रेज गये, संसार की सभ्यता एक नये प्रवाह से बही, बड़े-बड़े पण्डित, राजनेता, विश्व साहित्य, विश्व विज्ञान की आवाज उठाने लगे, पर भारत उसी प्रकार पाश्चात्य भौतिक रूपों के मायाजाल में भूला रहा। इस समय ज्ञानस्पर्द्धा के लिये समय की फिर आवश्यकता हुई, और मुंगरे में स्वामी सत्यानन्द जी का पदार्पण यही अपराजित प्रकाश है। ये अपार आध्यात्मिक ज्ञानराशि के आधारस्तम्भ स्वरूप हैं। एक ही आधार से इतनी बड़ी शक्ति का स्फुरण होता है कि हम आश्चर्यचकित से रह जाते हैं। चरित्र, स्वास्थ्य, त्याग, ज्ञान और शिष्टता आदि में जो आदर्श स्वामी सत्यानन्द जी में उपलब्ध होते हैं, उनका लेशमात्र भी अभारतीय पश्चिमी शिक्षा सम्भूत नहीं, हालाँकि यह अलग बात है कि अंग्रेजी भाषा पर भी उनका उतना ही अधिकार है, जितना संस्कृत पर। पुन: ऐसे आर्य में ज्ञान का मतलब यह कि लोग कहते हैं कि भारतीय शिक्षा द्वारा उतना उन्नत मन नहीं हो सकता जितना पाश्चात्य शिक्षा से—स्वामी जी स्वयं इसके प्रत्यक्ष खण्डन है। इनसे भी बढ़कर मनुष्य होता है, इसका प्रमाण प्राप्त नहीं। मुंगेर योग विद्यालय से भारत के आध्यात्मिक इतिहास का एक नया अध्याय शुरू होता है, यद्यपि यह बहुत प्राचीन है। हमें आत्मोन्नति के लिये क्या-क्या करना चाहिये, हमारे आत्मोत्थान में कहाँ-कहाँ और क्या-क्या रुकावटें हैं, हमें इनसे मुक्ति के लिये कौन-सा मार्ग ग्रहण करना चाहिये, इसके ये प्रकाश-स्तम्भ हैं। मुंगेर में योग

विद्यालय की स्थापना, भारतीयों में एक नये जीवन की प्रतिष्ठा है। उसकी प्रगति एक दिव्य शक्ति की स्फूर्ति है।

सांसारिक सुख की खोज में भटकती हुई आज मनुष्य की सृष्टि दु:ख के जाल में जा फँसी है। विधान और व्यवसाय के दम्भ में समाज, संस्कृति और राष्ट्र उद्धार के भ्रामक पथ में आज कराह रहा है मनुपुत्र। ऐसी विषम परिस्थिति में मार्गदर्शक के रूप में भारत का ही नहीं, समस्त विश्व का मार्गदर्शन दे रहा है मुंगेर का योग विद्यालय। गत एक नवम्बर का सप्तदिवसीय अन्तर्राष्ट्रीय योग सम्मेलन इसका ज्वलन्त उदाहरण है। सम्मेलन में कनाडा, फ्रान्स, रोम, दिल्ली, चण्डीगढ़, कलकत्ता, जयपुर, नागपुर, बम्बई, मद्रास, आंध्र, मैसूर, केरल, उत्तरप्रदेश, असम, गुजरात, बंगाल, बिहार आदि राज्यों के लगभग बारह सौ प्रतिनिधियों ने भाग लेकर यह सिद्ध कर दिया कि आज की प्रमुख समस्याओं का निदान यह योग विद्यालय है।

परमहंस स्वामी सत्यानन्द जी का व्यक्तित्व मुंगेर में कोई अभूतपूर्व घटना नहीं है। जब-जब देश संकटग्रस्त हुआ है, इसका आध्यात्मिक तथ्य हिला है, भारत में एक-से-एक महापुरुष का प्रादुर्भाव धर्म संस्थापन के लिये होता आया है। अध्यात्म की इसी पृष्ठभूमि में स्वामीजी का प्रादुर्भाव हुआ है, ऐसा कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं। जगद्गुरु शंकराचार्य के बाद स्वामी विवेकानन्द जी ने विश्व के सामने जिस तरह भारतीय संस्कृति को आगे रखा उसी तरह आज के युग की आवश्यकता के अनुकूल स्वामी सत्यानन्द जी योग विद्यालय के माध्यम से वैज्ञानिक मुक्ति का शंखनाद कर रहे हैं। इसी महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति के लिये इन्होंने बारह वर्षों तक आश्रमवास करके परिव्राजक जीवन स्वीकार किया। आज मुंगेर के स्वामी जी भारतीय आध्यात्मिक परम्परा को विश्व में जनव्यापी बनाने की सफल चेष्टा कर रहे हैं। आसन, प्राणायाम, भजन, संकीर्तन, सत्संग के द्वारा भौतिकता की कड़ी में जकड़ी हुई पीड़ित मानवता के जीवन में आध्यात्मिकता का शंख फूँक कर उनके जीवन को सरस एवं सफल बनाने के लिये सचेष्ट हैं। इस महायज्ञ में देश-विदेश के स्त्री-पुरुषों का सहयोग मिल रहा है। सबसे खूबी इस बात की है कि इस महायज्ञ में जो भी आहुति उठती है उसमें पूरी कर्मठता एवं सच्ची लगन की ज्योति दिख पड़ती है। स्वामी जी सचमुच जीवन के सुखद, उन्नत, भव्य एवं सच्चे प्रतीक रूप में अमरवर्तिका बने हैं जिसकी ज्योति बिजली की चकाचौंध तो पैदा नहीं करती पर अपने मधुर, मन्द आलोक से अज्ञानतापूर्ण अंधकार में प्रकाश फैला रही है।

एक पत्रकार की दृष्टि से मुझे वहाँ जो कुछ जन-सम्पर्क का अनुभव हुआ उसके आधार पर मैं कह सकता हूँ कि स्वामी विवेकानन्द यदि भारतीय संस्कृति के अग्रदूत थे तो स्वामी सत्यानन्द जी, उस कड़ी की वैचारिक क्रान्ति के एक महाफलक हैं जिसकी लहर मुंगेर में फूटी और तीव्र गति से देश-विदेश में व्याप्त होती जा रही है।

–लक्ष्मीकान्त मिश्र, जुलाई 1967

मधु संचय

श्री गुरुदेव परमहंस स्वामी सत्यानंद जी की मधु यात्रा पहली मार्च 1969 से प्रारंभ होने वाली है। इसके पूर्व भी, 26 अप्रैल 1968 को, अनेक वर्षों पश्चात्, वे मधु-घट लेकर मधु यात्रा पर रवाना हुये थे, जब कि उन्होंने विश्वमोहिनी की तरह देव और असुर, नास्तिक और आस्तिक जनों के बीच योग-मधु का वितरण किया।

संन्यास की परम्परा में शनैः शनैः आशातीत परिवर्तन हो रहा है। दुःख से अब ऊब कर संन्यास लेने की परंपरा समाप्त हो रही है। ज्ञान और विवेक का उदय छोटी उम्र में देखा जा रहा है। भारत की शक्ति जाग रही है।

स्वामी जी की मधुविद्या गूढ़, रहस्यमयी और उच्च कोटि की है। मधु संचय और वितरण विवेकी और प्रज्ञावान् द्वारा होना ही संभव है। देश में कितना मधु भरा हुआ है परन्तु लगता है कि पुष्प निर्वासित और अज्ञानी हैं। मधु से हृदय भरा हुआ है पर संचय विद्या किसे आती है? कौन कल्याण करने का बीड़ा अपने सिर उठाये। मधु से जग को उपकृत करने के लिए जीवन अर्पण की चाह किसे है? कितना दुरूह और विकट कार्य है। यह वही करेगा जो निष्काम, निर्भीक, अध्यवसायी, कर्मयोगी और प्रज्ञावान् हो।

श्री स्वामीजी से साक्षात्कार होने पर ऐसा मालूम होता है कि ये ऐसे व्यक्ति हैं जो कुछ-न-कुछ करके दिखायेंगे। उनके व्यक्तित्व के पीछे एक ऐसी सरिता बहती है जिसमें ज्ञान और कर्म, दोनों नदियों की धारा सम्मिलित है। ब्रह्मसूत्र का ब्रह्मज्ञान और गीता का निष्काम कर्मयोग, दोनों उनके जीवन में आकर संयुक्त हो गये हैं। प्रबुद्धता और कर्मकौशल, दोनों का साथ-साथ रहना अद्वितीय प्रतिभा वालों में ही शक्य है। भारत में दानवीरों और ज्ञान-सूरमाओं की क्या कमी रही है? अनेक उद्भट विद्वान्, महर्षि और महान

आत्माएँ यहाँ जन्म ले चुकी हैं, परन्तु एक ही में सर्वोन्मुखी प्रतिभा कम देखी जाती है।

भारत को ऐसे नेतृत्व की आवश्यकता है जो उसे सोच-समझ कर आगे बढ़ावे। वास्तव में तो भारत का दायित्व अन्य देशों से ऊँचा और अधिक है। आज विश्व भर के अध्यात्म-प्रेमी मानव भारत की ओर उत्कण्ठा और लालसा से देखते हैं कि यही वह देश है जो भौतिकवादिता का सन्तुलन अध्यात्म विद्या से कर संसार को राहत दिलायेगा। इन बातों को जानकर उन्नत भविष्य की ओर ले जाने वाले निश्चयी, परिष्कृत दृष्टि और विचार वाले संयमी नायक का गुण मुझे स्वामी जी में दिखाई पड़ता है। उनके हाथ में जो कुछ भी जाता है वह हथियार हो जाता है जिससे अज्ञान और अकर्म की ग्रन्थियाँ टूट-टूट कर गिरने लगती हैं।

देश का नायक कैसा हो? क्या केवल बाघम्बर पहनने वाला? नहीं, नायक ऐसा होना चाहिये, जिसमें क्रोध भी हो, क्षमा और शान्ति भी। जो मेधावी भी हो, सरल एवं कुटिल भी। तत्काल बुद्धि भी रखे और दूर भविष्य को भी सोचने वाला हो। नेता व गुरु ऐसा हो जिसमें परशुराम और राम दोनों मूर्तिमान हों। शकुनि और युधिष्ठिर दोनों की निष्ठा और प्रज्ञा मूर्तिभूत हो। दुर्वासा जैसी प्रचण्डता और नारद जैसी चंचलता हो। केवल ऐसी सर्वोन्मुखी, अनोखी और व्यावहारिक प्रतिभा वाला व्यक्ति ही भारत के भविष्य को उज्ज्वल बना सकेगा—यह मेरा विश्वास और मेरी चाहना है। संसार तथा भारत को ऐसे मार्गदर्शक की आवश्यकता है जो बिखरी हुई सामाजिक शक्तियों को बटोर कर एक निश्चित भविष्य में ढाल दे। जैसे रूई के फैले हुए फाहों को, एक तकली स्वयं चक्राकार घूमती हुई, धीरे-धीरे मजबूत धागे में परिवर्तित कर देती है वैसे ही एक सफल नेतृत्व समाज की अपेक्षित और उपेक्षित शक्तियों को कुशलतापूर्वक गूँथता हुआ एक सुन्दर भविष्य बनाने में सचेष्ट रहता है।

श्रीस्वामी जी को मिलने और देखने से प्रत्येक को यही आभास होता है कि एक मिनट भी व्यर्थ या खाली बैठने वाले साधु तो ये कदापि नहीं। अभी भी वे भ्रमण में पूरे हिन्दुस्तान का चक्कर लगाने जा रहे हैं। उसका फल कल्पनातीत और उत्तम ही है। घर-घर और गाँव-गाँव में वे भ्रमण करेंगे। हृदयों में क्रान्ति की चिंगारी, मस्तिष्क में नई विचारधारा, कर्म में एक नई योजना आपको प्राप्त होगी। उनका भ्रमण अन-उद्देश्य नहीं, भगवान बुद्ध की भाँति वे भिक्षा पात्र लेकर घर-घर जावेंगे और नव विहान का मंत्र देवेंगे। घर-घर में सब

उनका स्वागत करें, उपनिषदों के अनुसार उनकी अर्चना करें। गुरु और सन्त का आगमन शुभ होता है। घर और हृदय, दोनों को पवित्र करने वाला। जो श्रद्धावान होता है उसे ही लाभ होता है, संशय करने वाले को कदापि नहीं।

श्रीस्वामी जी 'सर्वे भवन्तु सुखिन:' हेतु परिभ्रमण को निकल रहे हैं। उनकी यह मधुयात्रा मंगलकारी हो!

–माँ योगशक्ति, फरवरी 1969

श्रद्धा के दो फूल

किसी भी महापुरुष का जीवन असाधारण तत्त्वों से निर्मित हुआ करता है। इन असाधारण तत्त्वों के अंकुर उनके जीवन के अग्रभाग में पल्लवित होते हैं। जितने भी सन्त हुए, सब के साथ प्राय: यही बात देखी जाती है। हमारे पूज्य परमहंस स्वामी सत्यानन्द जी का जीवन भी ऐसी ही रहा। अल्मोड़ा की शुभ प्रकृति की गोद में पलकर भी प्रकृति की माया इन्हें नहीं बांध सकी। शैशवकाल से ही वैराग्य के अंकुर फूट चले थे। जीवन की क्षण भंगुरता का अनुभव किया, बुद्ध की तरह घर का त्याग किया, माँ की ममता का त्याग किया, इच्छाओं का त्याग किया। शैशवकाल से ही इतनी शक्ति थी कि समाज और परिवार का बंधन न बाँध सका। उन्मुक्त पक्षी की तरह गगन में उड़ चले–'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना को जगत् में फैलाने के लिये। क्षत्रियों का वीर्य और ब्राह्मणों का तेज उनमें एक साथ है। नसें उनमें लोहे की और ज्ञान-तन्तु फौलाद के हैं। उनके जीवन में ज्ञान, कर्म और भक्ति, तीनों का अद्‌भुत सम्मिश्रण है। परिश्रम और अध्यवसाय इनके जीवन का मंत्र है। योग सेवा, लोक सेवा, ज्ञान चर्चा में सदा तल्लीन रहते, दु:खों की प्राप्ति में उद्वेगरहित और सुखों की प्राप्ति में नि:स्पृह हैं।

रामकृष्ण परमहंस के प्रति आत्म समर्पण कर जैसे स्वामी विवेकानन्द ने उनके आशीर्वाद से अपनी तेजीमयी प्रतिभा के द्वारा संसार को चमत्कृत और उद्‌बुद्ध किया वैसे ही योगीराज स्वामी शिवानन्द का शिष्यत्व स्वीकार कर स्वामी सत्यानन्द जी ने अपूर्व भक्ति और सेवा से योग का दिव्य संदेश जन-जन के मानस में पहुँचाकर उसे नयी दिशा प्रदान की है। जो योग जंगल की वस्तु थी उस गहन विषय को नगर के कोलाहलपूर्ण वातावरण में स्थापित कर सर्वजनसुलभ बनाया। आज देश-विदेश के कोने-कोने में योग की चर्चा है।

योग को आज की आवश्यकता जानकर लोग इसे स्वीकार करने लगे, यह बहुत बड़ी बात है। स्वामी विवेकानन्द के बाद संभवत: ये प्रथम संन्यासी हैं जिनकी आवाज को संसार कान खोलकर सुनता है।

स्वामी सत्यानन्द जी ने अपने गुरु के आदर्शों को अपने गले उतारा है और उससे एक स्वतन्त्र व्यक्तित्व का निर्माण किया है। उनके विचार, भाषण, तरीके और काम सभी अपने ढंग के हैं। जीवन वैराग्य से परिपूर्ण है लेकिन आशावादी भी बहुत हैं। ढूँढ़ने पर भी ऐसा व्यक्तित्व नहीं मिलता जिसकी कौंधती आँखें, ओजस्वी विचार और सरल व्यवहार हृदय को स्पर्श कर जाए। व्यक्तित्व से विद्रोही, शक्तिशाली और प्रभावोत्पादक हैं। कबीर की तरह घरफूँक मस्ती, फक्कड़ाना लापरवाही और अखण्ड आत्मविश्वास। अपने पंथ के निधड़क पंथी हैं, अपने साध्य को प्राप्त करने के लिये वे सब कुछ छोड़ सकते हैं। इन्होंने कभी कान पर विश्वास नहीं किया, अपनी आँखों से जो देखा, अपने मन में जो सोचा, अपनी मेधा से जिसे अच्छा या बुरा समझा, उसे बिना हिचक के स्वीकार किया। सदैव एक जैसा मस्तमौलापन मिलता है, जो हिमालय के भी सर चढ़कर उसे खूँद देने को तड़फड़ा रहा हो। उनकी वाणी भी उनके व्यक्तित्व की ही तरह दबंग है। उनकी ऊर्ध्वमुखी चेतना, कठिन परिश्रम, अदम्य उत्साह, लगन तथा अध्यवसाय का ज्वलन्त प्रमाण बिहार योग विद्यालय, बम्बई स्कूल ऑफ योग, गोंदिया स्कूल और मध्यप्रदेश योग विद्यालय है। ये संस्थाएँ इनकी कल्पना के साकार और मूर्त रूप हैं। ये संस्थाएँ आज के युग में पीड़ित मानव के लिए शीतल मन्दाकिनी की तरह हैं, और आने वाली पीढ़ियों के लिये प्रकाश स्तम्भ।

–अमर संगीत, मार्च 1969

संतकवि–स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

कविता कवि के हृदय की अटल गहराई से निकली हुई आत्मा का प्रकटन है। न केवल वह जीवन का सौन्दर्य वरन् सत्यम् शिवम् सुन्दरम् है। कविता जीवन के आदर्श को प्रकट तो करती ही है साथ ही जीवन जीने का ठोस प्रमाण भी देती है। कविता एवं नाटक का ही जीवन पर विशद प्रभाव पड़ता है। कविता कोमल वस्तु है, इसका हृदय पर प्रभाव पड़ता है। यद्यपि पूज्य स्वामी सत्यानन्द जी ने कविता की रचना कवि बनकर नहीं की है, वे तो भक्त

और योगी है, किन्तु जिन कविताओं का सृजन हुआ है वे उनकी आत्मा का साक्षीकरण ही प्रस्तुत करती हैं। उनकी कविताएँ महान् उद्देश्य को लेकर प्रस्फुरित हुई हैं। सिद्ध योगी होने के कारण वे क्रांतिदर्शी, कवि, महान् शिक्षक और समाज सुधारक के रूप में एक साथ हमारे समक्ष प्रस्तुत हुए हैं।

स्वामीजी की कविताओं का संकलन 'सन्त हृदय के अभिनव परिमल' है। इस संकलन की प्रथम कविता 'गुरु के प्रति' है जो वन्दना है गुरु की। इस कविता में अपने गुरुदेव, परमपूज्य स्वामी शिवानन्द जी महाराज के चरणचिन्हों पर चलने की अभिलाषा व्यक्त की है। उनके गुरु साधारण गुरु नहीं थे –

उत्तरापथ के हे! अमर तपस्वी
कूटस्थ अचल, अवतार महान्
तुम्हारी ज्योति जलती रहे, प्रेरणा फलती रहे।
वह कौन सी प्रेरणा है जिसके लिये वरदान माँगते हैं?
मेरी तूलिका अमर रहे और लेखनी अप्रतिहत–
मैं लिखते रहूँ, औ' लिखते रहूँ,
और चलते रहूँ तुम्हारे चरण चिन्हों पर।

अन्तस्तल से निकले हुए शब्द ही कविता होते हैं, वे सीमा तोड़ कर असीम बन गये। तभी आवाज गूँज उठी–

बह निकले युग का मल,
जग हो निर्मल, प्रतिक्षण प्रति पल,
इस ओर अमल, उस ओर विमल,
दिशि दिशि निखर उठे परिमल।

प्रत्येक मानव का निश्चित लक्ष्य होता है। स्वामी जी भी अपने को प्रेरित करते हुए लक्ष्य बता रहे हैं–

प्रणव मंत्र का नाद लगा दो, जन जन में चिर मंगल ला दो,
गंगा की लहरों की गति में, जीवन वीणा के गीत सुना दो।

यह लक्ष्य मानव तभी प्राप्त कर पाता है जब जीवन का उद्देश्य समझे और उसके लिये उसे दो वस्तुओं में से एक को स्वीकार करना ही पड़ता है–

जीवन सुख का हार पहन लो,
या फिर दु:ख की चोटें सह लो,
कभी नहीं यह कहना साथी, जीवन सुख-दु:ख रोना है।

व्यक्ति चोटें सहकर ही मजबूत बनता है, उसमें चट्टान जैसी अटलता आ जाती है। जीवन पाने के लिये है, खोने के लिये नहीं। इस जीवन का उद्देश्य आत्मसाक्षात्कार है और जब व्यक्ति अपने उद्देश्य को लेकर अग्रसर होता है, लक्ष्य तक पहुँच जाता है तभी वह वीर विश्राम करता है, उसके पहले उसे विश्राम कहाँ। वह उस एकाकी पक्षी की भाँति उड़ता आकाश में चला जाता है, जब तक उसे नीड़ रूपी आत्मा का निवास स्थल नहीं मिल जाता। अपना प्रमुख निवास पाकर उसी में वास करने लगता है। कवि कड़ी 'चेतावनी' देता है। उस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये 'सोच-समझ' कर उड़ान भरो, क्योंकि–

इस पथ में विश्राम नहीं है,
औ' कुछ भी आराम नहीं है,
जीवन भार उठाकर पंथी, दूर बहुत है जाना।

पथ भी सरल नहीं है, रास्ते में बड़े-बड़े तूफानों का सामना करने का साहस लेकर यदि चल सकते हो तो ही चलना–

ऊँचा नीचा पथ है तम है, आँधी है, तूफान अगम है,
कल्पना का संसार नहीं है, कठिन बहुत बढ़ जाना।

लेकिन जब बढ़ ही रहे तो 'जप', 'नियम', 'संयम', 'धर्म' एवं 'कर्म' का सहारा लेकर लक्ष्य तक बढ़ते ही रहना–

जप नियम औ' संयम से, ज्ञान की ज्योति जगाना,
धर्म कर्म का लिये सहारा, लक्ष्य पर बढ़ते जाना।
राही सोच समझ कर आना।
लक्ष्य तक पहुँचने के लिये सतत् चलना ही चलना है–
दिन में चलना, दिन भर चलना, रात अंधेरी तो भी चलना,
सुख में, दु:ख में, सुख सम्पत्ति में, अपनी नगरिया चलना।

इस चलने से सब कुछ अर्पण कर उसी 'एक' का हो जाना पड़ता है–

तन भी ले लो, मन भी ले लो, इस दुनिया का सब कुछ ले लो।
जो कीमत हो, सब कुछ देकर, अपने संग ले चलना॥
पाप पुण्य का पूरा संचय, अमर गीत का पूरा वैभव।
तुमको सब कुछ दे देने को, तेरी नगरिया जाना॥

इस जाने में सुस्ती काम नहीं देती, सदैव चुस्ती और मस्ती साथ देती है–

माझी जल्दी नाव चलाना, तूफान-तिमिर के पार है जाना।
ले चल, ले चल पार रे मांझी, प्रेम नगरिया जाना॥

इस प्रेम नगरिया में पहुँचकर ये तूफान शांत हो जाते हैं, तम नष्ट हो जाता है, बाधाओं की दीवार ध्वस्त हो जाती है। पथ फूल से बिछा मिलता है–

जा रे क्रन्दन विरह वेदने, ध्वस्त हुई कष्टों की कारा।
कहाँ रहे अब काँटे पथ पर, फूलों से पथ गया सँवारा॥

अब वह तो उन्मुक्त पक्षी है। पिंजड़े से निकल गया, जेल से निकलकर बाहर आया, उसके भ्रम नष्ट हो गये, वह बन्धन मुक्त हो गया। उसने समझ लिया है, मैं कौन हूँ? फिर कितनी खुशी होगी उस व्यक्ति को अपनी वास्तविकता का ज्ञान होने पर–

मुझे में ही तो अनन्त सरोवर,
मेरी पूजा मुझसे ही करते हो,
कैसी विडम्बना कैसा ढोंग?

जब आत्म दर्शन हो गया तो द्वैत कहाँ रह गया, वह तो पूर्ण एवं अद्वैत है–

रोम रोम में मेरे राम अनेकों, कृष्ण अनेकों, रुद्र अनेकों,
मैं ही देवी दुर्गा काली, फिर मुझसे जप करवाते हो,
मैं सब कुछ कर सकता हूँ, मानव मन को रंग सकता हूँ
पूजा किसकी, नीराजन किसका, मेरा-मेरा-मेरा।

इस आत्मदर्शन के लिए मंथन की आवश्यकता होती है। जिस प्रकार दूध के प्रत्येक अंग में मक्खन होता है, किन्तु उसे मथने पर ही पाया जाता है,

इसी भाँति जब संकल्प को अचल बनाकर मन-मानस में मंथन होता है, तब आत्म-साक्षात्कार होता है। उसे मथने के लिये धर्म का पालन करते हुए तथा कर्त्तव्य करते हुए (धर्म एवं कर्मरूपी मथानी) जीवन को लक्ष्य की प्राप्ति तक पहुँचाया जाता है–

धर्म कर्म की बने मथानी, संकल्प विष्णु हे अचल बनो,
जीवन के दैत्य देवता, मन-मानस में मंथन कर दो,
मेरे उर का मंथन कर दो।

कवि ने तो सत्य का दर्शन कर लिया है। वह जग को झूठी लिप्साओं, झूठे नियमों से हटाकर प्रकाश के पथ पर लाने को व्याकुल है। वह तो कब से प्रतीक्षा कर रहा है उस प्रकाश के पार तक पहुँचाने के लिये। और जब उसे कोई पकड़ लेता है तो पकड़नेवाला उसे छोड़ सकता है किन्तु गुरु शिष्य को नहीं छोड़ता, वह धोखेबाज मल्लाह नहीं है। कगार पर ही नाव को पहुँचाकर यात्री को छोड़ता है। वह बड़े साहस से पथिक को साहस दिलाते हुए तम एवं तूफान के पार 'निर्जन' में पहुँचाता है–

चलो अंधकारे तीरे-तीरे, चलो चलो तुम दिन और राती,
तूफान बवन्डर पतझड़ आंधी, तेरा अंचल पकड़ लिया है,
सत्य जगाओ धीरे-धीरे, आओ मेरे निर्जन घर में।

क्योंकि वह तो उसका कर्त्तव्य है। कवि ने संन्यास अपने लिये नहीं, मानवता को जगाने के लिये, सेवा व्रत का पालन करने के लिये लिया है। इसी निश्चित लक्ष्य को लेकर कवि मानव को जगाने तथा उसे उस पार का पथिक बनाने के लिये जूझ रहा है। उस कवि ने अपनी संत परम्परा को कठिन से सरल बनाकर प्रत्यक्ष ला खड़ा किया है जिसका मूर्त स्वरूप 'शिवानन्द आश्रम, बिहार योग विद्यालय मुंगेर' है और मानव की चेतना को जागृत करने के लिये अन्तर्राष्ट्रीय योग मित्र मण्डल का स्वप्न भी कवि ने साकार कर दिया। वे एक काल्पनिक कवि ही नहीं, सृजनात्मक एवं महान् युगदृष्टा भी हैं। इन कविताओं द्वारा पूज्य स्वामी जी ने आत्म-साक्षात्कार का सरलतम नियम बताया है। यही बात वे स्थान-स्थान पर जाकर कह रहे हैं। अपना सब कुछ त्यागकर भोले सुप्त मानव के कानों में गीता का शंखनाद, योग का शंखनाद कर रहे हैं।

कवि अपने उद्देश्य में अबाध गति से बढ़ रहे हैं, सदा बढ़ते ही रहेंगे, क्योंकि मानवता के फूल जो बन गये हैं। पूज्य स्वामी जी का उद्देश्य महान् है, कार्य महान् है। युगद्रष्टा ऋषि भावी पीढ़ी का निर्माण करता है। वही काम स्वामीजी भी कर रहे हैं, उसी सनातन ऋषि परम्परा के वे नियामक हैं।

–शिव मोहन मिश्र, अक्टूबर-नवम्बर 1969

श्री स्वामी सत्यानन्द जी महाराज–एक मूल्यांकन

ईश्वर की कृपा से मुझे अनेक सज्जनों, महज्जनों, साधुओं और सन्तों के दर्शन हुए हैं। मेरे लिये वे सभी श्रद्धेय हैं परन्तु मैं देखता हूँ कि श्रद्धा के भी दर्जे रहा करते हैं। जिन व्यक्तियों के प्रति ऊँचे दर्जे की श्रद्धा उमड़ पड़ती है, वे प्राय: थोड़े ही होते हैं और उनमें मैंने अनुभव किया है कि स्वामी सत्यानन्द सरस्वती का अपना विशिष्ट स्थान है। अनेकों वर्ष पूर्व एकाकी तरुण संन्यासी के रूप में स्वामी जी महाराज राजनाँदगाँव पधारे थे जब उनके भाषणों के ही सिलसिले में मेरा उनसे प्रथम साक्षात्कार हुआ था। उनकी सुधावर्षिणी आँखें, सतत् विद्यमान प्रसन्न मुख मुद्रा, प्रशान्त किन्तु प्रभावशालिनी स्वर माधुरी, सेवापरायण श्रम सक्षम, मझोले दर्जे का प्रौढ़ किन्तु सर्वदा तरुण भाषित होने वाला गौर कलेवर और उस पर तेजस्वी साधना-सम्पन्न विशाल ललाट, सब मिलकर परम्परागत श्रद्धास्पद गैरिक वसन से सम्पादित होकर उसी समय घोषणा सी कर चुके थे कि इस व्यक्तित्व में केवल साधारणता ही नहीं है। प्रथम परिचय में ही उन्होंने मेरे हृदय में अपना स्थान बना लिया जो धीरे-धीरे दृढ़ ही होता गया है।

मैंने देखा है कि वे बच्चों में बच्चे, बूढ़ों में बूढ़े, अनपढ़ों में सामान्यजन सेवी हैं और विद्वानों में निष्णात विचारवान हैं। भक्तों में भावुक भजनीक हैं तो साधकों में उत्कृष्ट अधिकारी योगाचार्य हैं। अभावग्रस्त व्यक्तियों के निरभिमानी सहृदय मित्र हैं तो साथ ही प्रभावग्रस्त लोगों के बीच एक उत्तम देश-कालज्ञ पथप्रदर्शक हैं। स्वत: अमानी रहकर दूसरों को मान देना वे खूब जानते हैं। उनकी विद्वत्ता गम्भीर है परन्तु विद्वत्ता से अधिक उनकी सेवा परायणता है जो अथक है। समय की आवश्यकताओं को पहचानते हुए उन्होंने अपनी चर्या ऐसी बना ली है कि हृदय जीतने की कला में वे आप-ही-आप सुदक्ष हो गए हैं। इसीलिये देखते-देखते उनके चारों ओर साधन-पर-साधन

जुटते चले गए हैं और उनकी ख्याति दिन दूनी रात चौगुनी गति से पूरे संसार में फैल गई और अधिक रूप में फैलती जा रही है। देखकर आश्चर्य होता है कि जो तरुण तपस्वी अज्ञात कुलशील होकर इधर आया और जिसने किसी वस्तु के लिये किसी के सामने कभी हाथ नहीं फैलाये उस परिव्राजक के पास अनायास इतने साधन जुटते चले गए कि उसने अनेकों योग विद्यालय खुलवा डाले, अनेकों अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन करवा डाले, देश-विदेश में उसके अनुयायियों की संख्या लाखों तक पहुँच गई और हजारों रुपये लगाकर विदेशी साधक हवाई जहाजों से उसके दर्शन करने जब देखिये तब दौड़े चले आते हैं। यह क्या कोई सामान्य बात है!

स्वामी जी से जब मेरा घनिष्ठ परिचय नहीं हुआ था तब एक दिन वे मेरे यहाँ पधारे और ढेर सी पुराणों तथा स्मृतियों की सामग्री जो उन्हें कलकत्ते के मोर परिवार से प्राप्त हुई थी मेरे पुस्तकालय के लिये छोड़ गये। मैं उनके एक अन्तर्राष्ट्रीय योग सम्मेलन में पहुँचा तो मेरी सुविधाओं का इतना ध्यान रखा मानो मैं ही उनका सबसे विशिष्ट अतिथि होऊँ। आनन्द की बात तो यही है कि हर कोई यह समझ लेता है कि स्वामी जी का उसी से बहुत अधिक प्रेम है और स्वामी जी सबके आत्मीय होकर भी सबके निर्लेप रह सकते हैं, यह मैंने उनके व्यवहार में देखा है।

योग साधना में उनकी सिद्धि कहाँ तक हुई है, यह तो वही जानें जो उनसे अधिक योग निष्णात हैं, परन्तु जिस सहजता से वे योग विषयक शंकाओं का समाधान करते हैं और जिस सरलता से वे योग की जटिल क्रियाओं को हस्तामलकवत् करा देते हैं वह आप अपने में एक बड़ी उपलब्धि है। जन कल्याण मार्ग के रूप में योग का इस प्रकार प्रचार-प्रसार कर देना हमने तो अन्य किसी महज्जन में नहीं पाया। अन्य जन भी होंगे और सम्भव है कि अधिक शक्तिशाली भी हों, परन्तु हमें तो परमात्मा ने जिनका सान्निध्य दिया उनमें स्वामी सत्यानन्द जी विशेष दमकते दिखाई दे रहे हैं।

मनुष्य की प्रकृति बनाने में परिस्थिति, परम्परा और पूर्वजन्म, सबका अंशदान रहा करता है। स्वामी जी के जन्मजात शुभ संस्कारों को प्रगति का आशीर्वाद मिला दिव्य जीवन संघ के संस्थापक स्वनामधन्य स्वामी शिवानन्द सरस्वती जी से, जिन्हें इन्होंने गुरु रूप में वरण किया। जब वे परिव्राजक होकर चल निकले तब राजनाँदगाँव का सौभाग्य है कि आत्म-निर्भरता के मार्ग में यही उनका प्रारम्भिक क्षेत्र बना। इस क्षेत्र में उन्होंने न केवल एकान्त

साधना के स्थलों का सदुपयोग किया, किन्तु जन सेवा के भी भिन्न-भिन्न मार्ग अपनाये। एकाकी रहते हुए भी उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय संगठन का स्वप्न देखा। और केवल स्वप्नद्रष्टा ही बनकर नहीं रह गये, बल्कि अपने स्वप्न को कार्यक्षेत्र में भी सुचारू रूप से उतार दिया, जिसके साक्षी उनके द्वारा संचालित न केवल अनेकानेक अन्तर्राष्ट्रीय योग सम्मेलन हैं जिनमें बीसियों विदेशी राष्ट्रों के प्रतिनिधि भाग लेते रहे किन्तु बिहार योग पीठ रायगढ़, गोंदिया, बम्बई, राजनाँदगाँव आदि की संस्थायें भी हैं। कोई भी वातावरण किसी भी सत्कार्य के बीजों से शून्य नहीं रहा करता।

चाहे कोई स्वामी जी का बाकायदा शिष्य बने या न बने, वह उनके सान्निध्य से बराबर लाभ उठा सकता है। टेढ़े-मेढ़े कैसे भी प्रश्न पूछे जाएँ, वे नाराज नहीं होते और सब प्रकार की शंकाओं का समाधान सुहृत् सम्मित वाणी में देने को तत्पर रहते हैं। तन और मन को स्वस्थ रखने के अनेक सुगम उपाय उन्हें विदित हैं। उनके अनुभव सागर के जो भी बिन्दु मिल जाएँ वे सब बड़े मूल्यवान् होते हैं। उन्होंने एक बार कहा, 'एक इष्ट रखो, चाहे वह प्रभु का कोई कल्पित रूप हो, चाहे कोरा श्यामल बिन्दु ही क्यों न हो। वह हरेक चेतना स्तर पर विद्यमान रहे और उससे हमारा जीवित सम्पर्क बना रहे। जब उससे ध्यान हटने लगे तब जप बन्द कर दिया जाना चाहिये।' दूसरे अवसर पर एक बार कहा, 'आसन, प्राणायाम, जप, ध्यान आदि हृदय में नई जीवनी शक्ति, नई ताजगी भरने के लिये किये जाते हैं। यदि किसी प्रक्रिया से प्रसन्नता के बदले थकान बढ़ती हुई जान पड़े तो समझ लेना चाहिये कि उस प्रक्रिया में कहीं-न-कहीं कोई गड़बड़ी है। वह न सुधर पावे तो उसे छोड़ ही देना चाहिये।' अन्य एक अवसर पर उन्होंने कहा, 'वही व्यक्ति गुरु बनाने योग्य है जिसके सत्संग में शान्ति का अनुभव हुआ करे और जो समस्याओं को सुलझाने में सक्षम हो। व्यक्ति अपनी श्रद्धा से आगे बढ़ता है, न कि गुरु के गुणों-अवगुणों की छानबीन करने से। गुरुमुखी दीक्षा का अपना खास महत्व रहता है। उसके शब्द, मंत्र रूप में हमारे अचेतन मन के कुसंस्कारों का नाश कर देते हैं। अतएव गुरु बनाना वांछनीय है, परन्तु गुरु उसे ही बनाया जाए जो हमारी श्रद्धा और हमारे विश्वास को प्रभावित कर सके। यह स्मरण करना चाहिये कि दीक्षा चाहे व्यक्तिगत हो अथवा सामूहिक, शिष्य की श्रद्धा और लगन ही उसके विकास में आवश्यक तत्त्व हैं।' इसी विषय को और अधिक स्पष्ट करते हुए एक अन्य अवसर पर कहा, 'कोई गुरुमुख हो गया, इसका

यह अर्थ नहीं कि वह गुरु की क्रीत दास हो गया या वह गुरु को कभी छोड़ ही नहीं सकता। वह चाहे तो गुरु की आज्ञा से अन्य पथप्रदर्शक के पास जा सकता है और वह चाहे तो गुरु की कंठीमाला उसे वापिस सौंपकर उससे सदैव के लिये अपना सम्बन्ध-विच्छेद कर सकता है।' उनका यह कथन एकदम व्यावहारिक पूर्ण था। अपनी व्यावहारिकता में तो वे एक बार यह भी कह गये थे, 'यदि गृहस्थ संन्यासी हो सकता है तो संन्यासी गृहस्थ क्यों नहीं हो सकता? दोनों अपने-अपने स्थान पर एक समान महत्त्वपूर्ण हैं।'

पश्चिम के देश बुद्धिप्रधान माने जाते हैं परन्तु मैंने वहीं के लोगों में स्वामी जी के प्रति अत्यधिक श्रद्धा देखी है। स्वामीजी का कहना है कि पाश्चात्य देशों के लोग भौतिकता से ऊब चुके हैं और उससे लिपटी हुई पाश्चात्य आध्यात्मिकता भी उन्हें रोचक नहीं लग रही है। भारतीय रहन-सहन और साधना पद्धति में उन्हें रहस्यात्मकता मिलती है, अतएव शान्ति और आनन्द के लिये वे इसी ओर झुके पड़ रहे हैं। वहाँ के लोगों में योग आदि विषयों की ओर तर्क भाव नहीं जिज्ञासा भाव रहता है, परन्तु वे ग्रहण उन्हीं बातों को करते हैं जो उनकी बुद्धि को पटे। वे लोग भारतीय संस्कृति को अपनाना चाहते हैं क्योंकि वे इसकी शान्तिप्रद परम्परा के महत्त्व को मानते हैं परन्तु आवश्यकता इस बात की है कि उन्हें इस संस्कृति के तत्त्व इस प्रकार समझाये जाएँ जिससे उन्हें आध्यात्मिक क्षुधातृप्ति के साथ-साथ बौद्धिक समाधान भी मिलता चले।

तंत्र पर चर्चा चलने पर मैंने तंत्र विषयक अपने अधकचरे ज्ञान के कुछ नमूने स्वामी जी के समक्ष प्रस्तुत कर दिये। वे मुस्कुराते हुए चुपचाप सुनते रहे। कुछ ही दिनों बाद मैंने तंत्र शास्त्र पर उनका एक लेख देखा जो उनके व्यापक अध्ययन और मौलिक चिन्तन से भरपूर था। कितना अद्‌भुत पाण्डित्य है उनमें। चाहे गीता शास्त्र पर उनका लेख हो, चाहे तंत्र शास्त्र पर अथवा और किसी विषय पर, चाहे हिन्दी में उनके भाषण हों या अंग्रेजी में, हर कहीं उनकी प्रवाहमयी शैली अपनी विशिष्ट छाप छोड़े बिना नहीं रहती।

स्वामी जी की प्रेरणा से राजनाँदगाँव निवासियों ने भी अन्य स्थानों के समान स्वामी जी के तत्त्वावधान में एक योग विद्यालय यहाँ भी स्थापित करने का निश्चय कर लिया है। परमात्मा से मेरी प्रार्थना है कि वे स्वामी जी को माध्यम बनाकर इस योग विद्यालय को सब प्रकार हितप्रद, स्वावलम्बी तथा सर्वतोन्मुखी समृद्धिशाली चिरजीवन युक्त करें।

—डॉ. बलदेव प्रसाद मिश्रा, राजनाँदगाँव, जुलाई 1970

योग शृंगार

योग मार्ग में अद्भुत गुण का सार देख लो।
मानव जीवन का जन्मसिद्ध अधिकार देख लो॥
योग का अधिकार देख लो।
नमो-नमो सत्यानन्द स्वामी, परमहंस संन्यासी।
युग धर्म प्रचारक वीत राग – हे योग सिद्ध उल्लासी॥
हे महायशी दृढ़व्रती सत्य-संकल्प सिद्ध सुखराशी।
विश्व प्रेम, हे समाधिष्ट, हे सज्जन सरल सुभाषी॥
सत्य लगन सुन्दर स्वरूप संस्कार देख लो।
विश्व भ्रमण कर घर-घर करते योग प्रचार देख लो॥
योग का अधिकार देख लो।
द्वादश मूर्ति चले प्रचारक, दिव्य ज्योति दरसाने।
पुरुषार्थ हेतु सद्गुरु साथ ले साधन योग दिखाने॥
आसन, प्राणायाम, यम, नियम, प्रत्याहार बताने।
धारण, ध्यान, समाधि, योग-विज्ञान तत्त्व समझाने॥
कुम्भक, पूरक, रेचक का व्यापार देख लो।
अष्टांग योग के साधन का शृंगार देख लो॥
योग का अधिकार देख लो ...
ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, क्षमा, सत्य, अहिंसा यम है।
ईश्वर प्रणिधान, शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय ही नियम है॥
मूलबंध बेधा जालंधर महाबंध उड्डियान है।
बैखरी मध्यमा परा पश्यती वाणी चार संगम है॥
चक्रबन्ध, मुद्रा, वाणी का सुधार देख लो।
आसन चौरासी शरीर का आहार देख लो॥
योग का आहार देख लो ....
मूलाधार गुदा के ऊपर स्वाधिष्ठान पेडू में धार।
मणिपुर नाभि में राजे, हृदय अनाहत करे पुकार॥
विशुद्धि कंठ आज्ञा भृकुटी में, ब्रह्मरंध्र में सहस्त्रार।
जागृत विश्व स्वप्न में तेजस प्रज्ञा सुषुप्ति में देख विहार
बिन्दु चोटी में अष्ट चक्राकार देख लो।

विधा ऐश्वर्य विवेक सिद्धि का प्यार देख लो।
योग का प्रचार देख लो ......
बिहार योग विद्यालय का सुन्दर प्रचार क्रम देखें।
मध्य प्रदेश-बिहार-उड़ीसा-महाराष्ट्र यात्रा लेखें॥
आसन-प्राणायाम योग से दु:ख मिटाना सीखें।
दैवी संपदा को अपना कर जीवन में ज्योति परखें॥
शिवानन्द आश्रम मुंगेर का उद्‌गार देख लें।
भेष भजन कर मानव का उद्धार देख लें॥
योग से मानव का उद्धार देख लें।

–पं. भेषधारी मिश्र, मुंगेर, जुलाई 1972

युग पुरुष

विश्व इतिहास के मोड़ पर खड़े मार्गदर्शक युग पुरुष पूज्य स्वामी श्री सत्यानन्द जी महाराज ने, योग विद्या के इतिहास और इसकी परम्परा में क्रान्ति कर हमें, सुदूर अतीत में ले जाकर अपनी अमृतमयी वाणी से उपनिषद्काल के ब्रह्मानन्द की अनुभूति करा अमर सन्देश देकर कृतार्थ कर रहे हैं। योग वह वैज्ञानिक साधना है जो हमें ईश्वर से साक्षात्कार कराती है। यह उपनिषद् काल के ऋषियों की अद्‌भुत देन है।

आज स्वामी जी हमें उसी स्वर्ण युग का स्वप्न दिखा रहे हैं। नीरस और निरास जीवन को सरस, आशापूर्ण और सफल कर रहे हैं। इन्होंने आध्यात्मिक शक्ति पायी है। दुनिया के समस्त पदार्थों से प्राप्त आणविक शक्ति से भी अधिक आत्मा की शक्ति है। यह आध्यात्मिक शक्ति हमारे देश के होनहार बच्चों के कलुषित संस्कार नष्ट कर उन्हें सौम्य बना सकती है।

परमहंस स्वामी सत्यानन्द जी ने योग को विज्ञान का रूप देकर दुनिया के जड़ मस्तक के तर्क को कुण्ठित कर दिया है। सर्वसाधारण की शिक्षा में योग विज्ञान के द्वारा कलुषित संस्कार नष्ट करने का स्वामी जी का प्रयास कोई साधारण नहीं है। इन्होंने अपने प्रगतिशील विचार लाकर योग विद्या में महान क्रान्ति की है। स्वामी जी हम लोगों को सुदूरभूत में ले जाकर पुण्यमयी दुनिया का आनन्द अनुभव कराते हैं। दयनीय, दुर्दशापूर्ण वर्तमान के भयंकर भय से मुक्ति की सुन्दर, सुलभ आशा दिखाकर सुन्दर,

आनन्दमय भविष्य का स्वप्न और आशा जगाते हैं। ऐसे ही सद्‌गुरुओं के लिये कबीर ने कहा है–

यह तन विष की वेलरी, गुरु अमृत की खान।
सीस दिये जो गुरु मिले, तो भी सस्ता जान॥

आज के युग में स्वामी जी हम लोगों के लिये पूज्य और पूज्य से प्रिय हो गये। अब भी हम लोगों का उद्धार न हो तो हमसे बढ़कर कौन अभागा होगा। श्री स्वामी जी हमें एक साथ ही श्री कृष्ण के समान एक हाथ में प्रेम की बंशी तथा दूसरे हाथ में आह्वान का पाँचजन्य शंख, बुद्ध के समान दया का कषाय वस्त्र और प्रेम का शिक्षापात्र, श्री शंकराचार्य के समान शास्त्र और योग विद्या का भंडार लिये दिखाई पड़ रहे हैं। उनके अनेकों शिष्य-शिष्याओं के विदेश भ्रमण हमें सम्राट् अशोक के पुत्र-पुत्री महेन्द्र तथा संघमित्रा जैसे विश्व प्रेम और वसुधैव कुटुम्बकम् का सन्देश देते दिखाई पड़ते हैं। आज हम लोग भूतकाल के हजारों वर्षों तथा भविष्य के हजारों वर्षों के विस्तृत काल का गुरु कृपा से एक साथ दर्शन कर रहे हैं।

'सद्‌गुरु वैद्य वचन विश्वासा', इनके वचनों पर विश्वास करने से ही हमारा उद्धार होगा। गोरा रंग, काषाय वस्त्र, हंसमुख मुखमण्डल, विश्व प्रेम और विश्व कल्याण के प्रकाश से युक्त चमकता भाल आज सारे पीड़ित विश्व की वेदना से उद्धार का एकमात्र केन्द्र हो रहा है। ऐसे जगत्‌गुरु को हम बारम्बार प्रणाम करते हैं।

जग के उर्वर आंगन में, बरसो ज्योर्तिमय जीवन।
हम पर छिटका दो ज्योति किरण॥

–रामनन्दन 'राम', अप्रैल 1973

सत्यम् तेरी जयकार रहे

आरती-वन्दन की यह बेला,
भक्तगणों का यह है मेला
नर-नारी सब यही कहें,
युग-युग तेरी जयकार रहे।

तू पत्थर पारस है,
करता लोहा भी सोना है,
पापी भी तर जाते हैं,
तेरी शरण जो आते हैं।।

सरल वाणी मधुर हास्य से,
हरता सब का अंतरमय है,
अभिमानी नत-मस्तक होते
चरण धूली ले धन्य हैं होते।

सहज भक्ति-परिपूर्ण भक्त ही,
तुमको हरदम भाते हैं,
छल-कपट पूर्ण पूजा अर्चन
नहीं तुझे हर्षाते हैं।

बिना कहे बिन बोले ही,
भावों को पढ़ लेता है,
बिन वाणी अनजाने ही,
सब के दु:ख हर लेता है।

सत्यम् तू जग का उजियारा,
दूर भगाता मन-अंधियारा,
कभी न यह बुझने पावेगा,
योग गगन का जगमग तारा।

शक्ति अलौकिक तुझमें पावें,
'चारू' महिमा किस विधि गावें,
तू सब की आँखों का तारा
सब को है प्राणों से प्यारा।

–चारूशीला, राजनाँदगाँव, जुलाई 1973

गुरु-छाया में अविस्मरणीय पन्द्रह दिवस

थक गई गोली, सिरप और इंजेक्शन लेते-लेते। कोई लाभ नहीं। निराशा का घना अन्धकार। राह सूझती नहीं थी। कई बार इच्छा होती कुछ खाकर हमेशा के लिये जीवन से मुक्ति पा लूँ। पर दूधमुँही बच्ची का क्या दोष जो माँ की छाया से वंचित हो। पति का मुँह देखकर हिम्मत नहीं होती। जैसे-तैसे जीवन का भार ढो रही थी। जब भी दमे के दौरे उठते, असह्य यंत्रणा से छटपटा उठती। इसी बीच पतिदेव का स्थानान्तरण रायगढ़ हुआ। संयोगवश श्री के. बी. सहस्रबुद्धे जी से भेंट हुई और वहीं से जीवन मन्य की उपलब्धि हुई।

विश्वास-अविश्वास से झूलते मुंगेर की राह पकड़ी। रास्ते में भयंकर दौरा उठा। किसी तरह योग विद्यालय के फाटक पर रिक्शा पहुँचा। सहारा लेकर साधना-कक्ष तक पहुँच बेदम होकर बैठ गई। पूज्य स्वामी जी अपने कमरे में कार्यव्यस्त थे, दर्शन नहीं हुए थे।

एक वयोवृद्ध संन्यासी के आश्रम के अधिष्ठाता होने की कल्पना के विपरीत एक युवा किन्तु तेजस्वी संन्यासी को समक्ष देखकर संस्कारवश प्रणाम किया—केवल हाथ जोड़कर, झुककर नहीं।

आदेश हुआ—'शाम को दही-चावल खाओ।' सुनकर काँप गई। खट्टा और ठण्ढा भोजन। विरोध करना अनुचित था। अतः ईश्वर पर परिणाम छोड़, दो वर्ष पूर्व छोड़ा हुआ चावल और वर्षों से त्याज्य दही बड़े स्वाद से ग्रहण किया। चमत्कार लगा, जब रात भर चैन से सोयी।

प्रातः स्वयं श्री स्वामीजी का सबको जगाने का नियम था। हड़बड़ाकर उठी और चरण छूकर प्रणाम किया। वे मुस्कराये, शायद कल के आचरण और आज के व्यवहार का भेद उनके ध्यान में आ गया। सुबह साढ़े पाँच बजे स्नान किया जो मेरे लिये सचमुच एक अभूतपूर्व अनुभव था। श्री गंगा मैया के शीतल जल से युग-युग की संचित कालिमा को जैसे धो दिया। मन अत्यन्त प्रसन्नता एवं शरीर स्फूर्ति से भर गया।

अपने जीवन का वह प्रथम रोमांचकारी दिन भुलाया नहीं जा सकता। आसन, प्राणायाम, ध्यान करके प्रातः 8 बजे फुरसत पाई तो गरमागरम दलिया का पानी मिला। उसके स्वाद के आगे चाय का स्मरण करना व्यर्थ था। खूब भूख लगी थी। डटकर पिया और शेष अंश भी चाट-चाटकर खा गई।

दस बजे तक का समय बड़ी कठिनाई से बीता क्योंकि भूख पुनः चमक उठी थी। दो वर्षों से छूटा दाल-चावल मिलने वाला था, इसलिये भूख अधिक

परेशान कर रही थी। जब दही-चावल से कुछ नहीं हुआ, तो दाल-चावल भी नुकसान नहीं करेगा इसका पूर्ण विश्वास था। यही विश्वास मेरा सम्बल बना।

भोजन के समय श्री स्वामीजी ने हँसकर कहा, 'चावल नुकसान करेगा, क्यों खाते हो?'

मैंने भी उसी स्वर में उत्तर दिया, 'हानि-लाभ का विचार अब नहीं उठता मन में।'

'बस यही तो चाहिये। यह सोचना बिल्कुल बन्द कर दो कि अमुक चीज खाने से नुकसान करेगी। बीमारी मन की कमजोरी से होती है, शरीर से नहीं,' स्वामीजी ने कहा।

नाना प्रकार की बातों के बीच भोजन समाप्त हुआ। आधा किलो समाई के ग्लास भर बिहार के प्रसिद्ध माल्दा आम का रस मिला। अहा! मन तृप्त हो उठा।

दोपहर को लिखित जप, योगनिद्रा, त्राटक आदि यौगिक क्रियायें हुईं। पूरा दिन कैसे बीता, पता नहीं चला। संध्या पाँच बजे मुंगेर के अनेक जिज्ञासुओं का जमघट। अनेकों प्रश्न, सटीक उत्तर। हास्य-विनोद के वातावरण में न जाने कितनों को जीवन की राह मिली, प्रकाश मिला। मुझे स्वामीजी ने एक विशेष कार्य करने की आज्ञा दी–सत्संगियों के साथ आने वाले बच्चों की अलग कक्षा लेना। कहानी-खेलों द्वारा उन्हें एक स्थान पर एकत्रित रखना ताकि उनके माता-पिता सत्संग का पूर्ण लाभ उठा सकें। मेरे सत्संग का रूप यही था जिसे मैंने सहर्ष स्वीकार किया।

साढ़े छः बजे शाम को संध्या भोजन के उपरान्त 7 से 9 बजे प्रशिक्षार्थियों का सत्संग हुआ। अनेकों प्रश्नों, शंकाओं तथा समस्याओं का निवारण श्री स्वामीजी ने किया। छायोपासना के उपरान्त वह दिन समाप्त हुआ। रात्रि साढ़े नौ बजे सभी निद्रा में लीन थे।

नित्य की यही दिनचर्या थी। मुझे वही चीजें खाने को दी जातीं जिनकी मैं इच्छा करती चाहे वे नुकसानदायक हों, परन्तु एक दिन भी दमा का दौरा नहीं उठा। खूब डटकर सादा किन्तु अति स्वादिष्ट भोजन करती।

नेति, कुंजल, वस्त्र धौति, शंखप्रक्षालन से शरीर की शुद्धि हुई। आसन, प्राणायाम, लिखित जप, त्राटक, योग निद्रा और गीता ज्ञान ही मेरी बीमारी के कारगर शत्रु सिद्ध हुए। दस दिनों में ही मेरे चेहरे पर स्वास्थ्य की लालिमा चमक उठी।

स्वास्थ्य का वरदान पाकर मैं कृत-कृत्य हो उठी। बड़ी लगन और विश्वास से अपने लिये निर्धारित क्रियाओं का अभ्यास मैंने किया। पच्चीस दिनों में 15 पौंड वजन बढ़ गया। सुफल प्रत्यक्ष था।

दमा रोग के लिये जो आसन-प्राणायाम तथा यौगिक क्रियाएँ कारगर सिद्ध हुईं वे निम्नानुसार हैं–

आसन–योगमुद्रा, भुजंगासन, शलभासन, सर्वांगासन, मत्स्यासन, धनुरासन आदि।

प्राणायाम–नाड़ीशोधन, भस्त्रिका, उज्जायी।

षट्कर्म क्रियाएँ– शंखप्रक्षालन, नेति, वस्त्रधौति, कुंजल।

उपर्युक्त कार्यक्रम विश्वसनीय, लाभप्रद एवं अनुभवसिद्ध है। अभ्यास में नियमितता अनिवार्य है, अन्यथा रोग पुन: उभर सकता है। यद्यपि वेग प्रबल नहीं होता, सौम्य रहता है।

–श्रीमती कान्ता नामदेव, अगस्त 1973

स्वप्न एक संन्यासी का

यदि स्वप्नों पर रिसर्च आप करें तो पायेंगे कि अधिकतर बड़ी-बड़ी कृतियों को करने का आदेश शुद्धमना महान् आत्माओं को स्वप्नों के द्वारा मिलता है। हमारे गुरुदेव, स्वामी सत्यानन्द जी का स्वप्न है कि वे भारत की प्राचीन योग-विद्या को अतीत की समाधि से निकाल कर, आधुनिक सभ्यता से उसका गठबन्धन कराकर ही दम लेंगे।

श्री स्वामीजी पूर्ण योगी हैं। उन्होंने योग का अभ्यास करके जीवन के मूलभूत नियमों की परीक्षा की और ऋषियों के बताये हुए विज्ञान को सत्य पाया। उन्हीं यौगिक नियमों को आधार बनाकर वे आगामी सभ्यता व संस्कृति की नींव तैयार कर रहे हैं। महापुरुष ही समाज की रूप-रेखा व ढाँचा तैयार करता है। साधारण व्यक्ति तो केवल बने बनाये समाज के अन्दर ही रहना जानता है। समय-समय पर संसार में असाधारण व्यक्ति आते हैं, जो तकलीफ उठाकर, अपमान, उपेक्षा सहकर भी अपने लक्ष्य से विचलित नहीं होते। और वे एक अमिट रेखा बना देते हैं।

हमारे गुरुजी ने भी आज ऐसे ही काम का बीड़ा उठाया है, जिसके महत्त्व को आज भले ही कोई न समझे, परन्तु हमारी आगे की पीढ़ी यह समझेगी कि

राष्ट्रीय स्वास्थ्य को बनाने में श्री स्वामीजी के विविध सर्वांगीण प्रयासों का क्या हाथ रहा है। प्राचीन विद्याओं को पुनः प्रकाश में ले आने में कितना बड़ा योगदान रहा है। योग के खोये हुए गौरव को किस प्रकार फिर से नये युग में उसके मूल्यों की पूर्ण रक्षा करते हुए पुनः स्थापित किया है। योग को विज्ञान के साथ तौलकर दिखा दिया है कि यह सतयुगीय नहीं, बल्कि कलियुगीय है। आधुनिक समाज के लिए अत्यन्त उपयोगी विद्या है। यह लोहा, कोयला, तांबा, भाप, बिजली और एटम के युग में भी आज उतनी ही उपयोगी है, जितनी प्राचीन ऋषियों के युग में थी। श्री स्वामीजी ने आज पढ़े-लिखे लोगों को यह चुनौती दी है कि योग पर अधिकार के साथ बोलने के पहले आओ, कुछ अभ्यास करो।

श्री स्वामीजी को भी भविष्य के इन कार्यक्रमों की झलक दिखायी दी थी। उन्हें बराबर भविष्य की झाँकियाँ एवं भविष्य के दृश्य एवं नये अपरिचित व्यक्तियों के चेहरे स्वप्न, ध्यान और ट्रांस में दिखा करते थे। ध्यान की अवस्था में वाणियाँ सुनायी पड़ती थीं। कई साधकों, शिष्यों एवं सहयोगियों के बारे में उन्हें पहले से मालूम था कि ये उनके काम में बहुत मदद पहुँचाएँगे। आज भी श्री स्वामीजी जानते हैं कि उन्हें किस-किस क्षेत्र से किस प्रकार आगामी कार्य करना व उसकी नींव तैयार करनी है। विज्ञान के साथ साम्य रखते हुए योग-संस्कृति की रक्षा और उपयोग का सुलभ तरीका सर्व-साधारण को कैसे प्राप्त होगा, श्री स्वामीजी सब जानते हैं। चर्चा भी करते हैं। श्री सत्यव्रत, बसन्ती, श्रीमती अद्यावती सहाय, देवीदत्त जोशी तथा अनेक व्यक्ति हैं जो स्वामी सत्यानन्द सरस्वती को आज से नहीं, उनके गुरु आश्रम से ही जानते हैं। कई व्यक्ति हैं जिन्होंने दीक्षा तो ली है स्वामी शिवानन्द जी से, पर अपना वास्तविक साधना गुरु मानते हैं स्वामी सत्यानन्द को ही। दिल्ली, मुम्बई तथा अन्य स्थानों में श्री स्वामीजी के पूर्वाश्रम के साथी मिलते हैं, जो शिष्य बनकर उनसे साधना सीखने आते हैं।

श्री स्वामीजी का स्वप्न है कि मनुष्य मात्र योग को उसी प्रकार अपना ले, जिस प्रकार कोट, पैंट, पायजामा और टाई को स्थान दिया है। पब्लिक नाम की जो जनता है, उसमें स्वयं सोच-विचार की शक्ति नहीं होती, वह प्रभावित होती है या की जाती है। अस्तु समाज सुधारकों की व समाज निर्माताओं की जवाबदेही बढ़ जाती है। इसीलिए यह काम संन्यासी और सन्त अपने ऊपर लेते हैं। चूँकि उनका व्यक्तिगत स्वार्थ नहीं होता, इसीलिए सफल भी होते हैं।

मैंने देखा है कि श्री स्वामीजी अपने पास आने वाले सभी दु:खी, आर्त्त, युवक, वृद्ध, आबाल, नर-नारी सभी को वही रास्ता बताते हैं जो उनके लिये सर्वोत्तम होता है। मनुष्य कितना दु:खी है, और उसे सच्चे ज्ञान की कितनी जरूरत है, इसका पता इन समृद्ध बड़े ऑफिसरों को नहीं हो सकता, जो ऊँची तनख्वाहों से सम्मोहित हो जाते हैं। आज का मनुष्य अपनी भविष्य की सुरक्षा की बात पहले सोच लेता है, तभी वह किसी कल्याण-कर्म में प्रवृत्त होता है। परन्तु संन्यासी, क्या वह भी ऐसा सोचेगा? नहीं। वह अपने निश्चय पर अटल रहता है। बाधाओं से नहीं डिगता है।

और लौह संकल्प लेकर चल रहे हैं श्री स्वामीजी, योग-संस्कृति के पुनरुत्थान के लिए कटिबद्ध हैं। पुस्तकों, पत्रिकाओं, टेप रिकॉर्डर, फिल्म प्रोजेक्टर, सभी कैम्पसों, सभी जगहों से वे एक ही राग अलाप रहे हैं–योग की धुन, संन्यासी की मस्ती है और योग का तेज। श्री स्वामीजी आज एक व्यक्ति नहीं, बल्कि एक इन्स्टीट्यूशन स्वयं ही हैं। यह आन्दोलन की हवा है, जो इन्टर नेशनल योग फेलोशिप मूवमेंट की पत्रिका पढ़कर सबको लग रही है।

–श्रीमती विजया प्रेमनीति, मुंगेर, 1973

महाप्राण

सत्यम् तू जग का महाप्राण
स्वर्णिम विहान का अमर दान

सविता सी सम्यक् धवल कीर्ति
भर रही जगत में योग प्रीति
तेरा प्रयास कुछ न्यून नहीं
जो सजा रहा है व्योम यान
हो रहा छिन्न भौतिक विधान
सब कुछ, पर मन का प्राण नहीं
एटम - उदजन - बम युद्ध पोत
ऐश्वर्य सकल पर त्राण नहीं
खो गया मनुज का लगता कुछ,
पर क्या है खोया ज्ञान नहीं

बाहर कुछ है और भीतर कुछ
है चमक-दमक पर अन्त लुप्त
है थका वटोही खोज रहा
अपनी बीथी का पूरा ज्ञान
दे उन्हें बता कुछ थाह पता
उस क्रियायोग की अमर लता
जिसकी शीतलता में दम भर
वे मिटा सके अपनी थकान

सत्यम् तू जग का महाप्राण
स्वणिर्म विहान का अमर दान।

–द्वारका मिस्त्री, अक्टूबर 1974

मानवीय चेतना का महान् शिल्पी

परमहंस स्वामी सत्यानन्द जी सरस्वती एक महान् योगी हैं। उन्होंने अपने असीम ज्ञान एवं अखण्ड तप से योग की समस्त साधनाओं को सिद्ध कर, न केवल इसके सैद्धान्तिक ज्ञान पर अधिकार प्राप्त किया है वरन् जगत् एवं जीवन के लिये इसके व्यावहारिक पक्ष का भी सफलतापूर्वक प्रयोग किया है। अपने गुरु, स्वामी शिवानन्द जी महाराज की परम्परा में, आप सर्वोत्कृष्ट रत्न हैं, गुरु के प्रति अपनी अनन्य भक्ति के कारण आप जो भी कार्य करते हैं, उसे मात्र सेवा ही समझते हैं, और इसीलिये ज्ञान और योग के महाधनी इस सन्त ने अपना सर्वस्व मानवता की सेवा में न्यौछावर कर दिया है।

ज्ञान योग एक कठिन साधना समझी जाती रही है तथा जन साधारण से दूर। यह कुछ पहुँचे हुए सन्तों एवं योगियों के ही अधिकार की वस्तु रही है। ये योगी एकान्त में साधना कर सिद्धि प्राप्त करने तथा केवल अपने ही तन-मन का परिष्कार करते हुए अखण्ड समाधि में लीन हो जाया करते थे, किन्तु स्वामी सत्यानन्द जी ऐसे कर्मयोगी निकले जिन्होंने केवल अपने लिये नहीं वरन् सम्पूर्ण विश्व की मानवता के लिये अपनी योग विद्या का प्रयोग किया। उन्होंने अपने सम्पूर्ण ज्ञान को तन, मन एवं आत्मा की शुद्धि एवं उपचार के लिये लगा दिया। उन्होंने अपनी शक्ति का प्रयोग जन-कल्याण हेतु किया।

इसके माध्यम से उन्होंने पीड़ित, दु:खी और अशान्त मानव जाति को चिरन्तन सुख एवं शान्ति का सन्देश दिया।

स्वामी सत्यानन्द जी सरस्वती ने जिस कर्मयोग का प्रचार एवं प्रसार किया वह जनता के प्रत्येक वर्ग के लिये हितकारी और उपयोगी है। इसके लिये लोगों को घर-गृहस्थी का त्याग कर संन्यास लेने एवं जंगल में निवास करने की आवश्यकता नहीं। वे गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हुए भी तन-मन के संयम तथा जीवन की नियमितता से सिद्धि प्राप्त कर सकते हैं। उनका योग लोगों को अपने भौतिक कर्त्तव्यों एवं जिम्मेदारियों से विमुख नहीं करता वरन् नियम एवं व्यवस्था के माध्यम से जीवन को अनुशासित करने पर बल देता है। यही कारण है कि विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत आज सैकड़ों और हजारों की संख्या में स्वामी सत्यानन्द जी के शिष्य देश-विदेश के कोने-कोने में बिखरे हुए हैं।

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती जी ने जीवन को सही दृष्टिकोण से देखने की प्रेरणा दी है। उनके अनुसार जीवन रहस्यमय है। अत: उसके साथ व्यवहार भी बड़ी सावधानीपूर्वक किया जाना चाहिये।

योग को जीवन के परिष्कार का महान् व्यावहारिक साधन निरूपित करते हुए स्वामी सत्यानन्द जी महाराज ने कहा, जप साबुन है, आसन शरीर को शुद्ध करते हैं, ईश्वर का नाम मन की शुद्धि करता है, ध्यान इच्छाशक्ति को बलवती बनाता है, कार्य भविष्य को शक्तिशाली बनाता है तथा अध्ययन मनुष्य को पूर्णता प्रदान करता है। जो जीवन को ईश्वर की अमूल्य देन समझता है उसके आगे जीवन के सारे रहस्य अपने आप स्पष्ट हो जाते हैं और वह आसानी से उन पर विजय प्राप्त कर लेता है। जिन लोगों के मन में ईश्वर के प्रति अगाध श्रद्धा होती है उनके लिये जीवन सरल होता है। वे ईश्वर की इच्छा के अनुकूल अपने जीवन को ढालते हैं तथा भक्ति एवं कर्म करते हुए जीवन में शाश्वत सुख एवं शान्ति की प्राप्ति करते हैं। इस प्रकार स्वामी जी ने योग को अत्यन्त सीधे, सरल एवं व्यावहारिक रूप में जन-जन के जीवन तक पहुँचाने का प्रयास किया तथा उसके माध्यम से लोगों को अपने जीवन को नियमित करने की प्रेरणा दी।

यही नहीं, जीवन की सफलता की कुंजी भी उन्होंने बड़े सीधे-सादे ढंग से लोगों के सामने रख दी। उन्होंने कहा, 'सादगी जीवन जीने का वैज्ञानिक तरीका है, मितभाषण सर्वाधिक मूल्यवान आभूषण है तथा सेवा जीवन का क्षार (नमक) है। जिस प्रकार वैज्ञानिक तरीके से की गई खोज हमेशा सत्य

को प्राप्त करती है, उसी प्रकार सादा जीवन एवं उच्च विचार मनुष्य को जीवन के सत्य, ईश्वर का दर्शन कराते हैं। मीठा बोलना वह अमूल्य निधि है, जो हर व्यक्ति को अपनी ओर आकर्षित कर उसे अपना बना लेती है। इसी प्रकार सेवा भाव उस नमक के समान है जिसके बिना सब कुछ फीका हो जाता है। वास्तव में सेवा वह अद्‌भुत शक्ति है जो मानव-मानव के बीच सम्बन्धों को दृढ़ आधार प्रदान करती है, तथा उनके सुखद भविष्य का निर्माण करती है।'

जीवन में अस्थायी शान्ति की खोज करने वालों को स्वामी सत्यानन्द जी महाराज ने कहा, 'शान्ति उन्हें मिलती है जो हृदय से शुद्ध होते हैं, कर्त्तव्य में साहसी होते हैं, पिछड़े हुए वर्ग की सेवा करते हैं तथा किसी कार्य को करने से पहले उस पर चिंतन कर लेते हैं।' कितना सरल एवं सुगम साधन है जीवन में शान्ति प्राप्त करने का! उन लोगों के लिये जो अपार धन-धान्य से परिपूर्ण ऐश्वर्य का जीवन बिताते हुए भी मन में शान्ति का अनुभव नहीं करते, स्वामीजी का उपर्युक्त संदेश निश्चय ही सही मार्गदर्शन देगा।

मानव पूजा ही सच्ची ईश्वर पूजा है—इस पर स्वामी सत्यानन्द जी महाराज ने अत्यधिक बल दिया है। उनका कहना है कि ईश्वर भक्ति के बगैर जीवन निरर्थक एवं व्यर्थ है और सच्ची ईश्वर भक्ति मनुष्य तभी कर सकता है जब वह अपने से कम भाग्यशाली, दीन, दु:खी एवं पीड़ित लोगों की सेवा करे। हर मनुष्य का जीवन परिवार एवं व्यवसाय के दायरे में सीमित रहता है और वह इन्हीं के बारे में सोचता हुआ अपनी संकुचित स्वार्थ-सिद्धि में लगा रहता है, किन्तु जो इस सीमा से बाहर निकलकर दूसरों की भी भलाई का ख्याल रखते हैं तथा जरूरतमंदों की मदद करने के लिये सदा तत्पर रहते हैं, वे निश्चय ही ईश्वर के करीब रहते हैं तथा उन्हें ही सच्चा सुख और सच्ची शान्ति प्राप्त होती है।

तन और मन की स्वस्थता के लिये स्वामी सत्यानन्द सरस्वती ने मनुष्य को अपना जीवन नियमित बनाने पर जोर दिया है। उनका निर्देश है कि प्रात: चार बजे ब्रह्ममुहूर्त में शैय्या त्याग करो और नित्यक्रिया से निवृत होने के पश्चात् योगासन, मनन, जप, स्वाध्याय तथा ईश्वर-प्रार्थना करो। इसके पश्चात् शारीरिक स्फूर्ति एवं मानसिक शान्ति के साथ प्रतिदिन के कार्य में लग जाओ। सुबह चार से छ: का समय अत्यन्त स्वास्थ्यवर्द्धक तथा स्मृति को ताजा करने वाला होता है। यह समय ईश्वर की आराधना के लिये सर्वोत्तम होता है तथा

इसके बाद मनुष्य को इतनी शक्ति एवं साहस प्राप्त हो जाता है कि वह दिनभर के कठोर श्रम के लिये, कमर कस के तैयार हो जाता है।

इसी प्रकार संध्या के बाद आठ से दस के बीच उसे फिर अपने दिनभर के कार्य का मूल्यांकन करना चाहिये। उसे सोचना चाहिये कि उसने क्या दिया और क्या लिया। उसकी उपलब्धि कितनी हुई? अपनी आलोचना स्वयं करते हुए उसे नित-नये सुधार के लिये तैयार रहना चाहिये। प्रतिदिन सोने से पहले फिर ईश्वर से प्रार्थना करनी चाहिये ताकि दिनभर के कार्यों को ईश्वर के हवाले कर मनुष्य निढाल तन एवं निश्चित मन से निद्रामग्न हो सके। इस प्रकार के नियमित जीवन से मनुष्य में अपूर्व शक्ति एवं साहस का संचार होता है। उसका तन-मन स्वस्थ रहता है और वह सच्चे सुख एवं शान्ति को प्राप्त होता है।

इस प्रकार परमहंस स्वामी सत्यानन्द जी सरस्वती ने अपने कर्मयोग से मानवता को चिरंतन सुख, सन्तोष एवं शान्ति का अमर सन्देश दिया है। आज के संघर्षमय जीवन में जब मनुष्य विक्षिप्त-सा यहाँ-वहाँ भटकता हुआ अत्यन्त अशान्त जीवन व्यतीत कर रहा है, स्वामी जी का उपर्युक्त संदेश निश्चय ही मनुष्यों के अन्धकारमय जीवन के लिये मार्गदर्शक प्रकाशस्तम्भ का कार्य करेगा।

–प्रो.शमसुद्दीन, शिक्षा महाविद्यालय, रायपुर, नवम्बर-दिसम्बर 1976

शत-शत प्रणाम स्वामी सत्यानन्द

तुम निरे मनुज हो नहीं साधु,
तुम नर हो या नारायण हो,
मुझको तो ऐसा लगता है,
इन दोनों से तुम ऊपर हो।

तुम स्वत: योग हो इस तन में,
तुम सिद्धि हो, तब साधन क्या,
ना पाप तुम्हें ना पुण्य तुम्हें
हे ब्रह्म अपावन पावन क्या।

यह विश्व अवध का राज महल,
तुम हो रघुपति के अनुज भरत,
कैकई बन कर माया तुमको,
न लुभा सकी तुम गौरवान्वित।

हिमगिरी के तुंग शिखर तुमको,
अपनाने को ललचाये हैं,
पर तुमको हे गुरुदेव देव,
हम जैसे मानव भाये हैं।

हम पतित, गुरु तुम उद्धारक
हम भोगी रोगी, तुम पालक
तुम योग भोगियों को देकर,
क्या नहीं किये हे युग नायक।
भारत माता के कृति कन्त
देखें क्या कहते दिग दिगन्त॥

—डॉ. महेन्द्र कश्यप राही, 1977

महलन चढ़ि-चढ़ि पंथ निहारूँ

हम दमदम हवाई-अड्डे पर खड़े थे, सामने हवाई-जहाज तैयार था। हमारे अगल-बगल लोग मिलते-बिछुड़ते भाग-दौड़ कर रहे थे, हम एक किनारे खड़े इस भाग-दौड़ को देखते रहे। मस्तिष्क में विचारों के बवंडर उठ रहे थे। न हमें कोई छोड़ने आया था, न कोई बिछुड़ने।

हम थे एक संन्यासी, उन चमकते-दमकते बाह्य स्वरूपों के बीच गैरिक पताका के रूप में अलग खड़े। जाना था दक्षिण अमेरिका। जैसे ही हमारे दिमाग में यह ख्याल आया कि हम दक्षिण-अमेरिका योग प्रशिक्षक के रूप में जा रहे हैं, हमारे सामने अपने अस्तित्व का पहलू स्पष्ट हो आया।

जब हम संन्यासी नहीं थे, तब क्या विदेश जाने की कल्पना कर सकते थे? नहीं! कभी नहीं। क्यों करते ऐसी कल्पना? किस आधार पर भारत से बाहर जाने का स्वप्न देखते? कॉलेज में उस विद्या को पढ़ रहे थे, जो जीविकोपार्जन का

साधन है। हम उस समय नहीं जानते थे कि जीवन-विद्या भी कोई ज्ञान है। हम नहीं जानते थे कि क्यों लोग हमें ऐसी विद्या देते हैं जिसका हमारे जीवन से कोई सरोकार नहीं। हम उस समय बी.एस.सी. में पढ़ रहे थे। हमारे सामने एक ही लक्ष्य था। बी.एस.सी. करो, फिर एम.एस.सी. करो और तब आगे? हम सोचना नहीं चाहते थे, क्योंकि हम उस दर्जे में अपने को ढालना नहीं चाहते थे, जिसमें हमारे समय की लड़कियाँ अपने को ढाल रही थीं। परन्तु यदि हमें उस तरह कोल्हू का बैल नहीं बनना है तो क्या बनना है? और तब यह प्रश्न चिह्न हमारे सामने एक बहुत बड़ी अलंघ्य पर्वतमाला की तरह खड़ा का खड़ा रह जाता।

जब हमने बी.एस.सी. की डिग्री ले ली तो स्वयं को उस धोबी के गधे की तरह पाया जिस पर इतना बड़ा गट्ठर लाद दिया जाता है कि पैर को घसीटना भी उसके लिये कठिन हो जाता है। सोचने लगे, आखिर क्यों हमें यह विद्या दी जाती है? न हम अपने भविष्य के विषय में सोच सकते हैं, न चार लोगों के सामने खड़े हो सकते हैं। बी.एस.सी. पढ़कर हमने यह अनुभव किया कि हमें जिस तरह नाम के साथ लगाने की यह पूँछ मिली है, उसी तरह हमारी मानवीयता पुनः पशु रूप में परिणत हो गई है। इस तरह हमारा जीवन एक निश्चित, सीमित रेखा पर चल रहा था।

एक बार सुना, जबलपुर में स्वामी सत्यानन्द सरस्वती आये हैं, मुंगेर में उनका बहुत बड़ा आश्रम है, कई विदेशी शिष्य हैं। हमारे नानाजी भी स्वामी थे, शायद वही संस्कार कहीं पड़ा था, दबा था, वही जिज्ञासा बन गई और हमें स्वामीजी के सत्संग में ले गई। बहुत लोग बैठे थे, स्वामीजी बोल रहे थे, हम भीड़ में एक तरफ बैठे सुन रहे थे। स्वामीजी की नजर की ओर जब कभी हमारी नजर पड़ती तो लगता कि हमारी ओर देख रहे हैं। स्वामीजी बोल रहे थे कि हर व्यक्ति जीवन में कुछ-न-कुछ कर सकता है। मन में उस समय विचार उठा कि क्या कर सकते हैं हम। कुछ तो नहीं। सत्संग समाप्त हुआ और परम्परानुसार हम भी भीड़ में स्वामीजी की चरणों की धूलि लेने आगे बढ़ गये। स्वामीजी ने सीधे हमारे बाल पकड़कर हमें उठाया और कहा, तुम्हें हमारे साथ चलना है। हम अवाक् थे, स्वामीजी यह क्या कह रहे हैं? हमें कहाँ जाना है? हम पूछ बैठे, हम क्या करेंगे आपके साथ जाकर? स्वामीजी ने कहा–तुम्हें वही करना है जो मैं कराऊँगा, तुम्हारा यहाँ का काम पूरा हो गया, अब और समय बर्बाद न करो। हमारे सामने उत्तर न था, न कोई प्रश्न शेष था। फिर भी हम कह बैठे–'आपके पास इतने शिष्य हैं, पढ़े-लिखे ज्ञानी हैं, विदेशी

हैं। हमें न तो अंग्रेजी आती है, न हिन्दी ही ठीक से आती है। न भूगोल, न राजनीति, न शास्त्र, न पुराण, हम कर क्या सकेंगे? हमें लोगों से बात करना अच्छा लगता नहीं। हमारे पास न कवि का भावुक हृदय है, न दार्शनिक का चिन्तनशील मस्तिष्क, आप हमें ले जाकर आखिर करेंगे क्या?' स्वामी जी जो अब तक सुन रहे थे, बोले–'हमें मालूम है तुमने जीविका-विद्या ग्रहण की है। हम तुम्हें जीवन-विद्या देंगे। उसको तुम दुनिया में बाँटना।' हमने सोचा, वह विद्या जरूर सीखनी चाहिये, जो हम जैसों से भी कुछ करा सकती है।

हमारी यह तन्द्रा तब टूटी, जब हमने सुना कि हमारा प्लेन उड़ने को तैयार है। सभी यात्री प्लेन पर पहुँच गये थे, दूसरे ही क्षण हमने अपने को उस आधुनिक विशालकाय गरुड़जी के मुँह में प्रवेश करते हुए पाया। अन्दर की दुनिया निराली थी। हमारी नजर रंग-बिरंगे लोगों के चेहरे पर घूमती हुई अपनी सीट पर पड़ी। हम वहाँ जाकर बैठ गये। हम बैठे थे हवाई जहाज में और देख रहे थे दिमाग में उड़ते बादलों को।

स्वामी जी के साथ हम चल पड़े उसी दिन, न हमारा दिमाग हमारे बस में था, न होश था दुनिया का। बस हम स्वामीजी के बगल में बैठे, नई दुनिया देखने बढ़े जा रहे थे और सतना जा पहुँचे। पहुँचते-पहुँचते हमारे शरीर के वस्त्र गेरू रंग के धोती-कुर्ते बन गए और अमलई में हमारे सिर के आधे बाल भी हमें छोड़ गये। तब हमने स्वामीजी को जो देखा तो पाया कि उन आँखों में कहीं बहुत दूर गहराई में कुछ प्रज्वलित और उस ज्योति के बीच हमने अपने को नये रूप में देखा, तब हमारा नाम हो गया योगशक्ति।

इन विचार तरंगों के बीच हिचकोले खाते हुए जब हम ऊपर आये तो हमने देखा हमारा विमान आसमान पर उड़ रहा था। तब हमारी विचार शृंखला में नई कड़ियाँ जुड़ने लगीं और हमने सोचा कि मात्र तीन वर्ष पहले स्वामीजी ने कहा था कि कुछ करायेंगे और आज वह दिन भी आ गया जब स्वामीजी ने विश्वास करके हमें उड़ा दिया है, उस विभूति को संसारभर में बिखेरने के लिये। पर क्या हम उस लायक हैं? इस समय तक हमारे विचारों का तरीका बदल चुका था, और हमें अन्दर से एक जवाब मिला–'तुम मात्र शिष्य हो, गुरु जानता है कैसे काम कराना है, तुम्हें सोचना नहीं है।' स्वामीजी की बात सोचते-सोचते स्वामीजी की बहुत याद आने लगी तो हमने अपने बैग से स्वामीजी का एक फोटो निकाला, जो शायद 1956 में लिया गया था। उस फोटो में स्वामीजी एक खड़खड़ काया योगी पुरुष की तरह लग रहे थे।

थोड़ी देर में हमने देखा विमान दक्षिण अमेरिका की भूमि पर उतर रहा था, जहाँ स्वामी अमृतानन्द की रजत-जयंती के उपलक्ष्य में भारी मेला लगा था। दुनिया के कोने-कोने से लोग आज के गुरु, स्वामी सत्यानन्द सरस्वती व उनके शिष्य स्वामी अमृतानन्द को देखने पधार रहे थे। स्वामीजी हमसे पहले ही वहाँ पहुँच चुके थे। उस अज्ञात और विचित्र परिस्थिति में हमें कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था कि हम क्या करने आये हैं। इसी पेशोपेश में हम आश्रम पहुँचे। हमने स्वामीजी के चरण छुए और तब हमें भान हुआ, हम स्वामीजी के शिष्य हैं। स्वामीजी ने कहा—'योगशक्ति उठो और चलना शुरू करो। बहुत बैठ लिया है तुमने, अब सीढ़ी चढ़ो। तुम्हें मेरी रफ्तार पकड़नी होगी।' हम यंत्रवत् उठे और सम्मेलन में भाग लेने लगे।

सम्मेलन में बड़े-बड़े विद्वान् आये थे। कई भाषाओं और शास्त्रों के ज्ञाता, नवीनतम विज्ञान के नवीनतम प्रयोगकर्ता, दार्शनिक और कई बड़े-बड़े पादरी और संत-महात्मा, सभी ने कुछ कहा, मगर हमारी बुद्धि एकदम कुंठित थी। जब स्वामीजी स्टेज पर आते तो हमारी बुद्धि के कपाट खुल जाते और हम जानते भी, समझते भी। मगर जब अन्य लोग आते हम मात्र आँख वाले अंधे की तरह, कान वाले बहरे की तरह, उन्हें देखते और सुनते। जब सम्मेलन समाप्त हुआ, हमने अपना सामान बाँध लिया और स्वामीजी के गाड़ी में बैठते तक हम वहाँ पहुँच गये और कहा—'स्वामीजी, यहाँ तो बड़े-से-बड़े विद्वान् हैं, हम उनके बीच क्या करेंगे। उन्हें हमारी क्या जरूरत है?' स्वामीजी हँस दिये और बोले—'अभी उनके पास वही है जो तुमने बी.एस.सी. में पाया था, अब उन्हें तुमसे वह चाहिये जो तुमने बी.एस.वाय. (बिहार स्कूल ऑफ योग) में पाया है।'

स्वामीजी भारत वापिस चले गये, हम यहाँ रह गये। तब से अब तक हम जिस किसी विदेशी से मिले हैं, एक ही बात सुनते हैं—'स्वामी योगशक्ति, तुम भाग्यवान् हो। तुमने जो पाया है, वह बिरले भाग्यवान् पा सकते हैं। हम लोग तो जो पढ़े हैं उसे भूल जाना चाहते हैं।' उनकी बात पर हमें हँसी आ जाती है। यह जीवन-विद्या किसको कब मिल जाए कहना कठिन है। इसको पाने के लिये शुद्ध बाल-हृदय चाहिये, अहंकार-विहीन मस्तिष्क चाहिये। फिर चाहे शरीर कैसा ही क्यों न हो, जाति कोई भी हो, कोई फर्क नहीं पड़ता।

हमारे दक्षिण-अमेरिका के इन तीन वर्षों के जीवन में हमने दुनिया को बहुत नजदीक से देखा है। हमारे पास बहुत-से संस्मरण हैं मगर आज हमें जिस

संस्मरण से यह सब लिखने की प्रेरणा मिली है वह एक आश्चर्यजनक घटना है। ऐसे अवसर जीवन में कभी-कभार ही आते हैं–

4 जनवरी, 1977 की बात है। हमारी एक फ्रांसिसी महिला मित्र है, जिनका नाम है श्रीमती ब्लॉन्डीने। उन्होंने हमें सान्ता मारता शहर से कुछ दूर एक समुद्र तट पर बुलाया। हम वहाँ पहुँचकर एक होटल में ठहरे। शाम को जब हम होटल के बाहर निकले तो हमारी मुलाकात श्रीमान् और श्रीमती फरमान्दो सॉज और उनके कुछ मित्रों से हुई। श्रीमान् सॉज को ही कोलम्बिया में योग और स्वामीजी को प्रथम प्रवेश कराने का सर्वश्रेय प्राप्त है। हमें देखकर उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा क्योंकि वे लोग तो छुट्टी मनाने वहाँ आये थे। खैर हमें उस फ्रेंच महिला के साथ समुद्र की एक खाड़ी पर जाना था। हम नाव में बैठ गये और वे लोग भी दूसरी नाव लेकर हमारे पीछे हो लिये। हम लोग एक खाड़ी पर अपनी नाव लगाना चाहते थे, मगर उसी समय बड़ी जोर से आँधी आई और नाव डगमगाने लगी तथा विपरीत दिशा में चलने लगी। उन लोगों ने बहुत प्रयत्न किया कि निर्दिष्ट तट पर नाव को लगाया जाए, परन्तु वे असफल रहे और उन्हें अपनी नाव को अज्ञात होनी के हाथ छोड़ देने को मजबूर होना पड़ा।

हमने देखा हमारे मित्रों की नाव दूसरी ही खाड़ी के किनारे तक पहुँच गई थी और दूर, निर्जन स्थान से एक हट्टा-कट्टा व्यक्ति लम्बे डग भरता हुआ उनकी नाव की ओर बढ़ रहा था। हमने देखा कि वह नाव के नजदीक पहुँचकर रुका। हमारी नाव को इंगित कर कुछ पूछा– 'उस नाव में वह कौन लड़की है?' मित्र बोले–'वह भारतीय स्वामी है।' इतना सुनना था कि वह उछलकर बोला, 'स्वामी मतलब योगी है!' उन्होंने कहा–'हाँ, यह योगी है।' उस विशालकाय गौरवर्ण व्यक्ति ने कहा, 'मैं इसी व्यक्ति के लिये पिछले पन्द्रह वर्षों से बैठा था।' हमारे मित्र आश्चर्य में पड़ गये, पर तब तक वह समुद्र में कूद चुका था और कमर में रस्सी बाँधकर हमारी नाव को किनारे खींच लाया।

तब वह हमारी ओर मुखातिब होकर कहने लगा– 'मैं कोलम्बिया के उत्तरी भाग के एक शहर का रहने वाला हूँ। मैंने पन्द्रह वर्ष पूर्व एक स्वप्न देखा था। उसमें सर्वप्रथम चारों ओर अंधकार था। तब एक प्रकाशपुंज कहीं से आया, जो इतना देदीप्यमान् था कि मेरी आँखें चौंधिया गयीं। जब मैंने आँखें खोलीं तो वहाँ क्राइस्ट खड़े थे, दोनों बाँहें फैलाये। उनके पीछे थी मदर मेरी, उनके पीछे थे संत फ्राँसिस और अन्य अनेक सन्त। मैंने उनसे कहा, मुझे मुक्ति दो। क्राइस्ट ने कहा, 'तुम ग्रेनाइट की खाड़ी में जाओ। पन्द्रह वर्ष बाद एक

भारतीय यात्री आयेगा। इस दुनिया में एक व्यक्ति पैदा हुआ है जो योग का संदेश देगा और उसका दूत तुम्हें मार्गदर्शन देगा।' उसी दिन मैं अपना शहर, अपना परिवार, अपना पेशा छोड़कर इस निर्जन प्रदेश में आकर राह देख रहा हूँ। आज मेरा स्वप्न साकार हुआ!'

वह अपना स्वप्न कह रहा था और हम सोच रहे थे—'क्या विचित्रता है, एक स्वप्नमात्र को इतना महत्त्व देना, कैसा संकल्प था यह। पन्द्रह वर्षों तक उस अज्ञात का इंतजार करना, जिसके अस्तित्व का भी पता न हो।' उस संकल्प की पूर्ति के लिये उस व्यक्ति ने जो इतनी कठिन तपस्या की, उसका मूल्यांकन हमारी बुद्धि का विषय कदापि नहीं हो सकता। मगर उसका स्वप्न अभी पूरा नहीं हुआ था। वह कहने लगा, 'स्वामी योगशक्ति, मैं जिस मंत्र के लिये इतने वर्षों से यहाँ बैठा हूँ, उसे तुम मुझे दे दो।'

हमने अपने मन में सोचा, 'जिस व्यक्ति ने पन्द्रह वर्षों के बाद अपने संकल्प को फलीभूत करने के लिये आज समुद्र में ऐसा झंझावत उठाया कि हमारी नाव को और हमें भारत से उठाकर खाड़ी तक पहुँचा दिया, वह आदमी जो कुछ बोल रहा है वह झूठ कदापि नहीं हो सकता। हमें इसे मंत्र देना ही पड़ेगा।' हमने उसे मंत्र दिया और उसने जब हमारे साथ उस 'ॐ सत्यम्' नाम को दुहराया, वह उस क्षण इस धरती पर नहीं था। लगता था उसके शरीर में पड़ी प्रतीक्षा की झुर्रियों में नवप्राण जाग गये हों। यह मंत्र सर्वशक्तिमान मंत्र है, जिसके आनन्द से वहाँ का निःशब्द वातावरण भी बोल उठा।

हमने उससे आगे कहा, 'कुछ आसन सीखोगे? ध्यान की विधि सीखनी है?' तो वह बोला, 'जिसके लिये मैं बैठा था, वह मैंने पा लिया। अब मुझे कुछ नहीं चाहिये। तुम्हारे गुरु के इन आशीर्वादों ने मेरा जीवन सफल कर दिया। मेरे स्वप्न का एक भाग सफल हुआ, दूसरा भी होगा।' इतना कहकर वह एक अनोखी स्मृति छोड़ अपनी यात्रा पर चल दिया। हम लोग देख नहीं पाये कि वह दिशाओं में किधर खो गया। सभी लोग मूर्तिवत् यह अनोखी घटना देख रहे थे। जब उन्हें होश आया तो बोल उठे, 'कौन था वह? कैसे आया? कहाँ चला गया?' हमने मुड़कर देखा, समुद्र की लहरें शान्त थीं और हमारी नाव हिचकोले ले रही थी। हम लोग भी लौट पड़े। एक बात मन में उठ रही थी कि स्वामीजी ने हम जैसे शिष्यों को बनाने का जो संकल्प लिया है वही फलीभूत हो रहा है। वह कैसे भी ढोल को बजाकर ताल मिला ही लेते हैं।

—स्वामी योगशक्ति, बोगोता, कोलम्बिया, जुलाई 1978

योग-चरित-मानस

'योग-चरित-मानस' की पृष्ठभूमि में एक अलौकिक संयोग प्रतिष्ठित है। परमहंस श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती अपने सागर प्रवास के समय कुछ क्षण सतना रुके और उनके शिष्य समुदाय के बीच मुझे भी उनके दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ। मैंने अपनी कुछ स्वरचित लघु पुस्तिकायें पूज्य स्वामी जी को भेंट की तो उन्होंने मुझे यह आदेश दिया कि योग के कठिन और गूढ़ विषय को कुछ ऐसी पद्यमय शैली में लिखो जिसे सामान्य लोग कंठस्थ भी कर सकें। इस प्रकार की रचना के लिये सामग्री चयन करने हेतु योग विषयक तीन प्रमुख ग्रंथों के नाम बताये—हठयोग प्रदीपिका, गोरक्ष संहिता और घेरण्ड संहिता।

पहले तो मुझे यही आभास हुआ कि इस कार्य के लिये मैं उपयुक्त व्यक्ति हूँ ही नहीं। पूज्य स्वामीजी ने मुझे इस कार्य के लिये कैसे उपयुक्त समझा, मैं जान नहीं सका, फिर भी मैंने ऐसा माना कि स्वामीजी मुझे माध्यम बनाकर यह कार्य स्वयं ही कराना चाहते हों तो क्या पता।

इस पुण्य दिवस के कुछ दिन बाद ही दिनांक 10 मार्च 1979 को जबलपुर में आयोजित योग सम्मेलन के अवसर पर स्वामीजी से दीक्षित होकर उनका आशीर्वाद प्राप्त किया तथा गुरु आज्ञा मानकर उनके श्रीचरणों का ध्यान करते हुए उनकी ही प्रेरणा से अपने व्यस्त सांसारिक जीवन से यदा-कदा कुछ क्षण बचाकर इस कार्य का श्रीगणेश किया।

योग तो पूर्णरूपेण व्यावहारिक दर्शन है और मुझ जैसे अनुभव-शून्य व्यक्ति को इस सम्बन्ध में कुछ कहने का अधिकार ही नहीं है। केवल गुरु-आज्ञा-पालन निमित्त पहली बार योग विषयक मूल ग्रंथों का ध्यानपूर्वक अध्ययन करने का अवसर मिला। इस सम्बन्ध में 'पातंजल योग प्रदीप' और 'घेरण्ड संहिता'—ये दो पुस्तकें ही उपलब्ध हो सकीं। सर्वप्रथम मैंने घेरण्ड संहिता के सभी श्लोकों का पद्यानुवाद करने का निर्णय लिया।

प्रश्न यह उपस्थित हुआ कि रचना के लिये किस प्रकार की शैली चुनी जाए। श्रीरामचरितमानस की लोकप्रियता सबको विदित ही है और उसकी लोकप्रियता में सरल भाषा और शैली का भी बड़ा योगदान है। अत: मैंने भी इस रचना को सरल बोलचाल की भाषा में तथा दोहा-चौपाइयों में लिखने का विचार पक्का कर लिया।

जब भी मैंने सोचकर कुछ लिखना चाहा, असफलता ही मिली। घंटों माथा-पच्ची करने के बाद भी योग की क्लिष्ट शब्दावली और सूत्रों को दोहा-

चौपाई शैली में नहीं संजो सका। कभी शब्दों की मात्राओं की सीमा ठीक रहती तो तुक नहीं मिल पाता था और कभी तुक मिलाने की खींचतान में मात्राओं की सीमा टूट जाती थी।

दस-पन्द्रह दिन यही संघर्ष चलता रहा। दस-पन्द्रह चौपाइयाँ लिखीं भी, वे भी त्रुटिपूर्ण ही रहीं। आखिर में एक रात सोने के पूर्व मैंने स्वामीजी का स्मरण किया और मन-ही-मन उनसे क्षमा माँग ली कि यह कार्य मेरी शक्ति के बाहर है। उसी रात अचानक अर्धरात्रि के पश्चात् नींद टूट गई। घड़ी देखी—दो बजे थे। सोने की बहुत कोशिश की परन्तु नींद ही नहीं आती थी। तब कुछ गुनगुनाना शुरू किया, तो न जाने कैसे योग विषयक सूत्रों का दोहा-चौपाइयों में इस प्रकार गायन होने लगा जैसे चित्त के श्यामपट्ट पर कोई लिख रहा हो और मैं उसे पढ़ रहा होऊँ। मैं तुरंत कागज और कलम लेकर बैठ गया। माँ भगवती की वंदना कर जो दोहे-चौपाइयाँ चित्त पर उभरी थीं, उन्हें याद कर लिखने लगा और उस रात मैंने घेरण्ड संहिता के प्रथम अध्याय का बड़ी सरलता से पद्यमय अनुवाद कर लिया। उस दिन मुझे विश्वास हुआ कि गुरुदेव ही प्रेरित कर रहे हैं और मुझसे कुछ लिखवाना ही चाहते हैं।

उसके बाद नियमित रूप से इस कार्य में लगा तो घेरण्ड संहिता का पद्यानुवाद तो लगभग पन्द्रह दिनों में पूरा हो गया और लेखनी को विश्राम-सा लग गया, परन्तु मन में यही अनुभव होता रहा कि कृति अभी अपूर्ण है और गुरुदेव की मंशा के अनुरूप कार्य नहीं हो पाया। इसके बाद योग विषयक पुस्तकों व लेखों के आधार पर उसे एक समन्वयात्मक रूप देने का प्रयास किया। इसे प्रयास कहना भी मेरा दुस्साहस कहा जाए, क्योंकि गुरुदेव ने जैसी प्रेरणा दी उसी प्रकार इस शरीर ने लिख भर दिया है।

इस पुस्तक का नाम 'योग-चरित-मानस' सार्थक प्रतीत न होता हो तो भी कोई अतिशयोक्ति नहीं है। भल ही इसमें न तो कोई चरित्र है, न कथानक, परन्तु यह नाम भी प्रेरित ही है। इसलिए अपनी बुद्धि का सहारा लेना उपयुक्त प्रतीत नहीं हुआ। जिसने प्रेरणा दी वही जाने। गुरुपूर्णिमा के पावन पर्व के दिन यह लघु कृति गुरु चरणों में समर्पित है। जीव में अहं भाव प्रबल होता है, इस कारण इस पुस्तक में अनेकों दोषों का आ जाना स्वाभाविक ही है और गुरुदेव ही उनका परिमार्जन करने में समर्थ हैं। अत: समस्त दोषों को मेरी अपनी कृति जानकर विज्ञजन क्षमा करें।

—रामस्वरूप ब्रजपुरिया, सतना, नवम्बर 1979

कलयुग का कर्ण

आज कर्ण की पुण्य भूमि पर, स्वामी सत्यानन्द खड़े हैं।
माँ गंगे हाँ चुपके कह दो, दोनों में से कौन बड़े हैं ॥

मीर कासिम का किला पुराना, तू अपना मुँह खोलेगा कब।
वही कर्ण दानी राजा क्या, सत्यानन्द बन आये हैं अब ॥

स्वर्ण दान वे नित करते थे, योग दान ये भी करते हैं।
दीन सम्पन्न बनाते थे वे, ये जन की पीड़ा हरते हैं ॥

राज मुकुट उनके माथे था, इनके सर है शीतल चंदन।
दीन दु:खी गाता था उनको, इनका सब करते वंदन ॥

परशुराम के वे चेले थे, ये शिवानन्द के चेले हैं।
उनके संग सेना थी भारी, इनके संग चेले चेले हैं ॥

दुर्योधन हित लड़े वीर वे, ये मानव हित हेतु लड़ते।
चाह उन्हें थी एक जीत की, ये चाहों से आज झगड़ते॥

वे रण में अर्जुन को ढूंढे, ये अनन्त को ढूंढ रहे हैं।
उनसे थे कुछ राजा चिढ़े, इनके आगे नत मस्तक सब॥

महाभारत के थे वे योद्धा, ये योद्धा जग में योग कहाते।
श्री कृष्ण की योग विधा को, विश्व के अर्जुन को बतलाते ॥

शिवानन्द हुए परशुराम ही, ऋषिकेश में अलख जगाये।
दुनिया को सन्मार्ग दिखाने, कर्ण ही सत्यानन्द बन आये ॥

कर्ण चौरा अब गंगा दर्शन, जग का नव इतिहास बना है।
स्वागत है इस भू पर सब का, नहीं किसी के लिये मना है ॥

मां गंगे चुपके से कह दो, किले की मिट्टी मुस्काती है।
कर्ण हमारा पहुँच गया फिर, माँ चण्डी कह हर्षाती है ॥

–गोवर्धन प्रसाद सिंह, हवेली खड़कपुर, मुंगेर, 1980

अपना अनुभव

मेरे कुछ साल पहले और आज के जीवन में जमीन-आसमान का अंतर हो गया है। नख से शिख तक शरीर जर्जर हो चुका था। रात-दिन अधिक रक्तस्राव होता और पेडू के दर्द से परेशान थी। नींद के लिये तरह-तरह की गोलियाँ खाने के बाद भी नींद नहीं आती थी। डॉक्टरों को गर्भाशय के कैंसर का शक हो गया था। इतनी बैचेनी, पीड़ा एवं शारीरिक-मानसिक कष्ट था कि उस व्यथा का मैं वर्णन नहीं कर सकती। मेरे पति तथा मेरे परिवार के सभी लोग बिल्कुल निराश हो चुके थे। किसी भी प्रकार के उपचार से कोई लाभ दृष्टिगोचर नहीं हो रहा था।

तब एक दिन पिताजी मुझे जबर्दस्ती पकड़ कर योगाश्रम में ले आये। मैं स्वामीजी के पैरों पर गिरकर रोने लगी कि अब मैं जीना नहीं चाहती हूँ, बहुत शारीरिक कष्ट भोग रही हूँ। उन्होंने मुझे बड़े प्रेम से समझाया कि 'तुम चार दिन यहाँ रहो और उसके बाद घर लौट जाओ। तुम जरूर अच्छी हो जाओगी। तुम्हें अपना मकान बनाना है और उसकी एक कोठरी में योग स्कूल बनाकर देवघर की महिलाओं को योग सिखाना है।'

स्वामीजी ने मुझे केवल शिवाम्बु लेने तथा बैठकर 'ॐ' का जाप करने को बताया क्योंकि उस समय मेरा शरीर रोग से जर्जर हो चुका था और आसन-प्राणायाम करने लायक नहीं था। मैं चार दिन बिना दवा के खूब आराम से सोई और योगाश्रम से जाने के बाद मेरी हालत में इतनी जल्दी सुधार होने लगा कि मेरे रिश्तेदार व देवघर के सारे लोग आश्चर्यचकित थे। मुझे खुद आश्चर्य होने लगा कि जीवन में इतनी खुशी और आनन्द कहाँ से बरस पड़ा है। अब मैं नियमित रूप से सुबह चार बजे उठकर नित्य क्रिया से निवृत्त होकर जप, ध्यान, आसन, प्राणायाम आदि का अभ्यास करती हूँ। गुरुजी की कृपा से मेरा स्वास्थ्य अब बिल्कुल सुधर गया है।

–प्रो. हेमवती प्रसाद, एम.ए. डिप-इन-एड, देवघर, मई 1980

चमत्कार को नमस्कार

हमसे किसी ने पूछा–'आप अपने गुरु के चमत्कार बताइये?' बात सुनकर हम सोच में पड़ गये। हमारे लिये तो गुरु साक्षात् भगवत् स्वरूप हैं, मगर उन्होंने कभी भी हमें चमत्कार नहीं दिखलाये। हाँ, हम जानते हैं कि कोई आपको

हवा से फल लाकर दे दे तो आप उसे महान् कहेंगे। पर क्या फल ला देने से आपका जीवन सुधर जायेगा? जब आप चिन्ता और परेशानी में रहेंगे तो क्या फल की याद करके आपको उस चिन्ता और परेशानी से मुक्ति मिल जायेगी? कदापि नहीं मिलेगी। उस समय आप एक ऐसे महात्मा को खोजेंगे जो आपको जीवन में सफल होने का रास्ता बता सके। इस सन्दर्भ में स्वामी जी हम सबको एक बड़ी सुन्दर कथा सुनाते हैं–

एक बार महान संत रबिया कुछ संन्यासियों के साथ नदी के किनारे बैठी थी। उधर से एक संत निकले। उनका नाम था हसन। उन्हें अपनी सिद्धि पर बड़ा घमंड था। उन्होंने देखा कि रबिया बैठी है, सत्संगी बैठे हैं। सोचा कि रबिया को नीचा दिखाने का यही मौका सबसे अच्छा है। रबिया के पास जाकर उन्होंने कहा–'आओ रबिया, पानी में बैठकर बात करें।' रबिया ने उनका आशय समझ लिया। उसने चट से हवा में आसन बिछा दिया और बोली–'क्यों न हम लोग हवा में उड़ते हुए बातचीत करें?' संत हसन रबिया की सिद्धि को देखकर चकित हो गये। उन्हें अब अपनी करतूत पर पश्चात्ताप होने लगा। तब रबिया ने कहा–'जो तुम करना चाह रहे हो यह तो मछली भी कर सकती है। और जो मैंने किया उसे मक्खी भी कर लेती है। इसको करने में कोई बड़प्पन नहीं। भटके हुए लोगों को मार्गदर्शन की जरूरत है। वही करना हमारा पहला काम है।'

लोग आज जीवन को सुख, शान्ति और प्रसन्नतापूर्वक जीने का रास्ता खोज रहे हैं और स्वामीजी उनका मार्गदर्शन करते हैं। इससे कई लोगों का जीवन सुधर गया है। हम तो इसे चमत्कार ही कहते हैं कि आपके ही पास की जो शक्ति आपको नहीं दिख रही, उसे स्वामीजी दिखा रहे हैं।

–स्वामी योगमुद्रानन्द, जुलाई 1980

सम्भवामि युगे-युगे

कल के राम-कृष्ण, शिव-शंकर
आज वही सत्यम् सुभगे
सम्भवामि युगे-युगे॥

परम चेतना के तुम रूपक
युग युग रूप बदलते हो।
पता नहीं चलता है भगवान
क्या कहते, क्या सुनते हो?
अपनों को तुम सदा सताते
हर पग पर हम गये ठगे
सम्भवामि ...

लगन लगाये सदियाँ बीतीं
बीत गये जीवन कितने
किया न पावन इस पामर को
सपने बने रहे सपने।
मोह न छूटा द्वेष न छूटा
माया में मन प्राण बने
सम्भवामि...

फैल रहा है योग चतुर्दिक
गैरिक झिलमिल लहराये।
चेतन-चक्र सितारों जैसा
जन-मन जीवन मुस्काये।
भाव सघन घन बनकर गरजे
दामिनि ज्योति अपार उगे
सम्भवामि...

जनक लली ने तुम्हें वरा
जीवन उनका रोते बीता।
'राधे' कृष्ण बने फिर भूले
कह कर निकल गये 'गीता'।
शंकर-सती, उमा-अड़भंगी
गति विचित्र हर-हर गंगे
सम्भवामि ...

‘प्रीत किये दु:ख होय’,
त्याग ही पूजा गरिमागान है।
कुछ भी चाहा नहीं,
उसी का जीवन धन्य-महान् है।
सच कहते हो किन्तु कहूँ क्या?
‘कुछ’ है जो भीतर सुलगे
सम्भवामि...

तुमने ही तो मुझे बनाया
मैं बिगड़ा कैसे, बोलो?
अच्छा है, बिगड़ा रहने दो
तुम मेरे पीछे हो लो।
सदा जगाने आते रहना
दर्शन मिले नयन उभगे
सम्भवामि...

गुरु-माता-प्रिय-प्रियतम मेरे
सब कुछ हो पर ‘बॉस’ नहीं।
तुम्हीं मिले यह कहने वाले
सचमुच तुम-सा कौन कहीं?
इसीलिये कुछ झगड़ पड़ा हूँ
तुम्हीं अब अवलम्ब सगे
सम्भवामि...

तू ही कर्ता, तू ही भर्ता
भोग रहा तू ही सर्व भार।
मै लड़ जीव भरम बौराया
व्यर्थ किया करता चीत्कार
मैं तेरा, तू जैसे राखे
सुख-दु:ख जो हो गले लगे
सम्भवामि ...

तू निमित्त, बस कर्म किये जा
वर्तमान का ले सम्बल।
बीत गया सो बीत गया कल
सदा 'अजन्मा' क्यों चंचल?
जो मेरा चिंतक-रक्षक-गुरु
चिदानन्द दिन रात जगे
सम्भवामि ...

–किशोरचन्द्र सरकार, डुमराँव, जुलाई 1982

श्रीगुरुशरणम्

हमारे गुरुदेव ठीक बोलते हैं–'धीरे बन्धु धीरे-धीरे, आओ मेरे निर्जन घर में।' आध्यात्मिक यात्रा प्रारम्भ में निर्जन, सुनसान और नीरस मालूम पड़ती है। जैसे-जैसे साधक अपनी चेतना की गहराई में गोता लगाते जाता है, वैसे-वैसे उसका अन्दर-बाहर पवित्र और व्यापक होते जाता है तथा जीवन सरस, अर्थपूर्ण एवं प्रकाशित होते जाता है। देवत्व-प्राप्ति के इस मार्ग में गुरु एक शक्तिशाली प्रकाश-स्तम्भ का कार्य करता है।

गुरु-शिष्य का सम्बन्ध क्षणभंगुर नहीं होता। यह आत्मिक रिश्ता होता है जो शिष्य की पूर्णत्व प्राप्ति तक जन्म-जन्मान्तर तक चलता है। जिस प्रकार एक शिष्य अपनी चेतना के प्रसार हेतु योग्य गुरु चाहता है, उसी प्रकार गुरु भी योग्य शिष्य चाहता है जो उच्च ज्ञान को वहन करने की क्षमता रखता हो, गुरु के शब्दों को समझने की योग्यता रखता हो और गुरु के ज्ञान रूपी अमृत से किसी का भला करने की भी क्षमता रखता हो।

जब गुरु-शिष्य का आन्तरिक सम्बन्ध सुदृढ़ हो जाता है, प्रेम और समर्पण पूर्ण होने लगता है, तब उसी अनुपात में गुरु-शिष्य की अंतश्चेतना एकाकार होने लगती है और गुरु की ही शक्ति का अभिव्यक्तिकरण शिष्य के माध्यम से होने लगता है। परन्तु जब तक साधक अपनी बाह्य इन्द्रियगत चेतना को अंतश्चेतना से नहीं जोड़ता, गुरु चेतना की ओर दिशान्तरित नहीं करता, तब तक गुरु के उस ब्रह्माण्डीय प्रकाश का वह अनुभव नहीं कर पाता। एकाग्रता तथा ध्यान के द्वारा अपनी बिखरी आंतरिक शक्ति को समेटकर अन्तर्मन से सम्पर्क करना चाहिये। तब अन्तर्मन शुद्ध, पवित्र और ग्रहणशील हो जाता

है और आत्मा की शक्ति प्रस्फुटित होती है। बिना साधना के शुद्ध व सूक्ष्म प्रकाश को अनुभव में परिणित नहीं कर सकते और बिना गुरु-कृपा के साधना भी नहीं हो सकती है। कभी गुरु स्वयं मिलते हैं, कभी खोजने पर भी नहीं मिलते और कभी स्वयं गुरु ही चेले को खोज लेते हैं जब चेले की तैयारी पूर्ण हो जाती है। इसलिये जिज्ञासुओं को अपने सामान्य ज्ञान से जितना बन पड़े, कुछ-न-कुछ आध्यात्मिक साधना का अभ्यास करते जाना चाहिये। समय-समय पर उसे किसी-न-किसी रूप में निर्देश स्वयं मिलते रहेंगे।

एक सच्चे साधक को बहुत प्रकार की पुस्तकों व शास्त्रों की छानबीन नहीं करनी चाहिये। इससे उसकी साधना में बाधा पड़ती है और उसकी श्रद्धा भी जाती रहती है। साधना करते-करते साधक के अन्त:करण में आध्यात्मिक ज्ञान का उदय होता है। वह बिना शास्त्रों का अध्ययन किये ही शास्त्रों की बातें बोल सकता है। उसे तब तक धीरज रखना चाहिये जब तक उसमें दिव्य ज्ञान और चेतना की जागृति नहीं हो जाती। जो साधक बहुत प्रकार की पुस्तकें पढ़ता है और उन पुस्तकों के अनुसार अपने विचार बदलते रहता है, उसके लिये उस परम दिव्य शक्ति को पाना कठिन हो जाता है। इस बात को अच्छी तरह से समझना चाहिये।

इस भौतिक पदार्थवादी युग में अधिकतर लोग अशान्त, दु:खी और असन्तुष्ट हैं। वे सच्चे सुख, शान्ति और आनन्द की तलाश में यत्र-तत्र मन्दिर, मस्जिद, चर्च, सत्संग और तीर्थों में भटक रहे हैं। यद्धपि सुख का राज़ वहाँ भी प्राप्य है, किन्तु उसे प्राप्त करने का भेद सबों को मालूम नहीं। अंधाधुंध व्रत, उपवास और तपस्या द्वारा अपने शरीर, मन और भावना को दमित कर हम आत्मशक्ति को कभी भी प्रकाशित नहीं कर सकते हैं। इसके लिये हमें अन्दर के असली मर्म को समझना होगा। इसी रहस्य को पाने के लिये तो गुरु की खोज करते हैं। वास्तव में पूजा-पाठ, जप, ध्यान और भजन-कीर्तन के द्वारा जब साधक आन्तरिक तैयारी पूर्ण करता है तब उसके जीवन में गुरु तत्त्व का स्वत: उदय होता है। फिर अपनी आन्तरिक शुद्धि के अनुसार शिष्य प्रेम, सहानुभूति, शक्ति और आशीर्वाद को ग्रहण करता है। यदि शिष्य में गुरु के आदर्श को वहन करने का सामर्थ्य नहीं है, तो उस अशुद्ध, वासनात्मक मन रूपी छन्नी में गुरु के अमृत संदेश को डालने से वह व्यर्थ ही हो जायेगा। उनकी कृपा तो विशुद्ध हृदयरूपी गह्वर में धारण करने योग्य है। अतएव हे मानव! गुरु की शरण में आकर अपने सम्पूर्ण क्लेशों का नाश कर

और जीवन-अमृत का पान कर! इस भवसागर से पार होने का गुरु के सिवाय कोई दूसरा सहारा नहीं है।

मंत्र सत्यम् पूजा सत्यम् सत्यम् देवो निरजंनम्।
गुरोर्वाक्यं सदा सत्यम् सत्यमेव परं पदम्॥

–स्वामी धर्मशक्ति सरस्वती, जुलाई 1982

सुरसरि तट पर

सुरसरि तट पर योगाश्रम है, सत्यानन्द दरबार।
सुवासित सुन्दर शीतल चलती है बयार॥

देश विदेश के शिक्षार्थी सब आते हैं,
कर्मयोग-सहयोग की शिक्षा पाते हैं,
भेजी ट्रेनिंग में हम सब को अपनी ही सरकार॥
सुवासित सुन्दर ....

छवि निराली मनोहर देखो फूलों में,
मानो आश्रम झूलता दिखे झूलों में,
कन्द मूल फल फूल से पेड़ लदे हैं, शोभा अपरम्पार॥
सुवासित सुन्दर ....

देते हैं प्रशिक्षण स्वामी बड़े लगन से,
पाते हैं प्रशिक्षण हम सब बड़े मगन से,
इनसे ले व्रत परोपकार का, हो जाये उद्धार॥
सुवासित सुन्दर ....

ख्याति पाया आश्रम है यह, विश्व में गुंजन,
कुशल प्रबंधक रहते हैं स्वामी निरंजन,
मिलन सार, गुणवान् दयालु कहता महेश पुकार॥
सुरसरि तट पर योगाश्रम है सत्यानन्द दरबार
सुवसित सुन्दर शीतल चलती है बयार ....

–महेश कुमार, मार्च 1986

मेरे गुरुदेव

सत्य सत्य हे सत्य सनातन,
सत्यम् सत्यानन्द महान्।
अखिल विश्व के योग प्रर्वतक,
पावन पुण्य लोक अभिराम॥

पुण्योदय है सचमुच मेरा,
गुरु सेवा का बना संयोग।
कृतार्थ करूँगा जीवन अपना,
नहीं किसी से मुझको मोह॥

जीवन योग कला है जिससे,
पाता मानव चिर विश्राम।
साधन, धाम मोक्ष पाने,
आया गंगादर्शन धाम॥

योग कान्ति का बिगुल फूंकते,
भक्ति ज्ञान के भाव जगाते।
ॐ मंत्र से आत्मज्ञान दे,
हरि ॐ से योग सिखाते॥

आसन प्राणायाम ध्यान से,
स्वस्थ रहें – करें यदि लोग।
संस्कार, संकल्प शक्ति से,
प्रेम बढ़े और मिटे विरोध॥

गलत धारणा धर्म भेद की,
जाति पाति और छुआछूत की।
ईश्वर सबका, ब्रह्म एक है,
छवि सब में है परब्रह्म की॥

युद्ध, तनाव, रोग, अपराधों,
के क्या होते सुपरिणाम?
अन्तर्द्वन्द्व निराशाओं के,
कारण पागल क्यों इन्सान?

सभी समस्याओं का हल,
खोजा मार्मिक योग निदान।
भारत के गौरव का इसमें,
छिपा हुआ, रहस्य महान॥

अभिनन्दन है पद बंदन,
सरल संत हे दया निधान।
जीवन अर्पित यह मेरा अब,
ज्ञान भक्ति का दो वरदान॥

स्वामी सत्यानन्द महान्
पावन पुण्य लोक अभिराम।
सत्य सत्य हे सत्य सनातन,
सत्यम् सत्यानन्द महान्॥

–स्वामी ओंकारानन्द सरस्वती, मई 1988

युग नायक

दौड़-दौड़कर कुछ लोग प्राप्ति और मार्गदर्शन की आशा से जाते हैं धर्म, गुरु और आध्यात्मिक संस्थाओं की ओर। इससे उनकी भावनाओं की पुष्टि होती है और आत्म-संतोष प्राप्त होता है। धरती की समस्या न सुलझे, परन्तु ज्ञान की गहराई में वे गोते लगाने लगते हैं। ज्ञान से सब प्राप्त है, परन्तु व्यवहार का तराजू हल्का है।

श्री स्वामीजी से साक्षात्कार करने पर लगता है कि ये एक ऐसे व्यक्ति हैं जो कुछ करके दिखायेंगे। उनके व्यक्तित्व में एक ऐसी धारा प्रवाहित होती है जिसमें ज्ञान और कर्म का समन्वय है। ब्रह्मसूत्र का 'ब्रह्म-ज्ञान' और

गीता का 'निष्काम कर्म योग', दोनों उनके जीवन में एकाकार हो गये हैं। प्रबुद्धता और कर्म कौशल, दोनों का साथ रहना अद्वितीय प्रतिभा वालों में ही संभव है।

त्याग, तपस्या, दान और बलिदान होते हैं, किन्तु भविष्य को देखकर नहीं। प्राय: स्वान्त: सुखाय ही उसका कारण होता है। एक कार्य होता है संसार को गति देने के लिए तथा दूसरा होता है आत्म-संतोष के लिए, और दोनों से ही जगत् का विकास होता है।

हम सब आत्म-संतोष के लिए कर्म करने वालों में गिने जाते हैं। संसार को गति और संचालन के लिए एक ऐसे नायक की आवश्यकता होती है जिसमें क्रोध हो और क्षमा तथा शान्ति भी, जिसमें परशुराम और राम दोनों मूर्तिमान हों, जिसमें कृष्ण और युधिष्ठिर की-सी निष्ठा और प्रज्ञा मूर्तिभूत हों, जिसमें सरलता के साथ कुटिलता भी हो और जो व्यावहारिक हो तथा दूरदर्शी भी। केवल सर्वतोमुखी, अनोखी और व्यावहारिक प्रतिभा वाला नायक ही बिखरी शक्तियों को बटोर कर एक निश्चित भविष्य में ढाल सकता है।

श्री स्वामीजी से साक्षात्कार करने या उनके दर्शन करने से प्रत्येक को यही आभास होता है कि वे इसी प्रकार के एक नायक हैं। अभी वे भ्रमण और सिद्ध तीर्थों की यात्रा के नायक हैं। उनका भ्रमण निरुद्देश्य नहीं है। वे संसार के नागरिकों के मन व बुद्धि में एक नये मंत्र का उद्घोष कर रहे हैं। आपको तैयार रहना है।

–स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती, दिसम्बर 1988

कुंभ मेले का संस्मरण

इस वर्ष मुझे इलाहाबाद के कुंभ मेले में दो बार श्री स्वामीजी के सान्निध्य में रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

प्रथम अवसर 14 जनवरी 1989, मकर संक्रांति का था। 13 जनवरी को सुबह स्वयं श्री स्वामीजी ने कुंभ नगर घुमाया और हम लोगों ने संगम एवं इस पुनीत अवसर पर एकत्र हुए अनेक साधु-महात्माओं के दर्शन किये। 14 जनवरी को रात्रि-जागरण के पश्चात् प्रात: तीन बजे संगम के बर्फ जैसे शीतल जल में प्रथम स्नान किया। इसके पश्चात् श्री स्वामीजी इलाहाबाद से अनिश्चित गन्तव्यों की यात्रा हेतु निकल पड़े।

श्री स्वामीजी से भेंट का द्वितीय अवसर मौनी अमावस्या का पुनीत दिन था, जिसके लिए मैंने उनसे पहले से ही अनुमति ले ली थी।

कुंभ मेले में जिन साधुओं के दर्शन हुए, उनमें से कुछ का परिचय इस प्रकार है–निर्वाणी अखाड़े के महामण्डलेश्वर श्री स्वामी विश्वदेवानन्द; जूना अखाड़े के महान् नागा साधु श्री गोदावरी गिरि; पायलट बाबा; कनखल, हरिद्वार की स्वामी संतोषी माता; उदासीन सम्प्रदाय अमरकंटक के महाराज; दिव्य जीवन संघ, ऋषिकेश के स्वामी चिदानन्द; केशवानन्द योग संस्थान के प्रमुख शोधकर्त्ता डॉ. ब्रह्ममित्र अवस्थी तथा अन्य कई साधु-संत। हमारी कुंभ यात्रा का मुख्य आकर्षण था–देवराहा बाबा के दर्शन।

6 फरवरी को प्रात: हम सबने दूसरी बार संगम में स्नान किया और अपने स्थान वापस लौट आये।

कुंभ यात्रा के अनुभवों ने हमारे मन पर अमिट चिह्न अंकित कर दिये हैं, क्योंकि वहाँ हमने श्रद्धा एवं विश्वास का सैद्धान्तिक रूप में ही नहीं, बल्कि जीवन्त रूप में अनुभव किया।

–स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती, मार्च 1989

बिहार योग विद्यालय

आश्रम है, या जमीं पर स्वर्ग की तस्वीर है।
शान्ति के खोजियों की यह दिले दिलगीर है॥
जिसका माथा चूमती है हर सुबह की पहली किरण
जिसके चरणों को यहाँ छूने झुका रहता गगन॥
आ के पहनाया है माला गंगा मां ने इसे।
दूर से ताकता है पर्वत कितनी हसरत से इसे॥
यह हसीन गंगा की वादी और यह मौसम बहार।
इस जगह के हुस्न पर हो क्यों न अहले दिल निसार॥

यह इमारत और यह गुलशन देख कर होता गुमां।
हाँ उतारा है इसे ईश्वर ने जन्नत से यहाँ॥
जितने भी स्वामी हैं यहाँ, प्यार की मूरत हैं ये।
हैं फरिश्ते ही मगर इंसान की सूरत हैं वे॥

प्यार का है ओढ़ना और बिछौना प्यार का।
प्यार का सागर यहाँ है, और खजाना प्यार का॥
प्यार हमदर्दी का चश्मा और मोहब्बत की जमीं।
इससे बढ़कर इस दुनिया में, कहीं नहीं और नहीं॥

चाहे जितना लूट ले इसकी परवा नहीं।
सूख जाये जो कभी है वह तो यह दरिया नहीं॥
कृपा की मायूस लोगों पे बहुत भगवान ने।
योग की शिक्षा से पाई जिन्दगी इन्सान ने॥
अपने मन में डूब कर पा जाता है खुद को यहाँ।
जिस्मों जाँ को फलसफा आके समझता है यहां॥

है बहुत नाजां मुकद्दर पै जमीं मुंगेर की।
जिसके दामन में जगह है अपनों की और गैर की॥
है करम इस जगह सत्यानन्द महाराज का।
फैज लुटता है यहाँ देखो गुरु महाराज का॥
इसकी किरणें हर दरो दीवार को रोशन करे।
हैं निरंजन स्वामी उनके बेशक जाँ नहीं॥
उनकी प्यारी बोलियाँ होती हैं कितनी दिल नशीं।
उनके साये में यह विद्यालय सदा आगे बढ़े॥

वहाँ-यहाँ युग-युग जिसे अल्ला करे, अल्ला करे।
आप के दर से नहीं अख्तर को कुछ भी चाहिये॥
आप के आशीर्वाद से झोली मेरी भर जाये।
आप के आशीर्वाद से झोली मेरी भर दीजिये॥

–दीप रजा अख्तर, पूर्णिया, जून 1989

निर्णय की घड़ी

संन्यासी के जीवन में अलग-अलग अनेक स्थितियाँ आती हैं। वह किसी एक स्थान पर आश्रम बनाकर रहता और सेवा कार्य करता है–यह एक

स्थिति है। बाद में वह आश्रम का और अपनी कर्मभूमि का भी त्याग करता है, यह दूसरी स्थिति है। पहले वह एक सीमित समूह में कार्यरत था और जब सीमित को त्याग कर ब्रह्माण्डीय चेतना से संयुक्त होकर एक विश्वव्यापी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कार्य करता है, तब परम्परानुसार यह उच्च स्थिति क्षेत्र-संन्यास है।

एक वर्ष पूर्व श्री स्वामीजी द्वारा आश्रम छोड़ने का उद्देश्य मात्र भारत के सिद्ध तीर्थों की यात्रा करना नहीं था, बल्कि उन्होंने उसी समय क्षेत्र-संन्यास ग्रहण करने का निर्णय लिया था। स्वामी शिवानन्द जी के आज्ञानुसार जब श्री स्वामीजी ने योग के प्रचार-प्रसार का कार्य प्रारम्भ किया, तब उन्हें परमहंस परम्परा की साधना थोड़े समय के लिए छोड़नी पड़ी थी। वे योग को सर्व-साधारण के लिए उपलब्ध बनाना चाहते थे। स्वामी शिवानन्द जी द्वारा श्री स्वामीजी को सबसे पहला निर्देश मिला था, 'सेवा'। जब हम सेवा से मुक्त हो जायें, अर्थात् जब हमारे भीतर के संस्कार, कर्म आदि निर्मूल हो जायें, तब साधना का आरम्भ होता है।

5 से 11 अगस्त तक मैं श्री स्वामीजी के पास त्र्यम्बकेश्वर में रहा। वे एक बहुत छोटे से, 8 X 10 फुट के कमरे में रहते हैं। उस कमरे का फर्श वे स्वयं गोबर से लीपते हैं, जमीन पर एक चटाई बिछाकर सोते हैं, नाश्ते में अंकुरित मूँग और भोजन में ब्रह्म खिचड़ी लेते हैं। वहाँ न बिजली है और न शौचालय। वे किसी से मिलते भी नहीं हैं। श्री स्वामीजी पूरे दिन मौन रहकर साधना में लीन रहते हैं। उनका कहना है कि जीवन में एक ऐसा समय आना चाहिए कि जब पूर्ण-सजगता के साथ नाम-स्मरण होता रहे। लेकिन यह अजपाजप की तरह नहीं होना चाहिए, क्योंकि अजपाजप में मंत्र की अचेतन पुनरावृत्ति होती रहती है। यह जप पूरी सजगता और जागरूकता के साथ होना चाहिए।

साधनाकाल में गुरु की चेतना ब्रह्माण्डीय चेतना की ओर प्रवृत्त होती है और शिष्य लोग अपनी चेतना के स्तर पर गुरु को बंधन में डालना चाहते हैं, जिससे कि साधना में विघ्न उत्पन्न होता है। अत: श्री स्वामीजी किसी को बतलाते भी नहीं हैं कि वे कहाँ हैं और क्या कर रहे हैं। इस प्रकार की जीवन-पद्धति बहुत लम्बे समय तक चलने वाली है। केवल एक या दो वर्ष तक नहीं। श्री स्वामीजी ने बतलाया, 'अब मेरी साधना का एक लक्ष्य है, सतत् नाम स्मरण। अगर मैं विचलित हो जाऊँ और उस अवस्था में भी नाम के प्रति सजग रहा, तो अनहद्-नाद की अनुभूति होगी।'

श्री स्वामीजी जिस अवस्था में अपने को स्थित कर रहे हैं, उसको पूर्ण करने के लिए उन्हें हम सबकी सहायता की आवश्यकता है। जो उनसे भावनात्मक रूप से जुड़े हैं, वे यह नहीं सोचें कि श्री स्वामीजी क्यों अपने हाथों से भोजन पकाते हैं या क्यों स्वयं गोबर से जमीन लीपते हैं, बल्कि हमें यह सोचना है कि जिस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वे साधना कर रहे हैं, हम उसमें कैसे सहायक बनें। उन्होंने जो निर्देश हमें दिये हैं, उनका अक्षरश: पालन कैसे करें।

निर्देश तो बहुत दिये हैं, परन्तु जो पसंद आते हैं, उन्हें आज्ञा मानकर पालन करते हैं और जो पसंद नहीं आते, उनके बारे में सोचते हैं कि जब आन्तरिक प्रेरणा मिलेगी तब करेंगे। यह पाखण्ड है। यदि ऐसा है तो मतलब ही क्या शिष्य बनने का? इसका कारण हमारा अज्ञान है। अगर हम अज्ञान के मार्ग पर चलकर सोचें कि हम ठीक सोचते हैं और ठीक मार्ग पर हैं, तब उसका कोई उपाय ही नहीं है। ऐसा व्यक्ति जीवन में पिछड़ा ही रहेगा। अब आप निर्णय कर लीजिए कि आपको किस मार्ग पर चलना है।

–स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती, सितम्बर 1989

जीवन दर्पण

श्री स्वामीजी ने मुझे सन् 1983 में विदेश से वापस बुलाया था। 19 जनवरी को जैसे ही मैं मुंगेर पहुँचा, वैसे ही श्री स्वामीजी ने मुझसे कहा, 'मैंने तुम्हें यहाँ इसलिए बुलाया है कि तुम बिहार योग विद्यालय तथा मेरे सभी कार्यों का संचालन स्वतंत्र रूप से मेरे उत्तराधिकारी के रूप में करो। मेरा कार्य अब यहाँ समाप्त हो गया है और भविष्य मुझे बुला रहा है। मुझे जाना है।'

उनके शब्द सुनकर मेरी आँखें भर आयीं, क्योंकि मैं श्री स्वामीजी को छोड़ना नहीं चाहता था, लेकिन यह भी समझ में आ रहा था कि उनका लक्ष्य महान् और बहुत व्यापक है। वे स्वयं भी अपनी विश्व-व्यापकता को समझें, इसके लिए यह आवश्यक है कि हम भी उनके शारीरिक स्वरूप को छोड़ें।

किसी प्रकार मैंने उनसे यह अनुरोध किया कि वे मुंगेर में अभी कुछ समय और रहें, ताकि मुझे उनका मार्गदर्शन तथा प्रोत्साहन प्राप्त हो सके, क्योंकि मैं बचपन से ही उनसे सदैव दूर ही रहा।

मेरे इस अनुरोध को उन्होंने स्वीकार किया और जैसा कि आप जानते हैं, वे मुंगेर में सन् 1987 तक रहे। जैसे ही 1988 आया, वे पुन: अपने जाने के

विषय में अपने सत्संग में सामूहिक रूप से तथा व्यक्तिगत रूप से इसकी चर्चा करने लगे। उन्होंने तो प्रारंभ में ही कहा था कि मेरा जाना अकस्मात् होगा। मैं उसी तरह जाऊँगा, जिस तरह आया था—एक झोला लेकर।

अधिकतर लोग उनके इस कथन पर विश्वास नहीं कर सके और हममें से भी अधिकतर शिष्य यही प्रार्थना करते थे कि यह मात्र उनका एक विचार बन कर ही रह जाये तो अच्छा हो। किन्तु श्री स्वामीजी अपनी बात के पक्के हैं। 8 अगस्त को उन्होंने बिहार योग विद्यालय, मुंगेर तथा वह सब जो उन्होंने पिछले 20 वर्षों में स्थापित किया था, त्याग कर विदाई ली।

उस समय से अब तक हमें उनके ये छोटे-छोटे से पत्र मिलते रहे हैं, जिसमें उनके अनुभव लिखे हुए हैं। ये एक दर्पण की भाँति हैं, जिनमें हम उनके वर्तमान जीवन की झलक देखते हैं।

श्री स्वामीजी द्वारा भेजे गए अपनी यात्रा के विवरणों को पढ़ने से ऐसा लगता है कि वे अब अपने आपको पूर्ण रूप से ईश्वरीय इच्छा को समर्पित कर रहे हैं। पहले भी उनका जीवन एक भाव की अभिव्यक्ति था, किन्तु अब उनका समर्पण अत्यन्त गहन है। अगर ईश्वरीय इच्छा हो तो वे भोजन तथा वस्त्रों का भी त्याग कर देंगे।

वे किसी से मिलते नहीं हैं तथा दिन में एक बार प्रसाद रूप में अल्पाहार लेते हैं। वे अपना भोजन स्वयं पकाते हैं। जहाँ स्थान मिल जाता है, वहीं रह जाते हैं तथा सतत् नाम-स्मरण में लीन रहते हैं।

अवश्य ही यह मेरा सौभाग्य है कि उनके जाने के पश्चात् चार बार मुझे उनके दर्शन का सौभाग्य मिला। पहला बैजनाथ धाम में, जहाँ पर उन्होंने स्पष्ट रूप से यह साबित किया था कि वे अब एक नये मार्ग पर चल रहे हैं और उनका गुरु के चोले में मुंगेर वापस आना संभव नहीं है। दूसरी बार कुंभ मेले में, जहाँ पर उन्होंने परमहंस नागा के रूप में जीवन व्यतीत करने की चर्चा की, क्योंकि यह दीक्षा उन्हें स्वामी शिवानन्द जी से प्राप्त हुई थी। तीसरी बार मैं उनसे गंगोत्री में मिला, जहाँ वे अपनी ही आन्तरिकता में खोये हुए थे। यहाँ उन्होंने बतलाया कि अपनी पिछली गंगोत्री यात्रा, 1956 में मेरे जन्म से 4 वर्ष पूर्व मुझे अपना उत्तराधिकारी बनाने का संकल्प लिया था। चौथी और अंतिम बार मिट्टी की छोटी-सी कुटिया में उनसे मिला, जहाँ बिना उनके कहे मुझे मालूम पड़ गया कि यह परमहंस अपने पिंजरे से निकल गया है। यह परिवर्तन अविश्वसनीय है, किन्तु यह अत्यन्त स्वाभाविक और उसी दिव्यता का अंश है।

यह थोड़ा विचित्र भी लगता है। हम किसी ऐसे साधु, संत या महात्मा के बारे में नहीं जानते, जिन्होंने ऐसा कदम उठाया है। शास्त्रों में इसके कुछ उदाहरण प्राप्त होते हैं, जैसे, शुकदेव, दत्तात्रेय, महावीर, आदिगुरु शंकराचार्य तथा अन्य परमहंस महात्मा।

मेरा हमेशा यही प्रयास रहा है कि मैं समस्त संस्थागत कार्यों को पूर्ण उत्तरदायित्व के साथ संभालूँ, ताकि श्री स्वामीजी अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए स्वतंत्र हो सकें, जिसके लिए उनका अवतरण हुआ है। मैं इस बात के प्रति सजग रहता हूँ कि हमारी भावुकता या व्यक्तिगत इच्छाओं के कारण श्री स्वामीजी के पथ में किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न न हो। उनका भविष्य वह है जो ब्रह्माण्डीय व्यापक कल्पना को एक जीवन्त रूप दे सकता है।

हमें सदैव यह प्रयास करना चाहिए कि हमसे जहाँ तक हो सके, यथाशक्ति उनका साथ दें, क्योंकि इसी प्रकार के सम्बन्ध से हम स्वयं को आध्यात्मिक रूप से उन्नत कर सकते हैं। इसीलिए सभी गृहस्थ शिष्यों, भक्तों, कर्म-संन्यासियों, संन्यासियों और शुभाकांक्षियों से मेरा अनुरोध है कि जब तक श्री स्वामीजी उन्हें बुलायें नहीं, तब तक उनके पास जाने का प्रयास न करें। सभी संन्यासियों से मैं कहता हूँ कि अपने आपको भविष्य के कार्य के लिए तैयार करो और जो आदर्श श्री स्वामीजी ने अपने जीवन में स्थापित किया है, उसे अपनाओ।

–स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती, जनवरी 1990

मेरे प्रणेता

प्रत्येक शिष्य का अपने गुरु के प्रति एक भाव रहता है। मेरा भी अपने गुरुदेव के प्रति एक विशेष भाव है। मैं बचपन में उनकी गोद में पला, लेकिन आज तक उनको न पिता, न माता, न बन्धु, और न गुरु के रूप में ही देखना चाहा। मैंने उन्हें केवल एक प्रणेता के रूप में देखा है, जिन्होंने मुझे जीवन के हर क्षेत्र में आगे बढ़ने के लिये प्रेरित किया है। मैं भविष्य में भी उन्हें इसी रूप में देखने की इच्छा रखता हूँ। जब मैं उनके विषय में सोचता हूँ तो उनमें परशुराम जैसी तेजस्विता, राम जैसी शीलता, योगवाशिष्ठ का वैराग्यपूर्ण ज्ञान और गीता के कर्मयोग की परिभाषा एक साथ साकार हो जाती है।

कभी-कभी जब हम अपने इतिहास के विषय में सोचते हैं तो ऐसा लगता है कि कुछ मनुष्य जन्म से संस्कारी होते हैं, उन्हें आध्यात्मिक मार्ग में आगे

बढ़ने के लिये साधना की आवश्यकता नहीं होती। सब कुछ उन्हें सहज रूप से प्राप्त हो जाता है। आदिगुरु शंकराचार्य, रमण महर्षि जैसे अनेक संतों में हम ऐसे व्यक्तित्वों को देखते हैं जो बचपन से ही जागृत थे तथा उन्हें साधना की आवश्यकता नहीं पड़ी। वे स्वयं में अनुभवपूर्ण थे।

हम अपने गुरुदेव के जीवन में भी यही देखते हैं कि उनके अंदर बचपन से ही ऐसे प्रबल संस्कार थे जिनकी प्रेरणा से वे एक उद्देश्य को लेकर जीवन में आगे बढ़े और वह मार्ग था त्याग, पुरुषार्थ और विद्या का। वे स्वामी शिवानन्द जी के साथ कई वर्षों तक रहे और स्वामी शिवानन्द जी ने उन्हें परमहंस परम्परा की दीक्षा से विभूषित किया। तत्पश्चात् उन्होंने स्वामी जी से कहा कि तुम सर्वप्रथम सेवा के माध्यम से अपने आपको गुरु ऋण से मुक्त करो।

स्वामी जी उस आदेश का पालन करने के लिये ऋषिकेश से निकल पड़े। उन्होंने नौ वर्षों तक पूरे भारत का भ्रमण कर यह जाना कि मनुष्य की विचारधारा उसे जीवन में किस ओर ले जा रही है। मनुष्य के अंदर की आध्यात्मिक प्रवृत्ति जागृत करने के लिये कौन-सा कदम उठाना श्रेयस्कर होगा? इस प्रकार भ्रमण करते-करते अंत में वे नासिक के पास त्र्यम्बकेश्वर पहुँचे। वहाँ ध्यानावस्था में उन्हें एक स्पष्ट निर्देश मिला कि तुम एक संस्था की स्थापना कर योग प्रचार का कार्य प्रारम्भ करो। भगवान मृत्युंजय का आदेश मानकर वे मुंगेर आये जहाँ उन्होंने बिहार योग विद्यालय की स्थापना की।

बिहार योग विद्यालय के इतिहास को देखने से यह मालूम पड़ता है कि स्वामी जी ने किस प्रकार लोगों के शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य, संयम और संतुलन के साथ-साथ आत्मिक विकास के लिये योग के संदेश को घर-घर एवं पूरी दुनिया में फैलाया। आधुनिक युग की आवश्यकतानुसार मनुष्य की उन्नति और विकास के लिये वैज्ञानिक अनुसंधान, चिकित्सा अनुसंधान, साहित्यिक अनुसंधान इत्यादि अनेक शोध कार्य भी प्रारम्भ हुए।

स्वामी जी का उद्देश्य है कि योग के साथ-साथ सत्य का साक्षात्कार भी करना चाहिये जिससे हम अपने आत्मतत्त्व को समझने में समर्थ हो सकें। सामाजिक स्तर पर सुख-शान्ति और समृद्धि हेतु उन्होंने 'शिवानन्द मठ' नामक एक अन्य संस्था की भी स्थापना की जिसे अपने पूज्य गुरुदेव स्वामी शिवानन्द जी की स्मृति में समर्पित किया। इसका उद्देश्य योग का प्रचार नहीं वरन् सेवा है।

सन् 1988 में जब अन्तर्राष्ट्रीय योग मित्र मण्डल की शाखाएँ विश्वव्यापी हो चुकीं और वे अपने लक्ष्य की चरम सीमा पर आसनस्थ थे, तब एक रात्रि में ही उन्होंने निर्णय लिया कि मुझे अब यह सब त्यागना है। उनका कहना था कि मैं तो सागर में एक तरंग हूँ, एक बार उठा हूँ और जिसे भी उस तरंग में मेरे साथ आना था आया है। अब समय देना है कि सागर में दूसरी तरंगें भी उठें और वे भी लोक-कल्याण के लिये अपना सहयोग दें। इसी भावना के साथ उन्होंने 8-8-1988 को आश्रम का त्याग किया। करोड़ों रुपये का आश्रम बनाया, लेकिन जाते समय उनके थैले में एक पैसा भी नहीं था। बहुत अनुरोध करने के पश्चात् हमने किसी तरह उनकी जेब में प्रतीक के रूप में 108 रुपये डाल दिये। आश्रम का गेट पार करने के पश्चात् उन्होंने उसे भी किसी को दे दिया। केवल दो धोती और एक झोला लेकर वे चल पड़े। जाते समय बस इतना कहा कि अब मुझे जाने दो, मैं स्वतंत्र हूँ और अगर तुममें क्षमता है, तब तुम इस कार्य को आगे बढ़ाओ, अन्यथा किसी को सौंप दो।

आश्रम त्यागने के पश्चात् स्वामी जी भारत में तीर्थ-स्थानों का भ्रमण करते रहे। अंत में वे पुन: त्र्यम्बकेश्वर पहुँचे जहाँ पर उन्हें पहला निर्देश प्राप्त हुआ था और इस समय भी भगवान मृत्युंजय का स्पष्ट निर्देश प्राप्त हुआ कि अब तुम गुरु ऋण से मुक्त हो चुके हो। संसार में तुम्हारा कार्य पूरा हो चुका है। अब केवल साधना में अपना जीवन व्यतीत करो। वे सोचने लगे, 'निर्देश तो मिल गया लेकिन जाना कहाँ है? हिमालय की कंदराओं में या गंगा के किनारे?' पुन: आदेश हुआ कि मेरी श्मशान-भूमि में। जिस दिन यह आदेश हुआ उसी दिन से स्वामी जी भगवान मृत्युंजय की श्मशान-भूमि में साधनारत हो गये।

इतिहास में कुछ ऐसे उदाहरण हैं, जैसे भगवान दत्तात्रेय, शुकदेव इत्यादि जिन्होंने एक कार्य को प्रारम्भ करने के पश्चात् अपने शिष्यों को सौंप दिया, ताकि मनुष्य का उत्थान न रुके एवं स्वयं को उस संस्थान से अलग कर ब्रह्माण्डीय चेतना में स्थित कर लिया। पूज्य स्वामी जी के जीवन में भी हमें यही दिखलाई देता है। यहीं संन्यास जीवन का आदर्श है। उन्होंने अपने अंतिम पत्र में लिखा था, 'मैं तुम लोगों के लिये मर चुका हूँ। अगर मैं जीवित रहूँगा तो तुम्हारी आत्मा के प्रकाश के रूप में जीवित रहूँगा। अगर तुम मुझे देखना चाहोगे तो मुझे शारीरिक रूप से नहीं देखोगे, वरन् मुझे अपनी अंतरात्मा की आँखों से देखोगे। मैं नहीं चाहता कि कोई भी व्यक्ति अपने शारीरिक या मानसिक कष्ट लेकर मेरे पास आये। क्योंकि वह चोला मैंने उतार दिया है।

अब मैं केवल एक साधक हूँ। अब मेरी साधना का लक्ष्य है—इस जीवन में ईश्वर की अनुभूति, ईश्वर का साक्षात् दर्शन। अब मुझे तुम स्वतंत्र रहने दो, किसी प्रकार के बंधन में मत डालो।'

स्वामी जी हमेशा कहा करते थे कि गुरु बनना आसान है, परन्तु शिष्य बनना अत्यंत कठिन। उनके जीवन में यह शिष्यत्व प्रत्यक्ष परिलक्षित होता है। योग की उच्च पराकाष्ठा पर पहुँचकर भी वे अपने आप को एक शिष्य मानकर गुरु के निर्देशों का पालन करते रहे। अत: मैं हमेशा उन्हें अपना प्रणेता ही मानता रहूँगा।

—स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती, सितम्बर 1990

श्री स्वामीजी के साथ अविस्मरणीय अनुभव

स्वामी जी के साथ अनुभव तो बहुत हैं, लेकिन जितने भी अनुभव हैं वे अनुभव नहीं कहे जा सकते, वे तो उनके जीवन की झाँकियाँ हैं। हम लोगों के लिये वे भले ही अनुभव हैं, पर उनके जीवन में तो ऐसे कार्य हमेशा होते ही रहते हैं।

जब मैं शुरू-शुरू में आश्रम आया था तो स्वामीजी के साथ रोज मेरी कुश्ती होती थी। वे मुझे लात मारते थे, मैं उन्हें लात मारता था। वे मुझे मुक्का मारते थे, मैं उन्हें मुक्का मारता था। उस समय मेरी उम्र 4-5 साल की रही होगी।

एक दिन आश्रम में कुछ लोग आये। वे स्वामी जी से बोले, 'आप योगी हैं। हमने स्वामी दयानन्द जी के बारे में पढ़ा है कि उनमें इतना बल था कि उन्होंने एक चलती हुई घोड़ा गाड़ी को रोक लिया था। क्या आप भी ऐसा कर सकते हैं?' स्वामी जी ने सहजता से उनकी बात टाल दी और कहा, 'हम तो एक छोटे-से साधु हैं, हममें वैसी शक्तियाँ नहीं हैं।'

सप्ताह बीतते गये। मुंगेर में गंगा नदी में बाढ़ आने लगी। आश्रम में पानी तेजी से अंदर आने लगा। हम लोग कमरों से सामान हटाने लगे। वहाँ पर बड़ी-बड़ी अल्मारियाँ थीं। अल्मारियों को हटाने की समस्या सामने आयी। उनमें आवश्यक कागजात और विद्यार्थियों के कपड़े-लत्ते भरे हुए थे। लोगों ने मिलकर अल्मारियों को हटाने का बहुत प्रयास किया। पाँच-पाँच, छ:-छ: व्यक्ति लग गये, परन्तु अल्मारियों को हटा न सके। स्वामी जी को पता चल गया कि अल्मारियों को कोई नहीं हटा पा रहा है। वे तुरन्त आये, अपनी धोती

को ऊपर उठाकर कस लिया और अकेले ही अल्मारी उठा-उठाकर दूसरे कमरे में रख दीं। जिन लोगों ने पूछा था कि आपमें बल है क्या, उनका चेहरा देखने लायक था।

उन्हीं दिनों आश्रम में बहुत-से लोग फूलों और फलों के लिये वृक्षों पर पत्थर फेंकते थे। पेड़ों पर चिड़ियों का निवास भी था। शाम के समय बहुत-सी चिड़ियाँ वहाँ आकर सोती थीं। उनमें से कुछ घायल होकर गिर जाती थीं। उन्हें स्वामी जी स्वयं उठाकर ले आते थे और उनकी सेवा करते थे। उन्हें अपने बिस्तर के पास बैठा देते थे तथा दाना दिया करते थे। जब वे चिड़ियाँ स्वस्थ हो जाती थीं तब उन्हें बाहर ले जाकर उड़ा देते थे। अनेक बार लोगों ने उनसे कहा, 'आप यहाँ पर एक बहुत बड़ा पिंजरा क्यों नहीं बनवा लेते। यदि आप ऐसा करें तो आपके पास चिड़ियों का एक बहुत बड़ा संग्रह हो जायेगा।' इस प्रस्ताव के उत्तर में स्वामी जी ने एक बहुत ही सुन्दर गीत गाया–

मैं उन्मुक्त गगन का पंछी,
मैं अजस्त्र अमृत की धारा।

कहने का तात्पर्य यह था कि हम सब पंछी की तरह स्वतंत्र हैं। वह पंछी भी स्वतंत्र है, उन्मुक्त है, उड़ा जा रहा है असीम गगन को पार करते हुए। और उसकी शोभा सिर्फ उड़ान में ही दिखाई देती है, अन्य किसी रूप में नहीं। हँसी-मजाक में स्वामी जी पुन: कहते थे कि जिस प्रकार हम लोगों की शोभा शिष्यों से बढ़ती है, उसी प्रकार पंछियों की शोभा उनकी उड़ान में है।

–स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती, जनवरी 1992

सेवा और प्रेम

श्री स्वामीजी ने एक बार मुझे अपनी एक आपबीती सुनाई–'एक बार मैं गंगोत्री से गोमुख पैदल जा रहा था। सँकरी पगडंडी के उस रास्ते पर चलते-चलते मैंने एक छोटी लड़की को देखा, जो अपने दो साल के भाई को कंधे पर लेकर चढ़ रही थी और चढ़ाई चढ़ते हुए हाँफ रही थी।'

मैंने उस लड़की से कहा, अरे, यह लड़का तो तेरे लिये बहुत भारी है। लड़की ने कहा, जरा भी नहीं, यह तो मेरा भाई है! इस घटना को घटे अनेक वर्ष बीत चुके हैं। परन्तु आज भी वह घटना मेरी स्मृति में उसी तरह अंकित है।

उस लड़की के कहे हुए वे शब्द कि यह भारी नहीं, यह तो मेरा भाई है, आज भी मेरे विचारों को उद्वेलित करते हैं।'

भारी से भारी चीज भी फूल जैसी हल्की बन जाती है, जब प्रेम उसे उठाने वाला होता है। जब हम किसी भी काम को प्रेमपूर्वक अपने हाथों में लेते हैं तो उसका भार हमें प्रतीत नहीं होता। हमारे मन में यह भावना उठती है कि यह तो कुछ भी नहीं है। लेकिन यदि हम किसी कार्य को प्रेमपूर्वक न करें तो वह पहाड़ जैसा प्रतीत होता है।

सेवा के प्रत्येक कार्य में प्रेम का बहुत महत्त्व है। तभी सेवा का दुरुह कार्य भी सहजता से सम्पन्न हो जाता है और हम मार्ग में मिलने वाली कठिनाइयों को हँसते-हँसते पार कर जाते हैं।

हमारे जीवन के अनुभव भी इसी की साक्षी देते हैं। हम अपने और अपने परिवार के सभी कार्य कर लेते हैं, चाहे वे कितने ही विकट क्यों न हो। लेकिन जब दूसरों के कार्यों को करने का प्रश्न उठता है तो हम उसमें कठिनाई महसूस करने लगते हैं, क्योंकि उसमें प्रेम सहायक नहीं होता है। सेवा और परहित के जितने कार्य होते हैं, उन्हें करने के लिए दिल में प्रेम होना चाहिये। यदि प्रत्येक कार्य में प्रेम की मदद ली जाए तो श्रम का अनुभव एवं असफलता की प्रतीति होगी ही नहीं।

—स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती, जनवरी 1992

वह कौन है?

वह कौन है,
तपता वहाँ पंचाग्नि में?
वह कौन है,
बैठा दिगम्बर शीत में?
हैं कर रहे अभिषेक
जिसका श्यामघन,
व्यंजन डुलाता पवन
आठो याम है,
वह कौन है?

तन है विभूषित भस्म,
तेजोदीप्त भी,
जैसे तुहिनकण स्नात हो
स्वर्णिम कमल।
वह कौन है?

मुस्कान अधरों पर
थिरक उठती शिशु-सारल्य ले,
खुलते नयन अरुणाभ
तो, डर जाए सम्मुख काल भी।
वह कौन है?

मन में,
न आ पाती जहाँ पर कामना।
संशय, ठहर पाते न कोई
बुद्धि में।
आनन्द का अतिरेक होता
चित्त में।
भूमिस्थ हो अपना अहम्
पाता अकथ विश्राम
जिसके चरण में।
वह कौन है?

योगी? यति?
या सिद्ध तापस?
या परम अवधूत है?
या स्वयं शिव
साक्षात् आविर्भूत हो
इस विजन में,
हैं तप रहे
जन के लिए।

—स्वामी शंकरानन्द सरस्वती, मई 1992

एक अपूर्व स्मृति

सन् 1962 में जब मैं धनबाद के श्री लक्ष्मी नारायण ट्रस्ट महिला महाविद्यालय की छात्रा थी, तब हमारे पूज्य गुरुदेव स्वामी सत्यानन्द सरस्वती का वहाँ आगमन हुआ था। उस समय हम लोगों की दिलचस्पी स्वामियों और साधु-संन्यासियों में बिल्कुल नहीं थी। अत: जब उनके आने की बात हम लोगों ने सुनी, तो चुपचाप उठकर भाग जाने की योजना बनाई। किन्तु भागने में असफल होने के कारण उनके प्रवचन सुनने के लिये बैठना पड़ा। लेकिन जब स्वामी जी का प्रवचन शुरू हुआ, तो हम सभी लोग मंत्रमुग्ध हो बैठे ही रह गये। हम लोग उनकी बातों से इतनी प्रभावित हो गये कि उनके प्रवचन के पश्चात् भी उठना नहीं चाह रहे थे। यह थी स्वामी जी से मेरी पहली मुलाकात।

मेरा विवाह एक ऐसे परिवार में हुआ, जहाँ स्वामी जी ने काफी साल बिताये। मेरे सास-ससुर ऋषिकेश के स्वामी शिवानन्द जी के शिष्य थे, जो स्वामी सत्यानन्द जी के भी गुरु थे। वहीं उन लोगों से स्वामी जी की मुलाकातें होती थीं और मेरी सास और स्वामी जी में भाई-बहन का रिश्ता कायम हो गया था। मेरी सास स्वामी जी को राखी बाँधती थी।

मेरे विवाह के बाद सन् 1968 में एक बार स्वामी जी हमारे यहाँ भागलपुर में तीन-चार घंटे के लिये आये थे, तो दूसरी बार मैंने उनके दर्शन किये। फिर सन् 1969 के फरवरी महीने में स्वामी जी अपने 21 विदेशी शिष्यों के साथ भागलपुर मेरे घर एक सप्ताह के लिये आये। उस समय मुझे स्वामीजी के निकट रहने का परम सौभाग्य प्राप्त हुआ। वहाँ स्वामी जी एक विद्यालय में अपना कार्यक्रम देते थे। माता जी उन्हीं के साथ चली जाती थीं, इसलिये घर की जिम्मेदारी मेरे ही कंधों पर थी। उस समय मेरी शारीरिक अवस्था भी कुछ नाज़ुक थी, क्योंकि मेरा छ: मास का गर्भ था। सुबह स्वामी जी सभी को लेकर विद्यालय चले जाते थे। मैं जल्दी-जल्दी उन लोगों के लिये भोजन बनाकर रखती थी, क्योंकि वे लोग नौ बजे लौटकर भोजन करते थे। उसके बाद लोगों का आना शुरू हो जाता था और सत्संग चलता रहता था। दो बजे दोपहर में चाय और हल्का नाश्ता, फिर कीर्तन। पाँच बजे वे भोजन कर फिर विद्यालय चले जाते थे। रात में आठ बजे वापस आते थे। स्वामी जी मुझसे कहते थे, 'देखो जी, मेरे लिये एक कप चाय या कॉफी बनाओ, सिर्फ मेरे लिये।' लेकिन जैसे ही मैं मुड़ती थी कि सभी संन्यासी भी अपने लिये बनाने को कहते। पहले दिन तो मैं परेशान हो गई कि मैं क्या करूँ। अगर इन सभी

के लिये बनाती हूँ तो यह स्वामी जी की अवज्ञा होगी और अगर नहीं बनाती हूँ तो मुझे ही बहुत बुरा लगेगा। मैंने जब स्वामी जी की ओर देखा तो उन्होंने चुपके से इशारा किया कि सभी को दे दो।

मैंने पाया कि वे एक अनुशासन-प्रिय गुरु होने के साथ-साथ वात्सल्य भाव से भी ओतप्रोत हैं। उनकी ममता और अपनत्व से भरी हुई बातें अंतस्तल को छू लेती थीं। उस अवस्था में होते हुए इतनी ज्यादा भाग-दौड़ और श्रम करने पर भी मुझे कभी थकान की अनुभूति नहीं हुई, यह उनका माहात्म्य नहीं तो और क्या था? मेरे पति भी उन लोगों का बहुत ध्यान रखते थे। स्वामी जी विनोदप्रिय भी कम नहीं थे। एक दिन माता जी ने स्वामी जी से मेरे पति के विषय में पूछा कि स्वामी जी, आप तो इसके साथ बहुत रहे हैं, आपको इसमें कुछ परिवर्तन दिख पड़ा या नहीं, तो स्वामी जी ने उत्तर दिया कि यह पहले कहता था, 'लाओ' और अब बोलता है 'दो'। वह एक सप्ताह का समय कैसे पंख लगाकर उड़ गया पता ही नहीं चला।

उसके बाद स्वामी जी से कई बार मुलाकातें हुईं—कभी भागलपुर में तो कभी शिवानन्द कुटीर मुंगेर में, किन्तु ये मुलाकातें ज्यादा देर की नहीं होती थीं। प्रारम्भ में शिवानन्द कुटीर छोटा सा आश्रम था। कुछ कमरे थे और एक हॉल जिसमें अखण्ड ज्योति जलती थी। आश्रम बहुत ही साफ-सुथरा, स्वच्छ तथा व्यवस्थित था। फिर जब कभी आती, कुछ-न-कुछ नया परिवर्तन अवश्य होता था। एक बार गुरु पूर्णिमा में आई तो स्वामी जी के क्रियाकलापों को देखकर अवाक् रह गई। प्रात: तीन बजे जो उनका पाद-पूजन शुरू हुआ, तो बारह बजे के करीब खत्म हुआ। बारह बजे से प्रसाद वितरण का कार्यक्रम शुरू हुआ। स्वामी जी स्वयं खड़े होकर सारा कार्यक्रम करवा रहे थे। सबसे अन्त में तीन बजे स्वामी जी के साथ हम लोगों ने भोजन किया। दस मिनट आराम करके वे फिर काम में जुट गये, क्योंकि साढ़े तीन बजे से भजन-कीर्तन तथा प्रवचन का कार्यक्रम था। उन्होंने हम सभी लोगों के आराम के लिये अपना कमरा खुलवा दिया। स्वामी जी बच्चों की स्वतंत्रता में बाधा डालना उपयुक्त नहीं समझते थे। पहले जब मैं आश्रम में आती थी, उस समय स्वामी निरंजनानन्द जी छोटे ही थे। उन्हें कभी पेड़ पर तो कभी गेट के ऊपर ही पाती थी। वह मेरे यहाँ भी स्वामी जी के साथ जब आते थे, तो कार की छत पर ही बैठे रहते थे। उन्हें जब भोजन के लिये उतरने को कहती तो नहीं उतरते थे। स्वामी जी कहते कि इसे यहीं लाकर दे दो, यह नहीं उतरेगा।

बाद में जब भी मुँगेर आती तो उन्हें बहुत ही व्यस्त पाती। आश्रम का काफी विकास हो चुका था। गंगादर्शन का भी निर्माण कार्य तेजी से चल रहा था, लेकिन इतना होने पर भी हम लोगों के लिये अपने अमूल्य समय में से वे थोड़ा समय निकाल ही लेते थे। हम लोगों को सदा अपने पास बिठाकर खाना खिलाते। सभी के हालचाल पूछते। एक बार बच्चों के सत्र में बच्चों को यहाँ छोड़ने आई तो स्वामीजी की कार्यप्रणाली देखकर बिल्कुल दंग रह गई। स्वामीजी स्वयं तो विदेश में थे और उनकी जगह थे–स्वामी निरंजनानन्द जी, जो अब युवक हो गये थे और कार्य-कौशल में स्वामीजी की प्रतिमूर्ति मालूम पड़ते थे। बच्चे यहाँ रहकर बहुत ही लाभान्वित हुए। सारी योजनायें परमहंस सत्यानन्द जी की होती थीं। उनकी योजना और स्वामी निरंजनानन्द जी की कार्य कौशलता ने साढ़े चार सौ बच्चों के इस सत्र को सफल बनाया। सभी संन्यासीगण बिल्कुल समर्पित भाव से ममत्व और कुशलतापूर्वक सभी बच्चों की देखरेख कर रहे थे।

इसके बाद भी कई बार मेरा मुंगेर आना हुआ। गंगादर्शन पूर्ण हो चुका था। एक वीरान भयप्रद पहाड़ी स्थान ने एक शान्त, उन्नत और स्वर्गीय गरिमा प्रदान करने वाले रमणीक आश्रम का रूप ले लिया था। इसका सारा श्रेय तो स्वामी जी को ही जाता है न? यहाँ की स्वच्छता और कार्य करने का ढंग तो देखने योग्य है। जैसे कर्मठ स्वामी जी, वैसे ही इनके संन्यासी शिष्य। सभी शान्त भाव से अपने कार्य में तल्लीन हैं। कहीं आलस्य का नाम नहीं। सभी विनीत और नम्र। रसोई-घर से लेकर प्रेस और ऑफिस तक सभी लोग अपने-अपने कार्य में व्यस्त रहते हैं।

फिर पता चला कि स्वामी जी बिहार योग विद्यालय, मुंगेर को स्वामी निरंजनानन्द जी के सुयोग्य हाथों में सौंप कर स्वयं अज्ञातवास के लिये निकल पड़े हैं। बाद में मालूम पड़ा कि अब वे देवघर के पास रिखिया में परमहंस अलख बाड़ा बनवा रहे हैं, तो वहाँ भी मैं दो बार उनसे मिलने गई। वहाँ भी उनके दर्शन हुए और बहुत-सी बातें भी हुईं। रिखिया में उन्हें एक बार में पहचानना कठिन था, क्योंकि उनका बाह्य रूप बदल चुका था। कहाँ मुँगेर का उनका सुखद एयरकंडीशण्ड कमरा और कहाँ एक कुटिया, वह भी चारों ओर से खुली हुई। उनका शरीर मलिन लग रहा था, लेकिन उनकी आत्मा तप कर अत्यधिक दिव्य हो गई थी। अब वे मात्र अपनी तपस्या की ही बातें कर रहे थे। जब लोगों ने उनसे पूछा कि स्वामी जी, फिर आपके दर्शन के

लिये कब आऊँ, तो उन्होंने कहा कि मैं तो कहूँगा, कभी नहीं, क्योंकि मेरी तपस्या में बाधा पड़ती है। उस समय उनका चेहरा बड़ा निरीह-सा लग रहा था, जो अपनी तपस्या को पूरी करने में स्वयं को असहाय-सा पा रहा हो। उन्होंने मुझसे कहा कि गाय है, तो मेरे लिये कुछ गोयठे बनवाकर भेजो। मैंने उन्हें गोयठे बनाकर भेजे भी थे।

स्वामी जी आज भी अपनी तपस्या में लीन हैं। ईश्वर से प्रार्थना है कि उन्हें पूर्ण सफलता प्राप्त हो। आज बच्चों के अनुरोध पर उन्हें आश्रम लेकर आई हूँ। आज स्वामी जी यहाँ नहीं रहते हैं, लेकिन आश्रम में अधिकाधिक उन्नति हो रही है। सारे क्रियाकलाप पहले की भाँति सुचारू रूप से चल रहे हैं। बिल्कुल शान्त और स्वच्छ वातावरण है यहाँ का। स्वामी निरंजनानन्द जी तो स्वामी जी के प्रतिरूप ही मालूम पड़ते हैं। इनकी बाल-सुलभ हँसी मनमोहक है। इनकी कार्यक्षमता बिल्कुल स्वामी जी की तरह ही है—यथा गुरु तथा शिष्य।

—श्रीमती गीता सहाय, भागलपुर, जुलाई 1993

फिर मत आना

आज से सात दशक पूर्व हिमालय के शान्त प्रदेश में अल्मोड़ा के समीप एक छोटे-से गाँव में एक श्रीमन्त एवं आध्यात्मिक परिवार में जन्म लेने वाले शिशु की जननी को पुत्र रत्न प्राप्ति का जितना भी अधिक आनन्द प्राप्त हुआ हो, पर सम्भवत: उन्हें भी इसका उस क्षण आभास न हो पाया होगा कि भविष्य में सारा विश्व इस शिशु का नमन करेगा और यह शिशु संतप्त मानवता को अपने हृदय का कोमल एवं शीतल स्पर्श देगा।

उस शुचि और श्रीमन्त गेह में जन्म लेने वाला शिशु जैसे-जैसे बड़ा होता गया, उसमें विलक्षण भाव उत्पन्न होने लगे। उन अलौकिक लक्षणों को देखकर लगभग सारा ग्रामीण परिवेश विस्मित रहता था। परन्तु जब 15 वर्ष की अवस्था में किशोर ने भर्तृहरि के 'वैराग्यशतक' का हिन्दी पद्यानुवाद प्रस्तुत कर दिया तो समस्त पर्वतीय अंचल अद्भुत रोमांच से सिहर उठा।

इधर कैलास और मानसरोवर की ओर जाने वाले संत-महात्माओं के आशीष ने भस्मावृत अग्नि स्फुलिंग को प्रज्ज्वलित अंगार बना दिया। ज्ञान की प्यास इतनी तीव्र हो उठी कि 17 वर्षीय युवक अपनी स्नेहमयी जननी और

जनक का आश्रय छोड़ गुरु की खोज में निकल पड़ा। संसार का आकर्षण उसे अपने मार्ग से विरत न कर सका, क्योंकि प्रकाश का दर्शन होने के पूर्व तो अन्धकार से जूझना ही पड़ता है।

ज्ञान की पिपासा लिये युवक गहन वन-प्रान्तरों, दुर्गम शैल-शिखरों और विजन भूखण्डों में भ्रमण करता हुआ ऋषिकेश पहुँच गया। जब शिष्य तैयार हो जाता है तो गुरु स्वयं प्रकट हो जाते हैं। विधि के विधान के अनुसार ही स्वामी शिवानन्द जी महाराज के सम्मुख युवक आ उपस्थित हुआ। कितना अपूर्व होगा वह क्षण जब 'शिव' से 'सत्य' का मिलन हुआ होगा।

फिर तो प्रारम्भ हो गई अहर्निश गुरु-सेवा एवं अविरल कर्मयोग की साधना। 12 वर्षों तक गुरु सेवा और प्रचण्ड कर्मयोग की अग्नि में तपकर धर्मेन्द्र सिंह नायाल जो यहाँ ब्रह्मचारी सत्य चैतन्य और फिर स्वामी सत्यानन्द सरस्वती बन गये थे, गुरु के आदेश से परिव्रजन को निकल पड़े। गुरु चरणों में प्राप्त ज्ञान, अनुभव और गुरु संदेश को लोक कल्याण हेतु वितरण करने एवं योग का अलख जगाने, जन-जन के द्वार-द्वार से सागर के आर-पार पहुँचाने चल पड़े एकान्त और अकेले।

जब फूल खिलता है तो भ्रमरों को निमन्त्रण नहीं देना पड़ता। प्रशंसक, भक्त, शिष्य, साधक एवं जिज्ञासु, जो मानो नेपथ्य में प्रतीक्षारत हों, एकत्र होने लगे। स्वामी सत्यानन्द जी ने योग की शाश्वत संस्कृति को, जो हमारे ऋषियों की अनुभूत अमूल्य धरोहर है और जो शताब्दियों तक हिमालय की गुफाओं और गहन वनों की पर्णकुटियों में सुरक्षित थी, विश्व के खुले प्रांगण में ला खड़ा किया। योग-गंगा के भगीरथ परमहंस सत्यानन्द जी ने यह दुर्लभ अमृत, समर्थ और असमर्थ सभी के लिये सहज सुलभ बना दिया। यह प्राचीन वैज्ञानिक जीवन दर्शन जो कालचक्र से उड़ी धूल से भी धूमिल नहीं हो पाई थी, भ्रमों के कुहासे को भेद पुनः प्रकट हो गई।

परमहंस सत्यानन्द जी योगतरी की पाल में उस अदृश्य सत्ता ने अनुकूल हवा का वेग भर दिया। अब न योग किसी के लिये अप्राप्य रहा और न कोई योग के लिये अस्पृश्य रहा। मानव की सम्पदा, उसका सुखी और स्वस्थ रहने का जन्मसिद्ध अधिकार उसे मिल गया। इसका श्रेय किसे दें—उस अदृश्य करुणामय को, उस जननी-जनक को या परम गुरु ब्रह्मलीन यशोपूत स्वामी शिवानन्द महाराज को जिन्होंने मणि में माधुर्य भर दिया और सुवर्ण में सुवास बना दिया।

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर उस शलाका पुरुष की कल्पना का मूर्त रूप है, विश्व को अनुपम उपहार है तथा मृगनाभि की कस्तूरी है, जिसे मृग भले ही खोजता फिर रहा हो, पर उसके सुवास से विश्व आप्यायित हो उठा है।

अग्नि को वस्त्र में बाँधा नहीं जा सकता। परमहंस सत्यानन्द जी जैसे मुंगेर में आये थे, वैसे ही 8 अगस्त 1988 को मुंगेर से चल पड़े। बिहार योग विद्यालय का सर्वसुविधा सम्पन्न परिसर छोड़कर, अपने लक्ष-लक्ष शिष्यों, भक्तों और प्रशंसकों का स्नेह सूत्र तोड़कर और वायु के समान सर्वत्र व्याप्त अपनी गरिमा, अपना यश परित्याग कर। आज विश्व में कोई बिरला ही मिले जिसने यह आदर्श स्थापित किया हो। अपना सम्पूर्ण सृजन अपने योग्य शिष्य को सौंप स्वयं निर्द्वन्द्व, अनासक्त संन्यासी की तरह, एक अकल्पित भिक्षाशी की तरह मुक्ताकाश में उस अदृश्य परम सत्ता के आश्रय में चल पड़े। 1943 में पारिवारिक स्नेह, अतुल सम्पदा और सुविधायें त्याग वे गुरु आश्रय में गये, 1988 में अपना सम्पूर्ण सृजन परित्याग कर उस सर्वव्यापी, सर्वद्रष्टा और सर्वशक्तिमान के आश्रय में चल पड़े।

आज शिव की चिताभूमि, वैद्यनाथ धाम के पार्श्व में भोले सरल ग्रामीणों के मध्य साक्षात् शिव के समान क्षेत्र-संन्यास ले 'बहुजनहिताय बहुजनसुखाय' साधना में रत हैं।

योगी? यति?
या सिद्ध तापस?
या परम अवधूत है?
या स्वयं शिव साक्षात्
आविर्भूत हो
इस विजन में,
हैं तप रहे
जन के लिये।

सन् 1990 के सितम्बर में जब उनके दर्शनों का सौभाग्य मिला तो मैं अभिभूत-सा हो गया उस छवि को देखकर, भस्मावृत कौपीनधारी तन ऐसा प्रतीत होता था कि कोई स्वर्णिम कमल अभी-अभी हिमकणों में स्नान कर निकला हो।

सत्संग के बाद एकान्तवासी, सर्व परित्यागी मेरे निर्मम निःस्पृह गुरुदेव ने विदा दिया इन शब्दों के साथ जो द्वार पर अंकित थे– 'फिर मत आना।'

प्राय: सभी दर्शनार्थी लौटते समय इसे पढ़ते होंगे पर मैंने जैसे इसे पढ़ा मेरे नेत्रों के समक्ष मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम के शब्द आ खड़े हुए।

सन्मुख होहिं जीव मोहिं जबहिं।
जन्म कोटि अघ नासहिं तबहि॥

इस योगेश्वर के दर्शन के उपरान्त कौन है जो इतना पावन नहीं हो पायेगा कि उसे पुन: इस धरती पर लौट आना पड़ेगा।

प्यासा पंछी जब सरिता की ओर उन्मुख होता है तो सरिता अपना सारा जल उसके समक्ष उड़ेल देती है। वह क्षण-भर के लिये भी यह नहीं सोचती कि इस लघु प्राणी की प्यास तो मात्र दो चंचु जल से ही तृप्त हो जायेगी।

अवढ़रदानी परमहंस सत्यानन्द के हृदय में करुणा का इतना विशाल और अथाह सागर लहरा रहा है, जिसे वर्षों की पंचाग्नि भी सुखा नहीं पाई है। याचक अपने कृपण हृदय से उस योगेश्वर के औदार्य को माप नहीं सकता। याचना दो चंचु जल की और उन्मुक्त कर दिया करुणा का असीम सागर।

–स्वामी शंकरानन्द सरस्वती, नवम्बर 1993

उनके चरणों में–जो सिन्धु से बिन्दु बन गये

परमहंस सत्यानन्द महाराज के विषय में कुछ कहना तो सूर्य को दीपक दिखाने जैसा ही होगा। परम पूज्य स्वामी शिवानन्द महाराज ने अपनी आत्मशक्ति से ऐसे सूर्य का निर्माण किया, जो कण-कण में भगवान जैसे सबकी आत्मा में समाहित हो रहे हैं। हमारा भारत देश युगों-युगों से साधु-संतों एवं ऋषि-मुनियों की तपोभूमि रहा है। इतिहास बतलाता है कि वे महात्मा हजारों वर्ष कठिन तपस्या करके अपने को मिटा डालते थे, पर उन्होंने हिमालय से बाहर आकर संसार के भूले-भटकों को रास्ता दिखाने का विचार भी नहीं किया और न किसी साधु-संन्यासी को साधना और आध्यात्मिक पूर्णता के लम्बे रिकार्ड के साथ पाया ही गया है।

कुमाऊँ प्रान्त के जमींदार के गृह में जन्म हुआ, जहाँ सूर्य अपनी स्वर्णिम आभा से स्वप्निल इन्द्रधनुषी रंगों का सृजन करता है, वहीं यह बालक प्रकृति माता की गोद में 'हिमालय और कैलाश', वेदों की जन्मभूमि विशाल उपत्यकाओं में उन आदि-महर्षियों के पावन-संदेशों को सुनते-समझते बड़ा

हुआ। नैनीताल, अल्मोड़ा व बनारस विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त की। अल्पकाल में ही प्रतिभा-सम्पन्न विद्यार्थी हो गये। 7 वर्ष की उम्र में प्रतिभा फूट पड़ी, उनकी कविताओं ने हलचल मचा दी। कई उपनाम से लेख एवं कविता लिखकर पूरी पत्रिका प्रकाशित कर सबको चकित करने लगे। इन्हें हिन्दी के साथ-साथ संस्कृत एवं अँग्रेजी का भी विशेष ज्ञान था, अल्पायु में तीन साहित्यों का ज्ञान होना वास्तव में अपौरुषेय था।

15 वर्ष की आयु में इन्होंने भर्तृहरि के 'वैराग्य शतक' का पद्यानुवाद करके गुरुजनों को आश्चर्यान्वित कर दिया। अल्मोड़ा की रत्नगर्भा, वीरभोग्या वसुन्धरा की गोद में शिक्षा, साहित्य, संगीत, लेखन, प्रवचन के साथ ही त्याग-वैराग्य में भी अद्वितीय हो गये। प्रकृति की माया भी इन्हें बाँधने में असमर्थ रही।

18 वर्ष की आयु में स्नेही परिवार, सुख-सुविधा सम्पन्न गृह को त्याग कर, अदृश्य की खोज में दर-दर भटकने लगे। नियति ने उन्हें स्वामी शिवानन्द महाराज के चरणों में पहुँचा दिया। ज्ञान की किरणें बिखेरने वाले गुरु ने विस्मित होकर इस अद्भुत युवक के अन्तरतम को निहार लिया। वे पहचान गये कि यह बालक उनके उपदेशों को 'बहुजनहिताय-बहुजनसुखाय' देश-देशान्तर में पहुँचाने के लिये कृष्ण का अर्जुन, नारायण का नर बनेगा और उन्होंने प्रसन्नता से इन्हें अपना लिया। ऐसे आदर्श गुरु-शिष्य के मिलन पर माँ पृथ्वी, माँ गंगा खुशी से झूम उठी होंगी।

ज्ञानानुरागी युवक शीघ्र ही शास्त्रों के अवगाहन में दत्तचित्त हो आत्म-संस्करण, सेवा, स्वाध्याय आदि विविध सोपानों को तय करने लगा। कर्मयोग चाहे कितना भी कठिन हो, मन लगाकर करते थे। गंगा जी से पानी लाने में 40-50 सीढ़ियाँ चढ़नी-उतरनी पड़ती थीं, फिर भी सैकड़ों बाल्टी पानी लाकर सब तरफ भर देते थे। जंगल से पूजा के लिये फूल, बेलपत्ती लाते थे, रसोई में काम करते, बड़े-बड़े बर्तन साफ करते, दवाइयाँ (जड़ी-बूटी) कूटते-पीसते। ईंट-पत्थर, गारा ढोते, दो मील पैदल ऋषिकेश जाकर किराना सामान व सब्जी लाते, सामान सर पर ढोकर लाते थे। भजन-कीर्तन 4-6-8 घंटे तक कर सकते थे, इतना अच्छा गाते थे कि सुनने वाले भावातिरेक से झूमने लगते। यह सब देख लोग दंग रह जाते, गुरु भाई भी आश्चर्यचकित हो जाते, पर गुरु जी सब समझते थे कि इनमें शैशव से ही वैराग्य का अंकुर पूर्णतः परिलक्षित हो चुका है।

स्वामी शिवानन्द जी के चरणों में बैठकर इन्होंने प्रथम उस असीम सत्ता की विशालता में अपने अस्तित्व को विलीन करके, शिवानन्द महाराज को गुरु रूप में पूजा। स्मरणशक्ति बहुत ही तीव्र होने से सभी वेद-वेदान्त, उपनिषद्, स्तोत्र, सभी पुराण, ग्रन्थ कंठस्थ कर लिये। सभी विभागों में कुशलता से काम करते, सब से हिलमिल कर रहते थे।

सन् 1945 में शिवरात्रि पर्व पर ब्रह्मचर्य आश्रम में दीक्षित हो 'सत्य चैतन्य' बन कर सत्यनिष्ठा को अंगीकार किया। आश्रमवासी स्कूल-कॉलेज के बच्चों को हिन्दी-संस्कृत-अंग्रेजी पढ़ाने के साथ ही लेख-कविता लिखने लगे। प्रेस विभाग के सभी काम सीखने के बाद गुरु जी की पुस्तकों का हिन्दी अनुवाद करके छापने लगे।

8 सितम्बर सन् 1947 को स्वामी शिवानन्द महाराज की हीरक जयन्ती मनाई गई। 12 सितम्बर सन् 1947 को गुरुदेव ने इनको अध्यात्म के सर्वोच्च शिखर पर समासीन करते हुए संन्यास दीक्षा दी, नाम दिया, 'स्वामी सत्यानन्द सरस्वती'। इस शुभ-मुर्हूत से स्वामी सत्यम् ने विगत जीवन को विस्मृत कर दिया और गुरुदेव के परम पावन आदेशों, उपदेशों को दैनिक आचार-विचार में घटित करते हुए उस परा वैभव की दुर्गम यात्रा पर चल पड़े, जिसका आभास उनके अंत:करण में बाल्यकाल में ही हो गया था।

स्वामी सत्यम् आश्रम के सचिव थे, पूरे आश्रम की व्यवस्था की तरफ ध्यान रखते थे। गुरुदेव की पुस्तकों का हिन्दी अनुवाद करते समय इन्हें समाधि सी लग जाती थी। शिवानन्द साहित्य की जो देन हिन्दी जगत् को मिल रही है, वह स्वामी सत्यम् के ही परिश्रम का फल है। स्वामी सत्यम् प्रेस मैनेजर भी थे, प्रेस कर्मचारियों से काम कराने की अद्भुत क्षमता देख गुरुदेव ने इन्हें 'प्रेस-स्तम्भ' की उपाधि दी थी। आश्रम के हर क्षेत्र में इन्होंने सफलता से काम किया। गुजरात में कई जगह नेत्र शिविर लगे, वहाँ स्वामी सत्यम् ने आँखों के ऑपरेशन भी किये थे। इसी तरह कर्मयोग करते गुरु आश्रम में 12 वर्ष पूर्ण होने पर गुरुदेव से परिव्राजक जीवन का आदेश माँगे। गुरुदेव की आत्मा की आवाज तो थी सत्यम् साथ ही रहे, पर कर्त्तव्य भी कुछ था व शिष्य की आँखों में भी कुछ और दिखाई दिया। अपने को संयत करके बोले, 'सत्यम्! अब तुम्हें नहीं रोकूँगा, पर कुछ दिन ठहरो, तुम्हें अभी क्रियायोग साधना नहीं सिखाई है।' शिष्य गुरु जी की आत्मा में समाहित थे, बोले, 'आप तो सर्व-समर्थ हैं, अभी बता दीजिये।' गुरु जी ने कहा, 'ठीक है, मेरे साथ आओ'

और कमरे में जाकर उस कठिन और अद्भुत योग को कुछ ही देर में सिखा दिया। मानो अपने हृदय की मंजूषा से बहुमूल्य रत्नों की थैली शिष्य के हृदय में डाल दी हो। फिर बोले, 'सत्यम्! अब तुम परिव्राजक बन नगर-नगर और डगर-डगर योग को फैलाओ, जाओ दिग्विजय करो' और 108 रुपये देकर कहा, 'प्रभु तुम्हें सदैव आशीष दें।'

गुरु के सान्निध्य में 12 वर्ष की कठिन तपस्या एवं साधना की अग्नि में तपकर गुरु के ज्ञान से आलोकित ज्योतिपुंज-सा संन्यासी परिव्राजक होकर गुरु से दिग्विजयी होने का आशीष प्राप्त कर, सत्य-धर्म और योग का प्रचार-प्रसार करने, 'मैं संन्यासी हूँ' का पवित्र मंत्रोच्चारण कर विश्व का स्वर्ण विहान जगाने चल पड़ा।

परमहंस सत्यानन्द सरस्वती अप्रैल 1956 से भारत के सभी प्रान्तों, शहरों एवं गाँवों में घूमने लगे, सभी प्रान्तों के तीर्थ स्थानों में गये, पूरे भारत के देवालयों में जाकर उनसे आशीर्वाद, आदेश लिया, कुछ वायदा भी किया। शहर-देहात, गरीब-अमीर उनके लिये बराबर थे। जब वे राजनाँदगाँव आये तो बोले, 'योग ही भविष्य की संस्कृति है और राजनाँदगाँव मेरा सारनाथ है'। राजनाँदगाँव को मुख्यालय बनाकर स्वामी सत्यानन्द जी नगर-नगर व डगर-डगर घूम कर योग गंगा बहाने लगे। सब जगह सफलता मिली। कई जगह असुविधायें भी हुईं, विरोध भी हुआ पर स्वामी जी तो निंदा-स्तुति से परे थे। उन्हें अपना काम करना था, हर जगह व हर परिस्थिति में वे प्रसन्न रहते। स्कूल-कॉलेजों में प्रोग्राम होने लगे, भजन-कीर्तन, प्रवचन से सब प्रभावित हुए। धीरे-धीरे स्वामी जी अमीर-गरीब, बच्चों एवं महिलाओं सभी के प्रिय व पूज्य बन गये, सबके अपने हो गये।

ऐसे युग में जबकि मनुष्य की आवश्यकताएँ बढ़ गईं, जीवन की मान्यतायें बदल गईं, रहन-सहन, भाषा बदल गई, धर्म और संस्कृति की रक्षा प्राण-प्रण से करते रहने के बावजूद भी परम्परा और नियम टूटते रहे, ऐसी विषम परिस्थिति में, भौतिकता से त्रस्त विज्ञान के युग में परमहंस सत्यानन्द महाराज ने योग आन्दोलन शुरू किया। 1962 अक्टूबर में स्वामी जी ने अपनी योजना को मूर्त रूप दिया। 'अन्तर्राष्ट्रीय योग मित्र मण्डल' का मुख्यालय बना राजनाँदगाँव और स्वामी जी सब तरफ योग गंगा बहाने लगे।

सन् 1963 में मुंगेर के श्री केदारनाथ जी गोयनका के अनुरोध पर आनन्द भवन में चातुर्मास करने के लिये स्वामी जी जुलाई में मुंगेर आये। आनन्द

भवन में साधना शुरू की। स्वामी जी कहते थे, 'हम आश्रम नहीं बनायेंगे, 12 वर्ष घूमने के बाद गंगोत्री या हिमालय की गुफा में साधना करने चले जायेंगे।' पर मेरे मन कछु और है, कर्ता के कछु ओर...

14 जुलाई सन् 1963 की रात्रि में पूज्य स्वामी शिवानन्द जी महाराज ने शरीर त्यागते समय, स्वामी सत्यम् को दर्शन दे योग को देश-देशान्तर में फैलाकर इसकी उपादेयता सिद्ध करने का आदेश दिया। पहले तो इन्हें कुछ समझ में नहीं आया, फिर समझ गये कि गुरु जी नहीं रहे, उनका आदेश पूरा करना है। देवश्री गुरु जी ने शिष्य को दर्शन और आदेश दिया, योगश्री शिष्य ने उत्तर-वाहिनी गंगा के किनारे आश्रम बनाने व गुरु ज्ञान ज्योति का दीप प्रज्वलित करने का संकल्प लेकर अपना निश्चय श्री गोयनका जी को बता दिया। गोयनका जी तो यही चाहते थे, उन्होंने एक सुन्दर-सा आश्रम बनवा दिया। बना तो छोटा था पर धीरे-धीरे विशाल बनता गया। यह शुभ-मुहूर्त्त का व बनाने वाले की हृदय की विशालता का ही परिणाम है।

19 जनवरी सन् 1964 बसन्त पंचमी के शुभ दिन में आश्रम का उद्घाटन व गुरु ज्योति प्रज्ज्वलित करना तय हुआ। स्वामी जी के परिव्राजक समय के भारत के सभी प्रान्तों से आये हजारों शिष्यों, भक्तों ने देखा कि गुरु-स्मृति ज्योति प्रज्ज्वलित करते समय वीतरागी संन्यासी के नयनों से एक बूँद जल मानों शंकर की जटा से गुरु के चरण पखारने गिरा हुआ हो। गुरु का आलोक शिष्य पर फैल गया और शिष्य की योग गंगा सभी दिशाओं में फैलने लगी।

आश्रम का कार्यक्षेत्र बढ़ता गया, देश के कोने-कोने से लोग आने लगे। सभी जगह योग मित्र मण्डल की शाखा खुलने लगी, आश्रम बनने लगे, बीमारियों पर शोध भी होने लगा। अन्तर्राष्ट्रीय योग मित्र मण्डल का बीजारोपण स्वामी जी ने सन् 1962 में ही किया था। भविष्य की सम्भावनायें असीम, अपरिमित एवं अवर्णनीय हैं। योग विज्ञान भारत का अति प्राचीन ज्ञान कोष है। अन्य विज्ञानों की भाँति इस विज्ञान में भी नित्य नवीन खोज जारी है। योगविद्या का क्षेत्र अब सर्विस करने व घर से रिटायर हुए लोगों, कुछ कारणों से गृह-त्याग किये हुए या घर-समाज से पलायन किये साधु-संन्यासियों तक ही सीमित नहीं रह गया है। स्वामीजी के इस ज्ञान यज्ञ के होता बालक, वृद्ध, युवा, नर-नारी, सुशिक्षित डॉक्टर, इंजीनियर, वकील सभी हैं। स्वामी जी गरीब-अमीर, स्त्री-पुरुष, छोटे-बड़े, देशी-विदेशी में भेद नहीं देखते, सब में एक ही आत्मा देखते हैं।

स्वामी जी के दुर्लभ योग के कठिन प्रयास की सफलता के लिये जितना भी कहा जाए, कम है। इतनी अल्पावधि में देश-विदेश में इतने आश्रम व संस्थायें, योग-सत्र एवं सम्मेलन व हर शहर में दिन में सम्मेलन रात में सफर, दूसरे दिन दूसरे शहर में सम्मेलन, तीन महीने में 30-35 शहरों में प्रोग्राम करना, परमहंस सत्यानन्द महाराज ही ऐसी दिग्विजय कर सके हैं।

स्वामी जी की सैंकड़ों पुस्तकें हिन्दी-अंग्रेजी में छप चुकी हैं। उनके पुस्तकों का विभिन्न विदेशी भाषाओं में अनुवाद व प्रकाशन हुआ, देश-विदेश में योग सम्मेलन, अनेकों रोगों पर शोध कार्य भी हुए। 1973 का विराट् स्वर्ण जयन्ती योग सम्मेलन उनका अत्यन्त व्यस्त विश्वव्यापी कार्यक्रम था। हिन्दी की पत्रिका 'योगविद्या' तथा अंग्रेजी की 'योग' पूरे विश्व में भ्रमण कर जन-सेवा में तत्पर है। स्वामी जी की आध्यात्मिक शक्ति ने इस विद्या को जन-साधारण के लिये सुलभ कर दिया है। योग के प्रति लोगों में श्रद्धा-विश्वास बढ़ता जा रहा है तथा उसकी उपादेयता का मूल्यांकन भी लोग करने लगे हैं।

विश्व इतिहास इस सत्य को स्वीकारने लगा है कि परमहंस सत्यानन्द महाराज ही प्रथम संत, सिद्ध योगी पुरुष हैं, जिन्होंने 'योग' को उसकी रहस्यमयता के आवरण से मुक्त कर सही वैज्ञानिक पृष्ठभूमि में पुनः स्थापित किया है। वर्तमान युग में मानव-कल्याण के लिये उन्होंने योग की आवश्यकता महसूस की तथा उसे मानव समाज के लिये सरल एवं सहज बनाकर सबको नवजीवन प्रदान किया। वे कहते थे, 'मेरा लोकसंग्रह ईश्वरीय पथ है, जिसका चरम अंत है मानव समाज का दिव्यीकरण। यही मेरी साधना है, यही मैं अंत तक करता जाऊँगा।'

पूज्य गुरुदेव को हम 4 दशक से जानते हैं। जीवन में कठिनाइयों को उन्होंने सहर्ष स्वीकारा। गुरु आश्रम में निर्भीकता और कर्मठता के लिये प्रसिद्ध थे, कर्मयोग किसी तरह का हो, किसी भी विभाग में हो, दिन-रात बराबर करते, हर विभाग में, हर क्षेत्र में सफलता से सभी कार्य करते रहे। परिव्राजक जीवन में भी असुविधायें-परेशानियाँ हुईं, पर ये हर हालत में अलमस्त रहे, आँधी हो या तूफान, इन्हें अपने लक्ष्य तक पहुँचना ही था। आश्रम बनने के बाद स्वामी जी गुरु, प्रबन्धक, प्रेरक व प्रशिक्षक भी बन गये। दो-चार को नहीं, सारे विश्व के हजारों-लाखों लोगों को गुरु ज्ञानशक्ति प्रदान करने में सक्षम हुए। यह स्पष्ट है कि वे चेतना की गहरी एवं उच्च अवस्थाओं की अनुभूति करने में सक्षम हुए हैं। अपनी क्षमता के द्वारा वे लोगों की समस्याओं

का सूक्ष्म तथा यथार्थ निराकरण करते रहे हैं। केवल जीवनमुक्त सन्त ही ऐसी भूमिका आसानी से निभा सकते हैं। स्वामी सत्यानन्द जी ऐसे व्यक्तित्व के प्रतीक हैं। एक प्रबन्धक के रूप में उनके निर्णय सर्वदा निर्मूल एवं निर्दोष रहे हैं। उनका प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष मार्गदर्शन लोगों को सतत् आलोकित करता रहा है। आश्रम का वास्तविक रूप से योग के अनुरूप साज-सज्जायुक्त निर्माण कार्य जब सब तरह से पूर्ण हो गया तब हजारों-हजार भक्तों के गुरु, गंगादर्शन जैसे आश्रम के निर्माता, योग के मसीहा, योग गंगा के भगीरथ, गुरु ज्ञान ज्योति प्रज्वलित करने के 25वें वर्ष में 8-8-88 को क्षेत्र संन्यासी बनकर भारत भ्रमण करने तथा विश्व के सभी देवशक्तियों का दर्शन करने, धन्यवाद-साधुवाद देने, 'बहुजनहिताय-बहुजनसुखाय, सर्वे भवन्तु सुखिनः' की भावना लेकर सब कुछ त्याग कर चल पड़े अनन्त की खोज में। पूज्य स्वामी जी कहा करते थे, 'मुझे रोको मत, चलने दो मेरा जीवन, जैसे सुन्दर बचपन, रहने दो मुझे अज्ञानी, नहीं चाहिये तुम्हारा ज्ञान, तुम्हारी विद्वत्ता, मुझे पक्षियों की तरह उड़ना अच्छा लगता है, मुझे पक्षियों की कल-कुंजन के साथ गा लेने दो। मुझे रोको मत।'

गंगादर्शन के महा तपस्वी, राजसी भिक्षुक बनकर पूरे भारत में घूमने लगे। तीर्थ स्थानों में, जंगल, नदी, पर्वतों में पदयात्रा करते, पैरों में छाले पड़ गये, कभी सड़क के किनारे आराम कर लेते, कभी नदी किनारे सो जाते। कभी कोई परिचित मिल जाते तो स्वामी जी की स्थिति देख दुःखी हो जाते, क्योंकि वे संसारी लोग हैं ऐश-आराम को महत्त्व देते हैं, पर स्वामी जी तो हर हाल में अलमस्त थे, मैं और मेरापन को भूलकर उस अनन्त प्रभु के लिये भटक रहे थे। 'प्रभु से कोई मिला दे, बिन लाठी का निकला अंधा, प्रभु की राह बता दे।'

–स्वामी धर्मशक्ति सरस्वती, नवम्बर 1993

एक विहंगम दृष्टि प्रथम दर्शन की

विश्व योग सम्मेलन में आने का सुअवसर प्राप्त होने पर मन स्मृति के पंखों पर उड़ान भरने लगा। मेरी यह दूसरी बार की यात्रा थी। सन् 1970 फरवरी में पहली बार मुंगेर में आई थी, उत्साह और प्रसन्नता से मन भरा था। अभी भी उस ऐतिहासिक यात्रा की याद से मन विभोर हो उठता है। इस यात्रा में विशेष उत्साह एवं प्रसन्नता से सराबोर गंगादर्शन पहुँची। आश्रम की व्यवस्था, देश-

विदेश से आये हजारों-हजार लोगों की कतार, ऐतिहासिक यज्ञ, सम्मेलन स्थल की भव्य व्यवस्था, इन्द्रदेव की महान कृपा 'बरसात'। भोजन की विशेष व विराट् व्यवस्था, बस देखती ही रह जाती, सोचने-समझने की स्थिति थी ही नहीं, लगता देव लोक में हूँ। गुरुदेव की याद करती तो लगता सबमें गुरुदेव ही हैं। लगता स्टेशन में भी गुरुदेव ही शान्ति पाठ करा रहे हैं, प्रवचन दे रहे हैं, हिन्दी में अनुवाद कर रहे हैं। धन्य है प्रभु की माया, गुरुदेव की कृपा।

परमहंस जी के दर्शन की लालसा लिये मुंगेर से रवाना हुई, 7 नवम्बर की सुबह रिखिया पहुँचना था, रास्ते में बस बिगड़ी तो ठीक हुई ही नहीं, किसी तरह हम लोग 11 बजे रिखिया पहुँच सके। दर्शन का समय 8 से 10 बजे तक था। गेट पर जो स्वामी जी थे उन्होंने कहा, देर हो गई अब स्वामी जी नहीं मिलेंगे। उनसे बार-बार अनुरोध करती रही कि आप उन्हें सिर्फ बता दें कि रत्ना आई है। विश्वास था, उन्हें पता चल जावे तो जरूर कहेंगे–रतन आई है उसे बुलाओ। पर द्वारपाल भी पक्के थे, आज नहीं मिलेंगे और कल मिलेंगे या नहीं, पता नहीं। मन व्यथित हो रहा था। लगा कि चीख न पड़ूँ कि स्वामीजी मैं आई हूँ। उन्हें मन में प्रणाम कर वापस हो गई। कैसा दुर्भाग्य, गंगा जाकर भी प्यासी ही रही। माँ की ममता, पिता का स्नेह, गुरु की शिक्षा तो मिली ही थी, आज अनुशासन की शिक्षा भी मिल गई। यह भी गुरु कृपा का प्रसाद है।

मुंगेर में दीदी ने कहा था–तुमने तो लिखना छोड़ ही दिया, शुरू करो लिखना। स्वामी निरंजन ने कहा–पहले आप बहुत लिखती थीं, फिर शुरू कीजिये, मेरे पास बहुत काम है, बताऊँगा आपको। मेरे बच्चों ने कहा–आप स्वामी जी व निरंजन भैया की कितनी बातें बताती हैं, उन सबको लिखना शुरू कीजिये। सब ने उत्साह दिलाया, हम भी लिखना चाहते पर जब भी लिखना चाहते यादों के अथाह सागर में गोते लगाते पहुँच जाते, परमहंस जी के चरणों में। 24 वर्ष पहले मुंगेर गई थी, उस समय जो कुछ लिखी थी, चलचित्र-सा स्पष्ट हो जाता। इसके साथ ही 1956 के विचार प्रवाह के अलावा और कुछ सूझता ही नहीं। अन्त में इसी निष्कर्ष पर पहुँची कि पुराना अध्याय फिर से लिखा जाए, तभी गाड़ी आगे बढ़ेगी, और पाठकों से क्षमा माँगते हुए जून 1956 से इस अद्भुत संस्मरण को लिख रही हूँ।

यह है 1994, और बात है 1956 जून की...। दिल्ली से शिवांजली दीदी का पत्र आया, बरसात की रिमझिम में एक काषाय वसन धारी संन्यासी नंगे पैर आयेगा, आश्रय मिलेगा न?

उनके आगमन की एक मौन आतुर उत्कंठा घर में फैल गई थी। आने की उस तिथि की प्रतीक्षा जैसे सबको असह्य हो रही थी, लेकिन हम विरोध की प्रक्रिया में सुलग रहे थे। साधुओं के प्रति जो संस्कार मन में पल रहा था, उसे यह कैसे गंवारा होता कि हम एक बार पुन: उन ढकोसलों को करबद्ध नेत्र मूंद कर दोहरायें, जिनसे हमारे बुजुर्ग ग्रस्त थे। माथे पर त्रिपुण्ड भस्म चर्चित, बदन में गेरू धोती का टुकड़ा, हाथों में कमण्डल, चिमटा फटकारते ये साधु जिनको असामाजिक तत्त्व होने का गर्व भी था और स्वर्ग के प्रहरी होने का दंभ भी। बचपन में हमारी शैतानी का एकमात्र अचूक इलाज था–साधु बाबा ले जायगा झोली में। हमारी शैतानी हवा हो जाती, हरकतों में विराम लग जाता था।

ऐसी मन:स्थिति में किसी साधु-संन्यासी को आँखों में बिठाने का आयोजन हमें तनिक भी रास न आया। 5 जून 1956 की सुबह कोरे सफेद कागज में लाल पेन से लिखा हुआ नन्हा-सा पत्र मिला, जो अभी भी दीदी 'धर्मशक्ति' के पास धरोहर है। उसमें केवल 'सत्यानन्द राजनाँदगाँव आ गये हैं' ये पंच शब्द मंत्रबद्ध थे, और हमारी उदासीनता को सक्रिय बनाकर अपनी ओर खींच रहे थे।

एक ओर आस्थापूर्ण उमंग, दूसरी ओर स्वयं को धर्मभीरू घोषित करने की आशंका। एक ओर चिर संचित संस्कार, दूसरी ओर बालसुलभ मन में आकर्षण-विकर्षण की अनिश्चित स्थिति। इसी द्वन्द्व में मैं स्टेशन चल पड़ी। वहाँ पहुँचकर देखा कि उड़ते हुए गेरू पताका के सामने विजयश्री सा खड़ा एक सुदर्शन युवक मुस्कुरा रहा है। उनके कच्चे दूध सी सफेद आँखें हमारी ओर एकटक देख रही थीं, मानो हमारी आत्मा के अन्धकार को विदीर्ण कर डालेंगी।

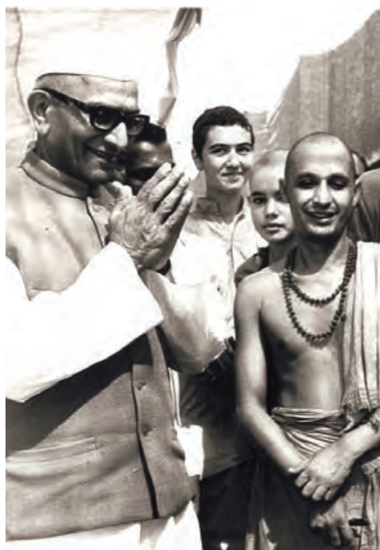
घुंघराले केशों के फ्रेम में जड़ा एक गौर मुख या तो किसी यूनानी कलाकृति की तरह भव्य, या किसी मठ में जलते हुए दीपक के धुंधले प्रकाश में पिघलते-तपते हुये किसी तिब्बती लामा की तरह अलौकिक रहस्यमय मुखाकृति। हँसी नवजात शिशु-सी निर्दोष। लगा कि एक ही प्लेटफार्म में खड़े होने के बावजूद वह व्यक्ति हमसे कहीं अधिक ऊँचे धरातल पर खड़ा है। हमारी पहुँच से दूर, हमसे असामान्य, लेकिन हमसे अभिन्न, हमारी ही आत्मा का एक अंग कहीं से भूला-भटका हमसे मिलने के लिये आतुर पुन: आ गया है। ऐसे असीम सौन्दर्य के स्वामी को किसी के हृदय कपाट की सांकल खोलने के लिये ऐश्वर्य की सीढ़ी की जरूरत नहीं है।

मैंने आगे बढ़कर उनके चरण छू ही लिये। उन्होंने हँसकर सिर पर हाथ फेर दिया, वे अपनी आत्मा की झोली में हमें बाँधे जा रहे थे। उनके साथ चलने


31st Birthday Celebrations
of
Sri Swami Satyananda
7th September, 1954.

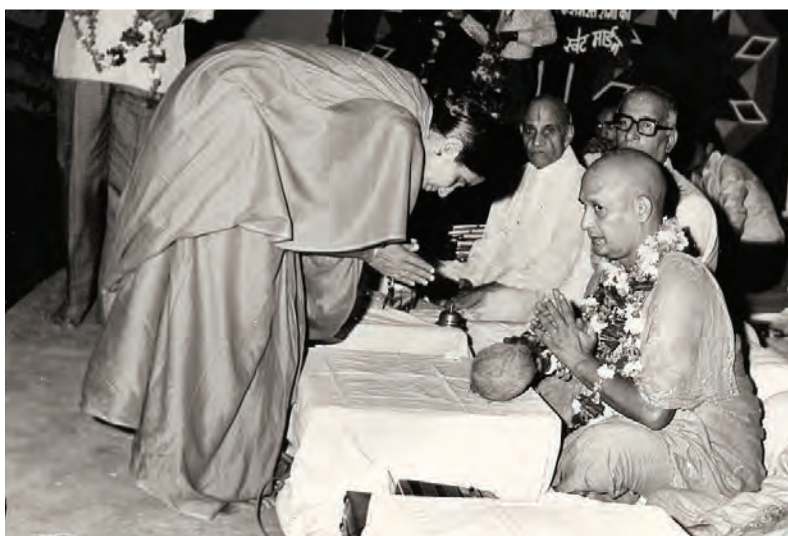


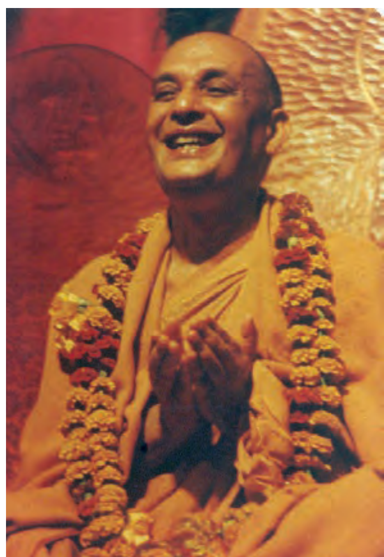

Coach































में मुझे खुशी हो रही थी। कार में भी उनके पास बैठी और दूसरों को जगह देने के बहाने उनकी गोद में बैठ गई। एक अनाम संन्यासी के आलोकमय गोद में बैठना अहोभाग्य था, लेकिन क्षणिक ही रहा। हमेशा उनकी गोद में बैठने का सारे विश्व में एकमात्र अधिकारी तो स्वामी निरंजन ही हैं, जो केवल एक माह की उम्र से उनकी गोद में खेलते आये हैं। उनके आशीर्वाद का प्रतीक 'स्वामी निरंजन' अभी से इस उम्र में जो भी काम कर रहे हैं, लिख रहे हैं, उनके जीवन की बहुमूल्य बातें हीरों-सा तराशकर चमकाकर विश्व के सामने रख रहे हैं, वह सब अद्‌भुत संन्यासी की ही कृपा कोर है।

उस समय स्वामीजी हमारे साथ बच्चे बन कर रहे, हमारे साथ ताली बजाकर दौड़ते-खेलते। हम उनको कहानियों की शृंखला न तोड़ने देते। सुबह और शाम तो हमारा ही राज रहता। एक-के-बाद-एक फरमाइश करते। दीदी की डाँट और उनके थकान भरे चेहरे में हमारे दुराग्रह को झेलने की असीम क्षमता थी। निस्संदेह हम उनके प्रति निर्दय थे, उनकी महत्त्वाकांक्षाओं से, उनके महत्त्व से बेखबर थे। आज लगता है वे केवल हमारी क्रीड़ाओं के साझीदार नहीं थे, वे तो विश्वमय हैं। उनमें युग-प्रवर्त्तक का विश्वास है और लोकनायक की हमदर्दी। इसीलिये वे एक क्रान्ति का युग पैदा कर रहे हैं, उनकी बाँहों में सारा विश्व सिमटकर आ रहा है। हमारी चाहों से बढ़कर विश्व की चाह है।

फरवरी 1970 में मैं मुंगेर आश्रम गई थी। स्वामी जी की दिनभर की व्यस्तता, एक विशालकाय जिम्मेदारी, देश-विदेश से आये हुवे मेधावी साधुओं की पाँत और सबसे आगे उनके पथ प्रर्दशक बने स्वामीजी, जिन्हें पीछे मुड़कर देखने की फुरसत नहीं है, जिनका अतीत हमारे लिये गौरवशाली इतिहास है, जिसमें हमारी आत्मा का संघर्ष छिपा है, लगता है कभी पूछूँ– आज तुम विराट हो, असीम हो, लेकिन क्या कभी उन भूले हुये क्षणों की याद आती है, जब हम नाटक खेला करते थे, गीत रचा करते थे, जब तुम माँ की तरह लोरियाँ सुनाया करते थे, पिता की तरह आदेश देते थे। हमारा मचलना तुम्हारा मनाना।

जो हमारी उपासना का हकदार है, वह उपालंभ का पात्र कैसे बन सकता है। लेकिन फिर भी हिमालय पर्वत की असीमता देखते ही बनती है, आँखें उन बर्फीली चोटियों में खो जाना चाहती हैं, फिर भी अपने गाँव की पहाड़ियों पर रंगीन पत्थर बटोरने की इच्छा होती ही है। समुद्र की ऊँची तरंगों में ज्वार के समय पास बैठ कर उसकी प्रचंड पछाड़ और टकराहट की रागिनी सुनने पर

भी वह क्या है जो मन को अशान्त रखता है। क्या उस वक्त अपने गाँव के किनारे बहने वाली छोटी-सी नदी की गुनगुनाहट याद नहीं आती?

मैं अपने आप को समझाती हूँ, वह असीम तो है, पर यहीं-कहीं हमारी भी आत्मा की सीमा में कैद है। विश्व के हर दु:खी प्राणी के हृदय से उनके नेत्रों का जल करुणा के रूप में शतधारा बह रहा है। उनके तप का अग्निकुंड घर-घर में जल रहा है। उनकी साधना की, उनकी आत्मा की पवित्रता की सीपी में स्वाति बूंद-सा उनका मानस पुत्र निरंजन मोती बन कर आया है, जो हमारी आत्मा का अभिन्न अंश है। आज वह गुरु के स्वप्नों के चरणों पर चलने को सन्नद्ध है।

अंतर्वृत्तियों के संघर्ष में, इस जीवन रण में, कृष्ण की तरह सत्यम् शंख फूँक रहे हैं और लोक-चेतना की रंगभूमि में नये आदर्श ढ़ाल रहे हैं, जगत के व्यथा-क्लांत हृदय में उनका गीत, चेतना एवं उत्साह का संचार कर रहा है।

और आज परमहंस जी प्राचीन भारत के गौरव के अनुरूप, त्रेता और द्वापर युग के ऋषियों की अद्‌भुत साधना करके देवर्षियों के चरण-चिह्नों पर चल रहे हैं। उनके आशीर्वाद के एक-एक शब्द ज्योति किरण से गंगादर्शन के कण-कण में व्याप्त हैं। स्मृतियों की मंजूषा तो भरी है, पर स्मृतियों की लहरों में हिलोरे लेने में आनन्द की इच्छा प्रबल हो रही है। पूज्य परमहंस जी के चरणों में प्रणाम करते हुए!

–श्रीमती रत्ना ब्यौहार, रायपुर, 1994

सतत् प्रेरणा के स्त्रोत

हम सबका स्नेह, प्रेम, सद्‌भावना एक-दूसरे को प्राप्त हो। आज हम अपने गुरु परमहंस सत्यानन्द जी की 50वीं संन्यास जयन्ती इस दीप-यज्ञ के रूप में मना रहे हैं। यह बहुत आकर्षक एवं सुन्दर रूप है। हमारे गुरु, परमहंस सत्यानन्द जी के सभी शिष्यों के लिए यह दिवस बहुत महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि गुरुजी के संन्यास की स्वर्ण जयन्ती है। स्वर्ण जयन्ती मनाने के पीछे यही एक कारण है कि पचास वर्षों तक उन्होंने जो जीवनचर्या, शिक्षा, आदर्श, आचरण और विचार हम सब के सामने रखे, उनसे हमें जीवन में आगे बढ़ने की प्रेरणा मिलती रही है।

जिन्दगी में इच्छाओं को उठते देखा है, इच्छाओं को बनते-बिगड़ते देखा है, जिन्दगी में ज्ञान प्राप्त करने के बहुत-से साधनों को भी देखा है, किन्तु

सतत् प्रेरणा के स्रोत केवल दो ही हो सकते हैं–पहला ईश्वर और दूसरा गुरु। जहाँ तक ईश्वर का प्रश्न उठता है, वह तो अपनी-अपनी भावना की बात है। जिस भावना से व्यक्ति ईश्वर को देखना चाहता है, जिस कामना से वह ईश्वर का पूजन करना चाहता है, जिस अनुभव की इच्छा से वह ईश्वर के समीप होना चाहता है, ईश्वर से एकाकार होना चाहता है, वह तो अच्छा मार्ग है ही, किन्तु उस विशिष्ट मार्ग पर चलने के लिए एक विशिष्ट व्यक्ति की आवश्यकता है।

हम लोगों की हालत तो एक पिंजड़े में बन्द तोते की तरह है, जो जिन्दगीभर राम-राम तो बोलता है, लेकिन अंत काल में जब बिल्ली दिखायी देती है तो राम-राम के बदले टाँय-टाँय बोलने लगता है। इसी से हमारे स्वभाव, गुण, चरित्र और मानसिकता का बोध होता है। हम किस शिक्षा का पालन और अनुसरण अपने जीवन में कितना कर पाए, इसको पहले समझा जाए। जाना तो हमने बहुत कुछ, लेकिन अनुसरण कितने का कर पाए। अगर जीवन को पल्लवित एवं पुष्पित होते देखना चाहते हो तो पहले इसको समझने की आवश्यकता है, और अगर जीवन को मुर्झाया हुआ देखना चाहते हो तो फिर जैसे रहते हो वैसे रहो।

अपने को बदलने की शिक्षा, अपने को योग्य बनाने की शिक्षा हमें केवल चिन्तन से तो प्राप्त नहीं हो सकती। यह शिक्षा हमें प्राप्त हो सकती है गुरु के प्रति समर्पित होकर। यह हमने अपने गुरु परमहंस जी में देखा है। उनके गुरु ने उन्हें जो मिशन दिया, उसके प्रति उनके मन में अटूट आस्था थी। गुरु ने जिस संन्यास जीवनचर्या से परिचय कराया, उससे उनका एक गहरा सम्बन्ध रहा। संन्यास हमारे गुरुजी के जीवन में निश्चित रूप से फलीभूत हुआ है।

इस रूप में वे हमारे प्रेरक हैं। प्रेरणा के रूप में हम उनसे शिक्षा पाते हैं। उस प्रेरक गुरु की स्वर्ण-जयन्ती इस सुन्दर दीप-यज्ञ से मनायी गयी, इसमें भी एक बहुत सुन्दर-भाव की जागृति हुई। यही संकल्प, सद्विचार आज हम लोगों को ग्रहण करना चाहिए कि हम अपने गुरु द्वारा निर्देशित पथ पर हमेशा आगे बढ़ते रहें और दूसरों को भी साथ चलने की प्रेरणा देते रहें। यह निश्चित रूप से मानव-कल्याण का एक सुन्दर मार्ग है। ऐसा सत्संकल्प लेकर हमें इस मार्ग पर चलना चाहिए।

–स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती, सितम्बर 1997

परमहंस सत्यानन्द के त्याग से मुझे प्रेरणा मिली

परमहंस सत्यानन्द त्याग स्वर्ण जयन्ती एवं विश्व योग सम्मेलन मुंगेर में दिनांक 1 से 4 नवम्बर 1993 को आयोजित था। इस सम्मेलन ने मुझे भी आकृष्ट किया। मैं योग मित्रमण्डल दुर्ग के एक योगी मित्र के साथ परमहंस सत्यानन्द के दर्शन की चाह लिये मुंगेर पहुँच गया। पूरे 10 वर्षों के बाद मुझे यह अवसर मिला था। इसके पूर्व 1983 में स्वामी जी के दर्शन हुए थे जब रायपुर में गुरु-पूर्णिमा मनायी जा रही थी।

1 नवम्बर 1993 को परमहंस सत्यानन्द त्याग स्वर्ण जयन्ती एवं विश्व योग सम्मेलन के उद्‌घाटन सत्र का शुभारम्भ हुआ। मंच पर स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती, बिहार के राज्यपाल महामहिम डॉ. ए.आर. किदवई, ऋषिकेश के स्वामी चिदानन्द जी, राज्यमन्त्री श्रीमती कृष्णा शाही तथा अन्य योगीजन विराजमान थे। परमहंस सत्यानन्द जी को मंच पर उपस्थित न देख मैं चिन्तित एवं निराश हो गया। मेरा मन कार्यक्रम में बिल्कुल नहीं लग रहा था। सोच रहा था कि परमहंस सत्यानन्द जी कार्यक्रम में क्यों नहीं आये? क्या हमें अब बड़े स्वामी जी के दर्शन प्राप्त न होंगे? आदि-आदि सोच ही रहा था कि मुझे ऐसा लगा कि स्वामी सत्यानन्द मंच पर खड़े मुस्कुरा रहे हैं। इस एहसास ने मुझे सोचने को विवश कर दिया कि वे स्वामी जी थे या उनकी फोटो।

किसी तरह प्रथम सत्र का समापन हुआ। मैं शिवानन्द मठ के कार्यालय के लिये बढ़ा यह पता लगाने कि कौन-कौन, कहाँ-कहाँ से इस सम्मेलन में भाग लेने आए हैं कि उसी क्षण मुझे एक पर्चा प्राप्त हुआ। यह पर्चा 'परमहंस सत्यानन्द का भक्तों के नाम एक आमन्त्रण पत्र' था। मेरी खुशी का ठिकाना न रहा। यह पर्चा मैंने कई बार पढ़ा। मेरे मुँह से ये शब्द निकले कि रिखिया में परमहंस जी के दर्शन सम्मेलन के बाद होंगे। गुरु जी की याद करते, नाम स्मरण करते चार दिन कैसे बीत गये मुझे पता न चला।

सम्मेलन समाप्त होने के बाद मैंने अपने मित्र के साथ रिखिया जाने का कार्यक्रम बनाया। मुंगेर से देवघर पहुँचते-पहुँचते रात्रि होने लगी थी। रात्रि विश्राम हेतु हम लोग एक ऑटो रिक्शा में बैठकर होटल की खोज में निकल पड़े। कुछ प्रयत्न के बाद हम एक होटल पहुँच गये। मैं होटल के बुकिंग कार्यालय पहुँचकर कमरे की बुकिंग हेतु आवश्यक कार्यवाही में लग गया। इस बीच हमारा सामान ऑटो रिक्शा वाले ने कमरे में पहुँचा दिया। मेरे मित्र कमरे में सामान रखवाकर बुकिंग कार्यालय आकर मेरे साथ हो लिये। हमें

रात्रि भोजन करना था सो हम लोग उसी ऑटो रिक्शा में बैठकर खाना खाने रेस्टोरेंट चले गये।

खाना खाकर वापस होटल पहुँचकर जैसे ही रात्रि विश्राम हेतु अपने कपड़े निकालने के लिये सूटकेस की तरफ देखा तो सूटकेस न पाकर मैं दंग रह गया। शायद मेरा सूटकेस गुम गया था, या तो ऑटो रिक्शा से उतारा नहीं गया या होटल...? होटल के मालिक से पूछताछ करने के बाद जब सूटकेस का पता न चला तो रात्रि में ही हम लोग ऑटो रिक्शा वाले को ढूँढने निकले। काफी प्रयत्न के बाद ऑटो रिक्शा वाले से मुलाकात की तो पता चला कि ऑटो रिक्शा में सामान नहीं था। ईश्वर की कृपा से वापसी का रिजर्वेशन टिकिट मेरे मित्र के पास था। उनके पास पैसे भी पर्याप्त थे। उन्होंने मेरा हौसला, हिम्मत बढ़ायी, लेकिन मन को लाख समझाने के बाद भी मेरा ध्यान गुम हुए सूटकेस की तरफ चला जाता था। किसी तरह रात्रि विश्राम किया। मेरा शरीर तो थकावट से सो रहा था, लेकिन मन के विचारों को मैंने योगनिद्रा के माध्यम से शान्त किया। रात्रि संकल्प करके सोया कि प्रात: पाँच बजे उठना है और रिखिया के लिये रवाना होना है।

दूसरे दिन प्रात: पाँच बजे उठकर हम लोग रिखिया जाने की तैयारी करने लगे। मैं अभी भी उदास था, चुपचाप न जाने क्या-क्या सोच रहा था। रिखिया पहुँचकर गुरु जी से मैं प्रश्न करूँगा कि आप अन्तर्यामी हैं, आप ही बताइये कि मेरे साथ ऐसा क्यों हुआ, मैं तो आपके दर्शन-लाभ के लिए निकला था, परन्तु मुझे यह नुकसान क्यों हुआ?

हम लोग प्रात:कालीन बेला में रिखिया पहुँच गये। स्वामी सत्यसंगानन्द जी ने हमें परमहंस सत्यानन्द जी के पास ले जाकर परिचय दिया। परमहंस जी ने हमें बैठने को कहा, कुछ देर में हमें आशीर्वचन सुनने को मिले, मेरा मन, मेरा हृदय गुरु जी के दर्शन मात्र से इतना हल्का हो गया कि मैं अपनी प्रसन्नता को इस लेखनी के माध्यम से प्रकट नहीं कर सकता। सारे गिलह-शिकवे भूलकर मैं प्रसन्नचित्त था, शायद मेरी आत्मा मुझसे कह रही थी कि देखो, परमहंस सत्यानन्द जी लाखों-करोड़ों की सम्पत्ति, अपने माँ-बाप, घर-गृहस्थी, सर्वस्व त्याग कर नील गगन के तले झूले में बैठे कितने प्रसन्नचित्त दिखाई दे रहे हैं। उनके चेहरे में नाम मात्र भी दु:ख नहीं है, शिकन नहीं है और तुम हो कि एक छोटे-से सूटकेस के गुम हो जाने पर इतने दु:खी हो, इतने परेशान हो गये।

मेरी अन्तरात्मा की आवाज ने मुझे काफी हिम्मत दिलाई। परमहंस सत्यानन्द जी के तेजस्वी, प्रसन्नचित्त, सरल, प्रभावशाली चेहरे के दर्शन मात्र से ही मैं अपने सारे दु:ख को भूल गया और उनके त्याग की गाथा मन-ही-मन गा रहा था कि मुझे उनके 'पावन निमन्त्रण पत्र' के वे शब्द याद आ गये– 'मेरे दर्शन के लिये खाली हाथ आना। दान में नगद नारायण न लाना। केवल वही भिक्षा दान अर्पित करना जो मेरे पड़ोसियों को प्रसाद के रूप में दिया जा सके।'

वास्तव में मैं बिल्कुल खाली हाथ था, लेकिन मेरा हृदय गुरु जी की त्याग की गाथा से परिपूर्ण था।

–दिनेश खरे, दुर्ग, मई 1998

अध्यात्म अपने सही परिपेक्ष्य में

दिनांक 11 मई 98 बुद्ध पूर्णिमा की सुखद, अविस्मरणीय और आह्लादकारी सुबह! वर्षों की संजोई कामना को साकार करते वे क्षण! प्रत्येक वर्ष नवम्बर माह में रिखिया के भव्य अनुष्ठानों में गुरुदेव के दर्शनों ने अनायास ही यह इच्छा बलवती कर दी थी कि काश! कभी करीब से उनके दर्शन होते और उनसे वार्तालाप का अवसर मिलता। प्रभु ने मेरी यह इच्छा अनायास ही पूरी कर दी। गुरु कृपा ऐसी हुई कि पता चला गुरुदेव रिखिया में 5-7 दिनों के लिये दर्शन दे रहे हैं और हम पति-पत्नी चल पड़े बिना किसी रिज़र्वेशन और यात्रा की असुविधा का ख्याल किये और बुद्ध-पूर्णिमा के दिन भोले बााबा की पूजा देवघर मन्दिर में कर हम पहुँच गये रिखियाधाम। वहाँ देखा भगवान शुकदेव की प्रतिमूर्ति पूज्य गुरुदेव सामने कुछ ही दूरी पर झूले पर विराज रहे थे और उनके पार्श्व में जमीन पर बैठे स्वामी निरंजन जी की मोहक मुस्कान वातावरण में अपूर्व सौष्ठव बिखेर रही थी। मुझे ऐसा लगा जैसे मेरे परम आराध्य स्वामी रामकृष्ण परमहंस और विवेकानन्द की युगल जोड़ी मेरे समक्ष साकार उपस्थित है। दो दिनों तक हमने पूज्य गुरुदेव के सत्संग का अमृत पान किया और भारतीय अध्यात्म की आत्मा मेरे सामने स्पष्ट हो उठी।

भारतीय संस्कृति, अध्यात्म और भक्ति के अलावा विभिन्न सामाजिक, राजनैतिक, राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय विषयों पर गुरुदेव के सारगर्भित विचार, आँखों में अथाह प्रेम और करुणा तथा वाणी में अपूर्व भावाभिव्यक्ति की क्षमता–पूज्य गुरुदेव का सम्पूर्ण व्यक्तित्व भारतीय, ज्ञान, कर्म और भक्ति

का अपूर्व संगम जान पड़ा। अध्यात्म का अर्थ मात्र भक्ति का निर्वहन नहीं, और न ही उपदेशों का धारा प्रवाह स्रोत है, वरन् अपने व्यक्तित्व के सम्पूर्ण आयामों का समन्वयात्मक विकास ही आध्यात्मिक विकास का मौलिक तत्त्व है। मैंने गुरुदेव के व्यक्तित्व में इन्हीं गुणों का परिपूर्ण सामंजस्य पाया। विभिन्न विषयों पर उनकी चिन्तनधारा अत्यन्त मौलिक और अत्याधुनिकता से लैस है। पूज्य गुरुदेव ने अपने जीवनोनुभवों पर आधारित सत्य को अभिव्यक्त करते हुए स्पष्ट कहा कि यदि कोई मुझसे आज से 25 वर्ष पहले पूछता कि जीवन कर्म के अधीन है या प्रारब्ध के, तो मैं कहता कि निश्चित रूप से कर्म के अधीन, लेकिन आज मैं अपने अनुभवों के आधार पर कहता हूँ कि कर्म के अधीन कुछ भी नहीं, सब कुछ मनुष्य अपने प्रारब्ध के अनुकूल ही प्राप्त करता है। इस विनम्र प्रश्न के प्रत्युत्तर में कि श्रीराम जी के कौन-से कर्म थे, जो उन्हें इतना कष्ट झेलना पड़ा, उन्होंने हँसते हुए सरल भाव से कहा, राम का भाग्य है भक्त-वत्सल होना। प्रभु ने सोचा कि मेरा रूप तो अगोचर है, अगम्य है, मेरे भक्त मुझे कहाँ ढूँढेंगे। अत: एक प्लान रचा और सुन्दर स्क्रिप्ट तैयार कर ऐसी फिल्म बना डाली, जिसमें उनके भक्तों का मन रम सके। प्रभु लीला यही है। जो अगोचर था वह गोचर हो उठा, दिखने लगा। रामचरितमानस को उन्होंने जीवन का सर्वाधिक पठनीय ग्रन्थ बताते हुए कहा कि यह जितना ही सहज सरल ग्रन्थ है, उतना ही गहन गम्भीर भी। इसके कुछ अंश का पारायण नित्य करना चाहिये। धार्मिक शुद्धता अपनी जगह बिल्कुल ठीक है, लेकिन आरम्भ में ज्यादा सफाई या शुद्धता के टंटे में पड़ोगे तो पठन-पाठन हो नहीं पायेगा। पहले प्रारम्भ तो करो, फिर प्याले में पियोगे या ग्लास में, यह तो बाद की बात है। आवश्यकता है मन की ग्रन्थियाँ खोलकर करुणा पूरित हृदय से प्रभु के साथ एक सम्बन्ध स्थापित करने की।

भारतीय सामाजिक व्यवस्था, भारतीय किसानों की स्थिति और खेती, ग्रामीण परिवेश, देश की परम्पराएँ और विकास, विदेशी संस्कृतियों का स्वरूप, युवावर्ग में संस्कृति का विघटन और इन सबके साथ प्रभु के साथ हमारा सम्बन्ध। छोटी-सी अवधि में इन विभिन्न पहलुओं पर उन्होंने अपने विचार प्रस्तुत किये। हमारे देश की सबसे बड़ी त्रासदी है कृषि की उपेक्षा और किसानों की दयनीय स्थिति। हमें 70% रोजगार प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से गाँवों से ही प्राप्त होता है, जबकि आज गाँवों से शहरों की ओर पलायन हो रहा है। इस देश की खुशहाली तभी लौटेगी जब खेती को एक उद्योग के रूप में

देखा जायेगा और आधुनिक तरीके से खेती की जायेगी। युवकों को आह्वान और एक दिशा देते हुए उन्होंने कहा कि अच्छे कपड़े पहनो, अच्छी तरह रहो, फ्रिज, टी. वी. सब कुछ रखो, लेकिन जमीन से इश्क करके, मेहनत और लगन के साथ खेती करें तो खेती में पैसा भी कम नहीं और खेती के साथ यदि पशुपालन हो सके तो सोने में सुहागा हो जायेगा।

आज विश्व के अधिकांश देश बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में जी रहे हैं, लेकिन भारत आज भी कहीं अठारहवीं शताब्दी में साँसें ले रहा है तो कहीं उन्नीसवीं शताब्दी में तो कहीं बीसवीं में। ऐसे देश के लिये किस प्रकार की सामाजिक व्यवस्था लागू होनी चाहिये, यह एक चिन्तन का विषय है। बाल-विवाह को आज भी भारतीय गाँवों में प्रश्रय मिला हुआ है, इसके कई व्यावहारिक पहलू हैं। हमारे गाँवों की चिन्तन पद्धति में छोटी लड़कियाँ उन छोटे पौधों की भाँति होती हैं, जिन्हें आसानी से किसी भी बगिया में लगाया जा सकता है, लेकिन 25 वर्ष की बेटी की अपनी कोई खोपड़ी हो जाती है न। और दूसरी प्रमुख बात यह भी है कि लड़कियों को किसी प्रकार का धब्बा न लग जाए। अत: उनका जल्दी विवाह कर देना ही एकमात्र समाधान दिखायी पड़ता है।

भारतीय संस्कृति की सदानीरा प्रवाहमान धारा के कारणों और सर्वोत्कृष्टता का विश्लेषण करते हुए गुरुदेव ने कहा कि हमारी जाति हिन्दू है और हमारा धर्म वैदिक। हम वैष्णव, शैव या शाक्त हैं। हिन्दू जाति में पाँच सभ्यताओं का सम्मिलन हुआ है– सिन्धु, गंगा, ब्रह्मपुत्र, नर्मदा और कावेरी की घाटियों का। इन पाँच सभ्यताओं का सम्मिलन हम हैं, जिनमें सिन्धु घाटी के लोगों का योगदान अधिक है। इन्होंने ही वेदों का प्रचार-प्रसार किया। हमारे देश की संस्कृति उदार और व्यापक दृष्टिकोणों को हमारे सामने रखती है। हमारे यहाँ सदैव जन्म से कर्म को महान् माना गया है। हमारी ऋषि परम्परा, अभिज्ञान शांकुतल आदि इसके स्पष्ट उदाहरण हैं। भरत दुष्यन्त का औरस पुत्र नहीं था, कानून की भाषा में। शकुंतला विश्वामित्र की जायज पुत्री थी क्या! इन सारी विसंगतियों के बावजूद भी इन पात्रों की महत्ता को स्वीकार किया गया, क्योंकि हमारे यहाँ जन्म से बड़ा कर्म को माना गया है और कुल-गोत्र के स्थान पर विद्वत्ता और शौर्य को।

हिन्दी और अँग्रेजी भाषा पर अपने असाधारण अधिकार के अलावा फारसी, उर्दू, अरबी आदि कई भाषाओं के ज्ञाता, परम विद्वान्, चिन्तक और साधक पूज्य गुरुदेव की दृष्टि में राजनैतिक शक्तियों को प्राप्त करने के लिये

जब गलत रास्ता अख्तियार होता है, तो समाज का विघटन अवश्यम्भावी है। शस्त्र बल से कभी विजय नहीं मिल सकती। समस्याओं का निदान बन्दूक नहीं हो सकता। परिवार, समाज और राष्ट्र की समस्याओं को बातचीत, समझदारी और लेन-देन से ही निपटाने का प्रयास किया जाना चाहिये। भारत ऋषि-मुनियों का देश है, जहाँ ईश्वर का निरन्तर चिन्तन हमारे मुनियों ने किया है। इस देश की एक समृद्ध धार्मिक परम्परा रही है और आज भी किसी को आध्यात्मिकता का पाठ पढ़ना हो और शान्ति की तलाश करनी हो तो विश्व के प्रत्येक कोने की दृष्टि भारत की ओर ही मुड़ती है।

पूज्य गुरुदेव ने इस बात को स्वीकार किया कि आज की युवा पीढ़ी में मूल्यों का अवमूल्यन हो रहा है और उनमें निशाचरी प्रवृत्ति व्याप्त होती जा रही है। आज उनके सोचने-विचारने का तरीका बदल गया है। आधुनिकता के नाम पर जो विकृतियाँ आती जा रही हैं, उनकी दिशा बदलना विचारकों का कर्त्तव्य है। सभी कर्मों का अन्तिम ध्येय परमात्मा है, पैसा नहीं और जीवन का उद्देश्य भी परमात्मा ही हो सकता है, पैसा कदापि नहीं। रास्ता तो केवल एक ही है, आत्मचिन्तन और आत्मशुद्धि। हम सभी एक ही सूत्रधार द्वारा नियन्त्रित हो रहे हैं। हमारी पाचन-प्रणाली, हमारे रगों में दौड़ते रक्त, हमारी धड़कनें, किसी पर भी हमारा कोई नियन्त्रण है क्या! वैराग्य का अर्थ होता है राग का न होना। मनुष्य एक मानसिक जीव है और हमें मन की गति और दिशा को बदलना होगा। मन ही बंधन और मोक्ष का कारण है। महापुरुषों ने अपने मन को नौकर बनाया और तुम मन के गुलाम हो। मन एक बहुत बड़ा जादूगर है, जिसकी जादूगरी का अभी तुम्हें अंदाज नहीं है। हाँ, रिखिया आने के बाद मुझे स्पष्टतौर पर पता चला कि शरीर के सभी अंग, सभी घटनाएँ और विचार, कुछ भी प्रभु से छिपा नहीं है। लेकिन अनुभव तभी होता है जब मनुष्य एकान्त में बैठकर अपने दिमाग का बैण्ड-बाजा बन्दकर हृदय से हरि आवाज को सुने।

अन्त में एक साधारण भक्त की लालसा हृदय में संजोकर मैंने कहा, बाबा! मेरे सर पर हाथ रखने की कृपा करें तो अत्यन्त स्नेह-पूरित शब्दों में मानो साधना का निर्देश देते हुए उन्होंने कहा, मन से, यहाँ तो सारा व्यापार मन-ही-मन में चला करता है। और अपनी अभय मुद्रा में आशीर्वाद देते हुए वे अपनी कुटिया की ओर चले गये, हम भक्तों के हृदय में पुनः दर्शन की असीम चाह जगाते हुए...

—मंजु मेहरिया, हिन्दी विभाग, बोकारो महिला कॉलेज, जुलाई 1998

रिखियाधाम में श्री गुरु चरणों में मेरे अनुभव

इस बार 1998 के 'सीता कल्याणम्' में एक भारतीय होने के नाते ऐतिहासिक दृष्टिकोण से मैंने जो पाया वह किसी भी देशप्रेमी को आनन्द, गर्व और विस्मय से भर देगा। देखने में आज तो यही आ रहा है न कि देश का नैतिक मूल्यमान गिर रहा है, गिरता ही जा रहा है। अन्तहीन समस्याओं से देश घिरा हुआ है। कर्णधार नजर नहीं आता। पर यह क्या, हमारे गुरुजी के रिखियाधाम में तो क्या भारत निर्मित हो रहा है—धीर सुन्दर पदक्षेपों में, सूर्य की प्रथम सुनहरी किरणों के साथ खिल रहे हैं रंग-बिरंगे कमलों की तरह, भैरवी की मीठी तान की तरह जो दिल को धीरे-धीरे गहराइयों तक स्पर्श करती जाती है।

कहाँ गयी हिन्दू-मुसलमान-ईसाई-सिख की लड़ाइयाँ! यहाँ तो सब मिलकर एक हैं। वे तो इतने एक हो गये हैं कि कोई कहे कि तुम अलग हो तो हमें कहने वाले के अबोधपन का अहसास होगा, और कुछ नहीं।

यह परमहंस सत्यानन्द के अपार प्रेम की ही महिमा है कि किसी भी धर्म या पन्थ के धर्माचार्य या गुरु परमहंस जी के आमन्त्रण को सहर्ष स्वीकार कर उनके शिष्य एवं भक्त मण्डली के बीच पधारें। और हमने सभी धर्मों की पद्धतियों से ईश्वर की उपासना की और परम आश्चर्य से पाया कि हम अपने इष्ट से और भी निकट होते जा रहे हैं। उन धर्मों का सार बताया गया तो हमें समझ में आया कि भिन्नता मात्र भाषा की है, पर भाव मूलत: ही नहीं, सम्पूर्णत: एक है। इसलिए अब तो जब हम मस्जिद से आजान सुनते हैं, तो मन को उसी के साथ जोड़ देते हैं और अपनी भी उपासना हो जाती है। हमें 'आयतों' का अर्थ बताया गया, हजरत मुहम्मद साहब की जीवनी तथा उनके उपदेश जो उन्होंने अपने जीवन में उतारे थे, सुने हमने। नमाज पढ़ना सिखाया गया। और फिर हमने नमाज अदा की जीवन में पहली बार। उस समय अपने अन्दर एक अपूर्व आध्यात्मिक शक्ति का अनुभव हुआ, धन्य हो गये हम। यह बड़ी कृपा रही हम भक्तों पर, वरना हम तो अपने मुसलमान भाइयों की इस खुशकिस्मती से वाकिफ ही नहीं हो पाते कभी।

इसी प्रकार जब ईसाई मत की प्रार्थना के उपरान्त महिला पादरी ने हमें पवित्र रोटी दी और कहा, 'तुम्हारे अन्दर ईसू जाग रहे हैं' तो हमने ईसामसीह को अपने अन्दर जागते हुए देखा, अपने ही इष्ट के रूप में। क्या अनकहा पवित्र क्षण था वह! मैं आनन्द से रोमांचित हो उठी थी! गुरुजी की अनकही

शिक्षा स्पष्ट थी—जिसे तुम पराया समझते हो, अर्थहीन समझते हो, उसकी भावना में जीकर तो देखो।

और जब जैन साध्वी के प्रवचन सुने तो हमारे हृदय के द्वार मानो उन्मुक्त होते चले गये—सब के लिए। जीवन में देना, देना और देना ही हमारा धर्म है। देते चले जाओ और आनन्द को पाते जाओ। क्या बादल बरसते समय कोई भेद करते हैं, यहाँ वर्षा करनी है, वहाँ नहीं? क्या पुष्प अपनी सुगन्ध बिखेरते हुए थाम भी लेते हैं कि यहाँ सुगन्ध बिखेरनी है, वहाँ नहीं। जिसने दिया, वही जीत गया, अमर हो गया। प्यार दो, प्यार दो और प्यार दो—यही तो ईश्वर की उपासना है, पूजा है।

इतने अनवद्य अवसर परमहंस जी हमें दे रहे हैं कि देश की सेवा के लिए हम उनके योग्य कर्मी के रूप में तैयार हो सकें। अपनी संस्कृति, अपनी मान्यताएँ, अपनी धर्म पुस्तकों में भरा हुआ ज्ञान—क्या इनसे हम परिचित हैं? तरह-तरह की झंझावातों में हम उन्हें भूल-से गये थे। इतनी सुन्दर 'रामायण' हम पढ़ते हैं क्या। कभी पढ़ी भी थी तो सब भूल गये थे कि इस कथा के चरित्रों की श्रेष्ठता से हम कभी अनुप्राणित भी हुआ करते थे। परन्तु परमहंस जी ने हमें उन चरित्रों के साथ आत्मिक चेतना में जी लेने का अवसर दिया। अपनी संस्कृति को हमारे अन्दर जगाया। जागतिक जीवन में हर आदर्श भूमिका को हम रामायण के चरित्रों में पा सकते हैं। इतना ही नहीं, रामचरितमानस को विश्व की श्रेष्ठ आध्यात्मिक पुस्तक भी मान सकते हैं। हम भारतीय लोग ही नहीं, विदेशी भी बाग-बाग हो गये।

'रामचरितमानस' की एक-एक प्रति जो देवनागरी लिपि के साथ रोमन लिपि में भी छपी थी और साथ में अंग्रेजी अनुवाद भी था, सभी विदेशी भक्तों को प्रसाद के रूप में दी गयी, जिसे उन्होंने बड़ी श्रद्धा और उत्सुकता से ग्रहण किया। अब शायद ऐसा दिन भी आएगा कि वे ही रामायण के दोहे गायेंगे और हम सुनेंगे। भारत की गौरवगाथा रिखियाधाम में लिखी जा रही है। सभी पन्थों के गुरु स्वामी सत्यानन्द जी का दिव्य दर्शन पाकर अभिभूत हो जाते हैं और नतमस्तक होकर लौटते हुए सभी अपने बन जाते हैं। धर्म में पृथकता की भावना उनकी आत्मिक शक्ति के जादुई स्पर्श से समाप्त हो गयी—सभी के दिल से। नया इतिहास यहीं से शुरू हो रहा है।

गाँवों में बसने वाले, सदा अभाव का जीवन जीने वाले निरक्षर लोगों को गुरुजी ने जीना सिखा दिया है। सिर्फ दान ही नहीं दिया, रोजी-रोटी की

व्यवस्था ही नहीं की, चिकित्सा की व्यवस्था ही नहीं, केवल उन्नत शैली से खेती और पशुपालन के साथ-साथ जीवन में आगे बढ़ना ही नहीं सिखाया, उन्हें अर्थ का सही उपयोग बताकर, नशा करने की आदत को भगवद् चिन्तन में बदलकर। गाँव की महिलाएँ प्रतिदिन सुबह निश्चित समय पर पहुँच कर योग्य संन्यासिनी के मार्गदर्शन में सुन्दर कीर्तन गाती हैं और इसके लिए उन्हें प्रतिदिन आर्थिक रूप से पुरस्कृत किया जाता है। 'सीता-कल्याणम्' के आयोजन के दौरान भी उनका कीर्तन एक दिन के लिए भी बन्द नहीं रहा। ये माताएँ क्या पाने आती होंगी और क्या पाकर जाती हैं? इतनी भी कृपा किसी ने कभी की है क्या? सेवा हो तो ऐसी—एक सन्त की सेवा है न। गाँव की दुःखियारी माताओं में जो आन्तरिक परिवर्तन हो रहा है, जो जागृति, जो अन्तश्चेतना, जो आत्मविश्वास, जो उल्लास जाग रहा है, उसका प्रकाश उनके चेहरों पर अंकित होने लगा है अब। उस बहु आकांक्षित जागृति की नुपूरध्वनि की गूँज को भावी इतिहास सुन रहा है। रिखिया के गाँवों में युगों से दुःखियारी नारियों में देवी दुर्गा की प्राण-प्रतिष्ठा हो रही है।

हरलाजोड़ी के मंदिर में जाड़े की ब्रह्म बेला में श्रद्धालु पहुँचे हुए रहते थे। गाँव की बच्चियाँ आती थीं भजन गाने। क्या मृदुल शब्द थे उन गानों के और कितना सधा हुआ मधुर स्वर था उन बालिकाओं का। इतने कठिन कटु सत्य थे उन गानों में कि दिल काँप जाता था। वैराग्य हृदय के द्वार पर दस्तक देने लगता था। फिर उसके बाद ही श्याम-सुन्दर के मोहक रूप को जगाने वाले कीर्तन में हम विभोर हो जाते। तब, जब हम एकाग्र हो जाते, परमहंसजी गाँव की माताओं को सिखाते किसी दिन गायत्री मन्त्र और किसी दिन महामृत्युंजय मन्त्र। परमहंसजी माताओं को पुनः-पुनः बताते कि कैसे उन्हें अपने बच्चों की सुबह गायत्री मन्त्र से शुरू करनी है और कैसे महामृत्युंजय मन्त्र से दिन की समाप्ति। उन्हें बताया जाता कि इन मन्त्रों के उच्चारण से उनके बच्चे व्याधियों से मुक्त रहेंगे, उनकी बुद्धि और स्मरणशक्ति भी तीक्ष्ण होगी। एक माँ तो यही सब चाहती है अपनी सन्तान के लिए। ग्राम्य, सरलहृदय माताओं ने इस उपदेश को हृदय में धारण कर लिया होगा। और अब इन माताओं के घरों में तेजस्वी पुत्र-पुत्रियाँ तैयार हो रही होंगी। भावीकाल के भारत की बागडोर इन्हें ही सम्हालनी है।

वर्षों पूर्व शोषण मुक्त भारत तैयार करने के लिए आत्मिक शक्ति से भरे निर्भीक युवकों का आह्वान् स्वामी विवेकानन्द ने किया था। पर परमहंसजी

कहते हैं, 'आने वाली शताब्दियों की नायिका नारी शक्ति ही होगी।' सीता-कल्याणम् की सीता शक्ति स्वरूपिणी नारी ही है। परमहंस जी ने सदा नारी को अधिक मूल्य दिया, क्योंकि वह माता का रूप है। रिखिया के गाँवों की लड़कियों को स्वावलम्बी बनाना, उनको आत्म-विश्वासी बनाना, उनको नेतृत्व के लिए शनैः-शनैः तैयार करना ही उनकी चेष्टा है। पढ़नेवाली लड़कियों को साइकिल का प्रसाद दिया जा रहा है, जिससे उन्हें दूर के स्कूल-कॉलेज में आने-जाने के लिए किसी पर निर्भर न रहना पड़े। आस-पास की बहु-बेटियों को सुहाग-पिटारे दान में इसलिए दिये जाते हैं कि ससुराल में उनका सिर ऊँचा रहे। भक्त मण्डली भी बालिका मात्र का आदर करना सीख रही है। नारी होने के नाते मैं भी अपने आत्म-विश्वास को जागते हुए देख रही हूँ। युग के नवनिर्माण में यह सबसे प्रबल पक्ष है, यह मेरा अनुभव था।

तो भारतवर्ष का नया इतिहास निश्चित रूप से ही रिखियाधाम में लिखा जा रहा है। इस बार स्वामी निरंजनानन्द जी के इस नये गान में इसी बात का उद्घोष कर दिया गया है–'वेदभूमि भारत से मैया वैदिक विश्व बना दो, जहाँ हो मैया वहीं से जल्दी वैदिक विश्व बना दो...।' इस गान में भारत के छोटे-छोटे कस्बों के भी प्रसिद्ध मन्दिरों में जाग्रत दैवी शक्ति का आह्वान् है। एक सर्वत्यागी संन्यासी, जो सिद्ध है, जो आत्मिक एवं आध्यात्मिक शक्ति की पराकाष्ठा है, वे जब सेवा के लिए उतर पड़ते हैं, तो वे राम या कृष्ण अवतार के समान ही हैं न? उनके आशीष से भारत फिर एक बार जाग रहा है, विश्व में अपना श्रेष्ठ स्थान बना लेने को तत्पर है।

–संन्यासी आनन्दप्रिया, मार्च 1998

परहित बस जिन्ह के माहीं

जो दूसरों के लिए जीता है, दूसरों के सुख के लिए अपना सर्वस्व त्यागता है, वही संन्यासी है, न गेरू पहनने से, न सिर मुड़ाने से संन्यासी होता है–अपने अनुयायियों को यह शिक्षा देने वाले परमहंसजी के जीवन में यह शिक्षा इतनी जीवन्त हो उठी है कि उनका यह रूप देखकर अंतस् में प्रबल भावना जाग उठी–बाबा, हम भी एक जन्म तुम्हारे लिए लेना चाहते हैं, जो जन्म से मृत्युपर्यन्त तुम्हारी सेवा में समर्पित हो।

परमहंसजी की तप:स्थली, रिखियाधाम में गत वर्ष आयोजित 'सीता-कल्याणम्' का एक भावपूर्ण दृश्य—स्कूल के छोटे-छोटे बच्चे कतार बनाकर खड़े हैं, आमन्त्रित प्रवचनकर्ता स्वामी तेजोमायानन्द जी बच्चों को 'अंग्रेजी-हिन्दी' शब्दकोष परमहंसजी की ओर से प्रसाद में दे रहे हैं। परमहंस जी तत्परता से बच्चों के पास जा खड़े होते हैं और उनसे कहते हैं—'खूब पढ़ना, अच्छे से पढ़ना।' उनके शब्दों में जो अपनापन और भाव था वह दिल को छू गया। उनके चेहरे पर ऐसी प्रसन्नता थी, जिसे किसी उपमा में नहीं बाँधा जा सकता। और बच्चे भी कतार तोड़ उनके चरणों में शीश नवाने से अपने को न रोक पाये।

अध्यात्म की ऊँचाइयों को छूने और भगवत् साक्षात्कार के पश्चात् भी आज वे जैसा जीवन जी रहे हैं, वह हम सबके लिए अनुकरणीय है। हृदय की इतनी सरलता—अपने आस-पास के ग्रामीणों से उनका वार्तालाप इतना आत्मीय होता है कि सुनने वाले को लगता है जैसे उनसे बढ़कर उन ग्रामीणों का कोई है ही नहीं। वार्तालाप कुछ इस तरह होता है—'टेटू, घर में सब कैसे हैं? बहू कैसी है अब, वह बीमार थी न! उसे केला-भात खिलाओ। बनाना आता है? नहीं। तो आश्रम में बनवा देते हैं, ले जाना। और यहाँ बनाते हुए देखकर सीख भी लेना।' गाँव में कोई बीमार हो जाए, उसकी चिकित्सा-दवा इत्यादि का सारा खर्च वहन करने के साथ-साथ उसे आवश्यक पौष्टिक खाद्य भी उपलब्ध कराते हैं। और हर दिन उसकी स्थिति में सुधार के बारे में जानने को इस प्रकार उत्सुक रहते हैं, मानो अपना ही सगा-सम्बन्धी हो। इस वर्ष सीता कल्याणम् के समापन के अवसर पर उन्होंने एक तिमंजिले चिकित्सालय, 'अमृत कलश' का शुभारम्भ किया। इस चिकित्सालय को सभी अत्याधुनिक उपकरणों से सुसज्जित किया जाएगा और विश्व के हर कोने से चिकित्सा विशेषज्ञ आकर ग्रामीणों का नि:शुल्क उपचार करेंगे।

ग्रामीणों को बच्चियों को शिक्षा दिलाने के लिए हर प्रकार से प्रोत्साहित करते, सहायता और साधन उपलब्ध कराते परमहंसजी गाँवों में आमूल परिवर्तन लाने की भूमिका तैयार कर रहे हैं। एक दिन सत्संग चल रहा था। अपने पिता के साथ गाँव की एक लड़की आती है। परमहंस जी उससे पूछते हैं, 'क्या करती हो अभी?' 'बी. ए. में पढ़ती हूँ।' 'अरे! तुम पढ़ी-लिखी हो! पढ़ी-लिखी लड़की तो लक्ष्मी होती है। लड़कियों को खूब पढ़ाना चाहिए। आओ-आओ, आगे बैठो।' उसे बुलाकर सबसे सामने बैठाते हैं। फिर उससे

पूछते हैं–'घर से कॉलेज कैसे जाती हो? पैदल? अच्छा, हम तुम्हें एक साइकिल देंगे, तुम पात्र हो।'

उनका एक अन्य अनूठा कार्य है विधवाओं को रोजगार देना। वह भी दुगुने लाभ वाला। गाँव की विधवायें प्रात: आश्रम आती हैं और वहाँ मिलकर भगवन्नाम कीर्तन गाती हैं, इसके बदले उन्हें प्रति घण्टे के हिसाब से मजूरी दी जाती है। इसके कितने लाभ उन्हें हो रहे हैं, गिनाये नहीं जा सकते। एक तो घर मे मिलने वाली उपेक्षा, उलाहनों से बचीं, दूसरा पैसा कमाने और श्री स्वामीजी द्वारा दिये गये स्थान से घर में सम्मान भी मिलने लगा और भगवन्नाम गाने से जो मिलता है, सो तो मिलेगा ही। जब ये पहले पहल आश्रम आयीं तो सहमी, सकुचाई सी। न हँसना जानती थीं, न बोलना, न पहनने को पर्याप्त अच्छे वस्त्र ही थे। आज वे सोल्लास आश्रम आती हैं। भजन-कीर्तन गाती हैं, हँसती-बोलती हैं, उनकी आँखों में नयी चमक है, परमहंस जी के चरणों में नवजीवन पाया है उन्होंने।

परमहंसजी कहते हैं–'गाँव के लोगों को, जिनके पास दो वक्त की रोटी नहीं, रहने को घर नहीं, तन ढकने को वस्त्र नहीं, यदि तुम यह उपदेश दो, अहं ब्रह्मास्मि, मैं ही ब्रह्म हूँ, और कहो कि आसन-प्राणायाम-जप-ध्यान से तुम भगवान को पा सकते हो, तो उनके लिए उस उपदेश का क्या मूल्य? अभी उनकी महती आवश्यकता क्या है? रोटी, कपड़ा और मकान। पहले उसकी पूर्ति करो। उनके जीवन से अभावों को दूर करो। उन्हें आजीविका के साधन उपलब्ध कराओ, यही उनकी सबसे बड़ी सहायता है।' उनके द्वारा अभी चलायी जा रही परियोजनाओं में मुख्य हैं–ग्रामीणों को घर बनवाकर देना, गौ पालन का प्रशिक्षण देकर गाय देना, खेती के लिए उत्तम किस्म के बीज उपलब्ध कराना, सिंचाई के साधन उपलब्ध कराना, दुकान खोलने के लिए सामान देना, बच्चों को छात्रवृत्ति, पोशाक, पाठ्यपुस्तकें, पठन-सामग्री उपलब्ध कराना, इत्यादि।

वे परमहंसजी, जिनके दर्शन पाने के लिए सब भक्तगण वर्षभर इंतजार करते हैं, सहज ही अकेले प्राय: गाँव में किसी के घर चले जाते हैं, उसका हाल-चाल पूछते, हर स्तर पर उसकी सहायता करते हैं। किसान हो तो उसे खेती के गुर बताते हैं, गोपालक हो तो उसे गाय पालन की शिक्षा देते हैं। उनके अक्षय भण्डार में सबके लिए सबकुछ है।

और उनका भोला-भण्डार, जिसे वे दोनों हाथों से लुटाते रहते हैं, खाली होने की बजाय दुगुनी गति से भरता जाता है। उनके भोला-भण्डार से ट्रक-

के-ट्रक कपड़े, कम्बल, जूते, मोजे, गरम कपड़े, दैनिक उपयोग की वस्तुएँ गाँवों में ले जाकर बाँटी जाती हैं। गाँव के हर घर से सदस्य-सूची लेकर सबके योग्य उपयोगी वस्तुएँ उन्हें प्रसाद रूप में दी जाती हैं। वे बाँटते जाते हैं और उनके भक्त उनके भण्डार को भरते जाते हैं। कैसी अद्भुत देवकृपा!

हमने तो संन्यास का यही अर्थ जाना था–कुछ लेना न देना मगन रहना। लेकिन परमहंस जी ने संन्यास की परिभाषा ही बदल डाली, वे कहते हैं–'जो आदमी दूसरों के लिए अपने स्वार्थ का त्याग करे, वह संन्यासी है। जब आदमी केवल अपने लिए परिश्रम करे, वह स्वार्थ है। संन्यास में स्वार्थ नहीं होना चाहिए, संन्यास में परमार्थ प्रधान होता है। पराये लोगों के साथ आत्म-भाव का व्यवहार करना ही संन्यास है।'

उनकी स्नेहिल दृष्टि, मुक्त हास्य, दीप्त आँखें, तेजपूर्ण मुखमण्डल जो हर पल दूसरों को सुखी बनाने के प्रयास में लगे रहने के कारण संतोष की आभा से दमकता रहता है, बच्चों की सी सहजता और सरलता, सबको अपने-अपने स्तर पर प्रेरणा से ओत-प्रोत कर देती है। उनके कार्य में थोड़ा-सा भी योगदान देने पर मन आनन्द, उल्लास और परिपूर्णता से आपूरित हो जाता है।

प्रति वर्ष आयोजित होने वाले इस आध्यात्मिक मेले के समापन पर अजस्र प्रेरणा के स्रोत श्री स्वामीजी की अविस्मरणीय छवि को हृदय में संजोए, हम सब अपनी-अपनी जगहों में वापस आते हैं–उल्लसित मन, जीवन के प्रति एक नये उत्साह, नयी उमंग, नयी दृष्टि, तन-मन-प्राण निष्काम सेवा के लिए समर्पित कर देने की भावना से पूर्ण। हे अनुपमेय! मानवता तुम्हारे योगदान के लिए चिरकाल तक ऋणी रहेगी। तुम्हारे चरणों में अनन्त प्रणाम!

–स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती, मार्च 1999

सीता कल्याणम् के महापुरुष–सत्यानन्द

इस बार बच्चों की प्रबल इच्छा के कारण गुरुदेव के दर्शन हुए, जब हम लोग गुरुदेव के परमहंस जीवन के दस वर्ष पूर्ण होने के उपलक्ष्य में आयोजित अनुष्ठान एवं सीता कल्याणम् के पावन अवसर पर रिखिया पहुँचे।

मंगलमय मार्गशीर्ष की शुक्ल पंचमी के शुभ दिन श्री राम एवं देवी सीता वैवाहिक सूत्र में बँधे और एक आदर्श दम्पत्ति के रूप में विख्यात हुए। परमहंस

सत्यानन्द जी की तपोभूमि रिखियाधाम में यही उत्सव इस बार 24 नवम्बर 1998 को बड़े धूमधाम से मनाया गया। विवाह पंचमी की रस्म से पहले 8 दिन सत्संग, कीर्तन, रामायणपाठ, पूजायें आदि आयोजित हुईं।

इस अवसर पर परमहंसजी भक्तों को दर्शन देते हैं, जरूरतमंद पड़ोसियों की सहायता करते हैं तथा पड़ोस की नववधुओं को सौभाग्यसूचक सोलह श्रृंगार की सामग्री 'प्रसाद' के रूप में देते हैं। गुरुजी कहते हैं कि 'जो चीज मैं साठ साल तक जप, तप, योग, ध्यान के माध्यम से प्राप्त न कर सका, वह मुझे रिखिया में पड़ोसियों की सेवा करके प्राप्त हुई है। अत: उन जरूरतमंद लोगों की सहायता करो, जो न आपके बन्धु हैं, न परिचित।'

परमहंस जी की पावन उपस्थिति में रिखियाधाम में विवाहपंचमी की तिथि पर एक विदेशी जोड़ा विवाह सूत्र में बँधा। विदेशी वर-वधू का विवाह विद्वान्-पुरोहितों द्वारा पूरे वैदिक ढंग से भारतीय रीति-रिवाज के अनुसार सम्पन्न हुआ। कुछ शिष्य वर पक्ष की ओर से एवं कुछ शिष्य वधू पक्ष की ओर से इस उत्सव में शामिल हुए।

विदेशी दूल्हे राजा भारतीय वेशभूषा में सजधज कर, ग्रामीण बाजे-गाजे एवं फौज-फटाके के साथ जब परमहंसजी के आश्रम स्थित रंगमंच पर पहुँचते हैं, तब शिष्या त्रिपुरा की सुरीली आवाज का यह गाना बारातियों के नाचने-गाने के जोश को और बढ़ा देता है—आया बाराती देखो आया, रामजी को संग लाया। और इस बीच द्वारचार की रस्म अदायगी के साथ विदेशी दूल्हे राजा को आदर-सत्कार के साथ मण्डप में आसन दिया जाता है। पड़ोसी गाँव की कुछ महिलायें परमहंस सत्यानन्द, स्वामी निरंजन, स्वामी सत्संगी को विवाह की रस्म बतौर परम्परानुसार चिढ़ाकर, गाली गाते हुए आनन्दमग्न होकर नृत्य भी करती हैं। वर-वधू एक-दूसरे को वरमाला पहनाते हैं। मन्त्रोच्चार के साथ अगली रस्म शुरू होती है। सात फेरे, सात वचन निभाकर यह विदेशी दम्पत्ति विवाह सूत्र में बँधता है एवं परमहंस जी से सुखमय जीवन निर्वाह का आशीर्वाद लेता है।

पूरे कार्यक्रम को देखकर यह लग रहा था मानो हम लोग अपने गाँव-घर की शादी में शामिल हुए हैं। यह कार्यक्रम एक आश्रम में हो रहा है, इसे हम भूल बैठे थे। परमहंस सत्यानन्द जी राजसी वेशभूषा में आनन्दित, प्रसन्नचित्त मुद्रा में दिखायी दे रहे थे। उनकी पावन उपस्थिति मात्र से पूरा वातारवण आनन्दमय था। वास्तव में ऐसा आनन्दमय वातावरण आज तक

हमने किसी शादी में नहीं देखा। आनन्द क्या होता है, इसकी अनुभूति हमें इस उत्सव में हुई।

इस उत्सव के पूर्व परमहंस जी ने पड़ोसी गाँव की नववधुओं को सौभाग्य सूचक सोलह श्रृंगार की सामग्री भेंट की। इन नववधुओं में अधिकांशत: कम उम्र की वधुएँ थीं। गाँव में अभी भी बाल विवाह को प्रश्रय मिला हुआ है। परमहंस जी बाल विवाह को शुभ मानते हुए कहते हैं कि 'विवाह का यही समय है।' परमहंस जी की मान्यता के पीछे उद्देश्य यह है कि छोटी उम्र में विवाह हो जाने के पश्चात् लड़कियाँ अपने माता-पिता के घर पर ही रहती हैं एवं युवावस्था की ओर अग्रसर होते हुए सामाजिक एवं नैतिक दायरे के अन्तर्गत जीवन निर्वाह करती हैं। परिपक्व होने पर बालिकायें अपने माता-पिता के घर छोड़कर पति के घर आ जाती हैं। इस प्रकार वे एक-दूसरे का सम्मान करते हुए मार्ग से विचलित नहीं होते, उन पर किसी प्रकार का धब्बा नहीं लग पाता।

नारी के सम्मान में परमहंस जी ने इस अवसर पर पड़ोसी विधवा महिलाओं को न केवल शामिल होने का निमन्त्रण दिया, बल्कि उन्हें इस विवाह में रस्म-अदायगी करने का अवसर भी प्रदान किया। पड़ोसी विधवा महिलाओं को हिन्दुस्तान की प्रसिद्ध रंगीन साड़ियाँ 'प्रसाद' के रूप में भेंट करते हुए परमहंस जी ने समझाया–'आज से तुम्हारा पति 'कृष्ण' है, तुम लोग कृष्ण भगवान को अपना पति मानकर नया जीवन शुरू करो। तुम अपने 'उस' पति के स्मरण को छोड़कर कृष्ण को भजना शुरू करो और इस साड़ी को पहनकर, 24 तारीख को, शादी के दिन जरूर आना।'

विगत वर्षों से रिखियाधाम में इन्हीं विधवा महिलाओं द्वारा रामायण का पाठ नित्य-प्रतिदिन किया जाता रहा है और इसी कड़ी को आगे बढ़ाते हुए सीता कल्याणम् 1998 के अवसर पर परमहंसजी ने पड़ोसी विधवाओं को 'कृष्ण' को पति के रूप में मानते हुए रंगीन साड़ी पहनने की इजाजत दी।

वास्तव में इस प्रकार के कदम महापुरुष के अलावा और दूसरा कोई नहीं उठा सकता। कितना सत्य लिखा है मुंगेर की श्रीमती विजया प्रेमनीति ने अपने लेख 'संन्यासी के स्वप्न में'–महापुरुष समाज की रूपरेखा तैयार करते हैं, साधारण व्यक्ति तो केवल बने बनाये समाज के अन्दर रहना और उपयोग करना भर जानते हैं। परन्तु समाज में हमेशा से ऐसे महापुरुष होते आये हैं, जो समाज के निर्माण का बोझ उठाते हैं।

आज परमहंस जी बाल विवाह, बाल संन्यास को अच्छा मानते हैं, नव वधुओं को सोलह शृंगार की सामग्री भेंट करते हैं, सीता और राम के रूप में विदेशी वर-वधु को वैवाहिक सूत्र में बाँधते हैं। विधवा महिलाओं के लिए कल्याणकारी संदेश देकर उन्हें नवजीवन प्रदान करते हैं... इन सब कार्यों के पीछे परमहंस जी की क्या मान्यतायें हैं, यह हमें सोचने-विचारने को विवश कर देती हैं। आज हम भले ही इन मान्यताओं एवं इनके महत्त्व को समझ सकें या न समझ सकें, परन्तु आगे आने वाली सन्तानें यह समझेंगी कि समाज के उत्थान में परमहंस सत्यानन्द का योगदान कितना अपूर्व रहा।

–दिनेश खरे, दुर्ग, मार्च 1999

परमहंस सत्यानन्द जी–मेरे अनुभव

परमहंस जी के साथ मेरे प्रारम्भिक दिनों की स्मृति किस प्रकार की है, उसे अभिव्यक्त कर पाना कठिन है। जिस दिन पहली बार मैंने आँखें खोलीं और चारों ओर देखा, तब से वे मेरी स्मृति में, मेरे साथ हैं। एक अपरिचित व्यक्ति के रूप में नहीं, बल्कि एक ऐसे व्यक्ति के रूप में जो हमेशा मेरे साथ रहे और एक पिता, मित्र, गुरु की भाँति अंतरंग रहे; वे हर भूमिका में सामने आये। शायद इसी वजह से मैंने सदा उन्हें अपने से अभिन्न जाना है, और इसलिए एक अलग व्यक्ति के रूप में मेरा उनके साथ कोई अनुभव नहीं है।

उनके भीतर सहज गुणों और विशेषताओं का एक सुन्दर संयोजन है और जैसे-जैसे प्रत्येक गुण प्रकट होता है, वे एक अलग रूप-अलग भूमिका में नजर आते हैं। उनके भीतर कृष्ण का नटखटपन है, साथ ही ईसा मसीह का गाम्भीर्य भी। उनके भीतर हिमालय की सी शान्ति है और साथ-ही-साथ वे संसार में भी वैसे ही रहे जैसे कोई सामान्य व्यक्ति रहता है। उनके प्रत्येक कार्य, उनकी प्रत्येक अभिव्यक्ति ने उनके प्रति मेरी दृष्टि को बदला, इसलिए मेरे मन में उनकी कोई एक स्थायी छवि नहीं है।

आश्रम में मैं जिस दिन आया, उसी दिन से मैं हमेशा उनके साथ रहा, और उनके बिस्तर पर सोता था। वे मुझे चक्का कहते थे, क्योंकि मैं सुबह कभी उस स्थिति में नहीं मिलता था जिस स्थिति में रात को सोता था। मेरा पूरा शरीर 360 डिग्री घूम जाता था। कभी उनके पेट को अपना तकिया बना लेता, तो कभी उनके सिर को अपना पायदान। उन्होंने कभी कुछ नहीं कहा।

आरंभिक दिनों में मेरे साथ उनके धैर्यपूर्ण व्यवहार ने मुझे बहुत अधिक प्रभावित किया।

आजकल आश्रम में हर प्रकार के अनेक सत्र होते हैं, किन्तु उन दिनों केवल एक सत्र होता था–निरंजन सत्र। गुरु निर्णय दें, उसके पूर्व मैं अनुमोदन और स्वीकृति दिया करता था। जो मेरी परीक्षाओं को झेल पाते, वे ही वास्तव में आश्रम में रह पाते थे। पुराने आश्रम में बहुत अधिक कमरे नहीं थे, इसलिए सब लोग स्नानागार, जनरेटर रूम, सीढ़ी के नीचे, बाहर बगीचे में, रसोई के अंदर या भण्डारघर में या कहीं और सोते थे, बारहों महीने। आधी रात को जब सब लोग सो रहे होते तो मैं सक्रिय हो जाता, सबके ऊपर बाल्टी भर-भरकर पानी डालता, सबके बिस्तर गीले कर देता, पेड़ पर चढ़कर सफेद चादर हिलाता। लोग यथार्थ में मुझसे भयभीत रहते। जितने लोग आये, उनमें से मुश्किल से बारह लोग बचे हैं। अत: इस आश्रम में अनुमोदन की मोहर मूल रूप से मेरी होती थी। मैं बहुत जिज्ञासु भी था, और सब चीजों को तोड़-फोड़ देता था। यदि मुझे कोई टेपरिकॉर्डर, ट्रांजिस्टर, या इलेक्ट्रिक शेवर भी दिखायी दे जाता तो मैं उसे खोल-खाल कर देखने लगता कि उसके भीतर क्या है। और नि:सन्देह, कभी उसे वापस नहीं जोड़ पाता था।

फिर भी परमहंस जी ने मुझे कभी कोई कठोर शब्द नहीं कहा। कभी नहीं, चाहे मैंने जो कुछ किया। वे हमेशा मित्रवत् रहे, कभी दूरी नहीं रही। उन्होंने एक बड़े भाई से भी बढ़कर मेरी देखभाल की, कभी-कभी बहुत अधिक बचाव करने वाले, कभी संरक्षात्मक, कभी केवल संगी। किसी एक विशेष घटना या प्रसंग की अपेक्षा उनके इन सभी रूपों ने मुझे प्रभावित किया। बाद में जब मैं विदेश गया तो उन्होंने मुझे पूर्ण स्वतन्त्रता दे दी। उन्होंने कहा, 'देखो, मैं तुम्हें विदेश भेज रहा हूँ, जिससे तुम जीवन में उन्नति कर सको। तुम अपने लिए जीवन-पद्धति का चुनाव करने को स्वतन्त्र हो। यदि तुम बाहर रहना चाहो, तो रहो। यदि संन्यासी बनना चाहो, तो संन्यासी बनो। यदि विवाह करना चाहो, तो विवाह कर लेना। यदि अध्ययन कर अपना कैरियर बनाना चाहो, तो वैसा ही करना।' मुझे नहीं लगता कि मैं कभी जीवन में ऐसे किसी और व्यक्ति से मिला हूँ जो मेरे चुनाव से निरपेक्ष मुझे इतने मित्रवत् ढंग से, इतने समझपूर्ण ढंग से स्वीकार कर पाता। लोगों पर परमहंसजी के विश्वास ने ही इतनी गहरी छाप छोड़ी।

उन्होंने अनेक उपाय अपनाते हुए मुझे बहुत कुछ सिखाया, योगनिद्रा के माध्यम से भी। उनके चेहरे पर कभी एक बार भी शिकन नहीं आयी, उनके

मुख से कभी 'नहीं' शब्द नहीं निकला। उन्होंने एक बार भी नहीं कहा, 'यह गलत है।' मेरे लिए यही गुण एक सच्चे मानव की पहचान है।

वे वास्तव में कुशल गुरु थे। वे कठिन-से-कठिन विषय को भी सरलतम रूप में प्रस्तुत कर सकते थे। अपने प्रशिक्षण की प्रक्रिया में जब मुझे योग, तन्त्र, वेदान्त, धर्म या विज्ञान की कोई बात समझ में नहीं आती तो वे उसे सरलतम ढंग से समझा देते। भीड़ में प्रत्येक व्यक्ति से बात करने की उनकी क्षमता अद्भुत थी। किसी सम्मेलन के समय जब वे मंच पर बैठे होते और उनके सामने पन्द्रह हजार की भीड़ होती तो उनकी भाषा शैली इस प्रकार की होती कि हर व्यक्ति को ऐसा लगता जैसे वे सीधे उसी से बात कर रहे हों। यह एक विलक्षण गुण है। वे हर समस्या की गहराई तक पहुँच जाते, चाहे वह समस्या कितनी ही सांसारिक या गहन आध्यात्मिक क्यों न हो।

कभी-कभी उनके उत्तर विचित्र लगते। उदाहरण के लिए, किसी परिवार के लोग आते और शिकायत करते कि उनका बच्चा बदमाश है, अक्खड़ है, पढ़ता-लिखता नहीं है। वे पूछते कि उसके लिए क्या किया जा सकता है। बच्चे की समस्या को सुलझाने के बदले वे कहते, 'सुनो, जब तुमने शादी की तो मुझसे अनुमति नहीं ली थी, अब जब तुम्हारा बच्चा समस्या खड़ी कर रहा है, तो तुम मुझसे सलाह माँगने आये हो। जाओ।' कभी-कभी उनके उत्तर इस प्रकार के होते थे।

उनका हास्य भी अद्भुत है, वे हँसते-हँसते सचमुच लोट-पोट हो जाते हैं। पुराने आश्रम में हमारे बीच हँसने की प्रतियोगिता होती थी। वे सबको एक घण्टे तक हँसने का निर्देश देते और फिर स्वयं हँसना शुरू करते। वह इतना हास्यस्पद होता कि हम एक घण्टे तक आसानी से हँसते रह सकते थे। फर्श पर लोट-पोट होना, चेहरे पर ढलकते हुए आँसू, हँसते-हँसते श्वास चढ़ जाना–यह सब बहुत स्वाभाविक होता, उसके लिए कोई प्रयास नहीं करना पड़ता था। यहाँ तक कि पास से गुजरने वाले लोग भी हँसने लगते।

प्रारम्भिक काल में वे प्राय: समाधिस्थ हो जाया करते थे। कभी कीर्तन गाते-गाते वे बच्चे की भाँति सुबकने लगते। वे कीर्तन गाते ही नहीं थे, बल्कि उसमें पूरी तरह से तन्मय हो जाते थे। उनकी दशा एक छोटे बच्चे की भाँति होती थी, जो अपने माता-पिता से प्यार पाने के लिए रोता है। उसके बाद वे गहरे ध्यान की अवस्था में चले जाते और उस अवस्था से बाहर आने में उन्हें कई दिन लग जाते। तीन दिनों तक वे एक स्थान पर बिना हिले-डुले, बिना

खाये-पीये, बिना शौचादि के एक पत्थर की तरह अविचल बैठे रहते। इन तीन दिनों के बाद सदैव उनके चेहरे पर स्वर्णिम आभा दिखायी देती।

वे एक ऐसे व्यक्ति हैं, जिनका हर चीज पर पूर्ण नियन्त्रण है। मैंने उन्हें जीवन में कभी अनिश्चय की स्थिति में नहीं देखा। अपने जीवन में हम लोग सहज ही सोच में पड़ जाते हैं क्या करें, क्या न करें। लेकिन उन्हें हमेशा सही-सही मालूम रहता कि इस परिस्थिति में क्या करना है, चाहे वह परिस्थिति कितनी ही असंगत, कितनी ही जटिल या कठिन क्यों न हो। वे नकारात्मक से नकारात्मक तथा सकारात्मक से सकारात्मक परिस्थितियों में तत्काल अपने आपको समायोजित कर लेते थे।

उनके जिस गुण ने मुझे सबसे अधिक प्रभावित किया, वह यह कि वे हृदय में सदैव एक शिष्य की भाँति रहे। बाह्य रूप से वे गुरु बन कर रहे, किन्तु मन और हृदय में उन्होंने कभी अपने आपको गुरु नहीं माना। उन्होंने गुरु की भूमिका हम लोगों के लिए निभायी, अपने लिए नहीं। उनके व्यक्तित्व में कभी यह अहंकार परिलक्षित नहीं हुआ कि मैं एक महान् व्यक्ति हूँ। अन्तर में वे हमेशा एक साधक रहे। उन्होंने हमारे सभी प्रश्नों के उत्तर दिये, किन्तु स्वयं के लिए वे सदैव उत्तर की खोज में रहे। उच्च सत्ता से तादात्म्य स्थापित करना उनका स्वाभाविक गुण था। अपने हृदय की सरलता के कारण वे अपने गुरु, इष्ट देवता तथा भगवान के साथ संवाद कर सकते हैं। उन्हें उनसे निश्चित निर्देश मिलते रहे हैं।

जीवन में क्या उपलब्धि हासिल करनी है, इसका उन्हें हमेशा से स्पष्ट आभास रहा, मानो उनके जन्म के दिन से ही उनका मार्ग प्रशस्त कर दिया गया हो। हम लोग शायद कहेंगे, रुकें और देखें आगे क्या होता है, किन्तु वे कभी ऐसा नहीं कहते। मैं नहीं समझता उनके जीवन में कभी कोई सीमा रही हो। जहाँ एक ओर लोगों के मन में उनके लिए अपार श्रद्धा और आदर था, वहीं दूसरी ओर उन्हें नापसन्द करने वाले, उनकी उपेक्षा करने वाले लोग भी थे, किन्तु उनके भीतर यह विचार एकदम स्पष्ट रहा कि गन्तव्य क्या है।

वे जिससे मिले, उसके सर्वोत्तम गुणों को ही देखा। वे कहा करते थे कि यदि कोई अवगुणों से भरा हुआ व्यक्ति मेरे पास आता है, और मुझे हजारों-लाखों अवगुणों की परतों के पीछे यदि एक गुण भी छिपा हुआ दिखायी दे जाता है तो मैं सारे अवगुणों को भुलाकर केवल उसके उसी गुण को निखारने का प्रयास करता हूँ।

वे हर दृष्टि से व्यावहारिक थे। उनमें अपमान की चोट को बिना प्रभावित हुए स्वीकार करने की क्षमता थी। उन्होंने कभी इस बात की परवाह नहीं की कि उनकी छवि, उनके मिशन या जीवन पर धब्बा लग गया। वे कभी भूतकाल की स्मृति में खोये नहीं रहते, हमेशा वर्तमान में रहते हैं। क्या होने वाला है, इसकी उन्हें स्पष्ट जानकारी रहती है। जिस प्रकार सेना का जनरल नक्शे में अपनी सेना तथा दूसरी सेनाओं की स्थिति देख सकता है, उसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति का जीवन उनकी दृष्टि में स्पष्ट अंकित रहता है। मैं किसी ऐसे व्यक्ति को नहीं जानता जो उनके सम्पर्क में आया हो और उनसे किसी-न-किसी रूप में कुछ प्राप्त न किया हो।

मैंने उनमें और बहुत कुछ देखा है। यदि मैं सब कुछ याद करने का प्रयास करूँ तो यह एक अनन्त कथा हो जाएगी। मेरे लिए तो वे मानव उपलब्धि के सर्वोच्च शिखर हैं। मनुष्य जीवन में जितनी उपलब्धियाँ हासिल की जा सकती हैं, उन्होंने उन सबके शिखर को छूकर एक जीवन्त उदाहरण प्रस्तुत किया है।

जब उनके बारे में कुछ कहना होता है या मैं उनके सामने होता हूँ तो मेरा मन शून्य हो जाता है। यह वास्तव में अनोखी बात है, विचारों का नामोनिशान नहीं रहता। केवल शून्यता। उनकी उपस्थिति में मन का कोई आधार, कोई अवलम्ब नहीं रहता, बुद्धि का लोप हो जाता है।

कई बार मैं उनके पास प्रश्न लेकर जाता हूँ। जैसे ही मैं अलखबाड़ा के द्वार के भीतर प्रवेश करता हूँ, मेरा मन खाली हो जाता है। जब वहाँ से निकलता हूँ, 25 कि.मी. चलने के बाद विचार आने लगते हैं, 'मैंने उनसे कुछ पूछा ही नहीं।' मैं किसी से उनके बारे में बात भी नहीं कर सकता। यह स्मृति बहुत गहरी है और मेरे व्यक्तित्व का केन्द्र है। मुझे नहीं मालूम इसे किस प्रकार व्यक्त किया जाए। मेरे लिए वे कोई ऐसे व्यक्ति नहीं जिनके बारे में मैं कुछ सुना सकूँ। मेरे लिए वे स्वयं मैं ही हैं।

–स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती, जुलाई 1999

रिखिया यात्रा

25 अक्टूबर को हमने देवघर, बिहार के लिए एक गाड़ी पकड़ी, उद्देश्य था अपने एक गुरु भाई से मिलना, जिनसे हम कई वर्षों से नहीं मिले थे। वे हैं परमहंस श्री स्वामी सत्यानन्द जी, जो अवधूत संन्यासी के रूप में रिखिया में

ग्यारह वर्षों से रह रहे हैं और पंचाग्नि की घोर तपस्या कर रहे हैं। वे यह कठिन तपस्या छ: वर्षों से करते रहे हैं। हर वर्ष मकर संक्रान्ति से कर्क संक्रान्ति तक वे छ: महीने तक लगातार सूर्य के ताप में, चार ओर अग्नियाँ प्रज्वलित कर बैठते रहे हैं।

श्री स्वामीजी हमसे मिलने की इच्छा कर रहे थे। 26 अक्टूबर के प्रात:काल हम पहुँचे और चार दिनों तक वहाँ रहे। यह एक विशेष अनुभव रहा।

श्री स्वामीजी अन्तर्राष्ट्रीय योग मित्र मण्डल और बिहार योग विद्यालय के प्रवर्तक हैं, जिसका मुख्यालय मुंगेर, बिहार में है। बिहार योग विद्यालय एक विश्व-व्यापी संस्था के रूप में उभरा है, जो नियमित कक्षाओं के संचालन द्वारा योग तथा अन्य विद्याओं का प्रशिक्षण पूरे विश्व के हजारों मुमुक्षु-विद्यार्थियों को प्रदान करता है।

1968 से ही श्री स्वामीजी अन्य कई राष्ट्रों का भ्रमण करते रहे, किन्तु 1988 अगस्त में उन्होंने सब कार्यों से अलग होने का निश्चय किया और एक छोटे से गाँव में रहने लगे। इस गाँव को रिखियाधाम के नाम से जाना जाता है, क्योंकि यह स्थान दशनामी संन्यासी के बस जाने के कारण पवित्र हो गया है। स्वामी सत्यानन्द जी अपने आश्रम को शिवानन्द मठ कहते हैं। यहाँ हर आवासीय खण्ड एक मन्दिर है, जो किसी-न-किसी देवी-देवता को समर्पित है। मैं दत्तात्रेय कुटीर में ठहरा। यहाँ एक रघुनाथ कुटीर है, गणेश कुटीर है, शिवानन्द और शंकराचार्य मंदिर है, जो अखाड़ा के नाम से जाना जाता है।

शिवानन्द मठ एक सुसज्जित दातव्य अस्पताल चलाता है, जिसका नाम अमृत कलश है। यह अस्पताल पूर्ण कर्त्तव्यपरायणता के साथ कार्य कर रहा है। मठ का मुख्य उद्देश्य अविकसित ग्रामीणों को उन्नति के अवसर और स्वाभिमान का भाव प्रदान करना है। साक्षरता को प्रोत्साहित किया जाता है। यह मठ ग्रामीण समाज की कई महत्त्वपूर्ण तरीकों से सेवा कर रहा है। यह नलकूपों की खुदाई करता है, बेघरों के लिये मकान बनाता है। पहले जो क्षेत्र अगम्य थे, वहाँ सड़कों का निर्माण हो रहा है। विद्यालयों की स्थापना में सहायता प्रदान की जा रही है। वयोवृद्धों और विकलांगों को हर महीने पेंशन दी जाती है, जिससे उन्हें एक दिन भी बिना भोजन के न रहना पड़े।

एक और क्रान्तिकारी कदम है हिन्दू समाज की अभागी विधवाओं के साथ हो रहे अनुचित और अपमानजनक व्यवहार का सफल उन्मूलन। परमहंस सत्यानन्द जी ने विधवा सम्बोधन के उन्मूलन में सफलता प्राप्त की

है। विधवायें अब 'दिव्या' शब्द से सम्बोधित की जाती हैं, क्योंकि वे दिव्य माता-स्वरूपा हैं। गाँववालों ने भी इन दिव्याओं को शेष स्त्रियों के समान साधारण साड़ियों और सामान्य गहनों में देखना स्वीकार कर लिया है। श्री स्वामीजी उनके पुनर्स्थापन में सहयोग करते हैं और अगर वे इच्छा प्रकट करती हैं तो उच्चतर शिक्षा पाने में भी सहयोग करते हैं। हमने पूरे भारतवर्ष में ऐसा उदाहरण नहीं देखा है।

युवाओं को रोजगार प्रदान करने के लिए वे भक्तों को तिपहिया वाहन और ट्रैक्टर देने के लिए प्रेरित करते हैं। अगर उन्हें काम करने जाने के लिए लम्बी दूरी तय करनी होती है तो एक साइकिल अथवा स्कूटर उपहार स्वरूप प्रदान किया जाता है।

परन्तु सबसे अनोखी सेवा है नव-विवाहित वधुओं को दी जाने वाली भेंट-पेटी। भेंट-पेटी में रखी गयी वस्तुएँ बहुत उपयोगी और बहुत विचार करके चुनी हुई होती हैं। पेटी तथा उसमें रखी वस्तुओं की कुल कीमत लगभग 60-65,000 रुपये तक होती है। उसमें सोने और चाँदी के जेवर का पूरा सेट, दैनिक आवश्यकता की वस्तुओं का एक सेट, जिसमें एक बड़ी टूथ पेस्ट की ट्यूब, दाँत साफ करने का ब्रश, जिभी, साबुन, बालों के लिए तेल और चूड़ियों का एक डिब्बा रहता है। प्लास्टिक की थैली में सौन्दर्य प्रसाधनों का एक सेट, जिसमें नेल पॉलिश, काजल, सिन्दूर, बिन्दी, बालों में लगाने की चिमटी, फीता, आलता, चेहरे का पाउडर, लिप्स्टिक और कंघी रहती है। साथ में स्टेनलेस स्टील की थाली, गिलास और कटोरी, शॉल, चुनरी, साड़ी, पैंट-कमीज, रुमाल और तौलिया, जांघिया और एक रंगीन गमछा होता है। वर और वधू के लिए हाथ की घड़ी, दोनों के लिए मोजे, स्त्रियों के लिए जूते और एक डिब्बे में कलम का एक सेट भी इस भेंट पात्र का एक हिस्सा है।

श्री स्वामीजी की संन्यासियों और ब्रह्मचारियों की मण्डली उनके प्रति पूर्णतया समर्पित है और सेवा के लिए सदैव तत्पर है। उनके समर्पण का भाव, गुरु सेवा का भाव और गरीब ग्रामीणों के लिए निःस्वार्थ सेवा का दर्शन ही अपने आप में एक आह्लादकारी अनुभव है। हमारे रिखिया प्रवास के दौरान स्वामी निरंजन हमें समीपवर्ती पुरातन मंदिरों के दर्शन के लिए ले गये। स्थानीय मान्यता है कि ये मंदिर हजारों वर्ष पुराने हैं।

रिखिया से हमारा प्रस्थान 29 अक्टूबर की देर रात्रि को हुआ। हमने स्वामी सत्यानन्द जी को रात्रि विश्राम के लिए बहुत अनुरोध किया, ताकि वे अपने

निर्धारित समय पर सोने जा सकें। परन्तु वे सुनने को तैयार नहीं थे और हमें मठ की गाड़ी से अर्धरात्रि को विदा करने आये। रिखियाधाम के शिवानन्द मठ की यात्रा हमारे अक्टूबर कार्यक्रम का सबसे महत्त्वपूर्ण अंश था। यह एक ऐसी यात्रा थी जिससे हमें बहुत संतोष और अपार आनन्द मिला है।

—स्वामी चिदानन्द सरस्वती, अध्यक्ष, दिव्य जीवन संघ, जनवरी 2000

सत्यानन्द योग की विकास यात्रा

सत्यानन्द या बिहार योग परम्परा के विस्तार और विकास को समझने के लिए पहले यह जानना आवश्यक है कि सत्यानन्द योग के विभिन्न घटक क्या हैं और किस कारण इसे पूरी योग परम्परा में विशिष्ट स्थान प्राप्त है।

पचास साल पहले केवल कुछ लोगों को योग के दार्शनिक पक्ष का ज्ञान था, पर उसके व्यावहारिक पहलू के विषय में किसी को जानकारी नहीं थी। यह माना जाता था कि योग केवल त्यागियों, साधुओं और संन्यासियों के लिए है, जिन्होंने सबकुछ त्याग कर अपना जीवन चिन्तन-मनन में लगाया है और एकान्त जीवन जीना चाहते हैं। उनका यह मानना था कि योग मुक्ति प्राप्त करने का पथ है, जिस पर समाज में रहने वाला व्यक्ति अपनी इच्छाओं, वासनाओं, कर्मों और बन्धनों को त्यागे बिना अग्रसर नहीं हो सकता। योग को केवल एक ऐसे दर्शन या अनुशासन के रूप में माना जाता था, जिससे व्यक्ति अपनी आत्मा तथा अपने मन, शरीर और जीवन को सुदृढ़ बना सकता है। इसके विषय में सैद्धान्तिक ज्ञान स्वामी विवेकानन्द, श्री अरविन्द, रमण महर्षि, स्वामी कुवल्यानन्द, बाबा रामदास, स्वामी शिवानन्द, योगी रामचरक तथा पिछली सदी के अन्य सन्तों द्वारा आम जनता के बीच प्रसारित किया गया।

ये सभी लोग एक स्थापित परम्परागत योग-विचारधारा का अनुसरण करते थे। योग की केवल दो विचारधारायें हैं—दक्षिण और उत्तरी। गंगा, नर्मदा और हिमालय क्षेत्र के ऋषि-मुनियों और तपस्वियों द्वारा सिखाया और बताया जाने वाला योग उत्तरी विचारधारा के नाम से जाना जाता है। दक्षिण भारत के साधु-सन्तों, त्यागियों, रहस्यवादियों और सिद्धों द्वारा सिखाये और अभ्यास किये जाने वाले योग को दक्षिणपंथी कहा जाता है। आज के समय दक्षिणपंथी योग के प्रचारक टी. कृष्णमाचार्य हैं, जो देशिकाचार्य और आयंगर के गुरु हैं। दक्षिणपंथी विचारधारा का मत है कि अन्तिम परिपूर्णता

पूर्ण शारीरिक परिष्करण द्वारा प्राप्त की जा सकती है। हठयोगी भी इसी सिद्धान्त पर विश्वास करते हैं।

उत्तरी पंथ में ध्यान योग ही अधिक है, जिसका आधार महर्षि पतंजलि के योग सूत्र हैं। योग सूत्र में हठयोग का उल्लेख नाममात्र का ही है और मनोनियन्त्रण, विचार नियन्त्रण पर अधिक बल दिया गया है। पातंजल योग को योग के उत्तरी पंथ के रूप में जाना जाता है।

उत्तरी योग पंथ की कई अलग-अलग विचारधाराएँ, परम्पराएँ और संस्कृतियाँ हैं। हठयोगियों की भी एक अलग परम्परा है। क्रिया योगियों, कुण्डलिनी योगियों, राजयोगियों, ज्ञानयोगियों और भक्ति योगियों की भी अलग-अलग परम्पराएँ हैं। पर इन सभी योगियों में एक चीज समान है, इनके अनुसार योग एक ऐसा अभ्यास और अनुशासन है जिसके द्वारा अपने स्वभाव को मजबूत बनाना, आत्मा का अनुभव करना और अपने में निहित सम्भावनाओं को जगाना सम्भव है, जिससे हम एक सन्तुलित और पूर्ण मानव बन सकें। इस लक्ष्य को पाने के लिए उत्तरी योग पंथ की कई शाखाएँ पनपीं।

योग के दो मूल स्रोत हैं, एक तंत्र और दूसरा वेद। तंत्रों से एक दर्शन और अभ्यास-समूह विकसित हुआ, जिसे तांत्रिक परम्परा में योगाचार के नाम से जाना जाता है। यह ऐसे लोगों के लिए एक संहिता है जो योग के माध्यम से तन्त्र का अभ्यास करते हैं। वैदिक परम्परा में योग की व्याख्या उपनिषदों में की गई है। प्रत्येक उपनिषद् एक विद्या और एक परम्परा का प्रतिनिधि है। योग मन और शरीर, दोनों को प्रभावित करने वाली एक प्रक्रिया बन गई जिसके द्वारा आत्मा का अनुभव किया जा सकता है। यौगिक एवं तान्त्रिक परम्परा इसी परिप्रेक्ष्य में योग को देखती है।

पिछले 50 सालों के दौरान दूरदृष्टि वाले साधुओं को यह महसूस हुआ कि योग भविष्य में समाज की एक जरूरत बन जाएगी। उत्तरी योग पंथ में जिन्होंने सबसे पहले इस दिशा में पहला कदम उठाया, वे थे स्वामी शिवानन्द, हमारे परम गुरु। उन्होंने योग को एक प्रगतिशील मोड़ देते हुए उसको दर्शन से व्यावहारिक स्तर पर लाने का प्रयास किया। यद्यपि दशनामी संन्यासी वेदान्त परम्परा का अनुसरण करते हैं, न कि यौगिक विचारधारा का, फिर भी स्वामी शिवानन्द जी ने योग की व्यावहारिकता के विषय में अपने संन्यासियों को 1940 के दशक के प्रारम्भ से ही बताना आरम्भ कर दिया। उन्होंने अपने शिष्यों को हठ योग, राज योग, भक्ति योग, ज्ञान योग, क्रिया योग, कुण्डलिनी योग,

मन्त्र योग आदि हर प्रकार के योग का प्रशिक्षण दिया। स्वामी शिवानन्दजी ने अपने सभी शिष्यों को, चाहे वे योगी हों, संन्यासी हों या गृहस्थ, योग का ज्ञान एक ऐसी विधि के रूप में देना आरम्भ कर दिया, जिससे वे अपने जीवन को विकसित कर पायें।

उनकी शिक्षा इतनी प्रेरणादायक थी कि उनके कई संन्यासी शिष्य योग का प्रचार करने के उद्देश्य से आश्रम से बाहर निकल पड़े। हर शिष्य ने एक विशेष क्षेत्र का चुनाव किया। स्वामी सच्चिदानन्द ने, जो अमेरिका में 'इन्टिग्रल योग मूवमेंट' के संस्थापक हैं, हठ योग, ज्ञान योग एवं भक्ति योग को प्रधानता दी। स्वामी विष्णुदेवानन्द ने, जिनका मुख्य केन्द्र कनाडा में है, कई शिवानन्द योग वेदान्त केन्द्रों की स्थापना की, जो हठयोग सिखाते हैं। स्वामी वेंकटेशानन्द ने मारिशियस में राज योग सिखाया। हमारे गुरु, स्वामी सत्यानन्दजी को भी अपनी साधना के रूप में योग सिखाने का जिम्मा सौंपा गया। उन्होंने समन्वित योग सिखाया, जिसमें तान्त्रिक योग की प्रधानता के साथ योग के सभी घटक सम्मिलित किये गये।

तान्त्रिक योग की इस पद्धति में कुण्डलिनी योग, क्रिया योग, मन्त्र योग, लय योग तथा प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि के उच्च स्तरों के अभ्यास सम्मिलित किये गये हैं। वेदों से श्री स्वामीजी ने भक्ति योग, कर्म योग, ज्ञान योग और चक्रों के सिद्धान्त को विभिन्न घटकों के रूप में लिया और ध्यान की एक पद्धति भी विकसित की। उन्होंने ध्यान की पद्धतियाँ तन्त्र और वेदों से लीं और 1974 में ये पद्धतियाँ 'ध्यान–तंत्र के आलोक में' पुस्तक में प्रकाशित की गयीं। उनकी प्रारम्भिक शिक्षाओं का प्रकाशन 1965 में 'ध्यान की प्रक्रियाएँ– शान्ति के लिए अभ्यास' नामक पुस्तक में हुआ। श्री स्वामीजी तन्त्र के यौगिक पहलू को प्रकाश में लाने वाले पहले व्यक्ति थे। सन् 1971 में एक पुस्तक 'तन्त्र योग पेनोरामा' प्रकाशित हुई, जिसमें उन्होंने तन्त्र की उन विभिन्न धारणाओं की व्याख्या की जो आज के समाज की आवश्यकताओं को पूरा करती हैं।

स्वामी सत्यानन्द ने लोगों को प्रेरित किया कि वे उचित एवं विवेकपूर्ण व्यवहार, कर्म तथा वाणी द्वारा अपने आप से नाता जोड़ें। यह प्रक्रिया मानव व्यक्तित्व में एक रूपान्तरण लाती है। जब श्री स्वामीजी ने सर्वप्रथम बिहार योग विद्यालय की स्थापना की, तब स्वामी शिवानन्द जी की योग की एक समन्वित पद्धति के विकास की अभिलाषा ने मूर्त रूप ग्रहण किया। जैसा कि विदित है, श्री स्वामीजी ने प्राचीन रुढ़ियों का अतिक्रमण कर योग को बृहद् स्तर पर

जनसामान्य के बीच लाने का मार्ग प्रशस्त किया। भारत के बाहर यह बिहार योग पद्धति सत्यानन्द योग परम्परा के नाम से जानी जाती है।

श्री स्वामीजी की शिक्षण पद्धति

जब श्री स्वामीजी ने 1956 में अपने गुरु के निर्देश और आशीर्वाद के साथ ऋषिकेश छोड़ा, तब उन्होंने समाज की आवश्यकताओं को समझने के उद्देश्य से पूरे भारतवर्ष की यात्रा की। वे अफगानिस्तान से श्रीलंका तक और पाकिस्तान से बर्मा तक समाज की आवश्यकताओं का आकलन करने हेतु घूमे। श्री स्वामीजी ने यह महसूस किया कि वेदान्त परम्परा एक दर्शन के रूप में समाज की सहायता नहीं कर सकती, बल्कि उसे एक व्यावहारिक नींव की आवश्यकता है। इस परम्परा की व्यावहारिक नींव तन्त्रों द्वारा योग के माध्यम से उपलब्ध करायी गयी। श्री स्वामीजी ने यह जान लिया था कि योग मोक्ष प्राप्त करने के एक साधन के रूप में नहीं, बल्कि शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक, नैतिक और आध्यात्मिक स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले विभिन्न मनोदैहिक असन्तुलनों से तत्काल राहत दिलाने के एक साधन के रूप में बड़े पैमाने पर लोगों की आवश्यकता के रूप में उभरेगा।

श्री स्वामीजी ने लोगों के लिए एक उदार, सन्तुलित और संयोजित व्यक्तित्व के निर्माण हेतु दो मार्ग निश्चित किए। पहला मार्ग है राज योग के अभ्यासों और प्रक्रियाओं द्वारा मानव स्वभाव, मन और आत्मा को समझना; कर्म योग के माध्यम से कुण्ठा और अहंकार जैसे गतिरोधों को वश में करना और समरूप एवं सन्तुलित कर्म को विकसित करना; भक्ति योग द्वारा भावनाओं को सही दिशा देना; ज्ञान योग द्वारा शान्ति से अपने भीतर और बाहर देखने में सक्षम बनना; क्रिया योग, कुण्डलिनी योग, नाद योग, स्वर योग, मन्त्र योग और अन्य योगों के द्वारा साधना की गहराई में जाना। यह श्री स्वामीजी के द्वारा बताया गया एक मार्ग बन गया।

दूसरा मार्ग एक जीवन पद्धति बन गयी – जीवन को एक अलग दृष्टिकोण से देखना, जो दुःख और क्लेशों से भरा नहीं, बल्कि मानवीय प्रयासों और अपने कर्मों में संलग्न होने का संकेतक है। जीवन-पद्धति के बारे में शिक्षा और प्रशिक्षण ने भी विभिन्न रूप लिये। अनेक लोग योग को तनाव मुक्ति के एक साधन के रूप में अपनाते हैं, किन्तु श्री स्वामीजी ने लोगों को योग को अपनी जीवन-पद्धति में सम्मिलित करने के लिए प्रोत्साहित किया। श्री स्वामीजी ने

संन्यास परम्परा को पुनर्जीवित कर उसे एक वैकल्पिक जीवन-पद्धति के रूप में प्रस्तुत किया। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि अपने जीवन में एक बार इस संकल्प के साथ संन्यासी बनना प्रत्येक व्यक्ति का आध्यात्मिक हक है कि तीन साल, या दस-पन्द्रह साल या जीवन भर के लिए 'मैं एक संन्यासी बनूँगा।' संन्यास के माध्यम से श्री स्वामीजी ने कई लोगों को योग को अपने जीवन में उतारने में सहायता की। उन्होंने कई लोगों को एक उपचार पद्धति के रूप में योग सिखाकर सहायता की। कई लोगों को योग द्वारा आन्तरिक शान्ति प्राप्त करने में सहायता की। उन्होंने लोगों के आवश्यकतानुसार उनकी सहायता की। श्री स्वामीजी की दृष्टि में योग हर एक के लिए उपयोगी है, न कि सिर्फ उनके लिए जिनकी इसमें दिलचस्पी है।

सन् 1964 में जनसाधारण के बीच अपने पहले सम्मेलन में श्री स्वामीजी ने कहा था, 'मुंगेर पूरे विश्व के लिए योग का केन्द्र बनेगा और इसे विश्व के नक्शे में स्थान प्राप्त होगा।' उस समय अनेक लोग आश्चर्य करते कि क्या स्वामीजी ठीक बोल रहे हैं, पर आज श्री स्वामीजी के वे शब्द वास्तव में सत्य साबित हो रहे हैं।

विभिन्न देशों, जातियों एवं आस्थाओं वाले लोगों को योग सिखाने की श्री स्वामीजी की अपनी ही पद्धति थी। वे भारत के ऐसे प्रथम योग शिक्षक थे जिन्होंने पश्चिमी देशों में जाकर योग को एक विशेष तरीके से सिखाया। सन् 1968 में वे प्रथम विश्व यात्रा पर गये। छः महीनों तक वे मुंगेर से बाहर रहे और इस अवधि में उन्होंने भारत के बाहर योग का बीज बोया। उन्होंने योग के विषय में बहुत व्यावहारिक एवं वैज्ञानिक ढंग से चर्चा की, जिससे लोग इसे समझ सकें। इतना ही नहीं, उन्होंने लोगों को योग के कुछ अभ्यास भी बताये, ताकि वे योग की प्रक्रिया को व्यक्तिगत रूप से अनुभव कर सकें। अपनी अगली विदेश यात्राओं में उन्होंने उन्नत अभ्यास और सिद्धान्त बताये ताकि मानव शरीर, मन, व्यक्तित्व और मानवीय गुणों के परिष्करण की दिशा में लोगों को यौगिक दृष्टि प्राप्त हो।

इस प्रकार, श्री स्वामीजी प्रत्येक बार यह योजना बनाकर विदेश जाते थे कि उन्हें अपने इस भ्रमण के दौरान क्या सिखाना है। उनकी योजना के कई घटक होते थे–आसन, प्राणायाम, मुद्रा, बन्ध, षट्कर्म, प्रत्याहार की तकनीकें, क्रिया योग की तकनीकें, कुण्डलिनी योग की तकनीकें, चक्र की तकनीकें सिखाना तथा योग के बारे में लोगों की भ्रान्त धारणाओं को समाप्त

कर उन्हें और प्रोत्साहन देना, उनके भीतर सम्भावनायें जगाना। इससे पहले कोई प्राणायाम नहीं सिखाता था। इसे वर्जित विषय माना जाता था। भारतवर्ष में तो यह मान्यता थी ही, यूरोप में भी यही माना जाता था। योग यूरोप से ही सारे विश्व में फैला और श्री स्वामीजी ने इस प्रक्रिया में भी एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी।

यद्यपि हमें इसका आभास नहीं है, किन्तु श्री स्वामीजी के सिखाने के तरीके से हमें बहुत कुछ मिला। अतीत को देखने पर यह महसूस होता है कि उन्होंने हमें जीवनपर्यन्त के लिए पर्याप्त दे दिया है। यह श्री स्वामीजी की स्वाभाविक क्षमता थी। विश्व के हमारे सभी केन्द्रों में, चाहे वे इंग्लैण्ड में हों, अथवा यूरोप, दक्षिण अमेरिका या ऑस्ट्रेलिया में, उन्होंने हर एक बार एक नया पैकेज प्रस्तुत किया, जिससे कि योग के विषय में ज्ञान और समझ, दोनों में वृद्धि हुई। लोगों को योगाभ्यासों की गहनता का ज्ञान हुआ। इस परिवर्तन का मुख्य श्रेय श्री स्वामीजी के प्रयासों को जाता है। उनकी योग की व्याख्या करने की कला विलक्षण थी। वे योग के शारीरिक, मनोवैज्ञानिक और आध्यात्मिक, सभी पहलुओं पर चर्चा करते थे। श्री स्वामीजी किसी व्यक्ति को सिर्फ एक शरीर के रूप में नहीं, बल्कि बुद्धि, भावना और कर्मों के गुणों के संयोजन के रूप में देखते थे और वे इन तीनों आयामों तक पहुँचने का प्रयास करते थे। जिन लोगों ने श्री स्वामीजी से इस योग की शिक्षा पायी है, वे अत्यन्त भाग्यशाली हैं। आज हम यह मानते हैं कि विश्व में जितनी परम्परायें हैं, उनमें सत्यानन्द योग ही एक ऐसी पद्धति है जो प्रत्येक अभ्यास में योग के शारीरिक, मनोवैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक आयामों का समन्वय करने का प्रयास करती है।

प्रयोग एवं अनुसन्धान

प्रयोग और शोध ही सत्यानन्द योग की प्रधान विशेषता है। श्री स्वामीजी हमेशा कहते थे, 'पहले प्रयोग करो, फिर बाद में अपनाओ।' प्रारम्भिक दिनों से ही उन्होंने प्रयोग की प्रक्रिया आरंभ कर दी थी। उन्होंने शास्त्रों से ज्ञान प्राप्त कर प्रयोग किये और उसे आसनों का व्यावहारिक रूप दिया। पवनमुक्तासन एवं शक्ति बन्ध के आसनों की शृंखलाओं की रचना, और भिन्न-भिन्न आसनों का वर्गीकरण श्री स्वामीजी द्वारा उनके प्रारम्भिक दिनों में किया गया था। उन्होंने प्राणायाम पद्धति भी विकसित की, जो आज सारे विश्व में बृहद् रूप से सिखायी जाती है।

श्री स्वामीजी ने तन्त्रों से ध्यान की कई पद्धतियों को खोजा और उन्हें अपनी कक्षाओं में अन्तर्मौन, अजपाजप, त्राटक, चिदाकाश धारणा, प्राणविद्या और योग निद्रा के रूप में सिखाया। उन्होंने इन अभ्यासों के माध्यम से कई स्वामियों पर प्रयोग किये। मैं भी उनमें से एक हूँ, जिसपर श्री स्वामीजी ने योग निद्रा का प्रयोग किया। इस प्रकार उन्होंने योग के प्रत्येक अभ्यास पर प्रयोग किये, और उनके प्रभावों का अवलोकन कर परिणाम लिखते गये।

बिहार योग विद्यालय से प्रकाशित पुस्तकों की पूरी विषय वस्तु श्री स्वामीजी द्वारा प्रारम्भिक दिनों में किये प्रयोगों का फल है। योगनिद्रा पुस्तक में योगनिद्रा के भिन्न-भिन्न सोपान न्यास की तान्त्रिक शैली के आधार पर प्रस्तुत किये गये हैं। प्रत्याहार की पद्धतियों की शृंखला, अन्तर्मौन की विभिन्न अवस्थायें, अजपा जप और प्राणविद्या, क्रिया योग और कुण्डलिनी योग के भिन्न-भिन्न अभ्यास, सब बिहार योग विद्यालय की पुस्तकों में प्रस्तुत हैं।

क्रिया योग पर बृहत् ग्रन्थ लिखने वाले श्री स्वामीजी ही पहले व्यक्ति थे। तब तक यह अभ्यास कुछ चुने हुए लोगों को गुप्त रूप से ही सिखाया जाता था। उन्होंने इस निषेध का उल्लंघन ही नहीं किया, अपितु क्रिया योग की पूरी प्रक्रिया को त्रिवर्षीय पत्राचार-पाठ्यक्रम का रूप दिया, जिसमें अभ्यासों का सार प्रस्तुत करते हुए, किस रूप और किस क्रम में अभ्यास करना है, यह बतलाया। श्री स्वामीजी पहले व्यक्ति थे जिन्होंने बन्धों और मुद्राओं की भूमिका को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से समझाया। इसके पहले बन्धों और मुद्राओं की धारणायें मात्र धारणायें थीं। इसके पहले किसी ने इन्हें व्यावहारिक और वैज्ञानिक रूप से नहीं समझाया था। बिहार योग विद्यालय द्वारा प्रकाशित पुस्तकें, जैसे–मूल बंध, हठयोग प्रदीपिका, दमा और मधुमेह, रोग और योग आदि इस बात की परिचायक हैं कि श्री स्वामीजी ने अपने संन्यासी शिष्यों को कितना गहन ज्ञान दिया। ये सभी पुस्तकें उनके योग-लक्ष्य में निहित विचारों को अभिव्यक्त करती हैं।

जब श्री स्वामीजी ने सन् 1963 में पुराने शिवानन्द आश्रम मुंगेर में बिहार योग विद्यालय की स्थापना की, तब उन्होंने प्रशिक्षण सत्रों की एक शृंखला का संचालन किया–एक नौ मासीय शिक्षक प्रशिक्षण सत्र, फिर एक छ: मासीय शिक्षक प्रशिक्षण सत्र, फिर एक त्रिमासीय शिक्षक प्रशिक्षण सत्र और अंतत: एक मासीय शिक्षक प्रशिक्षण सत्र। यह श्री स्वामीजी की इच्छा थी कि लोगों को योग का गहन, सम्यक और अनुभवजन्य ज्ञान हो, साथ-ही-साथ

अपनी जीवन शैली, अपने विचारों, अपने वातावरण से सम्बन्धित योग का भी गहन ज्ञान हो। संसार के कोने-कोने से लोग इन सत्रों में भाग लेने आये, जैसे—ऑस्ट्रेलिया, जापान, भारत, फ्रांस, जर्मनी, इंग्लैण्ड, आयरलैण्ड और दक्षिण अमेरिका।

इन सत्रों में श्री स्वामीजी ने योगाभ्यासों पर वैज्ञानिक शोध के लिए प्रेरित किया। आसनों पर पहला मूल यौगिक अनुसन्धान पोलैण्ड में सन् 1968 में शारीरिक शिक्षा अकादमी, वॉरसॉ के शरीर विज्ञान विभाग के टी. पासेक और प्रो. रोमानोवस्की द्वारा किया गया। शीर्षासन और अन्य मुख्य आसनों का मानव सरंचना, मस्तिष्क, हृदय तन्त्र, रक्त वाहिका तन्त्र, श्वसन तन्त्र और पाचन तन्त्र पर शारीरिक, जैविक और मनोवैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा सम्यक् विश्लेषण और अध्ययन किया गया।

साथ-ही-साथ श्री स्वामीजी ने बिहार में योगानुसन्धान को प्रेरित किया। सन् 1968 में पटना में इन्दिरा गाँधी इंस्टीट्यूट ऑफ कार्डियोवैस्कुलर डिसिसेज़ के निर्देशक डॉ. श्रीनिवास के साथ हृदय रोग के प्रतिवर्तन में योग के प्रभाव पर पहला अनुसन्धान छः महीने के लिये चलाया गया और इसकी उपलब्धियाँ प्रकाशित की गयीं। सन् 1978 में श्री स्वामीजी के मार्गदर्शन में रायपुर चिकित्सा महाविद्यालय में सत्य दर्शन योगाश्रम के सहयोग से श्वसन तन्त्र की बीमारियों पर योग के प्रभाव पर शोध किया गया। चर्मरोग पर योग के प्रभाव पर शोध श्री स्वामीजी के मार्गदर्शन में आयुर्वेदिक महाविद्यालय में किया गया। 1978 में उड़ीसा, बिहार और बंगाल में मधुमेह के सहस्रों मरीजों पर योगानुसन्धान का संचालन बुर्ला मेडिकल कॉलेज, सम्बलपुर, उड़ीसा ने किया। वे इस निश्चय पर पहुँचे कि इन्सुलिन आश्रित मधुमेह अब आसाध्य नहीं रहा और योगाभ्यासों द्वारा इसे आराम से सम्भाला जा सकता है।

इसके पहले योग का प्रशिक्षण मुख्यतः शारीरिक स्वास्थ्य और शारीरिक गठन के लिये दिया जाता था। किन्तु जब कुछ शोधों के परिणाम सामने आने लगे, तब यह विचार बदल गया। दूसरे स्वतन्त्र संस्थान भी योगानुसन्धान का संचालन करने लगे। अमेरिका में हिमालयन इंस्टीट्यूट के स्वामी राम ने एक महत्त्वपूर्ण योगदान किया। वे स्वेच्छा से लम्बे समय तक हृदय की धड़कन को रोक लेते थे। यौगिक शोध में दूसरा योगदान अमेरिका में ही स्वामी नादब्रह्मानन्द जी ने दिया, उन्होंने एक बन्द कक्ष में 45 मिनट तक तबला बजाते हुए पूर्ण कुम्भक किया। इसी प्रकार भारत में कई स्वामियों

ने वैज्ञानिक परीक्षण के प्रयोग का विषय बनना स्वीकार किया, उनके इस योगदान के फलस्वरूप योग सम्बन्धी ज्ञान का बहुत ही प्रेरक और महत्त्वपूर्ण विकास हुआ।

सत्तर के दशक में श्री स्वामीजी ने भारत में शिक्षा के क्षेत्र में योग को सम्मिलित कराने का प्रयास किया, किन्तु उस समय ऐसा नहीं हो पाया। फिर भी वे यूरोप में राई (रिसर्च ऑन योगा इन एजुकेशन, जिसकी स्थापना स्वामी योगभक्ति द्वारा पेरिस में 1977 में की गयी तथा जिसके विश्व के अनेकानेक राष्ट्रों में केन्द्र हैं) और कनाडा में स्वामी अरुन्धती द्वारा स्थापित 'येस' (योगा एजुकेशन एट स्कूल) के माध्यम से योग की झलक दिखाने में सफल हुए। ये संस्थायें शिक्षकों को योग सिखाती हैं ताकि विद्यार्थियों को कक्षाओं के साथ-साथ घर में भी प्रशिक्षित किया जा सके। जब विदेशों में बच्चों को योग शिक्षा प्रदान करने के प्रभाव सामने आने लगे, तब भारत सरकार ने अपने राष्ट्रीय पाठ्यक्रम में योग को सम्मिलित करने का निर्णय लिया, जिससे बच्चों को विद्यालय स्तर से ही प्रशिक्षण मिलना शुरू हो जाए। निर्णय ले लिया गया है, परन्तु साधन अभी तक उपलब्ध नहीं हैं।

इसी प्रकार श्वसन तन्त्र, हृदय तन्त्र, पाचन तन्त्र, मांसपेशीय और स्नायविक विकार आदि पर योगानुसन्धानों के परिणामों को देखकर, और व्याधियों के द्रुत उपचार में योगाभ्यासों की भूमिका को देखकर भारत के कई चिकित्सा महाविद्यालयों ने योग को अपनाने का निश्चय किया। 1993 में बिहार सरकार ने एम.बी.बी.एस. के पाठ्यक्रम में योग का समावेश करने का निश्चय किया। बिहार योग विद्यालय को बिहार के आठ सरकारी चिकित्सा महाविद्यालयों में योगोपचार के प्रशिक्षण सत्र संचालित करने के लिये कहा गया। दो साल तक बिहार योग विद्यालय से डॉक्टरों और संन्यासियों ने इन विभिन्न चिकित्सा महाविद्यालयों में जाकर वहाँ के छात्रों को योग चिकित्सा का प्रशिक्षण दिया। फलस्वरूप भारतीय चिकित्सक संघ की बिहार शाखा ने भारतीय चिकित्सा परिषद्, नयी दिल्ली को सुझाव दिया कि योग को एम.बी.बी.एस. के पाठ्यक्रम का अंग बनाया जाए। यह सुझाव अभी विचाराधीन है। बिहार सरकार ने भी बिहार के चिकित्सकों को बिहार योग विद्यालय में योगोपचार के सिद्धान्तों और अभ्यासों का प्रशिक्षण दिलवाने के लिए सरकारी प्रस्ताव पारित किया है। साथ-ही-साथ स्वास्थ्य विभाग ने ऐसे रोगों की सूची बनानी आरंभ की है, जो आसन, प्राणायाम और षट्कर्मों के सामान्य

अभ्यासों द्वारा नियन्त्रित किये जा सकते हैं। बत्तीस रोगों की विस्तृत सूची तैयार की गई है, जिनका उल्लेख रोग और योग नामक पुस्तक में है।

श्री स्वामीजी प्रत्येक योग शिक्षक को किसी एक क्षेत्र में विशेषज्ञता प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित किया करते थे। इस प्रकार उन्होंने कई योग शिक्षकों को तैयार किया जो योग के किसी एक क्षेत्र में कुशल थे। समय के साथ वैज्ञानिक शोध की तीव्रता में भी वृद्धि हुई। ऑस्ट्रेलिया में स्वामी शंकरदेवानन्द ने पवनमुक्तासन की भूमिका पर अनुसन्धान किये, विशेषकर आसन करते समय मांसपेशियों के संचालन पर शोध किया गया। कनाडा में स्वामी अरुन्धती षट्कर्मों के दौरान रक्तचाप पर पड़ने वाले प्रभावों पर शोध कर रही हैं।

यद्यपि श्री स्वामीजी ने 1988 में आश्रम छोड़ा, किन्तु फिर भी वे हमें योग को समाज के विभिन्न वर्गों में ले जाते रहने के लिये प्रोत्साहित करते रहे। सन् 1994 में बिहार योग विद्यालय के स्वामियों ने सैनिक छावनियों में जाकर एक अध्ययन किया। यह कार्य उन्हें सियाचिन हिमनद तक ले गया, जहाँ उन्होंने उन कठिन अवस्थाओं का अनुभव किया जिनसे सैनिकों को गुजरना पड़ता है और तदनुरूप योग का एक कार्यक्रम तैयार किया। वे बीकानेर, राजस्थान भी गये, मरुस्थल के वातावरण का अनुभव किया, और वहाँ के लिए भी योग का एक कार्यक्रम बनाकर सेना के जवानों को प्रशिक्षित किया। इसके परिणामस्वरूप सेना ने अपनी एक टुकड़ी को योग का प्रशिक्षण दिलवाने का निर्णय लिया है, तत्पश्चात् इन योग प्रशिक्षित सैनिकों एवं सामान्य प्रशिक्षण पाने वाले सैनिकों का एक तुलनात्मक अध्ययन किया जाएगा। ये दोनों परियोजनायें सेना और बिहार योग भारती के समक्ष विचाराधीन हैं और निकट भविष्य में आरम्भ की जायेंगी।

सन् 1994 में मुझे 'राई' द्वारा आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन, पेरिस में आमंत्रित किया गया था। विवेचना का विषय था, कक्षाओं के वातावरण में योग किस प्रकार मदद कर सकता है। फलस्वरूप पेरिस घोषणा पत्र में सत्रह राष्ट्रों ने योग को अपनी शिक्षा प्रणाली में सम्मिलित करने का निश्चय किया। इस वर्ष मार्च में युनेस्को का एक और सम्मेलन पेरिस में है, जहाँ हम शिक्षा में योग की भूमिका पर विचार-विमर्श करने जायेंगे।

एक अन्य परियोजना के अंतर्गत बिहार योग विद्यालय के स्वामियों द्वारा कारागारों में कार्यक्रम संचालित किये जा रहे हैं, जिसका प्रारम्भ 1994 में हुआ। हर वर्ष इन कारागारों में योग प्रशिक्षण का कार्यक्रम एक माह के लिये

नियमित रूप से होता है। दो वर्षों की अवधि में हमने 176 उम्र-कैदियों को योग शिक्षकों के रूप में प्रशिक्षित किया, और सबको अधिकारिक प्रमाण-पत्र दिया गया। जब भी अनुरोध किया जाता है, ये अपने सह-कैदियों को योग सिखाने के लिये तत्पर रहते हैं। साथ-ही-साथ बिहार सरकार ने कैदियों को योग का कार्य करने पर सजा में छूट देने का भी निर्णय ले लिया है।

योग को खेल जगत् तक भी ले जाया गया है। सन् 1999 में स्पोर्ट्स ऑथोरिटी ऑफ इण्डिया के कलकत्ता और नई दिल्ली केन्द्रों में प्रशिक्षण कार्यक्रमों का संचालन किया गया। इस प्रकार योगानुसन्धान का कार्यक्रम, जो श्री स्वामीजी ने बिहार योग विद्यालय की स्थापना के साथ प्रारम्भ किया था, आज भी विभिन्न रूपों में चल रहा है। बिहार योग भारती और ऑस्ट्रेलिया की सत्यानन्द योग अकादमी संयुक्त रूप से आसन, प्राणायाम, मुद्रा और बन्ध पर मौलिक अनुसन्धान करने वाले हैं। सदा अनेकानेक योजनायें कल्पित होती रहती हैं।

एक परियोजना जिसमें सब स्वामी भाग लेते हैं, सीता कल्याणम् है, जो हर वर्ष स्वामी सत्यानन्द जी की तपोभूमि रिखिया में आयोजित होती है। श्री स्वामीजी द्वारा सन् 1984 में स्थापित दातव्य संस्था शिवानन्द मठ ने पूरी रिखिया पंचायत को अपनाया है, जिसमें कई ग्राम और करीब दस हजार परिवार शामिल हैं। हर वर्ष हर परिवार को कपड़े और रसोई के बर्त्तन जैसी व्यक्तिगत एवं सामाजिक आवश्यकता की वस्तुएँ तथा आवास एवं रोजगार के साधन उपलब्ध कराये जाते हैं। शिक्षा और चिकित्सा का भी प्रबन्ध किया जाता है। वहाँ कई गतिविधियाँ चलती रहती हैं, जिनमें समय-समय पर स्वामीगण साधना और अनुशासन के रूप में भाग लेते रहते हैं।

इस चर्चा से उस शक्ति का आभास होता है जिसे श्री स्वामीजी ने सत्यानन्द/ बिहार योग पद्धति में संचारित किया है। सत्यानन्द योग सामान्य योग से भिन्न है। इसका एक कारण तो यह है कि यह एक प्रगतिशील योग है। जब योग मानव-परिवेश, मानव-आवश्यकता और अन्ततः मानव-जीवन एवं संस्कृति का अंग बन जाता है, तब यह सार्वभौमिक, प्रगतिशील एवं प्रेरक बनता है। सत्यानन्द योग इसी श्रेणी में आता है। प्राचीन परम्पराओं पर निरन्तर कार्य होता रहता है और प्राप्त ज्ञान को सर्वसुलभ बनाया जाता है। किसी एक विषय को नहीं, बल्कि मानव व्यक्तित्व के पूर्ण विकास को दृष्टिगत रखकर कार्य किया जाता है।

—स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती, जनवरी 2000

संस्मरण

परमहंस जी ने हम संन्यासियों को अत्यन्त कठोर तपस्या करवाई, जिस प्रकार से सोने को तपाकर शुद्ध किया जाता है। और उसी के कारण हम आज इस पड़ाव पर हैं। जब प्रथम संन्यास सत्र प्रारम्भ हुआ, मुझे भवन के बरामदे में सोने को कहा जाता था। तब वहाँ मच्छरों का भारी आतंक था। अन्य संन्यासियों को मच्छरदानियाँ दी गईं, लेकिन मुझे नहीं मिल पाई। फलस्वरूप मेरी सारी रात मच्छरों को मारने में गुजर जाती थी। मैं सोचता था कि ये कैसे गुरुजी हैं, मुझे मच्छरदानी नहीं दी, जबकि और सभी को दी है। मेरी नींद ही पूरी नहीं हो पाती थी। मैंने रात में एक खाली डब्बा पास रखना प्रारम्भ किया। मैं रातभर मच्छर मार कर उसमें डालता रहता और सुबह तक वह भर जाता था तो मैं उसे खाली कर आता। एक बार मैं सुबह-सुबह डब्बा उठाना भूल गया। किसी अन्य साथी संन्यासी ने वह देख लिया और परमहंस जी को दिखाने ले गया, शिकायत स्वरूप कि गोरखनाथ मच्छरों की हत्या करता है। परमहंस जी ने हमें बुलाया और पूछा कि यह क्या है। हमने कहा कि मच्छर बहुत परेशान करते हैं। वे बोले, संन्यासी इसलिये बने हो कि मच्छरों को मारोगे? हमने कहा, ठीक है गुरुजी, अब नहीं मारेंगे। रात्रि में हमने सोचा कि रात्रि में सोयेंगे नहीं, ध्यान के आसन में बैठेंगे। हम ध्यान के आसन में बैठे। मच्छर फिर आना प्रारम्भ हुए, मगर फिर हमने देखा कि आते थे और उड़ कर चले जाते थे, काटते नहीं थे। हमने सोचा कि बड़ा आश्चर्य है। फिर हमने इसी प्रकार सोना प्रारम्भ किया। मच्छर आते थे और चले जाते थे, काटते नहीं थे। यह गुरु की कृपा थी। इसके दूसरे दिन से गुरुदेव ने हमे मच्छरदानी दे दी। हमने कहा कि गुरुदेव अब इसकी जरूरत नहीं है, पर उन्होंने कहा कि रखो।

संन्यास सत्र में कभी 12 बजे तो कभी 1 बजे उठा दिया जाता था। कभी-कभी कई घण्टे प्राणायाम की कक्षायें चलती थीं। ध्यान के अभ्यास में रीढ़ की हड्डी को सीधा रखने पर बल दिया जाता था। मेरी और कई अभ्यासियों की हड्डी थोड़े ही समय में झुक जाती थी। गुरुजी उस समय एक बेंत पास में रखते थे। एक बार ऐसे ही अभ्यास चल रहा था। वे बार-बार रीढ़ की हड्डी ठीक करने के लिए बोल रहे थे। पर मुझ समेत कई की रीढ़ की हड्डी झुक गई थी। परमहंस जी ने बोलना बन्द कर दिया था। हमलोग समझ रहे थे कि वे मंच पर ही विराजमान हैं, जबकि वे मेरे ठीक पीछे चुपचाप आकर खड़े हो गये थे। अचानक ही उनकी बेंत मेरे पीठ के पीछे पड़ी, मेरी रीढ़ की हड्डी

तुरन्त सीधी हो गई। बेंत की आवाज सुनकर अन्य सभी साथियों की भी रीढ़ की हड्डी तुरन्त सीधी हो गई। उस दिन के पश्चात् मेरी रीढ़ की हड्डी कभी झुकी नहीं। यह उनका एक प्रकार का शक्तिपात था।

मुझे मेरे साथी लोग चिढ़ाते थे कि तुम्हें मोक्ष की प्राप्ति नहीं होगी। जब मैंने पूछा क्यों, तो वे बोलते थे कि गुरुदेव ने तुम्हें जो नाम दिया है उसके अन्त में आनन्द नहीं है, जैसे नित्यबोधानन्द, निरंजनानन्द, शक्तिमित्रानन्द, आदि-आदि। हम बड़े दु:खी होकर गुरुजी के पास गये और कहा कि गुरु जी हमारा नाम बदल दीजिए। उन्होंने पूछा, क्यों? तो हमने उत्तर दिया कि हमारे नाम के आगे आनन्द नहीं है, इसलिए हमें मोक्ष की प्राप्ति नहीं होगी। फिर वे हमें बैठाकर प्रेम से हमारे नाम का अर्थ समझाने लगे।

सन् 1983 में मुंगेर में बच्चों का शिविर हुआ। देश-विदेश के 8 वर्ष से 18 वर्ष के 500 बच्चे उस शिविर में सम्मिलित हुए। पूरी वानर सेना थी। इन्हें नियन्त्रण में लाना बहुत कठिन प्रतीत हो रहा था। रात्रि में एक-दो बजे तक बच्चे अपनी उछल-कूद में व्यस्त रहते थे। कोई किसी का बिस्तर खींच रहा था, तो कोई कुछ शरारत कर रहा था। पूरा गंगादर्शन धमा-चौकड़ी का स्थान बना हुआ था। हम और स्वामी निरंजन बहुत परेशान थे कि कैसे इन्हें नियन्त्रण में लाया जा सके? परमहंस जी का कड़ा निर्देश था कि बच्चों को न मारा-पीटा जाए और न ही डाँटा जाए। फिर अचानक मुझे वह तरीका याद आ गया जो परमहंस जी हमलोगों के लिए, हमारी शरारतों पर काबू पाने के लिये इस्तेमाल करते थे। हम और स्वामी निरंजन फिर बच्चों के कक्ष में गए और बोले कि 5 मिनट के अंदर सब बच्चे चुपचाप सो नहीं गए तो जो भी बच्चा जागता पाया जाएगा उसका नाश्ता-खाना सब बन्द कर दिया जाएगा। इसका तुरन्त असर हुआ। पूरे गंगादर्शन में शान्ति छा गई।

एक और अनुभव मुझे याद आ रहा है। 1975 की बात है। हम परमहंस जी के साथ कार में बैठकर राँची के जंगलों से गुजर रहे थे कि अचानक 15-16 नकाबपोश व्यक्तियों ने हमारी कार रोक ली, वे सभी बंदूक से लैस थे। हम सभी घबरा गये, परन्तु परमहंसजी शान्त बैठे रहे। डाकुओं के मुखिया ने परमहंसजी को हमलोगों का मुखिया पहचान कर उनकी छाती पर बन्दूक टिका दी, उंगली ट्रिगर पर थी। परमहंस जी ने कहा, 'तुम क्या चाहते हो।' वे बोले, ' कार सहित सब कुछ हमारे हवाले करो और भाग जाओ।' परमहंस जी बोले, 'ठीक है, हम कार यहीं पर छोड़ कर चले जाते हैं, परन्तु तुम में से

किसी को ड्राइविंग आती है क्या?' वे बोले, 'नहीं।' तो परमहंसजी ने पूछा, 'फिर क्या करोगे कार का?' डाकू बोले कि ठीक है सब पैसा दो। परमहंसजी ने पूछा, 'कितना पैसा चाहिए?' इतने में डाकू मुखिया के साथी मुखिया से बोले कि क्यों देर कर रहे हो, गोली मारो। डाकू मुखिया ने गोली चलाने की कोशिश की, पर वह ट्रिगर दबा नहीं सका। उसके साथी फिर बोले कि क्या कर रहे हो, तो वह बोला कि मुझसे घोड़ा नहीं दब रहा है। साथी डाकू बोले कि ठीक है पीछे हटो, हम चलाते हैं गोली।

मुखिया डाकू ने पीछे हटने का प्रयास किया, परन्तु व्यर्थ रहा। वह बंदूक छाती से अलग हटा नहीं पा रहा था। इधर हमलोगों की हालत खराब हुई जा रही थी कि पता नहीं कब ट्रिगर दब जाए। साथी डाकू बोले कि पीछे हटो। मुखिया डाकू बोला कि मैं पीछे भी नहीं हट पा रहा हूँ। अब सभी डाकुओं को समझ में आया कि यह कोई पहुँचे हुए सन्त हैं, तो वे क्षमायाचना करने लगे। परमहंस जी ने फिर कुछ किया होगा, तब मुखिया डाकू बंदूक पीछे हटा सका। वह भी परमहंसजी के चरणों में गिर पड़ा।

परमहंस जी ने कहा, तुम लोग प्रोफेशनल डाकू नहीं हो। प्रोफेशनल डाकू बनना चाहते हो तो ऐसा किया करो कि बिना बात किये तुरन्त गोली मारी, लूटपाट की और भाग गये। यदि ऐसा नहीं करना चाहते तो यह धन्धा छोड़ दो। सभी ने धन्धा छोड़ने की कसम खाई। परमहंस जी ने उन्हें राजनाँदगाँव सम्मेलन में आने का निमन्त्रण दिया। वे लोग राजनाँदगाँव सम्मेलन में पहुँचे भी। परमहंस जी ने उन्हें तुरन्त पहचान लिया। परमहंस जी ने उनका परिचय सभी संन्यासियों से कराते हुए पूरी घटना का वर्णन भी किया। वर्णन सुनते ही कई संन्यासी बाहें चढ़ाने लगे और उन लोगों की मार-पीट का उपक्रम करने लगे। परन्तु परमहंस जी ने तुरन्त संन्यासियों को डाँटा और उनका विशेष ख्याल रखने को कहा। वे सभी व्यक्ति जो कि अब डकैती का धन्धा छोड़ चुके थे, परमहंस जी का आशीर्वाद प्राप्त कर लौट गये। अद्भुत थी परमहंस जी की लीला!

—स्वामी गोरखनाथ सरस्वती, मई 2000

स्थितप्रज्ञ पुरुष

पहले-पहल जब मैं आश्रम आया और गीता का अध्ययन प्रारम्भ किया तो बहुधा वह श्लोक मेरे समक्ष आ उपस्थित होता था, जिसमें अर्जुन श्री कृष्ण

से यह प्रश्न करता है, 'हे केशव! कृपया मुझे बतलाइये कि स्थितप्रज्ञ व्यक्ति किस प्रकार जीता है, चिन्तन करता है, कर्म करता है, कैसे बोलता है, कैसे बैठता है और कैसे चलता है?'

गीता के उस श्लोक का पाठ करने पर मेरे मन में एक योगी, एक सिद्ध पुरुष की छवि उभरती थी, जो कभी ईसा की तरह, कभी बुद्ध की तरह, तो कभी सुदूर हिमालय की गुफा में निवास करते किसी साधु की तरह दिखाई पड़ती थी।

उस दूरस्थ छवि के साथ एक दूसरा प्रश्न भी कौंधता था, 'वे लोग कौन हैं?' इस प्रकार के प्रश्न मेरे मानसपटल पर कई वर्षों तक उमड़ते रहे। लेकिन अब, जब मैं स्वामीजी को देखता हूँ तो मुझे प्रतीत होता है कि गीता में वर्णित वह पूर्ण, स्थितप्रज्ञ पुरुष उनमें विद्यमान है।

स्वामीजी मेरे गुरु हैं, लेकिन उससे भी बढ़ कर मैं अपने जीवन में उन्हें एक प्रेरणास्त्रोत के रूप में देखता हूँ। वे एक ऐसे प्रेरणा-पुरुष हैं जो मुझमें नये विचारों, नये कार्यों, नये साहस और नई शक्ति का संचार करते हैं, जो मुझमें विश्वास, श्रद्धा, भक्ति और करुणा की भावना उत्पन्न करते हैं। उनसे प्रेरणा प्राप्त कर, और उनके दिशा-निर्देश पर उनके आदर्शों के अनुरूप कार्य कर मैं अपने जीवन में परिपूर्णता और परितोष का अनुभव करता हूँ।

जब भी मैं उनके दर्शन करता हूँ, मेरे नेत्रों के समक्ष जीवन का एक अभिनव आयाम खुलता नजर आता है। उनके समान सरल और सहज व्यक्ति मैंने अपने जीवन में आज तक नहीं देखा है। उनके समान व्यवहारकुशल और साथ ही करुणाशील व्यक्ति भी देखने को नहीं मिलेगा। ऐसा कोई व्यक्ति आज तक मुझे नहीं दिखा जो गुरु-गम्भीर, ज्ञान-विज्ञान की बातों को विनोद के पुट के साथ हमारे सामने प्रस्तुत कर दे। ये समस्त विशिष्ट गुण दिन-प्रतिदिन उनमें और अधिक प्रबल होते जा रहे हैं। हम लोगों ने ईसा, बुद्ध या अन्य महापुरुषों को धरती पर नहीं देखा है, लेकिन आज मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि परमहंस जी को देख कर लोगों को यह विश्वास हो सकता है कि इस पृथ्वी पर इस कोटि के महापुरुषों का अवतरण हुआ है और ऐसे सिद्ध मनीषी हमारे बीच रह कर हमारे लिए प्रेरणा एवं ज्ञान का आदर्श प्रस्तुत करते रहे हैं।

–स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती, जुलाई 2002

गुरु की अद्‌भुत कृपा के क्षण

दिनांक 12 दिसम्बर 2001 का दोपहर का समय था। रामायण मण्डली के साथ रासलीला का प्रोग्राम देखने तपोवन में आयी। रामायण मण्डली के साथ मैं सुबह से नवाह्न पाठ कर रही थी, इसलिए रामायण मण्डली का कोई स्थान निश्चित नहीं हो सका था। अत: अपराह्न में ज्यों ही ग्रुप के साथ पहुँची, व्यवस्था वाले संन्यासी ने कहा–नहीं, यहाँ नहीं बैठना है, यह जगह गाँव वालों के लिए आरक्षित है। हम उस घेरे से निकलकर बायें तरफ के घेरे में आ गये। पता चला कि ये सारी जगह राजनाँदगाँव वालों की है, तो मेरे मुँह से इत्तफाक से निकल गया कि गुरुजी ने जन्म लिया राजनाँदगाँव में, पर रह रहे हैं मुंगेर में, इसलिए इस पर हम लोगों का भी अधिकार हो सकता है। तब तक अनायास उधर से स्वामीजी गुजरे। मैंने इसी बात को दुहरा दिया, वे हँस पड़े और कहा, बैठने दो।

थोड़ी देर बाद आगे में परमहंसजी की कुर्सी लगने लगी, वे कहीं से घूमते-घूमते आ गये। बोले–हमारी कुर्सी बाँस के पास रखो और निरंजन की कुर्सी ऊपर साइड में लगा दो। स्वामीजी आह्लादित होकर और बिल्कुल एक छोटे बच्चे की भाँति परमहंस जी से कह उठे–नहीं, मैं आपके बगल में नीचे बैठूँगा। बस, स्वामीजी के कहने की देर थी कि परमहंसजी ने हाँ की मुहर लगा दी। पुन: उनकी दृष्टि रामायण मण्डली पर पड़ी। उन्होंने सोचा, 'अरे! ये लोग तो देख नहीं पायेंगी।' उन्होंने कुर्सी की जगह बदल कर ठीक कोने में लगा ली और हम लोगों से कहा, तुम लोग भी हमारे पास आ जाओ। उनके कहने की देर थी कि हम लोग उनकी कुर्सी से सट गये। मैं स्वयं को अतिभाग्यशाली समझते हुए रामचरितमानस की पंक्ति को गुरु के स्नेह से मिला रही थी– *संत हृदय नवनीत समाना। कहा कविन्ह परि कहै न जाना॥*

मेरी आँखों से आँसू छलक रहे थे कि अभी-अभी सब भगा रहे थे, पर गुरु की कृपा हुई, तो जैसे गली की धूल महल के कलश को छू लेती है, वैसे ही मुझ पर जब उनकी कृपा हुई तो मैं उनके बगल में पहुँच गयी। रासलीला प्रारंभ हुई। उस दिन कृष्ण जन्मोत्सव मनाया गया। पुन: कृष्ण अपनी लीला दिखाने लगे। जब मक्खन-मिश्री चुरा कर खा रहे थे, उसी समय स्वामीजी की तरफ इशारा हुआ, 'आऊ-आऊ।' परमहंसजी ने स्वामीजी को आदेश किया, 'जाऊ।' स्वामीजी को घोड़ा भी बनना पड़ा। उन्हें तो खुद बाल-विनोद करना अच्छा लगता है। घोड़ा बनने के बाद ज्यों ही स्टेज से उतरने लगे, बाल कृष्ण

पुकारे, 'अरे-अरे प्रसाद तो लेते जाऊ।' जब प्रसाद लेकर परमहंसजी के पास लौटे तो मेरे हाथ में वही माखन-मिश्री डाल दी। मैं तो धन्य-धन्य हो गयी। मुझे प्रसाद मिला, पर ऐसा लगा–अरे, मेरे कृष्ण रूपी गुरु तो मेरे सामने दो-दो बैठे हैं, इन्हीं को प्रसाद पहले खिलाना चाहिए। मैंने थोड़ा-सा माखन लेकर गुरुदेव के मुख में देना चाहा। बस, उन्होंने तो एक सरल बालक की तरह मुँह खोलकर प्रसाद ले लिया। फिर मैंने परमहंस जी को खिलाने के लिए हाथ बढ़ाया, पर तब तक उन्होंने झपट कर मेरे हाथ से लेकर मेरे ही मुँह में डाल दिया। मैं उस क्षण का वर्णन करने में असमर्थ हूँ। काश! मेरी लेखनी में ऐसी ताकत होती, तो परमहंसजी और स्वामीजी की उस कृपा को चित्रित कर पाती। लेकिन जैसे गूँगा गुड़ खाकर उसका वर्णन नहीं कर सकता, वैसे ही उन क्षणों के वर्णन के लिए मेरे पास न शब्द हैं, न कलम में ताकत है।

उस क्षण के बाद लगा कि काश! मैं भी पूर्ण संन्यासी होती तो अपने गुरु के पास रहती। हमारी उठी हुई भावना अगली सुबह तक दबने लगी, पर ज्यों ही शाम को पुनः रासलीला शुरू हुई तो उस दिन गोपियाँ कृष्ण की मधुर बाँसुरी सुनकर, शरद पूर्णिमा की रात को कृष्ण के पास आ गयी थीं। कृष्ण उन्हें घर वापस जाने को कह रहे थे, उन्हें समझा रहे थे कि पतिव्रता को अपने पति के पास लौट जाना चाहिए। इस पर गोपियों के उत्तर से श्रीकृष्ण निरुत्तर हो गये। एक छोटा-सा दृष्टान्त गोपी ने सुनाया कि एक पतिव्रता नारी के पति बाहर जाने लगे तो पत्नी ने कहा कि आपके बिना मैं किसकी पूजा करूँगी। उसके पति ने एक मिट्टी का पति बनाकर दे दिया और उससे कहा कि मैं जब तक न आऊँ, तुम इसकी पूजा करना। पुनः कुछ समय के बाद उसका पति लौटा तो यह पतिव्रता अपने मिट्टी के पति की सेवा कर रही थी, असली पति ने कहा, 'दरवाजा खोलो।' अब यदि दरवाजा खोलती है तो मिट्टी के पति की पूजा खण्डित होती है और नहीं खोलने से असली पति अन्दर नहीं आ सकते। अतः गोपी कृष्ण से पूछती है, 'हे केशव! अब आप ही बताइये कि उस पतिव्रता को मिट्टी के पति को पूजना चाहिए या सही के पति को?' कृष्ण निरुत्तर हो गये। इस पर गोपी कहती है कि मैं तो मिट्टी के पति को घर छोड़ आयी हूँ, असली परमात्मा रूपी पति मेरे सामने हैं, फिर आप मिट्टी के पति के पास क्यों मुझे भेजते हो!'

–संन्यासी मंत्रनिधि, मुंगेर, मार्च 2002

अविस्मरणीय क्षण

दस दिसम्बर को रिखिया पहुँच कर देखा, गुरुदेव ने जंगल में मंगल की सृष्टि कर दी है। भंडारे के पास स्वामी निरंजन जी के दर्शन हुए। उन्होंने सहज सहास्य अक्षय जी से पूछा, 'राम जी को कहाँ छोड़ आए?' बड़ी देर तक उस संध्या उनके साथ गुरुदेव की चर्चा करते रहे, 'वे देवघर के सचल महादेव हैं।' विवाह का निमन्त्रण रघुनाथ जी और तुलसी माई के नाम समर्पित किया गया। पूज्य स्वामी जी तो इस यज्ञ के कर्ता ही थे, उनका नाम निमंत्रण में लिखने का साहस हम कैसे कर सकते थे। मुझे बुखार था। खाँसी इतनी कि बोलने में भी कष्ट हो रहा था। स्वामी जी ने कहा, ऐसे में कथा तो नहीं हो सकती। आप बैठिएगा, कीर्तन-भजन होता रहेगा। मेरा मन भर आया। पूरे वर्षभर मैं इस दिन की प्रतीक्षा करती हूँ। मुझ अकिंचन के पास कथा के अतिरिक्त है क्या जो गुरुदेव को भेंट करूँगी। मैंने कहा, 'नहीं, कथा बंद करने को मत कहिए, आप मुझे बस ठीक कर दीजिए।'

रात को नींद नहीं आई। बुखार के कारण चिन्ता बनी रही, कल क्या कथा कह सकूँगी? प्रातः यज्ञ मंडप में पहुँचते ही पूज्य गुरुदेव के दर्शन हुए। शुभ, सुन्दर और सत्य–कृपासिन्धु नररूप हरि। एक पल के लिए मन में आया, क्या वे जानते हैं मैं किस तरह उन्हें साँस-साँस में याद करती हूँ? अवश्य ही जानते हैं। उन्होंने पिता बन कर मुझ अनाथ को सनाथ किया है, गुरु बनकर मेरे दोषों का निवारण किया है और संकट की अनेक घड़ियों में ईश्वर बन कर मेरी रक्षा की है–म्हारा सतगुरु पकड़ी बांह, उतर गई भवसागर!

उन्हें प्रणाम करके जब कथा में बैठी, खाँसी एक बार भी नहीं आई। दिन बीत रहे थे, भोर से सांझ, सांझ से भोर। एक-एक क्षण श्री स्वामीजी के पावन सान्निध्य से ओतप्रोत था। कभी कीर्तन करते हुए, कभी रासलीला के आन्तरिक रहस्यों को समझाते हुए, और कभी लीला के बीच शंकर जी के साथ नाचते हुए–

दरिया सतगुरु कृपा कर कहा अनेक प्रसंग
बरसा बादल प्रेम का भीज गया सब अंग

चारों ओर वे ही छाए हुए थे। कथा में कभी-कभी वे मेरे साथ गाने लगते तो मेरा अभिभूत मन मुझसे कहता–बोलो मत, बस, चुपचाप सुनो। तुम्हें रसगुल्ला खाने को मिल रहा है, रसगुल्ले के बारे में बोलना क्या जरूरी है।

खाँसी दिन भर आती थी, रात में आती थी, पर कथा में एक बार भी नहीं। धन्यवाद स्वामी निरंजन! पता नहीं कैसे पाँच दिन बीत गये। रिखिया तो साकेत, गोलोक या वैकुण्ठ जैसा एक धाम है, दूसरी ही दुनिया थी कोई वहाँ। रात्रि में स्वामी निरंजन जी स्वयं भंडारे का निरीक्षण करते थे और पंगत में सबकी जूठी पत्तलें उठाते थे। अद्‌भुत था सबकुछ और अविस्मरणीय।

हम वहाँ हैं जहाँ से हमको भी खुद हमारी खबर नहीं आती

सोलह दिसंबर को सुषमा आ गई थी। मानस की ट्रेन दस घण्टे लेट थी। स्वामीजी बालसुलभ उत्सुकता से पूछ रहे थे, 'दूसरा वाला कहाँ है जी? हल्दी लगवानी होगी न।' मैंने निरंजन जी से पूछा, 'हल्दी कहाँ कैसे लगानी है?' वे हँसकर बोले, 'मुझे तो हल्दी का कोई अनुभव नहीं है।' सत्रह की सुबह मानस गेरू पहन कर स्वामीजी के पास पहुँचा। स्वामीजी खूब हँसे, 'क्या रे, तेरे पास अच्छा कपड़ा नहीं है?' नेत्रों से झर रही थी अपार कृपा, अनन्त वात्सल्य! मेरी ओर मुड़ कर कहा, रघुनाथ कुटीर में ले जाओ। वहाँ चंदन का पेड़ है, उसके नीचे हल्दी लगवाना।

धन्य भाग्य, अतिशय कृपा! रघुनाथ जी, जानकी मैया, तुलसी माई और पंचाग्नि स्थल को प्रणाम करके बच्चे चंदन के पेड़ के नीचे बैठे। त्रिवेणी, संगीता, सुषमा की माँ और सखियाँ हल्दी के गीत गाने लगीं तो कविजी भी मफलर की घूंघट निकाल कर सबके साथ मिल कर गा उठे–'मेरे रामजी को कोई मत देखो, नजरिया लग जाएगी।' सारे विधि-विधान जैसे अनायास हो रहे थे आनंद मंगल के साथ। हल्दी के बाद सुषमा जब प्रणाम करने आई तो स्वामीजी ने कहा–देखो, घरेलू पत्नी बन कर मत रहना। खुद की कोई पहचान बनानी चाहिए न लड़कियों को। फिर मेरी ओर देख कर हँसे–गलत बोला क्या? तुम इसको घरेलू बहू बनाओगी?

19 दिसम्बर को यज्ञ की पूर्णाहूति के साथ प्रसाद वितरण हो रहा था। जैसे कोई कुबेर का भंडार हो। अद्‌भुत अखंड श्रृंखला थी दान की। अजब पोटली थी बाबा की, ज्यों-ज्यों बाँट रहे थे त्यों-त्यों बढ़ रही थी। बेशक, गुरुदेव के जैसा शाहंशाह दूसरा कौन है। उन्होंने प्रवृत्ति की ही नहीं, निवृत्ति की भी निवृत्ति कर रखी है। उनकी दिग्विजय को कौन चुनौती दे सकता है भला।

भागलपुर से बिना दूल्हे की बारात लेकर अक्षय जी पहुँच चुके थे। संभावना से कई गुणा अधिक अतिथियों का आगमन हो चुका था और लोग थे

कि चले ही आ रहे थे। मानस ने हँस कर कहा, असली दूल्हा तो गुरुजी ही हैं, सब उन्हीं के दर्शन के लिए चले आ रहे हैं। चारों ओर दर्शन का मेला लगा है। रानीगंज से भैया भात भरने आए। नेग के बाद भाभी कहने लगीं, आज के दिन बहन भाई के गले मिलती है। इस मिलन को देखने के लिए कहते हैं कि सूरज का रथ खड़ा हो जाता है। भैया से गले मिलने के बाद अचानक एक बात मन में आई। स्वामी निरंजन जी छोटे भाई हैं मेरे। क्या आज के दिन मैं उनसे गले मिल सकती हूँ? फिर एक संकोच-सा हुआ, चाहे वे मेरे छोटे भाई हैं, पर उनकी महिमा भी तो है। वे स्वामीजी की गद्‌दी पर हैं, हमारे लिए उतने ही पूज्य, मैं ऐसा कैसे कर सकती हूँ।

थोड़ी देर बाद मंडप में उन्हें देखा, व्यवस्था देखते हुए। लाल चुनरी का साफा बाँधे हुए सहज आनंदी मुद्रा में हंसते हुए बोले—मण्डप सुन्दर सजा है न? मैं उन्हें देखकर सब भूल गई और उन्हें गले लगा लिया एक पल के लिए। भीतर से रुलाई आने लगी थी, इसलिए तुरंत वहाँ से चली आई। सूरज का रथ जरूर रुक गया था, क्योंकि कई दिन बाद घनेरे बादल छँट गए थे और धूप झाँकने लगी थी।

बारात प्रस्थान का समय हो चला था। मानस रघुनाथ जी को प्रणाम करके गाड़ी में बैठ रहा था, मंडप से उठ रहा हर-हर महादेव का जयघोष वातवरण में गूंज रहा था। अपार भीड़ के कारण मैं बारात देख नहीं पाई। कुटीर की ओर से मंडप में आकर देखा—स्वामी निरंजन जी राम जी को लेकर चले आ रहे हैं, पीछे हैं बाराती नाचते-गाते हुए। पच्चीस सुहागिनें सजधज कर अगवानी के लिए खड़ी हैं।

कृपासिन्धु स्वामीजी का विवाह के मंडप में पधारना हमारे जीवन का एक अनमोल क्षण था। अक्षय जी और सुषमा के पिता ने जब गंगाजल से गुरुदेव के चरण धोए तो अक्षय जी के आँसुओं की कुछ बूंदे भी उस जल में मिल गई थीं।

गुरुदेव का यह अनुग्रह कहीं से भी हमारा उपार्जन न था, यह थी भिक्षा, जो मेरी झोली में दाता की दया से आ पड़ी थी। 'तुमने मुझे अनपेक्षित वरदान दिए। अब कुछ नहीं चाहिए।' और जब रानी सुनयना राम जी का परिछन करने लगीं, मैं रामचरितमानस की चौपाई गा रही थी—

नयन नीर हठि मंगल जानीं। परिछन करहिं मुदित मन रानी॥

अचानक गुरुदेव मेरे पास बैठकर साथ-साथ गाने लगे। यह कितना दुर्लभ अवसर था, मेरा कण्ठ रूंध गया था और जब उन्होंने मेरे चुप हो जाने पर मेरी तरफ देखा तो मैं बोल पड़ी थी–'मुझे कुछ याद नहीं आ रहा है।' पीछे से किसी ने कहा–'बेटे के ब्याह में भावविभोर हो गई हैं।' क्या सचमुच? नहीं, यह क्या मेरे बेटे का ब्याह था? मेरे बच्चे कहीं खो गए थे और सीता-राम मेरे सामने थे। मैं वहाँ कौन थी? क्या कौशल्या माँ? नहीं, कौशल्या माई का जनकपुर में क्या काम। मैं तो जानकी महल की कोई सखी थी और स्वामीजी थे स्वयं तुलसी बाबा, जो मेरे भूल जाने के बाद आगे की अपनी लिखी चौपाई स्वयं गाने लगे थे। यह अनुभूति प्रतीति थी तो एक क्षण की ही, पर मेरे मन-प्राण के कोने-कोने में छा गई थी। मेरे सीताराम, मेरे तुलसी बाबा मेरे सामने थे। मेरे सिर से आँचल गिर गया था, सब सुध-बुध खो गई थी। नमक की पुतली सागर में घुल गई।

एक ओर सीता-राम जी के विवाह के विधि-विधान और दूसरी ओर सखियों का नृत्य-संगीत। छोटी आली बस गाल पर एक हाथ रखे उदास नेहा को नाचते हुए देख रही थी। उसका दायाँ हाथ पिछले दो महीने से टूटा हुआ था और बार-बार प्लास्टर के बाद स्थिति बहुत बिगड़ चुकी थी। स्वामी निरंजन जी ने कहा–तुम भी नाचो न बेटा, ठुमक-ठुमक कर। और जब आली एक हाथ से नाचने लगी तो मेरी आँखों से आँसू झरने लगे। मैंने मन-ही-मन कहा–'माँ! बाबा! मेरे बच्चे को अच्छा कर दीजिए। मैं अगले वर्ष रिखिया में नवरात्रि का व्रत रखूँगी।'

भांवरी सिन्दूर दान सबकुछ सानन्द सम्पन्न हुए। देखते-देखते विदा की बेला आ गई। मानस-सुषमा ने गुरुजी के चरणों पर माथा टेका। मानस की आँखे छलछला आई थीं। गुरुदेव ने दहेज देते हुए हँसकर आली को अपने निकट कर लिया। उनका वरदहस्त उसके बीमार हाथ पर था। 'मानस, तू इतना ही बड़ा था, याद है तुझे?' वे कह रहे थे।

हमारा मन जैसे रिखिया में ही छूट गया। केवल शरीर लेकर हम सब घर आए। अगले दिन डॉक्टर ने आली का हाथ खोलकर कहा, 'इसे तो कुछ हुआ ही नहीं है। सबकुछ एकदम ठीक है। यह कैसे संभव है!' गुरुदेव की कृपा को हमारा बार-बार प्रणाम!

–श्रीमती कृष्णा देवी, भागलपुर, नवम्बर 2002

एक सच्चे संत का आशीर्वाद

पढ़ा भी है, और सुना भी है कि किस तरह बिरले लोगों को ही सच्चे गुरु का अनुग्रह प्राप्त होता है। यह देखने का अवसर बहुत कम लोगों को प्राप्त होता है, पर उन सौभाग्यशाली लोगों में हम और हमारे बहुत संगी-साथी हैं, जिन्होंने इसका प्रत्यक्ष-प्रमाण देखा है। यह अवसर था रिखिया में सीता-कल्याणम् का और सत् गुरु थे हमारे पूज्य परमहंस जी। यह उन्हीं का अनुग्रह आशीर्वाद था जो रिखिया व आस-पास की कन्याओं को प्राप्त हुआ। महान् हैं वे देवी-स्वरूपा कन्यायें, उन्हें हमारा शत-शत नमन!

गुरु पूर्णिमा और झूलन में तो उनकी एक झलक देख ही चुके थे, परन्तु सीता कल्याणम् ने तो मंत्र-मुग्ध ही कर दिया। जिसने देखा आश्चर्यचकित रह गया। गाँव की वे कन्यायें जिन्होंने अभी बाह्य दुनिया को ठीक से जाना नहीं, जो यह नहीं जानतीं कि कैसे लोगों से मिलना है, जिन्हें बात करने में संकोच आता था, परन्तु वाह गुरु की कृपा! बिन माँगें मोती मिले, और उन्हें तो एक बहुमूल्य पारस का सान्निध्य मिला, जिसके लिये उनके भक्त तरसते हैं।

उस पारस ने उन्हें ऐसा स्वर्णिम रूप प्रदान किया कि आँखें चुंधियाँ गयीं। मन हतप्रभ। जिन्होंने भी प्रत्यक्ष देखा है वे जानते हैं कि किस प्रकार उन बाल-सुन्दरियों ने (गुरुजी ने यही नाम दिया था) पूरे आयोजन की बागडोर संभाली थी। बगैर किसी त्रुटि के। मंच-संचालन, कीर्त्तन, पूजा-स्थल की सेवा, लोगों को बैठाना। जहाँ बड़े लोग अनुशासित करने में असफल हो जाते हैं, वहाँ उन बाल-सुन्दरियों ने इस कार्य को इतनी सहजता से किया कि लगा नहीं कि वे पहली बार कर रही हैं। हम उनके साथ मूक खड़े थे। भोजन-व्यवस्था के समय चटाई बिछाना, दोने-पत्तल बिछाना, भोजन परोसना, पूरी सुघड़ता और व्यावहारिकता के साथ। वे आने वालों को बड़े आदर व प्रेम से भोजन के लिये बैठाती थीं, एकदम पूर्ण अनुशासन। कहीं कोई लापरवाही नहीं और उतने ही प्रेम से घूम-घूम कर परोसना। चेहरे पर सहज प्रसन्नता, न थकान, न शिकन।

मंच संचालन भी एकदम सधा हुआ। कोई हड़बड़ाहट, संकोच या घबराहट नहीं। पूरे आत्म-विश्वास के साथ। हर क्षेत्र में जहाँ कहीं भी वे थीं, उनकी उमंग, उत्साह, स्फूर्ति, क्रियाशीलता काबिले तारीफ थी। एकदम आश्वस्त भाव से, और हो भी क्यों न, उन्हें आश्वासन देने वाले भी तो वहीं कहीं बैठे थे पास में। कीर्तन गजब का। घण्टों पूरे लय-ताल के साथ, पूरी तन्मयता और श्रद्धा के साथ। इतनी छोटी गाँव की बच्चियों के द्वारा किये गये

कीर्तन, एक अद्भुत आनन्द, अलौकिक वातावरण। कहीं से लगता ही नहीं था कि ये जो घर में छोटे भाई-बहनों को संभालती हैं, खेत में बकरियों को चराती हैं, वे यहाँ इतनी भाव-विभोर होकर गा रही हैं। वे किसी संगीतकार की शिष्या नहीं थीं, कहीं से लय-ताल का ज्ञान नहीं प्राप्त किया था। पर वे शिष्या थीं एक ऐसे गुरु की जिसने उन्हें अपने आशीर्वाद से कंकड़ से हीरा बना दिया।

हाँ, सच में, एक पिछड़े हुए क्षेत्र के साधारण घर-परिवार, गरीब-मजदूर किसानों की वे बच्चियाँ, अब वे साधारण नहीं हैं। वे एक तराशा हुआ हीरा हैं। आत्म-विश्वास से लबरेज और शिक्षा के क्षेत्र में भी वे आगे बढ़ रहीं हैं, क्योंकि वे अब सामान्य विद्यार्थी नहीं, अंग्रेजी की छात्रायें हैं। उनकी प्रगति इस बात का प्रतीक है कि अब वे साधारण नहीं, कुछ असाधारण बनने वाली हैं, सर्वगुण सम्पन्न, क्योंकि उन्होंने हर क्षेत्र में प्रभावित किया है। और यह मजाक नहीं, एक हकीकत होगी, क्योंकि ये उस गुरु की छत्र-छाया में हैं, जिनका एक ज्वलंत आशीर्वाद पूर्व में भी हमारे सामने है और वे हैं हमारे अपने गुरु स्वामी निरंजन जी। इतिहास स्वयं को दोहराता है, रूप भले बदल जाए, परिस्थिति बदल जाए, हो सकता है भविष्य में कभी कोई बच्ची आपके हमारे सामने उपस्थित हो जाए, एक नये कलेवर में।

सो बात निकली थी एक सत्-गुरु के अनुग्रह की। जब तक उनकी कृपा न मिले, कुछ भी संभव नहीं। असंभव को संभव बनाने की क्षमता गुरु में ही है, और हमारे परम गुरु तेज के पुंज, पारस के समान अभ्यासी को बदलने वाले हैं। कबीर के शब्दों में–

न कछु किया, न करि सका, न करने जोग सरीर ।
जो कुछ किया साहिब किया, ताते भया कबीर ॥

–स्वामी भक्तिमूर्ति, जबलपुर, मार्च 2004

देवी की दिव्य अनुभूतियाँ

अध्यात्म को सत्य की कसौटी पर कसते सत्यानन्द बाबा ने राजसूय यज्ञ को जिस तरह पारिभाषित किया, वह कोई साधारण संत या समाज का नायक नहीं कर सकता। निश्चय ही सब के दिलों पर राज करने वाला वह विलक्षण संत सम्राट् ही होगा, जिसकी यशकीर्ति आज भारत में ही नहीं, बल्कि विश्व

के कोने-कोने में फैल रही है। सीता कल्याणम् उत्सव मात्र उत्सव नहीं, बल्कि उस विचारधारा की नींव है, जो जगत्गुरु शंकराचार्य की परम्परा का निर्वहन करती है और यह परम्परा यहाँ रिखिया आश्रम में जीवन्त है।

आज भारत की लाखों सीताएँ भूख और लाचारी के दलदल में धँसी अपने अस्तित्व को खोती जा रही हैं। जब नींव ही कमजोर होगा, तब हमारा महत्त्वाकांक्षी भवन कैसे खड़ा होगा? जिन हाथों में कलम होनी चाहिए, उन हाथों में खुरपी और हँसिया थमा दी जाती है। मात्र रोटी के एक टुकड़े के लिए संघर्ष करती ये नन्हीं कन्याएँ कहीं भी ईंटा बनाती दिख जाएँगी। असुरक्षा के भय से सहमे माँ-बाप जवान होने से पहले इनकी शादी कर देते हैं। किन्तु यहाँ रिखिया में यह तस्वीर बदली हुई है। अब ये कन्याएँ अंग्रेजी बोलती हैं। कम्प्यूटर पर इन्टरनेट और ई-मेल करती हैं। भजन भी बड़े सुन्दर गाती हैं। इनके सुमधुर कीर्तन से भाव-विभोर होकर हम झूम उठते हैं। ऐसा ही प्रयास हमें पूरे भारत में करना है। यही हमारे समाज की नींव है। हमें कुछ भी करने से पहले अपनी नींव मजबूत करनी चाहिए। तभी स्वस्थ भारत की कल्पना साकार होगी।

यज्ञ की पूर्व संध्या में परमहंसजी ने कहा, 'आओ, गपशप करते हैं। कल्पना सत्य का अगोचर होती है, इसलिए कल्पना-शक्ति को दृढ़ करना है। कभी हम दादी के किस्सों में चाँद से उतरी परियों को ढूँढा करते थे। आज नासा के वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध कर दिया कि चाँद पर मानव-जीवन सुरक्षित है। और अब लोग बड़ी ही तेजी से अपने सपनों के ताने-बाने बुन रहे हैं। हम भी लगे हुए हैं। यदि योग की कार्यशाला वहाँ पर हो जाय तो कितना मजा आएगा। तब तो कुण्डलिनी जगाना बड़ा ही आसान हो जाएगा, क्योंकि वहाँ तो गुरुत्वाकर्षण बल है ही नहीं। फिर तो चाहे दिन-दिन भर उल्टे लटके रहो, क्या फर्क पड़ता है। हाथ की जगह पैर और पैर की जगह हाथ का इस्तेमाल करो, तुम्हारी मर्जी। पर हाँ, यज्ञ में संकल्प सोच-समझ कर करना, क्योंकि यज्ञ में लिया गया संकल्प पूर्ण होता है। उस पूर्णता को प्राप्त करने के लिए जो ऊर्जा होनी चाहिए, उस ऊर्जा का स्रोत यहाँ पर है। आप संचय कर सकें, इसलिए सतर्क किया जा रहा है। अपने भाव बच्चों की भाँति निश्छल रखिए। आपके इर्द-गिर्द मँडराती ये कन्याएँ कोई साधारण कन्याएँ नहीं हैं। यही तो ऊर्जा की मुख्य स्रोत हैं। हम तो इस ऊर्जा के मात्र माध्यम हैं, क्योंकि 11,000 वोल्ट आप संभाल नहीं पाओगे। वोल्टेज को ट्रान्सफॉर्म करने के

लिए ट्रान्सफॉर्मर की आवश्यकता होती है, जिसकी व्यवस्था यहाँ कर ली गई है। बस, आप सतर्क हो जाओ और सहज भी।'

तब हमने सोचा, ये तो स्वामी सत्यानन्द जी के वचन हैं, जो कभी निरर्थक नहीं जाते। एक वचन राजा दशरथ ने भी दिया था–

रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्राण जाय पर वचन न जाई॥

अत: हमारी मंथरा बुद्धि ने अपनी चतुराई दिखाई और तत्क्षण एक संकल्प करवा लिया। यह संकल्प कितनी जल्दी लक्ष्य की ओर अग्रसर होगा, शब्दों में कह पाना बड़ा ही मुश्किल है। बस, मैं तो उस अवसर की बाट जोह रहा हूँ जब विजयादशमी के दीप मेरे द्वार पर जलेंगे और अन्तर्मन के तिमिर भाव क्षण में मिट जाएँगे।

परमहंसजी अपनी बात को आगे बढ़ाते हुए कहते हैं कि इस यज्ञ में बनारस के विद्वान् पण्डितों द्वारा एक मंत्र ध्वनि 'ॐ ऐं ह्रीं क्लीं' लगातार सुनाई देगी, जिसे आपको भी दोहराना है। किन्तु आपको विदेश से आए इन पण्डितों (विदेशी मेहमानों की ओर इशारा करके) का अनुसरण करना है। पिछले तीन दिनों से इनका एक ही मंत्र चल रहा है; आई ऐम क्लीन, आई ऐम क्लीन! यह मंत्र आपका भी होना चाहिए। तभी यज्ञ की यथार्थता स्पष्ट होगी।

अन्ततोगत्वा चार दिन तक चले इस शतचण्डी महायज्ञ में लगभग दस हजार लोगों को प्रसाद वितरण किया गया। और वह प्रसाद भी ऐसा कि पाने वाला फूला न समाए। आस-पास के क्षेत्र से लगभग चालीस ग्रामों से आई ग्रामीण महिलाएँ और किसान अपनी जरूरत की चीजों को पाकर अति प्रसन्न थे। बाल्टी, कड़ाही, करछुल, दूध, चायपत्ती और सुन्दर वस्त्र–महिलाओं को साड़ी और पुरुषों को कुर्त्ता-पायजामा। रिखिया की हजारों कन्याएँ और बटुक देवी माँ का प्रसाद पाकर नित नए परिधानों में अति प्रफुल्लित थे। कभी गुजराती वेश-भूषा में तो कभी विदेश से आए जॉगिंग सूट में वे बड़े मनमोहक लग रहे थे। सुदूर राज्यों से आए सभी भक्तगण भी इस प्रसाद की दिव्यता से अछूते न थे। सब कुछ इतना अलौकिक कि शब्दों की दिव्यता भी आज लजाकर सिमट गयी। ये तो हृदय के भाव हैं, जो बरबस ही फूट पड़े।

–अशोक त्रिपाठी, कोरिया, छत्तीसगढ़, मार्च 2007

एक रिखिया कन्या के अनुभव

जनवरी सन् 1998 में पहली बार मैंने रिखिया आश्रम में कदम रखा। उस समय मैं मात्र छ: बरस की थी। तब से 13 जनवरी, 2007 तक मैं एक 'रिखिया कन्या' के रूप में आश्रम के अति निकट सान्निध्य में रही।

प्रारम्भिक वर्षों में मैं केवल अंग्रेजी कक्षा के लिए आश्रम जाती थी, जहाँ मैंने अंग्रेजी पढ़ना, लिखना और बोलना सीखा। वहाँ मुझे कुछ मंत्र और कीर्तन भी सिखाये गए। उनमें से एक 'सरस्वती वन्दना' नामक स्तुति थी, जिसे एक बार हम कन्याओं ने मिलकर श्री स्वामीजी के समक्ष गाया। कितनी खुश थी मैं उस दिन!

मुझे अंग्रेजी कक्षा में जाना बहुत अच्छा लगता था। वहाँ का माहौल अंग्रेजी सीखने के लिए एकदम उपयुक्त था। हमें खेल-खेल में अंग्रेजी सिखायी जाती थी। अंग्रेजी के साथ-साथ हमने नृत्य, गायन और चित्रकला भी सीखी। मुझे ये सब विषय इतने पसन्द थे कि मैं कक्षा शुरू होने के पाँच-दस मिनट पहले ही आश्रम आ जाती थी। अंग्रेजी सीखने की सारी सामग्री कक्षा में ही उपलब्ध थी। किताबें, कॉपियाँ, पेन्सिलें, यहाँ तक कि स्कूल की वर्दी भी हमें आश्रम की ओर से मिलती थी। इसके अलावा बीच-बीच में हमें शब्दकोष, ज्यॉमेट्री बॉक्स, कहानियों की किताबें, खिलौने, छाते जैसे उपहार भी मिलते रहते थे। ये चीजें हमारे स्कूल में बहुत काम आती थीं।

कक्षा में विज्ञान और सामान्य ज्ञान सम्बन्धी बहुत-सी अच्छी-अच्छी किताबें थीं, जिन्हें पढ़कर मुझे अनेक विषयों की विस्तृत जानकारी मिली। हालाँकि मेरी प्रारम्भिक एवं माध्यमिक शिक्षा हिन्दी माध्यमिक विद्यालयों में हुई है, फिर भी आश्रम के योगदान की वजह से मेरी अंग्रेजी काफी अच्छी हो गयी है। इससे मुझे उच्च शिक्षा में अंग्रेजी माध्यम अपनाने में बहुत मदद मिली है।

'कीर्तन मण्डली' की अन्य कन्याओं के साथ मैंने पहली बार बसन्त पंचमी के अवसर पर कीर्तन गाया। कीर्तन था–'सरस्वती महा सरस्वती।' उसके बाद हमने आश्रम के अन्य कार्यक्रमों तथा दैनिक सन्ध्याकालीन कार्यक्रमों में कीर्तन गाना प्रारम्भ किया। धीरे-धीरे हमें स्तोत्रों का पाठ भी सिखाया गया। चैत्र तथा अश्विन नवरात्रि के अवसर पर आश्रम में रामचरितमानस का पाठ प्रारम्भ हुआ। कुछ समय बाद प्रत्येक एकादशी को सम्पूर्ण भगवद् गीता का पाठ और प्रत्येक पूर्णिमा को रामचरितमानस के सुन्दरकाण्ड का पाठ शुरू

किया गया। आरम्भ में हम लोग केवल सुनते थे, लेकिन धीरे-धीरे हमें पाठ करने की विधि सिखलायी गयी और अंत में तो कन्या मण्डली ही सारे पाठ करने लगी। इस काम से संन्यासियों को पूरी छुट्टी मिल गयी!

मुझे इस बात की खुशी है कि श्री स्वामीजी ने हमें इन कार्यक्रमों को संचालित करने का अवसर प्रदान किया। अपने कीर्तनों और भजनों से श्रोताओं को मंत्रमुग्ध देख हमें अपार हर्ष और संतोष का अनुभव होता था। कई बार तो ऐसा भी होता था कि लोग कीर्तन के दौरान उठकर नाचने लगते थे। कभी-कभी तो स्वामी निरंजन और स्वामी सत्संगी भी अपने आप को नहीं रोक पाए!

सन् 2003 से 2007 तक, शतचण्डी महायज्ञ के दुर्गा सप्तशती पाठ को छोड़कर, जिसे पण्डित लोग किया करते थे, हमने आश्रम में आयोजित सभी प्रकार के कीर्तन-भजन-मंत्रोच्चारण कार्यक्रमों का संचालन किया! यह आश्चर्यजनक उपलब्धि हमें आदरणीय स्वामी सत्संगी जी के कुशल निर्देशन एवं मार्गदर्शन से ही मिल सकी। हमने कीर्तन, भजन, स्तोत्र तथा भगवद् गीता का पाठ स्वामी सत्संगी से प्रत्यक्षत: सीखा। रामचरितमानस का पाठ हमने संन्यासी मंत्रनिधि से सीखा। हमारे इस प्रशिक्षण में कुछ अन्य संन्यासियों का भी योगदान रहा। रिखिया के सभी कन्या-बटुकों की ओर से मैं उन सबका हार्दिक धन्यवाद करती हूँ और उनको शत-शत विनम्र नमन अर्पित करती हूँ।

आरम्भ में केवल कन्याओं को अंग्रेजी कक्षा के लिए लिया जाता था। उस समय हमारी संख्या केवल बारह-तेरह रही होगी। आज यह संख्या बढ़कर पाँच सौ से ऊपर हो गयी है! कुछ साल बाद लड़कों को भी कक्षा में भर्ती किया गया, आज उनकी संख्या भी पाँच सौ से अधिक है। आजकल कुछ कन्या-बटुक आश्रम में कम्प्यूटर भी सीखने जाते हैं। मुझे भी कम्प्यूटर प्रशिक्षण पहली बार यहीं प्राप्त हुआ।

पिछले कुछ वर्षों में कन्या-बटुकों को आश्रम की ओर से, हर साल कम-से-कम दस रंग-बिरंगे सुन्दर परिधान मिले हैं, जो भारत ही नहीं, दुनिया के हर कोने से भेजे गए हैं। उन बेहतरीन लिबासों को पाकर हम सभी कन्याएँ बेहद खुश होती थीं। उन पोशाकों में से कुछ तो पारम्परिक थीं और कुछ आधुनिक। जब भी मैं उन परिधानों को पहनती, मेरा मन खुशी से झूम उठता था!

श्री स्वामीजी, स्वामी निरंजन जी, स्वामी सत्संगी जी तथा आश्रम के अन्य सभी संन्यासियों से हमें इतना प्यार और दुलार मिला कि हमें आश्रम में हमेशा एक अपनापन महसूस होता था। इस का एक उदाहरण बतलाती हूँ। शतचण्डी महायज्ञ से कुछ दिन पहले मैं तपोवन परिसर में, यज्ञ वेदी के निकट कुछ अन्य कन्याओं के साथ खेल रही थी। उसी समय स्वामी निरंजन यज्ञ की तैयारियों का निरीक्षण करने वहाँ आए। हमें खेलता देख, उन्होंने हमारे हाथ से रस्सी ली और खुद रस्सी कूदने लगे! उन्हें अपने बीच खेलते हुए देखकर हम बेहद खुश हुए और खिलखिलाकर हँस पड़े।

आश्रम में मुझे दुनिया के हर कोने से आये, विभिन्न देशों, धर्मों और जातियों के लोगों से मिलने का सुअवसर प्राप्त हुआ। उनसे बातचीत करने पर मुझे उनके समाज और संस्कृति के बारे में बहुत सी बातें मालूम हुईं। भारत और विदेश से आये अनेक बच्चों से भी मेरी भेंट और मित्रता हुई। मुझे उनके साथ बातें करने और खेलने में बहुत आनन्द आया।

रिखिया आश्रम में दुनिया के सभी धर्मों के त्योहार मनाये जाते हैं। मैंने पहली बार आश्रम में ही क्रिसमस का त्योहार मनाया। एक बार ईरान से कुछ महिलायें किसी योग सत्र के लिए आश्रम आयी थीं। उनके आश्रम प्रवास के दौरान एक दिन 'तजिया मुहर्रम' के रूप में रखा गया। उस दिन उन महिलाओं ने कई सूफी गीत गाये और हमने भी सूफी मंत्र 'अनल हक' गाया!

रिखिया की कन्या होने के नाते, मुझे हर साल रामचरितमानस का दो बार, सुन्दरकाण्ड का बारह बार और भगवद् गीता का चौबीस बार पाठ करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। आश्रम के प्रत्येक कार्यक्रम और पर्व पर सभी कन्याओं और बटुकों को भोज कराया जाता है। कई लाजवाब पकवानों को चखने का अवसर मुझे जीवन में पहली बार आश्रम में ही प्राप्त हुआ।

कन्या के रूप में ये जो थोड़े से अनुभव मैंने आपके साथ बाँटे, ये मेरे समस्त अनुभवों के अंशमात्र हैं। आश्रम की अनेक मधुर स्मृतियों को बयाँ करने के लिए मेरे पास शब्द ही नहीं हैं, पर हाँ, मैं उन बहुमूल्य स्मृतियों को सदा अपने दिल में संजोये रखूँगी। अंत में मैं इतना ही कह सकती हूँ कि मुझे 'रिखिया कन्या' होने का बहुत अधिक गर्व है!

–सीनू कुमारी, पनियापगार ग्राम, रिखिया पंचायत, मार्च 2008

अनमोल प्रसंग की स्वर्ण जयन्ती

वाल्मीकि के उर से निकली रामायण की महानदी

रामायण की महानदी की अनुकम्पा से हम गीता, भागवत और पुराणों के महासागर में जा पहुँचे और संत दर्शन की अभिलाषा ने हमें स्वामी शिवानन्द जी के चरणों में पहुँचा दिया। हमारी हार्दिक इच्छा पूरी हुई और उनसे विशेष आशीर्वाद प्राप्त कर अपने गृह नगर में लौट आये।

गुरु दीक्षा के विषय में हमारे जो विचार थे उनमें नई आकांक्षायें शुरू हुईं। बात 50 वर्ष पूर्व, सन् 1958 की है और अब है 2008।

आशीर्वाद प्राप्त करने के बाद गुरु दीक्षा की इच्छा बलवती होने लगी। कभी भी सत्संग में या चर्चा होने पर बात चल ही पड़ती, लेकिन तब स्वामी सत्यानन्द जी कहते थे कि मैं न कभी गुरु बनूँगा न आश्रम ही बनाऊँगा। शायद उस समय विधि माता हँसती रही होंगी कि एक दिन गुरु तो क्या, तुम जगत् गुरु बनोगे।

सन् 1958 में स्वामीजी नागपुर रोड पर एक छोटे से गाँव में चातुर्मास करने गये। बी.एम.सी. मिल के बच्चे-बड़े, सभी से पूरे दिन मिलना-जुलना, सत्संग चलता रहता था। सभी का विशेष अनुरोध था कि रविवार के दिन जरूर आइये और अगर आप नहीं आयेंगे तो हम सब बच्चे और महिलाएँ पूरे दिन के लिये वहाँ पर आयेंगे। स्वामीजी कहने लगे, सड़क से आपको आधा किलो मीटर पैदल या बैलगाड़ी से आना होगा, परेशानी होगी। आखिर में यह तय हुआ कि रविवार की सुबह चार बजे सत्यव्रत जी आयेंगे और स्वामीजी को सूर्योदय के पहले यहाँ ले आयेंगे और सोमवार की सुबह चार बजे सूर्योदय के पहले उन्हें वापस पहुँचा देंगे।

रविवार की सुबह सत्यव्रतजी मोटर साईकिल से जाते, थोड़ी असुविधा भी होती, पर स्वामीजी आ जाते। उनके इन्तजार में पूरे क्वार्टर के लोग सामने तैयार रहते और इस तरह पूरा दिन सब उनके साथ रहते। ऐसा कार्यक्रम होता कि सबका भोजन-सत्संग सब एक साथ होता, कोई भी उन्हें छोड़ना नहीं चाहता। इस तरह रात 10 बजे तक भी लोग उन्हें छोड़ना नहीं चाहते थे। सुबह 4 बजे सत्यव्रतजी स्वामीजी को छोड़कर आ जाते।

24 अगस्त, 1958 के सबेरे स्वामीजी ने जाते समय कहा, 28 अगस्त राखी पूर्णिमा के दिन तुम्हारा नया जन्म होगा। सबको निमंत्रण दे देना और प्रसाद बनाकर भी रखना, हम सूर्योदय के पहले ही आ जायेंगे।

हमारी समझ में नहीं आया कि क्या होगा। हमने सोचा कि जैसी प्रभु की इच्छा। 28 तारीख की सुबह, गुरुवार के दिन, हमेशा की तरह सत्यव्रत जी सुबह गये और पूज्य स्वामीजी का शुभागमन हो गया। हमने प्रणाम किया, उन्होंने पूछा, 'सब को निमंत्रण दिया और प्रसाद बनाया है न?' हमने कहा, 'स्वामीजी, प्रसाद तो बना लिया और कुछ तैयारियाँ भी कर लीं, पर निमंत्रण में क्या लिखना चाहिए, हमारी समझ में नहीं आया।' स्वामीजी ने हँसकर कहा, 'अभी मेरा जन्मदिन होने वाला है, आप लोग आशीर्वाद देने अवश्य पधारें।' एक चपरासी को कागज देकर मिल एरिया के ऑफिसरों और कर्मचारियों के यहाँ भेज दिया। एक चपरासी को पुरानी बस्ती, रिश्तेदारों के यहाँ और एक को सिविल लाईन भेज दिया। वे लोग सबसे हस्ताक्षर कराकर लौट आये। लोगों को जैसे ही पता चला, सभी परिचित हमारे क्वार्टर में आ गये और सभी आश्चर्यचकित थे। करीब नौ बजे हमारा दीक्षा संस्कार शुरू हुआ, सब ने 'ॐ' मंत्र का उच्चारण साथ में किया और इस तरह दीक्षा सम्पन्न हुई।

श्रीमती दण्डेकर ने कहा, 'स्वामीजी, अभी तक हमने देखा है कि मंत्रपाठ और शंख-मंजीरा के साथ कान में मंत्र बोला जाता है। हमारी भी दीक्षा उसी तरह से हुई, पर आपने जो दीक्षा दी है, यह एकदम अलग है।' स्वामीजी ने कहा, 'माताजी, वह पुराना तरीका भूल जाइए। हमारे गुरुजी ने कहा कि अगर किसी को गाली देनी हो या कुछ बुरे शब्द कहने हों तो कान में बोलो, लेकिन भगवान का नाम या मंत्र जोर से बोलो, ताकि सभी सुनें और बोलें कि हमने भी सुना है। घड़ी-घण्टा बजने के कारण दीक्षा लेने वाला मंत्र भी ठीक से समझ नहीं पाता और बाद में मंत्र फिर पूछना पड़ता है। आगे कभी भी आप लोग किसी की दीक्षा के बारे में सुनेंगे तो यहाँ की बात याद आ जायेगी और आप मंत्र भी बोल पड़ेंगे तो कितना आनन्द आयेगा।' थोड़ी देर में श्रीमती दण्डेकर ने फिर कहा,'स्वामीजी, यहाँ पर बैठी हुई कुछ महिलायें और बहू-बेटियाँ, जिन्होंने अभी तक दीक्षा नहीं ली है, वे आप से पूछने को कह रही हैं कि हमने अभी तक गुरु दीक्षा नहीं ली है और दीदी के साथ हमने भी मंत्र बोला है तो क्या हम भी आपको गुरु मान सकते हैं और क्या आप हमको माला देंगे?' तब स्वामीजी कहने लगे, 'अगर चाहते हो तो मान सकते हो। लेकिन एक बार गुरु मानने के बाद फिर मानना ही पड़ेगा, क्योंकि यह पवित्र रिश्ता है। पर माला मेरे पास नहीं है। जिसको माला चाहिए, वह सत्यव्रत जी से कहें, वे ऋषिकेश से मँगवाकर आप लोगों को देंगे।'

‘अभी तुम्हारी दीदी की दीक्षा पूरी हुई है। अब उनका नया जन्म भी हो गया, अब वह बसन्ती दीदी की जगह ‘माँ धर्मशक्ति’ बन गई है।’ फिर हँस कर बोले, ‘तुम्हारी दीदी आज से मेरी प्रथम शिष्या बन गई है और मेरी बहादुर बेटी भी। मैं दीक्षा देने के लिये आगे-पीछे करता रहा, पर आखिर वह शिष्या बन ही गई। अकेले नहीं, बहुतों के साथ, ठीक है न!’

सब प्रसन्न हुए, सबने शुभकामनाएँ दीं। बच्चे उछलने लगे। स्वामीजी बोले, ‘जब गुरु मानोगे तो माला मिलेगी ही। लेकिन सब को प्रसाद खिलाना जरूर और मुझे भी प्रसाद खिलाना न भूलना।’

उसके बाद सभी लोगों ने कहा, ‘स्वामीजी, हम लोग आपको भूल ही नहीं सकते। आप से हमें जो कुछ मिला है, अवर्णनीय है। और भाई सत्यव्रत जी को भी हम बार-बार नमस्कार करते हैं कि उनके पीछे ही हम आपको पा सके हैं और आज का दिन हमें देखने को मिला, यह हमारे लिए बड़े सौभाग्य की बात है।’

मैं ऐसी आत्मविभोर हुई बैठी रही कि कुछ बोल भी नहीं सकी। मुझे गुरु मिले, देव तुल्य स्वामी शिवानन्द महाराज के आत्मस्वरूप, जिन्होंने मुझे आशीर्वाद दिया था कि तुम्हारे गुरु तुम्हारे घर आयेंगे। आज वह सच हो गया!

राखी पूर्णिमा सामने है और इन 50 वर्षों के संघर्षमय जीवन में गुरु के आशीर्वाद में, उनके संरक्षण में जो कुछ किया और पाया, वह अवर्णनीय है। हृदय रूपी समुद्र की लहरों में हजारों शब्द चमक रहे हैं, लेकिन मैं असमर्थ हूँ। गुरु चरणों में मेरा विश्वास अटल रहे, यही प्रार्थना है।

–स्वामी धर्मशक्ति सरस्वती, अक्टूबर 2008



श्रद्धांजलि संग्रह

श्री स्वामीजी की महासमाधि पर समर्पित श्रद्धांजलि संग्रह

बिहार योग विद्यालय द्वारा प्रकाशन – 2010-2013, 2013



योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत

श्रद्धांजलि संग्रह

जब से श्री स्वामीजी 5 दिसम्बर, 2009 की मध्यरात्रि को महासमाधि में लीन हुए, तब से देश-विदेश के कोने-कोने से ढेरों श्रद्धांजलि संदेश प्राप्त होते रहे हैं। चाहे वे पुराने भक्तों और शिष्यों के हों या ऐसे लोगों के, जो श्री स्वामीजी को केवल उनकी विविध रचनाओं के माध्यम से जानते थे, इन श्रद्धांजलि संदेशों के अनुशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि श्री स्वामीजी ने समाज के सभी वर्गों की जीवनशैली, मानसिकता और जीवनदिशा पर एक अमिट प्रभाव छोड़ा है। साथ ही ये भावभीनी श्रद्धांजलियाँ यह आनंददायी तथ्य उजागर करती हैं कि श्री स्वामीजी अभी भी जीवित हैं—अपने असंख्य भक्तों, शिष्यों और सुहृदों के हृदय में, जहाँ वेदान्ताम्बुजसूर्यवत् नित-निरंतर प्रकाश बिखेरते हुए, वे ज्ञान का पावन पंकज पुष्पित कर रहे हैं।

—*सम्पादक*

षोडशी अनुष्ठान

रिखियापीठ में 22 दिसम्बर 2009 को समर्पित श्रद्धांजलियाँ

नमो नारायण!

हम कन्या-बटुकों का परम सौभाग्य है कि आज हम महान् योगी, अपने प्रिय स्वामी सत्यानन्दजी को श्रद्धांजलि दे रहे हैं। जब 6 दिसम्बर की सुबह हमने आश्रम में भगवत् गीता का पाठ सुना, उसी समय हमें आहट लग गई कि रात में कोई महान् घटना घटी है। जल्द ही हमें पता लग गया कि श्री स्वामीजी ने महासमाधि ले ली है और इसका अर्थ था कि अब हम उनकी तेजस्वी मुस्कान, प्रेम भरी नजर, चमकती आँखें कभी नहीं देख पायेंगे और करुणामयी वाणी कभी नहीं सुन सकेंगे। इस विचार से हम अपना रोना रोक न सके, पर तब स्वामी सत्संगी जी और स्वामी निरंजन जी हमारे बीच आये और हमें समझाया कि श्री स्वामीजी तो हमारे दिलों में ही बस गये हैं। इससे हमें हिम्मत मिली और हमारी खोई मुस्कान वापस आने लगी।

आखिर परमहंसजी भी हमें ऐसे ही देखना पसंद करेंगे–हिम्मती, बहादुर और आत्म-विश्वासी। जैसे-जैसे लोगों को जानकारी मिलती गयी, आश्रम द्वार पर भीड़ उमड़नी शुरू हुई। ऐसा लग रहा था मानो दुनिया के सारे लोग आश्रम पहुँच गये हैं। हम कन्या-बटुक भी प्रिय स्वामीजी को अलविदा करने आ गये। हजारों भक्तों के संग हमने भी उनका अभिषेक देखा और उनका अंतिम दर्शन भी किया। श्री स्वामीजी तो हमेशा की तरह तेजस्वी, शान्त और प्रसन्नचित्त दिख रहे थे। शरीर का त्याग करके भी शाहँशाह की तरह वे दिव्य और सुन्दर प्रतीत हो रहे थे। हम तो उन्हें हमेशा-हमेशा याद करते रहेंगे, क्योंकि उन्होंने हमारे दिलों में चिरस्थायी जगह बना ली है।

जब यह षोडशी पूजा प्रारम्भ हुई, तब हम लोग भी इसमें सम्मिलित हो गये। उनके लिए इससे अधिक उपयुक्त श्रद्धांजलि और क्या हो सकती है! आप सबके सामने हमारा इतने आत्मविश्वास और हिम्मत से पेश आना भी तो

उन्हीं की देन है। उनकी कृपा से ही हमें अनेक आवश्यक कलायें सीखने को मिली हैं, जैसे, आधुनिक और पारम्परिक नृत्य कला, नाट्य कला, अँग्रेजी, संस्कृत में वेद पठन, कम्प्यूटर, इत्यादि। हमने इतनी उपयोगी चीजें सीखीं हैं कि उनकी गिनती कर पाना भी मुश्किल है। हम तो सपने में भी नहीं सोच सकते थे कि हम कभी यह सब कर पायेंगे। लेकिन परमहंसजी को हम पर विश्वास था और हमें उन पर अटूट श्रद्धा। शायद इसीलिए यह सब इतनी सहजता और सरलता से हो गया। वास्तव में हम कन्या-बटुक गुरु अनुग्रह की महिमा का जीता-जागता उदाहरण हैं।

श्री स्वामीजी के हमारे जीवन में आने से पहले हमारे पास कुछ नहीं था, हम कुछ नहीं थे। उन्होंने हमारे जीवन को एक नया आयाम दिया और हमारे भीतर सोयी प्रतिभा को जगाया। हमें आत्मविश्वास और आत्मसम्मान दिया, जीवन को दिशा दी, एक मंजिल दी। उन्होंने हम कन्याओं को 'कुछ नहीं' से ऊपर उठाकर 'देवी' बना दिया, यही गुरु शक्ति की महिमा है, जिसे हमने अपने जीवन में अनुभव किया है।

हम कन्या-बटुकों का जन्म श्री स्वामीजी के रिखिया पदार्पण के बाद हुआ है। यह हम लोगों का परम सौभाग्य रहा है कि उन्होंने हमें गोद लिया। उनके बच्चे कहलाने में हम कन्या-बटुक बहुत गौरव का अनुभव करते हैं। कुछ वर्ष पहले रिखिया एक पिछड़ी पंचायत थी। हमारे माता-पिता हमें यह बताते हैं कि उस समय यहाँ न खाना मिलता था, न कपड़े और न ही रोजी-रोटी। जब परमहंसजी यहाँ आये, मानो रिखिया का कायाकल्प ही हो गया। देश के सबसे गरीब प्रान्त की एक पिछड़ी पंचायत से रिखिया एक सम्पन्न और सुदृढ़ पंचायत बन गयी है। यहाँ सुख, शान्ति और समृद्धि दिखाई देती है। गुरुजी की कृपा से खाने के लिए भोजन है, पढ़ने के लिए स्कूल और सीखने के लिए एक सुन्दर आश्रम। यहाँ हमें संन्यासियों की शीतल और शान्त छाया में आगे बढ़ने का अवसर मिलता है और सबसे अहम् बात है कि यहाँ हम एक सुन्दर और बेहतर भविष्य की कल्पना कर सकते हैं।

श्री स्वामीजी तो हमारे दिलो-दिमाग पर हमेशा छाये रहते हैं, पर क्या आपको मालूम है कि हम कन्या-बटुक जो रिखियापीठ में रहते हैं, हमें भी उनका दर्शन अति दुर्लभ था। 2 दिसम्बर 2009 को जब हम सब श्री स्वामीजी का छियासीवाँ जन्म दिवस मना रहे थे, तब उनके दर्शन का आखिरी सौभाग्य प्राप्त हुआ। उस अवसर पर श्री स्वामीजी ने केवल हमसे

और हमारे माता-पिता से बात की थी। उन्होंने हम बच्चों से पूछा, 'तुम्हारे पिता कौन हैं?' और बड़े गर्व से हम सबने जवाब दिया, 'आप। आप ही हमारे पिता हैं और हमेशा रहेंगे। 'स्वामीजी, हमारे जीवन को इस प्रकार परिवर्तित करने के लिए तहेदिल से धन्यवाद।'

इतनी निकटता से स्वामी सत्यानन्दजी जैसे महान् योगी के सम्पर्क में आना हमारे लिए गर्व का विषय है। उनका इस सुदूर और अनजान पंचायत में निवास के लिए आना हम लोगों के लिए बड़े ही सम्मान की बात है। और अब तो रिखिया अमर हो गया है, क्योंकि श्री स्वामीजी का समाधि-स्थल यहाँ स्थापित है। उनका सारा जीवन मानवता के उत्थान के लिए न्योछावर रहा। उनके गुरु स्वामी शिवानन्दजी ने तो उनकी तुलना नचिकेता के साथ की थी, और कहा था, 'कम उम्र में इतना प्रखर वैराग्य दुर्लभ है। स्वामी सत्यानन्द नचिकेता तत्त्व से ओत-प्रोत हैं, तदपि वे जो भी काम हाथ में लेते हैं उसे निपुणता और कुशलता से पूरा करके ही छोड़ते हैं। चार-चार लोगों का काम वे अकेले ही कर जाते हैं, पर कभी शिकायत नहीं करते। उनकी विभूति सर्वांगीण है फिर भी वे विनम्र और सीधे-सादे हैं।'

कहते हैं कि जब परमहंस सत्यानन्द जैसे महान् योगी अपना शरीर त्यागते हैं तब स्थूल शरीर के बन्धनों से मुक्त होने के कारण उनकी आध्यात्मिक विभूतियाँ द्विगुणित हो जाती हैं। हमारे प्रिय स्वामी सत्यानन्द जी अब स्थूल शरीर के बन्धनों से परे जा चुके हैं और उनका दिव्य स्वरूप सारे ब्रह्माण्ड में व्याप्त है। वे अब सर्वव्यापी और सार्वभौम हैं। हम कन्या-बटुकों को उनका अनुभव यहाँ होता है, क्योंकि वे तो हमारे दिलों में बस गये हैं। उनका अनुभव हमें वायु की शीतलता, सूर्य की उष्मा, पक्षियों की चहचहाहट और आसमान में उमड़ते बादलों में होता रहता है। जहाँ नजर जाती है, उन्हें वहीं विद्यमान पाते हैं। 'स्वामीजी, जब भी आपकी जरूरत हमें महसूस होगी, हम ऊपर आसमान में आपको खोजेंगे और हमें पूरा यकीन है कि हम आपको वहाँ मुस्कुराते हुए, अपने आशीर्वाद की बौछार करते हुए पायेंगे। स्वामीजी, आपके आशीर्वाद से ऐसी कोई मंजिल नहीं, जो हम हासिल नहीं कर सकते, ऐसी कोई मुसीबत नहीं जिसे हम लाँघ नहीं सकते। बस, यही प्रार्थना है कि अपनी कृपा-दृष्टि सदैव ऐसे ही हम पर बनाये रखिए।'

हमें मालूम है कि श्री स्वामीजी को रिखिया बहुत पसंद था और खासकर हम बच्चों से वे अधिक ही खुश थे, क्योंकि हमें देखते ही वे खिल उठते थे।

शतचण्डी पूजा 2007 के पावन अवसर पर उन्होंने रिखिया को रिखियापीठ घोषित किया और स्वामी सत्यसंगानन्द को उसकी प्रथम पीठाधीश्वरी नियुक्त किया। साथ-ही-साथ उनको संकल्प दिया कि वे स्वामी शिवानन्द की तीन मूलभूत शिक्षाओं–सेवा करो, प्रेम करो और दान दो, का यहाँ रिखियापीठ में पूर्णरूपेण पालन करायेंगी। उस समय उन्होंने कहा था कि रिखियापीठ का भविष्य बहुत ही उज्ज्वल है, क्योंकि मैं इसका आधारस्तम्भ हूँ।

गुरु को साक्षी मानकर हम रिखिया के कन्या-बटुक आज संकल्प लेते हैं कि श्री स्वामीजी के हमारे लिए सोचे हर सपने को हम साकार करेंगे। हम प्रतिज्ञा करते हैं कि अपने आप को सदा गुरु-कृपा के योग्य रखेंगे तथा श्री स्वामीजी के दिये हुए दो फूलों, स्वामी निरंजनजी और स्वामी सत्संगीजी को सर-आँखों पर रखेंगे।

–रिखिया की कन्याएँ

पूज्य गुरुदेव के भक्तों को मेरा प्रेम भरा नमो नारायण! महान् योगी परमहंस सत्यानन्दजी की महासमाधि के उपलक्ष्य में इस षोडशी पूजा के आखिरी दिन हम सब यहाँ शोक मनाने एकत्र नहीं हुए हैं, बल्कि हम यहाँ इस सत्य की पुष्टि करने एकत्र हुए हैं कि शरीर त्यागने के पश्चात् भी, वे आज भी हमारे बीच उपस्थित हैं और उन्हीं के आशीर्वाद से शरीर त्यागने का कठिनतम अनुभव एक आध्यात्मिक अनुभव में रूपान्तरित हो गया है, जिससे हम सबको प्रेरणा और दिव्य आन्तरिक आनन्द का अनुभव हो रहा है।

आज पूजा सम्पन्न होगी और मन में प्रश्न आता है कि क्या मृत्यु सुखद हो सकती है। वह मृत्यु जो इतनी डरावनी और भयंकर है, क्या वह आनन्द और शान्ति प्रदान कर सकती है? मैंने न कभी सुना था और न ही कभी कल्पना की थी कि मृत्यु जैसी भयानक घटना का परिणाम आध्यात्मिक आनन्द हो सकता है। मृत्यु एक ऐसी कड़वी और अटल सच्चाई है, जिसका सामना कोई नहीं करना चाहता। मृत्यु बड़े-से-बड़े को रुला देती है और उसके सामने सब को नतमस्तक होना पड़ता है। चाहे अमीर हो या गरीब, इस सत्य का एक न एक दिन सबको सामना करना है। पर हम सब मृत्यु से डरते हैं। यहाँ एक भी व्यक्ति नहीं जो अपनी मृत्यु को आमन्त्रित करने की हिम्मत रखता है। हम चैलेंज करते हैं, चाहे संत हो या संन्यासी, चाहे विद्वान् हो, अमीर हो या गरीब, कोई भी

मृत्यु को आमन्त्रण नहीं देता। यद्यपि जीवन में कोई अनिवार्यता है, तो वह केवल मृत्यु ही है, पर हम सब उस सच्चाई से ऐसा मुँह मोड़ लेते हैं मानो वह कोई डरावना राक्षस हो, जिसका सामना हम नहीं करना चाहते।

अब तक मृत्यु के विषय में यही बातें हमने सुनी और देखी थीं। लेकिन परमहंस सत्यानन्दजी के महासमाधि के प्रत्यक्ष साक्षी होने के बाद सबकुछ बदल गया। उन्होंने अपनी मृत्यु को आमन्त्रित किया। आपको बतला दें कि मेरे गुरु को इच्छामृत्यु का वरदान प्राप्त था और उन्हें कायाकल्प, परकाया प्रवेश जैसी अनेक विद्याओं का ज्ञान था।

तात्पर्य यही कि मरना उनकी विवशता नहीं थी। उन्होंने शरीर त्यागने का चयन स्वेच्छा से किया। चाहते तो बीस साल और जीने का विकल्प उनके लिए खुला था। अपने विशिष्ट अंदाज में उन्होंने अधिक कठिन मार्ग ही चुना, क्योंकि यह बात सब जानते हैं कि उन्होंने अपने जीवन में अपनी इच्छा से कुछ नहीं किया। जो भी किया, वह गुरु के आदेश और भगवत् प्रयोजन से ही किया।

आपको याद होगा कि परमहंस सत्यानन्दजी रिखिया शरीर त्यागने के लिए ही आये थे। माता सति की चिताभूमि, देवघर स्थित रिखिया उनके लिए पृथ्वीलोक से प्रयाण करने के लिए नियुक्त की गयी थी। वे यहाँ दैवी आदेश के अनुसार पधारे थे। वे रिखिया में आश्रम या चेला-चपाटी बनाने या लोकमान्यता प्राप्त करने नहीं आये थे। उनका प्रयोजन था, हर श्वास के साथ और अन्तिम श्वास तक केवल भगवत् नामस्मरण।

अनेक बार उन्होंने कहा भी था कि मैं देवघर अपना शरीर छोड़ने आया हूँ। मैंने अनेक आवेदन दिये हैं, पर सब खारिज़ हुए हैं, क्योंकि मैंने रिटर्न टिकट माँगा है और अभी रिटर्न टिकट अवेलेबल नहीं है। जिस दिन मुझे रिटर्न टिकट मिल जाएगा, मैं तुरन्त चल दूँगा। इसलिए मेरे शरीर से आसक्ति छोड़ो, मुझे अन्दर में देखो।

संयोगवश इस वर्ष के शतचण्डी महायज्ञ तथा योग पूर्णिमा में कठोपनिषद् पर आधारित कन्याओं के अँग्रेजी नाट्य द्वारा, जिसमें उन्होंने नचिकेता की यमलोक यात्रा प्रदर्शित की, श्री स्वामीजी का संदेश हम सब ने कन्याओं के माध्यम से सुना, 'I am not this body, I am not this mind, I am not the senses, Immortal Self am I' (मैं शरीर नहीं हूँ, न ही मन हूँ और न इन्द्रियाँ, मैं अजर-अमर आत्मा हूँ।)

लगता है आखिरकार उनको रिटर्न टिकट मिल ही गया। मार्गशीर्ष पूर्णिमा को हम लोगों ने उनका पावन जन्मोत्सव मनाया, जिस समय उन्होंने आप सब को आशीर्वचन भी दिया। उसके तीन दिन पश्चात् 5 दिसम्बर को रात 10 बजे उन्होंने मुझे अपने निवास तुलसी कुटीर में बुलाया और कहा, 'मेरे जाने का समय आ गया है। मैं अब यह धरती छोड़ रहा हूँ। मेरे जीवन के हर पल का प्रयोजन था, जिसका निर्देश मुझे मिलता रहा। ठीक उसी तरह मेरी मृत्यु का भी प्रयोजन है।'

वे योगी की भाँति गये, पद्मासन में ध्यानमग्न होकर। उस रात जो मैंने देखा, कल्पना के परे था। शायद कहीं कुछ किताबों में लिखा हो। उनके जीवन की तरह ही उनका महाप्रयाण भी शाहँशाहों की तरह रहा। जैसे उन्होंने वर्षों पहले कहा था—एक गहरी श्वास लूँगा, प्राणों को खींचूँगा और हरि ॐ तत्सत्। वे हमें पहले ही बोल गये थे, 'शरीर छोड़ने के एक क्षण पहले मुझे सारे ब्रह्माण्ड की समस्त विद्याएँ प्राप्त होंगी। और मेरे जीवन के सारे कर्म फलित होकर उस क्षण में मुझे मिलेंगे।' और ऐसा ही हुआ भी। इसीलिए उनकी इस महान् दिग्विजय और यश पर हम सब शिष्यों को हर्षोल्लास होना चाहिए।

मध्यरात्रि के आस-पास अजेय मुहूर्त में जब उन्होंने प्रयाण किया, ब्रह्माण्ड उनको अपनी गोद में समाने के लिए तैयार था। परमहंसजी ने अपनी महासमाधि के लिए जिस क्षण का चयन किया, उसी से उनके ज्ञान की गहराई का अंदाज लग सकता है, क्योंकि उस समय ब्रह्माण्ड के सूक्ष्म जाल में रास्ता खुला था, जिसके द्वारा उनके कारण शरीर का तीनों लोकों में आवागमन सम्भव हो सका। मतलब उनकी उड़ान पूर्णरूप से यशस्वी रही!

परमहंसजी ने खुद रिखियापीठ में दिये एक सत्संग में स्पष्ट रूप से कहा था, 'जब मैं शरीर छोड़ूँगा, मेरी यात्रा सरकारी बस से नहीं होगी। मैं तो फर्स्ट क्लास जेट प्लेन से सीधा जाऊँगा, कोई स्टॉप नहीं। बृहस्पति लोक, शुक्र लोक, यम लोक, भैरव लोक से आगे मैं आसानी से पहुँच जाऊँगा। और हाँ, मैं रिटर्न टिकट लेकर जाऊँगा, क्योंकि मुझे यहाँ वापस आना है। मुझे न तो राज्य चाहिए और न ही ऐशो-आराम। मुझे जन्म-मृत्यु से भी मुक्ति नहीं चाहिए। मैं यहाँ बार-बार वापस आना चाहता हूँ ताकि मैं दीन दु:खियों की मदद कर सकूँ।'

हाँ, उनके प्रयाण का समय कोई आसान मुहूर्त नहीं था। बड़े ग्रहों के योग ऐसे थे कि भले ही प्रयाण का रास्ता खुला तो था, लेकिन खतरों से मुक्त नहीं था। परन्तु उनकी सात्त्विकता, श्रद्धा, विश्वास, भक्ति और हृदय की निर्मलता

ने उन्हें पार लगा दिया और हम यह कह सकते हैं कि ब्रह्माण्ड ने अपनी बाहें खोलकर उनका स्वागत किया और दैवी शक्तियों ने सबकुछ अनुकूल बनाकर उनकी सुरक्षा का भार उठाया।

उस समय मैं वहाँ थी। पता नहीं किन अच्छे कर्मों का फल मुझे प्राप्त हुआ। मेरे लिए वह एक आध्यात्मिक अनुभूति थी, जिसके द्वारा मुझे वह ध्यान की अवस्था सहजता से प्राप्त हुई, जो कड़ी से कड़ी साधना के बाद मिल सकती है। गुरुजी की कृपा से मेरी चेतना, मेरी दृष्टि और मन की स्थिति स्वप्न और सुषुप्ति की गहरी अवस्थाओं में थी। मैं द्रष्टा बन गयी। मैं एक ऐसी घटना की साक्षी बनी, जो इतिहास के पन्नों में सुनहरे अक्षरों में लिखी जाएगी।

सर्वस्व का आत्म तत्त्व में विलीन होने का अनुभव अनिर्वचनीय तो है, परन्तु उसका अनुभव किया जा सकता है। वह अनुभव परम आनन्द, अनन्तता, प्रेम और सर्वज्ञान की अनुभूति देता है। मानो कोई महान् शक्ति अपने को अपने आप से बाहर निकालकर द्रष्टा बनाकर जीने का आनन्द प्रदान करे। यही अनुभव मुझे हुआ। सोचिये तो, मृत्यु की कठिन और भयानक कड़ी दु:ख के बदले मेरे लिए आत्म-साक्षात्कार के साथ परम आनन्द लायी।

और यह अनुभव केवल मुझ तक सीमित नहीं था, मेरा विश्वास है कि उस रात और आज भी स्वामी सत्यानन्द की उपस्थिति सारी दुनिया में महसूस हो रही है। मुझे इस भावना को साबित करने के लिए किसी प्रमाण की जरूरत नहीं। देश-विदेश से हजारों मेसेज आ रहे हैं। सब एक ही बात कहते हैं–हमें अद्भुत आनन्द का अनुभव हो रहा है। ऐसा लगता है कि स्वामी सत्यानन्द हमारे साथ हैं, हमारे आस-पास हैं। जहाँ भी देखें, स्वामी सत्यानन्द ही नज़र आते हैं।

याने परमहंस सत्यानन्द अब सर्वव्यापक हो गये हैं। इस ब्रह्माण्ड के कण-कण में वे व्याप्त हो गये हैं। अब उनसे मिलना हो तो बस उनका स्मरण कीजिये। उनकी चमकती आँखें, उनकी दिल-खुलास हँसी, मनमोहक स्वभाव और असीम अनुकम्पा, अनुग्रह और सहानुभूति को याद कीजिए। और आप उनको अपने दिल में ही विराजमान पायेंगे।

तो हमारे प्रिय गुरुजी ने हमें न केवल जीने की कला सिखायी, बल्कि आदर्श मृत्यु का राज़ भी बतला दिया। जाते-जाते उन्होंने हमें इस सत्य से परिचय करा दिया कि मृत्यु भयानक होने के बदले खुशी भी ला सकती है यदि हम जीवन सही ढंग से जीयें, जैसे उन्होंने जीया। अब समय आ गया है कि

हम उनके दिखाये रास्ते पर चलने का संकल्प लें और उनके मार्गदर्शन को अपने जीवन में उतारें ताकि मरते समय हम इस दुनिया को एक बेहतर स्थान बनाकर विदा लें। परमहंस सत्यानन्द को यही उचित श्रद्धांजलि होगी।

नमो नारायण!

—स्वामी सत्यसंगानन्द सरस्वती

नमो नारायण!

आज हमारे गुरु श्री स्वामी सत्यानन्दजी की महासमाधि के अवसर पर आयोजित षोडशी अनुष्ठान सम्पन्न हो रहा है।

श्री स्वामीजी रिखिया में सन् 1989 में आए और बीस साल बाद, सन् 2009 में उन्होंने अपना शरीर त्याग दिया। श्री स्वामीजी ने स्वयं कहा था कि उनका जीवन बीस साल के अध्यायों में बँटा हुआ है। जन्म से बीस वर्ष की आयु तक वे घर पर रहे, इक्कीस से चालीस वर्ष की आयु तक उन्होंने ऋषिकेश में अपने गुरु, श्री स्वामी शिवानन्द जी की सेवा की। अगले बीस वर्षों तक उन्होंने अपने गुरु के आदेश का पालन करते हुए मुंगेर में एक विशाल योग स्मारक स्थापित किया और उसे अपने गुरु को समर्पित कर दिया। उनके जीवन का अगला बीस वर्षीय अध्याय सन् 1989 में आरम्भ हुआ, जब वे रिखिया आए। यहाँ उन्होंने स्वामी शिवानन्द जी की शिक्षाओं के प्रचार-प्रसार के लिए अपना जीवन समर्पित कर दिया।

श्री स्वामीजी ने दो कालजयी स्मारक बनाए—एक गुरु-आदेश को समर्पित—मुंगेर, और दूसरा उनकी शिक्षाओं को समर्पित—रिखिया। आज ये दोनों स्मारक अपने स्रष्टा, महान् युगद्रष्टा, सद्गुरु श्री स्वामी शिवानन्द जी के शिष्य-शिरोमणि, स्वामी सत्यानन्द जी को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

रिखियापीठ

रिखियापीठ की स्थापना कर, उसे स्वामी शिवानन्दजी को समर्पित कर श्री स्वामीजी ने स्वामी सत्संगी को रिखियापीठ की पीठाधीश्वरी नियुक्त किया। उन्हें स्वामी सत्संगी में यह संभावना दिखायी दी कि वे उनके द्वारा शुरू किये गये कार्य को और आगे बढ़ा सकेंगी। स्वामी सत्संगी के दृढ़ निश्चय, समर्पण और भक्ति-भावना को देखते हुए श्री स्वामीजी ने उन्हें परमहंस की

दीक्षा दी और आज स्वामी सत्संगी आपके समक्ष परमहंस सत्यसंगानन्द के रूप में विराजमान हैं।

स्वामी शिवानन्द जी की सेवा, प्रेम और दान की शिक्षा को जीवन्त करने का जो संकल्प श्री स्वामीजी ने रिखियापीठ के लिए लिया था, उसे साकार करने के लिए स्वामी सत्संगी नित्य-निरंतर प्रयासरत रहेंगी। इसलिए रिखियावासियों को यह विचार कभी मन में नहीं लाना चाहिए कि आगे हम लोगों का क्या होगा, क्योंकि श्री स्वामीजी ने यहाँ पूरी व्यवस्था की है। केवल यहाँ के लोगों को सम्भालने की नहीं, बल्कि इन लोगों के बीच एक ऐसे व्यक्ति को छोड़ने की, जो उनके सपनों और संकल्प को पूरा कर सके। इसलिए रिखियापीठ अनाथ नहीं हुआ है, बल्कि स्वामी सत्संगी के साथ यह और भी सशक्त और मजबूत हुआ है।

अब स्वामी सत्संगी देश-विदेश के कोने-कोने में जाकर आध्यात्मिकता का अमर संदेश प्रसारित करेंगी। उन्हें अपने गाँव, नगर या देश में आमंत्रित करने का यह एक सुनहरा अवसर है, ताकि आप भी उनके माध्यम से गुरु-कृपा और आशीर्वाद प्राप्त कर सकें।

अगला अध्याय

लोगों के मन में यह प्रश्न भी है कि स्वामी निरंजन अब क्या करेंगे। श्री स्वामीजी ने मुझे बिल्कुल स्पष्ट कर दिया था कि इस वर्ष यानि 2009 में मेरे जीवन का एक अध्याय समाप्त हो रहा है और दूसरा प्रारम्भ होने वाला है। उन्होंने मुझसे कहा, 'तुम पिछले चालीस सालों से देश-विदेश में परिव्राजक का जीवन व्यतीत करते आ रहे हो। तुम योग का संदेशवाहक बनकर अपनी परम्परा का आशीर्वाद हर जगह बरसाते रहे हो। अब तुम्हारा परिव्राजक जीवन समाप्त हो जाना चाहिए।' और उन्होंने मेरे जीवन के आगामी अध्याय के बारे में स्पष्ट निर्देश दिया।

उनके निर्देशों के अनुरूप परिस्थितियाँ भी बनती गयी हैं। सन् 2008 में स्वामी सूर्यप्रकाश को बिहार योग विद्यालय का अध्यक्ष नियुक्त किया गया और मैं अपने संस्थागत दायित्वों से मुक्त हो गया। योग का आगामी विकास-कार्य अब स्वामी सूर्यप्रकाश के निर्देशन में होगा, जिसमें उन्हें स्वामी सत्संगी का मार्गदर्शन, प्रेरणा और आशीर्वाद बराबर मिलता रहेगा। और मैं श्री स्वामीजी द्वारा निर्देशित पथ पर अपनी यात्रा आगे तय करूँगा।

जब श्री स्वामीजी ने मुझे अपना उत्तराधिकारी घोषित किया था, तब वह उत्तराधिकार किसी संस्था को चलाने, योग जगत् में पद-प्रतिष्ठा पाने या यश-कीर्ति अर्जित करने के लिए नहीं था। किसी भी संस्था में संचालक बदलते रहते हैं और वे कोई भी हो सकते हैं।

अपने गुरु से मुझे जो उत्तराधिकार मिला है, वह है संन्यास का। संन्यास के प्रति उनकी जो अटूट श्रद्धा और आस्था थी, वही मुझे धरोहर के रूप में प्राप्त हुई है। उनका संन्यास जीवन त्याग, श्रद्धा, समर्पण एवं तपस्या से पूर्णरूपेण युक्त रहा। जब उन्होंने मुझे अपना उत्तराधिकारी मनोनीत किया तब उनका यही सपना था कि मैं उनके संन्यास, संकल्प, आस्था, श्रद्धा और विश्वास को आत्मसात् करूँ। इस सपने को साकार करने के लिए उन्होंने अब मुझे अपने सामाजिक तथा संस्थागत दायित्वों से मुक्त कर दिया है।

अगर भविष्य में कहीं मैं जाना जाऊँगा तो स्वामी सत्यानन्द के संन्यासी शिष्य के रूप में, मुंगेर या रिखिया के संन्यासी के रूप में नहीं। ये स्थान तो बहुत बाद में अस्तित्व में आए, जब मैं अपना जीवन अपने गुरु को समर्पित कर चुका था। जब मैं पैदा हुआ, उन्होंने मुझे अपनी गोद में लिया। जब मैं तीन वर्ष का था, उसी समय श्री स्वामीजी ने मुझे अपने संन्यास, अपनी साधना और उपलब्धियों का उत्तराधिकारी घोषित कर दिया। मेरा एक ही संकल्प है–जो उत्तराधिकार गुरुजी ने मुझे दिया है, उसे अपने जीवन में सिद्ध करूँ।

आज मैं आपके समक्ष एक आचार्य, शिक्षक या किसी संस्था के पदाधिकारी के रूप में नहीं, बल्कि एक संन्यासी के रूप में उपस्थित हूँ और आपसे यह चाहता हूँ कि आप मेरे लिए यह मंगलकामना और प्रार्थना करें कि मैं अपने गुरु के संन्यास का योग्य उत्तराधिकारी बन सकूँ।

मैं श्री स्वामीजी से प्रार्थना करता हूँ कि मुझे वह ज्ञान, समझ और शक्ति दें जिससे मैं उनके पदचिह्नों का अनुसरण करने के योग्य बन सकूँ। मुझे विश्वास है कि आप सबकी प्रार्थना अपने लक्ष्य और संकल्प को सिद्ध करने में मेरी सहायक होंगी।

हरि ॐ तत्सत्, नमो नारायण
हरि ॐ तत्सत्, नमो नारायण

–स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

श्रद्धांजलि संग्रह

देव-ऋषि गुरुदेव के चरणों में

मंत्र सत्यम् पूजा सत्यम्, सत्यम् मंत्र निरंजनम्।
गुरोर्वाक्यं सदा सत्यम्, सत्यमेव परम पदम्॥

कुछ लिखने के विचारों में डूबते-उतरते एक साल पूरा हो रहा है और योग पूर्णिमा सामने है। करीब साठ वर्ष साथ रहने के बाद अनुभवों के सागर में डूबते-उतरते स्मृतियों के कुछ फूल उन चरणों में चढ़ाने की कल्पना करती हूँ।

याद आई 2 अप्रैल, सन् 1953 की शाम, जब हम मुनि की रेती, ऋषिकेश में पहुँचे। छोटी उम्र से रामायण पढ़ते-सुनते महत्त्वाकांक्षाओं ने सिर उठाया कि मैं विश्वामित्र और वशिष्ठ जैसे गुरु से ही दीक्षा लूँगी, नहीं तो कल्पनालोक में ही गुरु दीक्षा हो जाएगी मेरी। अपना सौभाग्य ही कहूँगी कि हम सभारत्नम् जी के साथ ऋषिकेश पहुँचे, फिर गंगा किनारे मुनि की रेती जहाँ सभा जुड़ी थी। वहाँ हम स्वामी शिवानन्द जी महाराज के सान्निध्य में पहुँच गए। उन्हें प्रणाम करके हम उनके चरणों के पास पहुँच गए। मैं उनके सामने बैठ गई और खुशी से सब तरफ देखने लगी।

अचानक देखा कि उनके पीछे छोटे-छोटे चार संन्यासी खड़े थे। मन वहीं पर अटक गया। सोचने लगी कि ये बाल-स्वामी ध्रुव-प्रह्लाद जैसे क्यों खड़े हैं। मन में विचार उठा कि वे तो अपनी महत्त्वाकांक्षा पूरी करने के लिए भगवान के भक्त बने थे, जबकि ये तो त्यागी-वैरागी हैं। यही सोचते-सोचते एक बाल-संन्यासी पर मेरी नजर टिक गई। लगा कि यह मानव रूप में कोई देव है। उसी समय शिवानन्द जी ने हमारा परिचय पूछा और सत्यव्रत जी ने अपना नाम और परिचय बताया। उन्होंने आशीर्वाद देकर कहा, 'सत्यम्, इन्हें पुस्तकें दो' और मेरे उसी बाल-संन्यासी ने कुछ पुस्तकें हम लोगों को प्रसाद के रूप में दीं। हम लोग वहाँ पाँच दिन रहे। सत्यव्रत जी को संन्यासियों के साथ

और मुझे महिलाओं के साथ कमरा मिला। मैं अपनी रूम-मेट शिवांजलि के साथ सब जगह जाती और जहाँ भी जाती उन बालक भगवान को काम में व्यस्त देखती। कभी-कभी कुछ काम करने का मौका भी मिलता। इस तरह पाँच दिन बीत गए और हम पुस्तकें, फोटो वगैरह सब लेकर अपने गृह-नगर आ गये।

राजनाँदगाँव में वैष्णव राज्य था, इसलिए वहाँ धार्मिक कार्य होता रहता था। उस समय स्वामी सत्यानन्द जी को भी वहाँ बुलाया गया, लेकिन ऋषिकेश आश्रम के कार्यों में व्यस्त रहने के कारण नहीं आ सके। सन् 1956 अप्रैल में स्वामी शिवानन्द जी का पत्र मिला कि आप लोग सत्संग के लिए स्वामी चाहते थे जो हिन्दी जानते हों, तो स्वामी सत्यानन्द अब 12 वर्षों के लिए परिव्राजक जीवन के लिए निकल गये हैं। उनका यह पता है और आप अब उन्हें बुला लीजिए। आने के लिए उनसे अनुरोध किया गया तो उन्होंने कहा, 'मैं दिव्य जीवन संघ में बुद्ध पूर्णिमा मनाकर आऊँगा।' फिर पत्र मिला कि 6 जून को आपके यहाँ आ रहा हूँ। सभी प्रसन्न हुए और जोरदार तैयारियाँ होने लगीं।

6 जून की सुबह सब मित्र-बन्धुओं के साथ स्टेशन पहुँचे। दो-तीन साहित्यकार, भक्त, प्रेमी, सभी पहुँचे। सूर्य किरणों को साथ लिए प्रभात में उनकी गाड़ी आ खड़ी हुई और स्वामीजी उसमें से उतरे। सब बहुत खुशी-खुशी उनको लेकर आये, हालाँकि कुछ लोगों को निराशा भी हुई। सब अफसर और बच्चे उनके दर्शन के लिए आने लगे और सबके साथ बातें होने लगीं। अचानक साहित्यकार बलदेव प्रसाद मिश्रा ने कहा, 'हमारा आज बहुत बड़ा सौभाग्य है कि आपके दर्शन हुए। स्टेशन पर आपको देखकर हम निराश हो गए थे कि आप तो छोटे-से बच्चे ही हैं। हमने सोचा था आप लम्बी जटा वाले होंगे, लेकिन आप तो सबसे मिल रहे हैं और बातें कर रहे हैं। ऐसा लग रहा है मानो सब आपके ही हैं।' इस तरह वे हमारे बीच में आये। हमें क्या सबको ऐसा लगा कि हम सब एक ही हैं। एक ही परिवार के हैं। परिस्थितिवश बिछुड़ गये थे और आज दुबारा मिल गये हैं।

स्वामीजी ने सत्यव्रत जी से कहा, 'आपका नगर मेरे लिए सारनाथ है और आपका घर मेरा हेड-ऑफिस। अब आप लोग मुझे सबसे मिलाइये, यही मेरा मुख्य कार्य है।' फिर उन्होंने परिचितों से मिलकर अपना कार्यक्रम बनाना शुरू किया। सब तरफ हलचल मच गई और आस-पास के सभी गाँव वालों ने उन्हें बुलाना शुरू कर दिया। स्वामीजी ने कहा, 'मैं यहाँ-वहाँ घूमता रहूँगा, इसलिए मेरे पत्र आपके पते पर आयेंगे।' हमें लगा हमारे घर साक्षात् भगवान

आ गये। उनके आने के बाद मेरे पिताजी उनसे रोज मिलने आते थे। उन्होंने कहा, 'स्वामीजी, मैं आपका इन्तजार कर रहा था।' स्वामीजी ने कहा, 'आप तो मुझे जानते नहीं थे, फिर आप मेरा इन्तजार कैसे कर रहे थे?' उन्होंने कहा, 'मैं अपनी बेटी के लिए हमेशा चिन्तित रहता था। एक ज्योतिषी ने कहा था कि यहाँ एक संत आयेंगे, इसलिए मैं आपका इन्तजार कर रहा था। देखिये, जीवन का कोई ठिकाना नहीं। आज से इसकी जिम्मेदारी आपको सौंप दी। अब आप इसके पिता और यह आपकी बेटी है। समय-समय पर आप इसका मार्गदर्शन करेंगे।' और मुझे भी कहा, 'अब मेरी चिन्ता नहीं करना। अब तेरे सच्चे पिता तुझे मिल गये।' उस समय तो बात हँसी में उड़ गयी, लेकिन चार महीने बाद मेरे पिताजी का हार्ट-फेल हो गया। स्वामीजी जब कार्यक्रम से वापस आये तो उन्होंने मुझे पुत्री के रूप में समझाया। जब भी मैं दु:खी होती तो वे मुझे अपनेपन से एक पिता की तरह बेटी-बेटा ही कह कर समझाते।

सन् 1957 में हम लोग उनके साथ गंगोत्री यात्रा पर निकले। चार उनके परिचित लोग थे और हम दो लोगों ने ऋषिकेश पहुँच कर, स्वामी शिवानन्द महाराज जी से आशीर्वाद लेकर गंगोत्री के लिए प्रस्थान किया। धरासू से पदयात्रा शुरू हुई। दस-पन्द्रह मील रोज चलते थे। एक दिन आराम करते और दूसरे दिन स्वामीजी के कुशल निर्देशन में फिर चलते। इस तरह गंगोत्री पहुँचे। वहाँ चार दिन रहे, बहुत आनन्द आया। स्वामीजी पहले पहुँच कर कमरा ले लेते थे और हम लोग बाद में पहुँचकर थके-थकाये आराम करते।

उत्तरकाशी से वापसी के समय बादल-पानी शुरू हुआ और हम लोग किसी तरह भागते-चलते-रुकते धरासू की ओर बढ़े। आखिर में पहुँचने के कुछ पहले ओले गिरने लगे, परन्तु हम लोग किसी तरह धरासू पहुँच ही गये। हमने कहा, 'स्वामीजी, बड़े-बड़े ओले गिर रहे थे। न पेड़ के नीचे रुकना ठीक था और न पहाड़ के पास खड़े रहना। तो हम किसी तरह आपके पास पहुँच ही गए।' उन्होंने कहा, 'वे ओले-पत्थर नहीं, फूल थे, जिन्हें भगवान तुम पर बरसा रहे थे। आकाश बहुत दूर है, इसलिए वे रास्ते में पत्थर बन गए! खैर तुम लोग 160 किलोमीटर गिरते-पड़ते आ ही गये ठिकाने पर।' इस तरह हमारी पद यात्रा समाप्त हुई।

दूसरे दिन हम ऋषिकेश पहुँच गए। स्वामीजी ने कहा कि आप गुरुजी को जल का लोटा देना और सत्यव्रत जी फोटो लेंगे। शाम को स्वामी शिवानन्द जी सत्संग के लिए जैसे ही कमरे से निकले, हम लोगों ने प्रणाम किया। हमें

देखते ही वे 'गंगोत्री यात्रियों की जय हो' कहने लगे। हम उनके हाथ में जल का लोटा देने लगे तो उन्होंने कहा, 'हाथ में दो जी, हम पान करेंगे।' और अंजली फैला दी। हमने काँपते हाथों से जल डाला। इस तरह तीन बार हमने जल डाला। वहाँ पर पहले से ही दो व्यक्ति और कैमरा ले कर खड़े थे, लेकिन सब भाव-विभोर होकर खड़े रहे। स्वामी शिवानन्द जी 'गंगोत्री यात्रियों की जय हो' बोलकर चले गये। तब जाकर फोटो लिया गया तो उनकी पीठ का फोटो आया! इस तरह गंगोत्री यात्रा पूरी करके हम अपने गृहनगर को लौट आये।

घर लौटने के बाद गुरु बनाने की इच्छा प्रबल होने लगी, लेकिन स्वामीजी का यही जवाब था कि गुरु तो महाराज जी ही रहेंगे। हम न तो गुरु बनेंगे, न आश्रम बनायेंगे। हम तो 12 साल पूरे होने पर पहाड़ पर जाकर बैठ जायेंगे। कई लोगों ने दीक्षा की इच्छा प्रकट की, लेकिन सभी को यही जवाब मिलता। गंगोत्री यात्रा के बाद मैं अपने में बहुत परिवर्तन अनुभव करने लगी। उनसे दीक्षा के लिए अनुरोध करने पर जब यही जवाब मिलता तो मैं कहती, 'जो भी कहो, एक दिन ऐसा आएगा कि आप जगत्-गुरु बनोगे और आश्रम भी सौ-डेढ़ सौ बन जायेंगे।' तब वे कहते, 'मुझे शाप दे रही हो क्या?' मैं कहती, 'शाप नहीं, आशीर्वाद दे रही हूँ।' और इस तरह जैसे भाई-बहन लड़ते हैं, उसी तरह हम लोग भी लड़ने लगते। मैं बेटी तो बन ही गई थी, बहन भी बन गई।

सन् 1958 में स्वामीजी अमरकंटक गये। दस दिन वहाँ घूमकर आये। उनका कार्यक्रम चलता रहा और इस तरह आपस में बातें भी होती रहीं। उस समय वे आस-पास के गाँवों में भी गये। वहीं पर एक छोटे-से गाँव में चातुर्मास किया। वहाँ मिल के सभी लोग उनके अपने थे। सबके विशेष अनुरोध पर उन्होंने कहा, 'आप लोग यहाँ मत आया कीजिये, यहाँ का रास्ता ठीक नहीं है। मैं ही आऊँगा रविवार को। चार बजे सुबह सत्यव्रत जी आकर मुझे ले जायेंगे और सोमवार शाम मुझे मोटर-साइकिल से छोड़ जायेंगे।'

सब उनके लिए पागल थे। प्रत्येक रविवार को एक व्यक्ति के यहाँ सत्संग होता। अगस्त में जाते समय उन्होंने कहा, 'देखो, 28 तारीख को राखी पूर्णिमा है। उस दिन आपका नया जन्म होगा। प्रसाद बनाना और सबको निमंत्रण देना।' 28 तारीख को सुबह साढ़े चार बजे वे आये। उन्होंने पूछा, 'सबको निमंत्रण दिया?' हमने कहा, 'क्या निमंत्रण देना है, हमें पता नहीं, लेकिन प्रसाद बना लिया है और सबको बैठाने की तैयारी कर ली है।' तो उन्होंने कहा, 'एक कागज लो और लिखो, आज 8 बजे मेरा नया जन्म होगा। आप

लोग आशीर्वाद देने आयें।' एक चपरासी को मिल एरिया और दूसरे को सिविल लाईन और रिश्तेदारों के यहाँ भेज दिया। कुल डेढ़-दो सौ लोग आये।

प्रात: 8 बजे हमारी गुरु दीक्षा हुई। कई लोगों ने प्रश्न किया, 'स्वामीजी, हमने देखा है कि कान में मंत्र बोला जाता है। पर आपने तो जोर से बोला और सबने सुना।' तब उन्होंने कहा, 'हमारे गुरु जी ने हमको यही सिखाया है कि गाली कान में देना और गुरु-मंत्र तो भगवान का नाम है, उसे जोर से बोलना!' थोड़ी देर सब बातचीत करते रहे। एक वृद्ध महिला ने कहा– 'यहाँ पर बहुत-सी महिलाएँ हैं, बहु-बेटियाँ हैं, सभी ने दीदी के साथ मंत्र बोला है। तो क्या हम भी आपको गुरु मान सकते हैं और क्या हमको भी माला देंगे?' तब स्वामीजी ने कहा, 'मानना चाहो तो मान सकते हो, पर निभाना बहुत कठिन है। माला मेरे पास नहीं है, चाहो तो सत्यव्रत जी से कहकर ऋषिकेश से मँगा सकते हो।' फिर हँसकर पूछने लगे, 'तुम कितने लोग गुरु मानोगे?' महिलाओं ने कहा, 'कुल 28 लोग हैं।' तो हँसकर बोले, 'तुम्हारी यह बसन्ती दीदी मेरी बहादुर बेटी है। मैं बहुत दिनों तक गुरु दीक्षा देने की बात टालता रहा, लेकिन मैं हार गया। खुद तो आई ही, अपने साथ 28 को लेकर आयी। आज से तुम्हारी बसन्ती दीदी का नाम माँ धर्मशक्ति हो गया है।' सब उस वातावरण में प्रसन्न थे। हम भी बहुत प्रसन्न थे। पहले उनकी बेटी बने, बहन बने और आज उनकी शिष्या भी बन गये। गुरु महाराज की माया अपरम्पार है।

14 फरवरी सन् 1960 को स्वामी निरंजन का जन्म हुआ। जन्म का समाचार पाकर गुरुजी बहुत खुश हुए। उस समय वे बम्बई और गुजरात के दौरे पर थे। सब जगह कार्यक्रम संपन्न करके 20 मार्च को वे राजनाँदगाँव आये। अपने नन्हे शिष्य को गोद में लेकर बहुत आशीर्वाद दिया, फिर हम लोगों से कहा, 'इससे मोह नहीं करना। जैसे कृष्ण जी ने मथुरा में बाल-लीला की और फिर सारा विश्व ही उनका कार्यक्षेत्र बन गया, वैसे ही इसे बहुत बड़ा काम करना है। इसका नाम निरंजन होगा।' मुझसे विशेष रूप से कहा, 'तुमको कर्त्तव्यपालन में माँ कौशल्या बनना होगा और देश की भलाई के लिए कलंक का टीका लेने वाली कैकयी भी। प्रभु ने तुम्हें बहुत बड़ी जिम्मेदारी दी है और मुझे विश्वास है तुम इसे हँसी-खुशी पूरा कर लोगी।'

फिर सब जगह आश्रम बने और लोगों के सहयोग से राजनाँदगाँव में भी आश्रम बना। सन् 1970 की गुरु पूर्णिमा के दौरान बड़े जोर-शोर से उद्घाटन भी हुआ और दीपक जला। 31 दिसम्बर सन् 1971 को सत्यव्रतानन्द जी

आश्रम से वापस प्रेस आ रहे थे, रास्ते में उनका एक्सीडेंट हो गया। पूरे शहर के लोग यह समाचार सुनकर स्तब्ध रह गये। वहाँ के सांसद ने स्वामीजी को फोन द्वारा सूचना दी। स्वामीजी कार द्वारा तुरंत रवाना हो गये। उस समय स्वामी निरंजन आयरलैंड में थे। स्वामीजी ने संस्था के सदस्यों को बुलाकर समझाया कि अपनी जिम्मेदारी पूरी करो। कुछ दिन रहकर वे वापस गये और फिर पन्द्रह दिन में लौट आये। मैं बहुत परेशान थी, लेकिन धीरे-धीरे अपने को संभाल रही थी।

फरवरी में मैंने स्वामीजी से कहा, 'प्रेस को ट्रक से मुंगेर भेज रही हूँ।' स्वामीजी ने कहा, 'वहाँ भी तो प्रेस हो गया है, वहाँ प्रेस भेजकर क्या करोगी?' मैंने कहा, 'मैं भी मुंगेर जाऊँगी।' तब स्वामीजी ने कहा, 'नहीं, तुम यहीं रहोगी और प्रेस को पूरा संभालोगी जैसे पहले संभालती थी। मुंगेर आओगी तो वहाँ समय पर प्रेस खुलेगा और समय पर बन्द होगा। बाकी समय कमरे में बैठकर पुरानी बातें सोचकर दु:खी होगी। इस तरह कितने दिन चलाओगी? तुम्हें मरना नहीं है, जीना है। यही तुम्हारे पिता, भाई और गुरु का आदेश है। तुम नारी नहीं हो, अवधूत बनकर काम करो। बैंक, लेन-देन, सब तुमको अपने हाथ में लेना है। मैं दो संन्यासी लाया हूँ, ये तुम्हारी मदद करेंगे। अभी निरंजन छोटा है, फिर भी वह बहुत काम कर रहा है और आगे भी बहुत काम करेगा। यदि तुम्हें उसका सुख देखना है तो पत्थर बन जाओ और सब काम संभालो। हमेशा याद रखना, तुम मेरी बेटी हो और मेरे आदेश के अनुसार सब काम करोगी।'

हम कुछ बोल नहीं सके, बस प्रणाम किया। स्वामीजी ने सदस्यों को भी समझाया। कहा, 'जो हुआ, बहुत बुरा हुआ। धर्मशक्ति के लिए निरंजन है, निरंजन के लिए मैं हूँ, पर मेरे लिए कौन है?' ऐसा कहते हुए उनका गला भर आया। पाँच मिनट चुप रहकर स्वामीजी ने आगे कहा, 'मुझे आप लोगों से बहुत सहयोग मिला है। यह मैं पहले ही कह चुका हूँ कि यह जगह मेरे लिए सारनाथ है। मैं सत्यव्रतानन्द जी को कितना मानता हूँ, यह कहा नहीं जा सकता। सोचता हूँ मुझे जीवन में वही सच्चे मानव मिले थे। उनके सहयोग से ही मेरा कार्य शुरू हुआ और बहुत अच्छी तरह से चला। मैं घूम-घूम कर इतना मजबूत बन सका कि मेरा काम सब तरफ फैल गया। मैं उनका संन्यास गुरु हूँ, लेकिन मैं हमेशा उनको अपना गुरु मानकर चला। सोचता था कि हम लोगों का कई जन्मों का सम्बन्ध रहा होगा। जैसी प्रभु की इच्छा।' ऐसा कहते हुए उनका गला फिर भर आया और वे चुप हो गए।

सन् 1982 में स्वामीजी राजनाँदगाँव आये तो उन्होंने कहा, 'मैं सोचता हूँ तुम्हें अकेले प्रेस चलाते बारह वर्ष बीत गए। अब प्रेस बन्द करो और मुंगेर चलो।' मैंने कहा, 'चार-पाँच साल और काम कर लेती हूँ, फिर मुंगेर चलूँगी। अभी काम अच्छा चल रहा है, रात-रात भर ओवर-टाईम चल रहा है। कोई क्या कहेगा, इतना अच्छा काम छोड़कर चली गई।' स्वामीजी ने कहा, 'अगर आज गोवर्धन जी (मेरे पिताजी) कहते कि चलो तो क्या तुम ऐसा ही कहती कि लोग क्या कहेंगे? मैं भी तुम्हारा पिता हूँ। मुझको अधिकार है तुमको ले जाने का। मैं सोच रहा हूँ अगले वर्ष निरंजन को बुलाकर उसे सब काम सौंप दूँगा। और तुम वहाँ काम करने वालों को सलाह देते रहना। मैंने ठीक कहा है न। सही समय पर सब काम होना चाहिए। अब धीरे-धीरे सब काम से छुट्टी करो। मुंगेर में भी सभी कार्यों में मुझे मदद करना।' मैं कुछ कह न सकी, चुप रह गयी। उन्होंने कहा, 'दो-तीन साल में सब काम समेट लो। कब क्या काम हो रहा है, हमको बताते रहना।'

पिता के आदेशानुसार काम करने से ही शान्ति मिलेगी, ऐसा सोचकर धीरे-धीरे सब काम पूरा करके सन् 1985 में मैंने राजनाँदगाँव छोड़ दिया और मुंगेर आ गयी। तब से गुरु के सान्निध्य में रहकर सब काम करती रही और शान्ति से जीवन बिताती रही। पर दिसम्बर सन् 2009 में हम सबको छोड़कर वे आराम से महाप्रयाण कर गये। वे देव थे और देव-लोक को चले गये। गंगादर्शन, मुंगेर एवं रिखियापीठ के भाग्य विधाता! आपकी मंगल-कामना से सब काम बराबर चलता रहेगा। हम सबका आपके श्री चरणों में प्रणाम!

–स्वामी धर्मशक्ति सरस्वती

स्मृतियाँ श्री स्वामीजी की

मई 1965 में मैं स्थानान्तरित हो मुंगेर आया और आते ही काम में इतना व्यस्त हो गया कि अन्य किसी ओर ध्यान नहीं गया। हाई स्कूलों की प्रबन्ध समितियों का गठन होना था। प्रत्येक विद्यालय में तीन-चार बार जाना पड़ता था और विद्यालयों की संख्या थी चौंसठ। अगले साल, सन् 1966 के अक्टूबर में मेरे एक मित्र, लाला राधा कुमार ने, जो मुंगेर में ही मुंसिफ थे, मुझसे कहा यहाँ एक आश्रम है। वहाँ एक स्वामीजी रहते हैं, जो 1 से 7 नवम्बर तक विश्व योग सम्मेलन करने जा रहे हैं। चलोगे?

इस समय तक मैं काफी कुछ खाली हो चला था। मैंने अपनी स्वीकृति दी तो उन्होंने मुझसे पाँच रुपये लेकर मुझे प्रतिनिधि बना दिया।

1 नवम्बर को प्रात: 8 से 11 बजे तक पहला सत्र था। मैं पुराने शिवानन्द आश्रम गया, जो अब गंगा दर्शन के ठीक सामने किले के बाहर पूरब तरफ है। हॉल के बाहर उत्तर तरफ चौकियाँ लगा कर मंच बना दिया गया था। मुख्य आसन के अलावा चार-पाँच और लोगों के बैठने की जगह रही होगी मंच पर।

आठ बजे और गेरू धोती और रुद्राक्ष माला धारण किये एक दुबले-पतले प्रौढ़ व्यक्ति आये। लाला ने बताया कि ये ही स्वामीजी हैं। मेरी नजरें उन पर गईं। फिर मुझे स्मरण नहीं सभा में क्या हुआ और किस-किस ने प्रवचन दिया। ग्यारह बजने के पाँच मिनट पूर्व शान्ति पाठ हुआ तो जैसे सम्मोहन समाप्त हो गया। स्वामीजी मंच पर शान्ति पाठ करा रहे थे। ऑफिस का समय हो गया था। मैं जल्दी-जल्दी निकला और अपने कार्यालय गया।

संध्या में ऑफिस का काम खत्म करके 5 बजे पण्डाल पहुँचा तो स्वामीजी मंच पर विराजमान थे। इस तरह मैं प्रतिदिन कार्यक्रम के लिए आता रहा। सात दिन बाद सम्मेलन समाप्त हुआ। पर स्वामीजी का वह रूप मेरे मन से उतर नहीं रहा था। हर क्षण वह गेरू-वस्त्रावेष्ठित, रुद्राक्ष-धारी संन्यासी का सौम्य तेजस्वी मुखमण्डल मन में छाया रहता था। किसी ने कहा है–

नेकु सी कांकरी जाके परे
सोइ पीर के मारे पर धीर धरै ना ।
कैसे पड़े कल मेरे सखा
जब आँख में आँख परे निकरै ना ॥

एक छोटा-सा धूल कण आँखों में पड़ जाय, तो जब तक वह निकलता नहीं चैन नहीं मिलता, पर जिसकी आँख में किसी की आँखें ही पड़ जायें और निकले नहीं तो उसका क्या हाल होगा? और यहाँ तो पूरा व्यक्तित्व ही आँखों में बैठा था। आज तक मुझे स्वामीजी का अन्य कोई चित्र उतना प्रिय और आकर्षक नहीं लगता। केवल वही चित्र जो 1 नवम्बर 1966 के 8 बजे प्रात: दिखाई पड़ा था, आँखों को अत्यधिक प्रिय लगता है।

फिर मैं स्वामीजी से मिला, 15 दिनों का योग प्रशिक्षण लिया। उन दिनों स्वामीजी स्वयं कक्षाएँ लेते थे। जो सबसे बड़ी बात थी, वह थी समय की

पाबन्दी। एक मिनट की देर भी क्षम्य नहीं थी। देरी होने पर कक्षा में प्रवेश की अनुमति नहीं मिलती थी।

इसके पश्चात् एक दिन अचानक मन में विचार आया और मैंने स्वामीजी से पूछ ही लिया, 'क्या आप हमें मंत्र दीक्षा देने की कृपा करेंगे?' स्वामीजी तुरन्त बोल पड़े, 'मैं तो सोच ही रहा था। 30 दिसम्बर का दिन अच्छा रहेगा।' दीक्षा हुई 30 दिसम्बर को और उसी दिन गेरु वस्त्र भी मिल गये। मैं नहीं जानता वह मंत्र दीक्षा थी या कर्म संन्यास। पर एक बात याद है आज तक कि दीक्षा के समय श्री स्वामीजी ने पूछा, 'कोई बात है तुम्हारे मन में तो कह दो।' मैं भी बिना सोचे बोल पड़ा, 'मेरे माता-पिता का देहान्त बिना कष्ट के हो।' और श्री स्वामीजी ने अपने हाथ में रखे केले का आधा भाग अपने मुँह में ले लिया और आधा मेरे मुँह में डाल दिया।

13 जनवरी 1978, प्रात:काल माँ नित्य दिनचर्या के अनुसार प्रात: चार बजे चाय बनाने के लिए कहकर पिता जी द्वारा गाया जा रहा भजन सुनने लगी पर जब चाय आयी तो पंछी पिंजरे में नहीं था।

जहाँ तक मुंगेर स्थानान्तरण की बात थी, वह भी कुछ ऐसी ही थी। मैं उन दिनों देवघर शिक्षक प्रशिक्षक महाविद्यालय में व्याख्याता था। कॉलेज के बाद संध्या में प्राय: प्रतिदिन वैद्यनाथ मंदिर में जाता और संध्या शृंगार का दर्शन करता। जब भी मन्दिर में जाता तो मन में एक ही बात आती कि मुझे गुरु वरण करना चाहिए, पर किसे?

कॉलेज में जब भी कोई बड़ा अतिथि आता तो उसे मुख्य स्थानों का दर्शन कराने का जिम्मा मुझे मिलता था। 1964 की वार्षिक परीक्षा में शिक्षा विभाग के डिप्टी डायरेक्टर श्री अनूप मुखर्जी परीक्षक बन कर आये और मुझे उन्हें भ्रमण कराने का जिम्मा मिला।

अन्तिम दिन जाने के पूर्व मुखर्जी साहब ने कहा, 'तुम यहाँ क्या कर रहे हो? चलो प्रशासन में।' मैं भी क्या बोलता, वही थे हम लोगों के प्रशासनिक पदाधिकारी।

मई में मेरा स्थानान्तरण मुंगेर हो गया, जो सामान्य रूप से संभव नहीं था, क्योंकि मुंगेर एक बहुत बड़ा सबडिवीजन था (आज उसमें तीन जिले बन गये हैं), जहाँ वरिष्ठतम पदाधिकारी ही पदस्थापित होते थे। पर मेरी सेवा तो मात्र 3 साल की थी। मेरे साथ-साथ सभी को आश्चर्य हुआ, पर यह माया भेजने वाले की थी या बुलाने वाले की, कैसे कहा जाय?

20 नवम्बर 1968 से 20 जनवरी 1969 तक श्री स्वामीजी ने 3 महीने का योग प्रशिक्षण सत्र आयोजित किया। भोजनादि का शुल्क था मात्र 900 रुपये। मेरी बड़ी इच्छा थी कि मैं इस सत्र में भाग लूँ, पर दो बाधाएँ थीं। अर्थ की और यथार्थ की, अर्थात् सरकार से छुट्टी की। मैंने अवकाश के लिए आवेदन तो दिया, पर जिसकी उम्मीद थी वही हुआ। छुट्टी स्वीकृत नहीं हुई। जहाँ तक अर्थ का प्रश्न था, मेरी सहधर्मिणी ने 700 रुपये दिये, जो उन्होंने अपने वेतन से बचाकर रखे थे। शेष दो सौ रुपये का प्रश्न था। मेरा तो मासिक वेतन ही 250 रुपये मात्र था। ऑफिस गया तो मेरे प्रधान लिपिक ने बताया कि बिहार परीक्षा समिति, पटना से 210 रुपये का मनी आर्डर आया है, शायद किसी परीक्षा का मानदेय है।

अर्थ का प्रबन्ध जैसे-तैसे हुआ, पर छुट्टी का क्या हो। मन कचोटते रहा। 19 नवम्बर की संध्या में श्री स्वामीजी के दर्शन के लिए आश्रम गया। देखते ही श्री स्वामीजी ने कहा, 'अरे छुट्टी नहीं हुई तो क्या है, कल आ जाओ। शंख प्रक्षालन और कुंजल तो कर लेना।' प्रात: एक दिन की सी.एल. का आवेदन ऑफिस में भेजा और आश्रम आ गया। सत्र में करीब 50 अन्य प्रतिभागी थे। शंख प्रक्षालन और कुंजल का अभ्यास सब अच्छे ढंग से हो गया। मैं आश्रम से परिचित था, अत: नये लोगों को निर्देशन भी दे रहा था। इसी क्रम में हॉल के दक्षिण ओर की नालियों के ऊपर से मैं किसी को कुछ कहने जा रहा था कि फिसल कर गिरा, जहाँ लोगों ने कुंजल किया था। दाहिने हाथ के अँगूठे में बड़े जोर का दर्द होने लगा और कुछ सूजन भी होने लगी।

स्वामीजी ने कहा कि जब तक खिचड़ी तैयार होती है अस्पताल में डॉक्टर को दिखा लो। अस्पताल में डॉक्टर ने बताया कि डिसलोकेशन हो गया है और हल्का एनेस्थेसिया देकर अंगूठे को रिड्यूस किया और बैंडेज बाँध दिया। लौट कर आश्रम आया तो देखा श्री स्वामीजी हँस रहे थे, 'अब किस हाथ से हस्ताक्षर करोगे? अब तो छुट्टी मिल ही जायेगी।' छुट्टी मिलने का प्रश्न क्या था। दो-तीन दिन में मेरा स्थानान्तरण गिरीडीह हो गया। मैंने आश्रम में ही मुंगेर का प्रभार दिया और गिरीडीह में सत्र के बाद योगदान दिया। ऐसी घटनाएँ तो अनेक हुई हैं, पर ऐसा लगता है जैसे सभी कुछ एक पूर्व निर्धारित योजना के अनुसार हो रहा था या मेरा प्रारब्ध सब कुछ करा रहा था। उसके बाद जीवन में ऐसे अनेक अवसर आए जो किसी को भी विचलित कर दें। पर लगता है किसी ने छाता लगा रखा हो और वर्षा की बूंदें शरीर को भिगो

नहीं पा रही हैं। चाहे जो हो, ऐसे अवसरों पर शरीर भीगे या न भीगे, उनकी स्मृतियाँ मन को तो भिगो ही जाती हैं।

गालिब न कर हुजूर में तू अर्ज बार बार ।
जाहिर है तेरा हाल सब उनपर कहे बगैर ॥

—स्वामी शंकरानन्द सरस्वती

गुरु के संग—एक युग का अन्त

सन् 1970 में मैं मुंगेर आश्रम आया। उस समय मेरी उम्र 18 वर्ष की थी। सन् 1970 से 1973 तक त्रिवर्षीय संन्यास सत्र प्रारम्भ हुआ। योग के अलावा गीता, उपनिषद् आदि ग्रन्थों की शिक्षा श्री स्वामीजी दिया करते थे। वह समय ऐसा था कि योग क्या है, गुरु क्या है, संन्यास क्या है—इन सभी का ज्ञान मुझे बिल्कुल भी नहीं था, क्योंकि जिस तरह से श्री स्वामीजी का प्यार और शिक्षा मिली एवं इतना ज्यादा पास रहने का मौका मिला उससे यह भी भूल गए कि गुरु से कैसा व्यवहार करना चाहिए। माता-पिता जिस तरह से अपने बच्चों को डाँटते, मारते और प्यार करते हैं, ठीक वैसा ही व्यवहार श्री स्वामीजी हम लोगों के साथ करते थे।

संन्यास सत्र बड़ा ही कठिन था। सुबह कभी एक बजे, तो कभी दो बजे ही श्री स्वामीजी उठा दिया करते थे और आसन एवं प्राणायाम की कक्षाएँ प्रारम्भ हो जाती थीं। तीन-चार घण्टे आसन की और दो घण्टे प्राणायाम की कक्षा होती थी। भूख बहुत लगती थी। नाश्ते में दलिया मिलता, जिसमें एक हिस्सा गेहूँ तो नौ हिस्सा पानी रहता था। दोपहर के खाने में गेहूँ की ही खिचड़ी मिलती थी। कभी अधपकी तो कभी नमक नहीं रहता था। गोभी पत्ते को हम लोग बकरी की तरह कच्चा चबाकर खाते थे। कभी रोटी या चावल मिलता तो वह दिन हम लोगों के लिए त्यौहार का दिन होता था।

संन्यास सत्र में देशी-विदेशी मिलाकर 108 संन्यासी थे। इस कठिन प्रशिक्षण के कारण कई संन्यासियों ने आश्रम छोड़कर जाना शुरू कर दिया। मैं भी रात को बिस्तर में सोने जाता तो यही सोचता कि सुबह गेट फाँदकर चला जाऊँगा। बड़ा ही कठिन जीवन है। लेकिन जैसे ही प्रात:काल होता, मैं अपने ही मन से कहता, कहाँ जाओगे? जब गुरु की शरण में आये हो तो फिर और

किसकी शरण में जाना? इस तरह से अपने को समझाकर दैनिक कार्यक्रम में लग जाता था। टूथपेस्ट और टूथब्रश के बारे में तो हम लोग जानते ही नहीं थे। श्री स्वामीजी गेरू मिट्टी के पाउडर का लाल मंजन बनाते थे, उसी का ही हम लोग उपयोग करते थे। पन्द्रह-बीस दिन में एक बार गंगा मिट्टी लगाकर स्नान करते थे। साबुन देखने को नहीं मिलता था।

स्वामी निरंजन जी की उम्र उस समय दस वर्ष की थी। हमेशा वे गीता, उपनिषद् आदि पढ़ा करते थे और मुझे भी पढ़ाया करते थे। हम दोनों की अच्छी दोस्ती हो गई। उम्र ही ऐसी थी कि लड़ना-झगड़ना, दूसरों को तंग करना, यही हमारी दिनचर्या थी। खाली समय में प्लान बनाते थे और दूसरे संन्यासियों पर लागू करते थे। तंग आकर कुछ संन्यासी श्री स्वामीजी के पास जाकर हम दोनों की शिकायत करते कि दोनों ही छोटे संन्यासी लोग बहुत परेशान करते हैं, आप इन्हें समझाइये कि ये ऐसा न करें। श्री स्वामीजी कहते कि दोनों ही इस आश्रम के इन्चार्ज हैं, इनसे दोस्ती कर लो तो ये आप लोगों का अच्छी तरह से ख्याल रखेंगे। इधर जब हम लोगों को मालूम पड़ता कि स्वामीजी से इन लोगों ने शिकायत की है, तब तो फिर ऐसा तंग करते कि दूसरे दिन ही आश्रम से उनकी विदाई करा देते।

स्वामी निरंजन जी प्रारम्भ से ही प्रतिभावान् रहे। शुरू से ही हम दोनों की दोस्ती बनी रही। श्री स्वामीजी ने हम दोनों को पूरी स्वतंत्रता दे रखी थी, लेकिन साथ ही वे हमें टाईट भी खूब रखते थे। खाना खाने, बगीचे में खेलने-कूदने और कीर्तन-भजन आदि में सदा साथ में ही रहते थे। कीर्तन होता तो प्रायः स्वामीजी हम लोगों के साथ घण्टों नाचते थे, सभी कोई मस्त हो जाते थे। मुझे कभी अफसोस ही नहीं हुआ कि मैंने अपने घर-बार या माता-पिता को छोड़ दिया है। *त्वमेव माता च पिता त्वमेव* —यह स्वामीजी में प्रत्यक्ष रूप से देखने एवं अनुभव करने का मौका मिला।

गुरु की शिक्षा और प्रशिक्षण देने की कला को समझना बहुत ही कठिन है। जिसके अन्दर जैसा संस्कार होता उसी के अनुरूप वे शिक्षा दिया करते थे। बाहर से जितने कठोर लगते थे, उससे कहीं ज्यादा सरल एवं सहज थे। बीस वर्ष से कम के तीन-चार ही संन्यासी थे। कभी-कभी कुछ विशेष प्रसाद रहता तो अलग से हम लोगों को बुलाकर दिया करते थे। हम लोग बड़े ही खुश हो जाते थे और आपस में चर्चा करते कि स्वामी जी हम लोगों को कितना प्यार करते हैं। कुछ घण्टे बाद ही दिये हुए प्रसाद का फल पलट

जाता और फिर गुरु जी को ही कोसते कि कैसे गुरु हैं, गलती किसी ने की और डाँट खा रहे हैं हम।

एक बार की घटना है। स्वामीजी मुंगेर के नागरिकों को शाम को सत्संग दे रहे थे। उसी समय दो संन्यासी साधना हॉल में बैठकर गपशप कर रहे थे। स्वामीजी बगीचे में बैठकर उन दोनों की आवाज सुन रहे थे। कीर्तन का समय हो रहा था, मुझे संचालन करना था। जैसे ही मैंने हॉल के अन्दर प्रवेश किया वैसे ही दोनों संन्यासी हॉल से उठकर बाहर चले गए। थोड़ी ही देर में दो अन्य संन्यासियों ने कीर्तन में भाग लेने के लिए अन्दर प्रवेश किया। श्री स्वामीजी का सत्संग भी समाप्त हो गया और स्थानीय भक्त लोग बाहर चले गए। स्वामी जी अपने कमरे के बाहर बरामदे में खड़े थे। एक संन्यासी को बुलाकर कहा, 'देखो हॉल में कौन-कौन है, बुलाकर लाओ।'

उस समय कीर्तन प्रारम्भ नहीं हुआ था। मेरे साथ दो और संन्यासी थे। हम तीनों में से मैं ही सबसे आगे था। कहते हैं जो आगे रहता है उसे प्रसाद ज्यादा ही मिलता है। इसी खुशी के साथ हम तीनों स्वामीजी के पास पहुँचे। मैं एकदम स्वामीजी के सामने खड़ा हो गया। उन्होंने कुछ नहीं पूछा। उनके एक हाथ में मोटी बेंत थी, जिसे उन्होंने पीठ पीछे छुपा रखा था। उन्होंने बेत को दोनों हाथों से पकड़ा और जिस तरह से जानवरों को मारते हैं, मेरी गर्दन के दोनों तरफ दो-दो बेंत मारी, फिर पीछे वाले संन्यासियों को एक-एक बेंत मारी। रात के करीब नौ बजे थे। स्वामीजी ने हम तीनों को गेट के बाहर निकाल दिया।

दिसम्बर का महीना था, बहुत ठण्ढ थी। हमने एक धोती पहनी थी और एक चादर ऊपर ओढ़ रखी थी। एक संन्यासी बारह बजे तक गेट के बाहर ही बैठा रहा और हम दो संन्यासी बाहर घूमते रहे। आपस में चर्चा कर रहे थे कि जो संन्यासी हॉल में गप्प मार रहे थे, वे तो बच गए और हम लोगों ने कुछ भी नहीं किया, फिर भी हमें मारपीट कर बाहर कर दिया गया। मैं सोच रहा था कि कहते हैं गुरु अन्तर्यामी होते हैं, सभी के मन-विचार को अच्छी तरह समझ लेते हैं। तो क्या गुरु जी को यह नहीं मालूम कि हॉल में कौन गप्प मार रहे थे। बड़बड़ा रहा था और गुस्सा भी खूब आ रहा था गुरु जी के ऊपर। इस तरह कई घण्टों तक बाहर ही बाहर घूमते रहे। उन दिनों एक साधु धूनी जलाकर गंगाजी के किनारे कष्टहरणी घाट पर बैठते थे। हम लोगों ने सोचा, चलो रातभर वहीं बैठकर बिता लेंगे। दुर्भाग्यवश उस रात को वे साधु भी नदारद थे। खूब ठण्ढ

लग रही थी। गर्दन में दर्द भी बहुत था। जैसे भी हो चार घण्टे बाद, याने रात्रि के एक बजे मेन गेट पर पहुँचे तो आश्रम के इन्चार्ज ने गेट खोल दिया और हम तीनों अन्दर घुस गए।

अगले दिन प्रात:काल स्वामी जी गैरेज में पाईप के साथ मोटर गाड़ी को पानी से धो रहे थे। उन्होंने एक संन्यासी से पूछा, 'गोरखनाथ और बाकी संन्यासी लोग कहाँ हैं? उनको बुलाओ।' वह संन्यासी आकर बोला, स्वामीजी बुला रहे हैं। हम लोग डरने लगे कि फिर मारेंगे क्या। आगे मैं ही था। जैसे ही हम गैरेज पहुँचे, स्वामीजी ने कहा, 'मैं सुबह पाँच बजे से कार सफाई कर रहा हूँ और तुम लोग अभी तक सोये हो? चलो तीनों साफ करो।' मेरी गर्दन घूम ही नहीं रही थी। अचानक स्वामीजी ने मेरी गर्दन की ओर देखा। चमड़ी उखड़ी हुई थी और लाल दिख रही थी। शायद मारने के समय स्वामीजी को भी अन्दाज नहीं रहा होगा कि चमड़ी-उधेड़ मार मारे हैं। स्वामीजी के आशीर्वाद से गर्दन में दर्द नहीं रहा, मगर दाग दो साल तक रहा। स्वामीजी ऐसा व्यवहार करने लगे मानो इस सारी घटना के बारे में उनको पता तक नहीं है!

ऐसी और भी कई घटनाएँ घट चुकी हैं। गुरु की लीला और उनकी महिमा को समझ पाना सम्भव नहीं है। केवल गुरु को मालूम रहता है कि व्यक्ति के अन्दर के अवगुणों को किस औजार से दूर किया जा सकता है। हमारे संन्यास सत्र में कई बूढ़े संन्यासी भी थे। वे लोग कहते थे कि तुम बाल-संन्यासी लोग बड़े ही भाग्यवान् हो। प्रसाद रूप में गुरु का डंडा मिल जाय तो जीवन धन्य हो जाता है। गुरु जिनको बनाना चाहते हैं उनको ही गुरु का डण्डा और डाँट मिलती है। एक तो डण्डे से मार खाने के बाद गर्दन में दर्द हो रहा था और ऊपर से ये संन्यासी लोग जले पर नमक छिड़कने का काम कर रहे थे। हमने उन लोगों से कहा, 'गुरु का प्रसाद बाँटकर खाया जाता है।' तब जाकर वे चुप हुए!

जब तक आश्रम में रहा, गुरु जी का सान्निध्य प्राप्त होता रहा। बाहर टूर में जाता तो वहाँ भी उनकी कृपा दृष्टि बनी रहती। इसी वजह से बाहर आश्रमों के आचार्यों द्वारा बहकाने में नहीं आया। कई आश्रमों में गया, महा-मण्डलेश्वरों से मिला, वे कहते कि यहाँ हमारे आश्रम में आ जाओ, हर तरह की सुविधा मिलेगी, बाहर विदेश जाने का मौका मिलेगा। प्रलोभनों की बातें करते थे, किन्तु हमने सबको लताड़ दिया। जब एक गुरु चुना है तो दूसरे की शरण में जाना मूर्खता ही है। इसीलिए कहा जाता है जीवन में एक गुरु, एक इष्ट

एवं एक मंत्र होना चाहिए। दो याने व्यक्ति दुविधा में तो पड़ेगा ही। जीवन में खींचा-तानी होकर ही रहेगी।

आश्रम में रहकर मुझे हर विभाग में सेवा करने का मौका मिला। चाहे रसोईघर हो, बाजार जाना हो, बागवानी का काम हो या फिर योग सिखाना हो। किचन और ऑफिस संन्यासियों के मुख्य रूप से ट्रेनिंग सेन्टर होते हैं। हम लोगों के दिमाग के कचड़े और अहंकार का नाप-तौल इन्हीं दो स्थानों पर होता है। सुबह से शाम तक भाग-दौड़ का ही काम रहता था। काम करने में खूब आनन्द आता था। शाम को एक घण्टे के कीर्तन से सारी थकान दूर हो जाती थी और चैन से सोते थे। गुरुदेव की दिव्य शक्ति सदैव अन्दर में काम करती थी। इसी वजह से काम करने में खूब मन लगता था। कार्य के समय स्वयं स्वामीजी हम लोगों के साथ मिलकर काम करते थे। उस समय सही में उनकी शक्ति का, उनके सान्निध्य का अनुभव किया जा सकता था। मेरे जीवन के आनन्ददायक पक्ष दो ही थे, पहला कर्मयोग और दूसरा कीर्तन-भजन। सारे जीवन का सारतत्त्व इन्हीं दो मार्गों में है, जिससे आन्तरिक शुद्धिकरण होता है और अहंकार का नाश होता है। किन्तु गुरु-कृपा बिना सब अधूरा है।

श्री स्वामीजी के अनेक रूप हैं। जाकि रही भावना जैसी, सभी ने अलग-अलग रूपों में उन्हें देखा है। अनेक रूप होने के कारण मन एक पर जल्दी केन्द्रित नहीं हो पाता, किन्तु उनके चरणों में मन सहज ही टिक जाता है और सदैव उनके चरणों का ही ख्याल रहता है। मन लीन रहे तव श्री चरणे, गुरुदेव दया कर दीन जने। मेरी यही प्रार्थना भी है।

अनन्तसंसारसमुद्रतारनौकायिताभ्यां गुरुभक्तिदाभ्याम् ।
वैराग्यसाम्राज्यदपूजनाभ्यां नमो नमः श्री गुरुपादुकाभ्याम्॥

अठारह वर्ष की उम्र से अब तक का जीवन गुरुदेव के सान्निध्य एवं मार्गदर्शन में बीता है, चाहे मुंगेर आश्रम में हो या फिर रिखियापीठ में। जिस रूप में, जिस स्थान पर वे कार्य करते थे, साधना करते थे या फिर सत्संग देते थे, उन स्थानों पर उसी रूप में वे मुझे स्पष्ट नजर आते हैं। इसीलिए मन को उन स्थानों से, रूपों से हटा पाना फिलहाल सम्भव नहीं है। शायद आगे चलकर उन्हीं की कृपा से मन स्थिर हो जाय।

पिछले बीस वर्षों में रिखियापीठ में पूज्य गुरुदेव के सत्संग, दर्शन एवं सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ और गुरुदेव के समाधिस्थ होने तक उनका

दर्शन हुआ, इससे बढ़कर इस जीवन के लिए सबसे बड़ी उपलब्धि और क्या हो सकती है? और मैं समझता हूँ कि उनके प्रयाण के साथ मेरे जीवन के एक युग का अन्त हो गया।

मेरे जीवन में भी उतार-चढ़ाव तो आए, किन्तु इसलिए मेरे जीवन में समस्याएँ भारी नहीं पड़ीं, क्योंकि मैं यही मानकर चलता था कि जो कुछ भी जीवन में घटित हो रहा है, गुरुदेव सब कुछ जानते हैं। वे हमारी परीक्षा ले रहे हैं। जब कभी मन डगमगाता, तो इस विचार के साथ वह अपने आप स्थिर हो जाता और खुशी होती कि गुरुदेव ही इन कठिनाइयों से आगे बढ़ा रहे हैं। आत्मविश्वास बढ़ता था कि गुरुदेव साथ में हैं। सभी कुछ सरल एवं सहज हो जाता था।

अब आगे का शेष जीवन स्वामी निरंजन जी के मार्गदर्शन एवं आशीर्वाद से आगे बढ़ता रहेगा। पूज्य गुरुदेव के प्रतिरूप स्वामी निरंजन जी एक आध्यात्मिक प्रकाशस्तम्भ हैं। हजारों योग केन्द्रों एवं लाखों शिष्यों के मार्गदर्शक हैं। हालाँकि स्वामी निरंजन जी प्रारम्भ से ही मेरे लिए एक अच्छे एवं सच्चे मित्र रहे हैं और यह मित्रता अभी भी बरकरार है और उन्हें मैं इसी रूप में ही स्वीकार कर पाता हूँ, किन्तु पूज्य गुरुदेव के रूप में वे मेरे लिए सदा पूज्य, सम्माननीय एवं मार्गदर्शक हैं। यही आशा है कि हमें आगे भी वे अपने आशीर्वाद से आगे बढ़ाते रहेंगे।

स्वामी निरंजन जी एवं रिखियापीठ की पीठाधीश्वरी, स्वामी सत्यसंगानन्द जी, अगर इन दोनों का सहयोग हमें नहीं मिल पाता या ये हमें नहीं स्वीकारते तो शायद मैं आश्रम छोड़कर चला गया होता। मैंने सभी का सम्मान किया, सभी से मेरा अच्छा व्यवहार एवं स्नेह रहा। कोई मेरा दुश्मन नहीं रहा और न ही किसी से जिगरी दोस्ती रही। केवल स्वामी निरंजन जी को छोड़। इसीलिये हमें भी सभी गुरु भाई-बहनों से या अन्य संन्यासियों से स्नेह एवं सम्मान मिलता रहा। इसी वजह से सभी के आशीर्वाद से आज मैं स्वस्थ एवं मस्त हूँ। चाहे आप गृहस्थ आश्रम में हों या संन्यास आश्रम में, यदि आपस में प्रेम एवं एक-दूसरे के प्रति सम्मान और कुशल व्यवहार नहीं होगा तो जीवन में सुख-शांति प्राप्त कर पाना कठिन हो जायेगा और जीवन में सफलता के सभी मार्ग बंद हो जायेंगे। सभी को प्यार दो, पूज्य गुरुदेव की यही वाणी थी।

हर एक के जीवन में गुरु ही सर्वोपरि हैं। उनकी कृपा और आशीर्वाद के बिना जीवन में कुछ भी हासिल नहीं होगा। अतः गुरुदेव एवं स्वामी निरंजन

जी के सभी शिष्यों से यही निवेदन है कि मुंगेर और रिखियापीठ में कुछ समय अवश्य बितायें। दोनों ही स्थान पूज्य गुरुदेव की तपस्या एवं साधना के स्थान हैं, जहाँ उनकी शक्ति का अनुभव किया जा सकता है। आपका जीवन धन्य हो जायेगा, आनन्दमय, सुखमय एवं शांतिमय बन जायेगा।

पूज्य गुरुदेव का आशीर्वाद एवं उनकी कृपा आप सभी पर बनी रहे, आप स्वस्थ एवं खुश रहें, यही हमारी हार्दिक मनोकामना है।

गुरुदेव मेरी नइया उस पार लगा देना।
अब तक जो निभाया है आगे भी निभा देना॥

–स्वामी गोरखनाथ सरस्वती

श्री स्वामीजी के संग कुछ प्रेरक प्रसंग

पहली बार जब हमने श्री स्वामीजी को देखा और सुना तो लगा कि हमारे शेष जीवन में वे ही हमको मार्गदर्शन देने वाले हैं। हमें पता चला कि मुंगेर में प्रथम त्रिवर्षीय संन्यास सत्र 1970 में आरम्भ होने वाला है। हम उस सत्र में भाग लेने चल पड़े।

सत्र के दौरान कई बार हमें चमत्कारिक अनुभव भी हुए। आरम्भ में हमारी तबियत खराब रहा करती थी, सर्दी, खाँसी, बुखार, इत्यादि। जब भी श्री स्वामीजी संन्यासियों को सम्बोधित करते, तो हम सबसे पीछे बैठा करते थे। एक दिन उन्होंने कहा, 'पीछे क्यों बैठते हो, सामने बैठो।' सत्संग के दौरान उन्होंने हमको कुछ क्षणों तक एकटक देखना आरम्भ किया। हमने अनुभव किया कि हमारे अन्दर एक विशेष ऊर्जा प्रवेश करती जा रही है और हमारे अन्दर जो भी गड़बड़ियाँ थीं, सब ठीक होती जा रही हैं। अगले दिन से हम पूर्ण रूप से स्वस्थ हो गए। अप्रत्यक्ष रूप से श्री स्वामीजी ने अनगिनत लोगों पर इस तरह करुणा-वृष्टि की है।

संन्यास सत्र में हम लोगों को चाय-नाश्ता-भोजन के लिए एक छोटी-सी बाल्टी मिली थी। जो भी मिलता था सब कुछ बाल्टी में मिलाकर खाने का नियम था, चाहे वह नमकीन हो, खट्टा हो, मीठा हो या कड़वा हो। एक बार हम लोग भीम बाँध में पिकनिक मनाने गए। भोजन बहुत अच्छा था और स्वादिष्ट मिठाई बँट रही थी। मिठाई को हमने बाएँ हाथ में लिया और बाकी

भोजन को बाल्टी में। हमने सोचा कि भोजन के उपरान्त मिठाई स्वाद लेकर खाएँगे। श्री स्वामीजी तो अन्तर्यामी हैं। मन और हृदय की बातों को तुरन्त भाँप जाते हैं। उन्होंने हमको अपने पास बुलाया, हमारे हाथ से मिठाई ली, बाल्टी में डाली, अच्छी तरह फेटा, तीन कौर खाया और फिर बाल्टी हमें दे दी। अब तो वह भोजन प्रसाद बन चुका था। हमने खाना शुरू किया तो उसमें इतना स्वाद था कि आज भी हमें उसकी याद है। उनके सिखाने का तरीका अद्‌भुत था। भोजन के प्रति आसक्ति समाप्त हो गई। अब मिठाई अलग से खाएँ या भोजन के साथ मिलाकर, कोई फर्क नहीं पड़ता।

संन्यास सत्र में कुछ अनुभव पाने की, चमत्कार देखने की बहुत इच्छा थी। हमने बिना श्री स्वामीजी को पूछे प्राणायाम के उच्च अभ्यासों को करना आरम्भ कर दिया। कुछ अनुभव प्राप्त हुए, लेकिन हमारा शरीर उच्च अभ्यासों के लिए तैयार नहीं था। पूरे शरीर में संक्रमण फैलने लगा, जगह-जगह फोड़े-फुन्सियाँ निकलना आरम्भ हो गयीं। डॉक्टरों ने दवाई देनी चाही, लेकिन हमने लेने से इन्कार कर दिया। संक्रमण इतना बढ़ गया कि डॉक्टरों ने कहा हाथ-पैर काटना पड़ेगा। हमने कहा कि हमें अपने गुरु और गुरु मंत्र पर पूरा विश्वास है, हम उनके आशीर्वाद से ठीक हो जाएँगे। जब श्री स्वामीजी को पता चला कि हमने दवा लेने से इन्कार कर दिया है तब उन्होंने हमको उपवास में रखा। कुछ दिनों तक फलाहार में, कुछ दिनों तक सब्जी में, कुछ दिनों तक सब्जी के रस में और छः महीने तक बिना नमक के भोजन में। एक विशेष मंत्र भी दिया। नीम के पानी से हमें नहलाया जाता था, नीम पत्ते का सेवन करते थे। इन सबके माध्यम से हमें श्री स्वामीजी का आशीर्वाद मिला और छः माह के बाद ऐसा लगा कि हम ठीक होते जा रहे हैं। एक वर्ष के अन्दर हम पूर्ण स्वस्थ हो गए।

एक बार हम लोग खुले ट्रक में श्री स्वामीजी के साथ भीम बाँध गए। सब कीर्तन में मग्न थे। अचानक श्री स्वामीजी भाव-समाधि में चले गए। उनके प्रभाव से सब संन्यासीगण भी कुछ देर के लिए सुध-बुध खो बैठे। शरीर, मन और इन्द्रियों से परे चले गए। अलौकिक आनन्द की अनुभूति हुई।

संन्यास सत्र के अन्त में श्री स्वामीजी ने कहा कि छः दिनों के अन्दर तुम्हें कोलोम्बिया योग सिखाने जाना है, तैयारी कर लो। हमको डर इस बात का लगा कि उन लोगों को योग कैसे सिखाएँगे। उन लोगों को किताबी ज्ञान बहुत रहता है। हमने योग की एक किताब तक नहीं पढ़ी थी। योग के बारे में जो भी ज्ञान था, व्यावहारिक था, जो हमने श्री स्वामीजी से सीखा था। हमने

श्री स्वामीजी की सभी किताबों को एक सूटकेस में पैक कर लिया। सोचा कि समय निकालकर पढ़ेंगे, फिर लोगों को योग सिखाएँगे।

जिस दिन जाना था, उस दिन श्री स्वामीजी ने हमको बुलाया और पूछा, 'तैयारी हो गई?' हमने कहा, 'जी, पूरी तैयारी हो गई।' उन्होंने हमारा सूटकेस मँगाया और उसे खुलवाया। उसमें से सारी किताबें निकाल दीं। फिर हमें समझाया, 'इनकी आवश्यकता न तुमको है और न उनको। तुम्हारे अन्दर जो है वह तुम्हारे और उनके लिए पर्याप्त है। चिन्ता की बात नहीं। जरूरत पड़ने पर मैं हमेशा तुम्हारे साथ रहूँगा।' यह बात उन्होंने हमारी आँखों की ओर देखते हुए इस ढंग से कही कि हमको अनुभव हुआ कि हमारे चेतन, अवचेतन और अचेतन मन के अन्दर समा गए। हमारा भय, चिन्ता और असुरक्षा का भाव समाप्त हो गया। हमने निर्भीकता, साहस, उत्साह और आत्मविश्वास का अनुभव किया। हम कोलोम्बिया में लगातार दस साल तक रहे, बिना मुंगेर लौटे। एक दिन भी ऐसा नहीं लगा कि हम अकेले हों। हमें निरंतर श्री स्वामीजी की उपस्थिति का अनुभव होता था। श्री स्वामीजी जहाँ भी जाते थे, मूसलाधार वर्षा होती थी। हम कोलोम्बिया के जिस-जिस शहर में गए, दक्षिण अमेरिका के जिस-जिस देश में गए, वहाँ वर्षा हुई। हम लोगों को बताया करते थे कि श्री स्वामीजी का सूक्ष्म आगमन हो चुका है, और सत्संग में विशेष आनन्द आने वाला है। अभी भी वर्षा होती है तो हम लोगों से कहा करते हैं कि श्री स्वामीजी आ गए हैं।

एक बार बोगोता के नजदीक विजेता नामक स्थान पर एक जेसुइट पादरी ने योग शिविर का आयोजन किया, जिसका संचालन श्री स्वामीजी ने किया। सत्संग आरंभ होने के पूर्व मूसलाधार वर्षा होने लगी। टीन की छत थी। आवाज बहुत हो रही थी। कुछ भी सुनाई नहीं पड़ता था। श्री स्वामीजी ने 'तेरो नाम ॐकार' कीर्तन आरम्भ किया। बीस मिनट के बाद हॉल के ऊपर वर्षा बन्द हो गई, लेकिन बाकी सब जगह बारिश हो रही थी। सब लोगों ने इस चमत्कार को देखा। सत्संग आरम्भ हुआ, जो एक घण्टे तक चला।

सन् 1981 की बात है। हमें श्री स्वामीजी का आदेश प्राप्त हुआ कि मेरे साथ यूरोपियन टूर में जाना है। हमारी यात्रा एक सप्ताह के अन्दर आरम्भ होनी थी। उस समय हम मेदेयिन नामक शहर में रहते थे। हमारे पास न धन था, न टिकट थी और न ही वीसा था। हमने श्री स्वामीजी को याद किया, गुरु मंत्र का सतत् स्मरण करने लगे। ऐसा लगने लगा कि सब कुछ समय पर

हो जाएगा। *मंत्रमूलं गुरोर्वाक्यम्*–जो भी गुरु के मुख से निकलता है वह मंत्र के समान शक्तिशाली होता है। श्री स्वामीजी जो भी कहते थे, जो भी चाहते थे, वह हो ही जाता था। किसी तरह पैसे का इन्तजाम हो गया, टिकटें मिलने लगीं। यूरोप के 17 देशों में जाना था। सभी टिकट वेटिंग लिस्ट में थे। वीसा किसी भी देश का नहीं मिला था। शनिवार का दिन था, उस दिन दूतावास का दफ्तर बन्द रहता है। इटालियन राजदूत को घर में फोन लगाया। हमने उनसे निवेदन किया कि हमें अपने गुरु जी से रोम में मिलना है और फिर यूरोप की यात्रा में जाना है। यहाँ से चमत्कार आरम्भ होता है। इटालियन राजदूत ने छुट्टी का दिन होते हुए भी एक घण्टे के लिए दूतावास खोलना स्वीकार किया। हमारे पास फोटो नहीं था। राजदूत ने कहा, कोई बात नहीं, बाद में भेज दीजिएगा। और हमें इटली जाने का वीसा मिल गया! यात्रा के सभी व्यवधान समाप्त होते जा रहे थे।

यात्रा के अगले दौर में हमें लन्दन से डब्लिन जाना था। वेटिंग लिस्ट में हमारा नाम 51 वें नम्बर पर था। हमने श्री स्वामीजी से यह बात कही। उन्होंने कहा कि तुम्हें हर हाल में हमारे साथ जाना है, जाकर प्रयास करो। हम जाकर एक लाइन में खड़े हो गए। जब लाइन समाप्त हुई तो हमें पता लगा कि वह लाइन ऐसे व्यक्तियों के लिए थी जिनकी कन्फर्म्ड सीटें थीं। हमारे टिकट की जाँच हुई और अधिकारियों ने कहा कि आपका तो वेटिंग लिस्ट में 51वाँ नम्बर है। हमने उनसे निवेदन किया कि हमारा अपने गुरु के साथ डब्लिन जाना अत्यन्त आवश्यक है। हमने उस अधिकारी को श्री स्वामीजी का दर्शन भी करा दिया। चमत्कार यह हुआ कि उन्होंने तुरन्त हमारा सामान जहाज में डलवा दिया और हमें फाइनल चेक-इन की लाइन में लगा दिया। हमें इस बात की बहुत खुशी हुई कि हम श्री स्वामीजी के साथ डब्लिन जा सके।

जब हम लोग स्पेन के बार्सीलोना शहर पहुँचे तो हमें तेज बुखार था। साथ ही सर्दी-खाँसी भी थी। रात्रि के समय भोजन करने बैठे। भूख नहीं थी। अच्छा नहीं लग रहा था। कढ़ी-डुबकी बनी थी। श्री स्वामीजी ने अपने हिस्से की कढ़ी-डुबकी भी हमें दे दी। उन्होंने कहा कि डुबकी को निगलते जाओ और कढ़ी को पीते जाओ। हमने महसूस किया कि वे हमें आशीर्वाद रूपी दवा दे रहे हैं। भोजन समाप्त होने पर उन्होंने हमें सोने के लिए कहा। एक घण्टे के अन्दर हमें लगा कोई हमें उस विकट स्थिति से बाहर निकाल रहा है। अगले दिन हम बिल्कुल ठीक हो गए!

श्री स्वामीजी के प्रशिक्षण का तरीका विलक्षण था। किस शिष्य की प्रगति कैसे हो सकती है, उसे किस साधना की आवश्यकता है, यह उन्हें पूर्ण रूप से पता होता था और उसी तरीके से मार्ग-दर्शन देते थे। उनके पास हर समस्या का समाधान रहता था।

धनबाद के एक दम्पत्ति ने किताबों के माध्यम से श्री स्वामीजी के बारे में जाना। वे प्रेरित हुए और मन-ही-मन उन्हें अपना गुरु मान लिया। वे कभी श्री स्वामीजी से मिले नहीं थे। एक बार हम उनके घर में रुके। संध्या के समय उन्होंने गुरु-स्तोत्र का पाठ आरम्भ किया। थोड़ी देर में रोने की आवाज सुनाई पड़ी। अगले दिन हमने उनसे उनके रोने का कारण पूछा। उन्होंने कहा कि प्रतिदिन गुरु-स्तोत्र का पाठ करते समय रोना आता है और फिर श्री स्वामीजी प्रकट हो जाते हैं। जो भी प्रश्न हम करते हैं, श्री स्वामीजी उसका उत्तर देते हैं!

एक बार उस दम्पत्ति के मन में श्री स्वामीजी के प्रत्यक्ष दर्शन की इच्छा हुई। इस प्रकार के शिष्य जब कोई इच्छा प्रकट करते हैं तो वह शीघ्र ही पूरी भी हो जाती है। हमने उनसे कहा कि स्वामी गोरखनाथ दून एक्सप्रेस से 1 बजे रात को धनबाद पहुँच रहे हैं। आप उनको लेने के लिए रेलवे स्टेशन चले जाइए। वे कुछ घण्टे आपके घर में रहेंगे, फिर 3 बजे प्रात: रिखिया के लिए एक साथ प्रस्थान कीजिए। अगले दिन प्रात: 8 बजे श्री स्वामीजी का दर्शन होने वाला था। उन्होंने वैसा ही करने का निश्चय किया। उन्हें इतनी खुशी हुई कि उन्होंने निर्णय लिया कि जब तक श्री स्वामीजी के दर्शन नहीं होंगे तब तक कुछ खाएँगे-पीएँगे नहीं। प्रात: 8 बजे के पहले वे लोग रिखिया पहुँच गए। दर्शन के लिए सब लोग गणेश कुटीर में एकत्र हो गए। आधे घण्टे तक धनबाद वालों की ओर श्री स्वामीजी ने देखा तक नहीं। फिर उनकी ओर देखकर श्री स्वामीजी ने कहा, 'ओ धनबाद वालों! यह हाड़-माँस का बना शरीर तो नाशवान् है, आप लोग जिस विग्रह रूप का दर्शन कर रहे हैं वही अच्छा है।' इसी एक वाक्य से वे दोनों कृतकृत्य हो गए, निहाल हो गए, आनन्द से भर गए!

श्री स्वामीजी में असीम धैर्य था। कोई शिष्य कितनी भी बड़ी गलती करे, यदि वह शिष्य समर्पित है तो उसे क्षमा कर देते थे। उन्हें हमने कभी प्रतिक्रिया करते नहीं देखा। एक बार एक शिष्य मन-ही-मन योजना बना रहा था भागने की। श्री स्वामीजी ने कहा, 'अरे कहाँ जाओगे? ट्रेन टिकट का किराया जुटाने में भी दिक्कत होगी। लोग व्यक्ति को नहीं, संस्था को पहचानते हैं। यदि

शिष्य संस्था को छोड़कर जाएगा तो निन्यानबे के चक्कर में फँसेगा। दाल-रोटी का जुगाड़ करते-करते परेशान हो जाएगा।' शिष्य की आँखें खुल गईं।

जैसे लोहा प्रचण्ड अग्नि के पास जाने से पिघल जाता है, वैसे ही श्री स्वामीजी के निकट जाते ही पत्थर दिल व्यक्ति भी पिघल जाता था। श्री स्वामीजी अक्सर कुछ संन्यासियों को साथ लेकर योग टूर पर निकला करते थे। दिन के समय योग के कार्यक्रमों का संचालन करते और रात को कार से यात्रा करते। बिहार में रात को यात्रा करना खतरनाक है, चोर-डाकू लूट-मार करते हैं। एक रात की बात है, श्री स्वामीजी कुछ संन्यासियों के साथ यात्रा कर रहे थे। छः डाकुओं ने कार को रोका। श्री स्वामीजी और सभी संन्यासी कार से बाहर निकल आए। उन्होंने कहा कि हम लोग तो संन्यासी हैं, हमारे पास कुछ नहीं है, फिर भी कार के अन्दर देख लो, तुम्हारे लायक यदि कोई सामान है तो ले लो। वे लोग कार के अन्दर जो भी सामान था, सब निकालकर ले जाने लगे। बातचीत के दौरान श्री स्वामीजी की धोती का स्पर्श डाकू के सरदार के शरीर से हो गया। छः कदम चलने के बाद वे लौटे। सब की आँखों में आँसू थे। उन्होंने कहा कि हमसे बहुत बड़ी गलती हो गई जो हमने श्री स्वामीजी को रोका। उन्होंने सारा सामान वापस कर दिया और क्षमा माँगी। श्री स्वामीजी ने कहा कि केवल क्षमा माँगने से काम नहीं चलेगा, तुम सबको गुरु दक्षिणा देनी होगी और दीक्षा के लिए मुंगेर आना होगा। सबने श्री स्वामीजी को गुरु दक्षिणा दी, फिर चले गए। सबका हृदय परिवर्तित हो चुका था।

एक महिला ने योजना बनाई श्री स्वामीजी को मारने की। श्री स्वामीजी को पता चल गया। उन्होंने गेट पर खबर भेज दी कि एक महिला आने वाली है, उसको रोकना नहीं, सीधा मेरे पास ले आना। जब महिला पहुँची तो श्री स्वामीजी ने कहा, 'जिस काम के लिए आप आए हैं, उस काम को कर डालिए।' महिला ने पिस्तौल निकाली, पर उसका हाथ काँपने लगा। पिस्तौल हाथ से गिर गयी और वह रोते हुए श्री स्वामीजी के पैर पकड़कर क्षमा माँगने लगी। और वह श्री स्वामीजी की शिष्या बन गई।

बरियारपुर के कई डाकू श्री स्वामीजी के दर्शन के बाद उनके शिष्य बन गए। जब भी कोई कार्यक्रम होता तो श्री स्वामीजी इसी 'बरियारपुर सुरक्षा बल' को भीड़ का नियंत्रण करने के लिए बुलाते थे। उन लोगों की एक आवाज से सब लोग शान्ति से कतार लगाकर बैठ जाते और जब श्री स्वामीजी अपना सत्संग देते, सब लोग बिल्कुल शान्त भाव से एकाग्रचित्त होकर उन्हें सुनते थे।

सांसारिक व्यक्ति जब गुरु के पास पहुँचता है तब उसकी सांसारिक भावना भक्ति में बदल जाती है। एक बच्चे के समान होकर वह समर्पण के लिए तैयार हो जाता है। 'मातृ देवो भव' माता प्रथम गुरु है। माँ के बिना बच्चे की परवरिश ठीक ढंग से नहीं हो सकती। 'पितृ देवो भव' पिता दूसरा गुरु होता है। पिता से भी बच्चा बहुत कुछ सीखता है। फिर है 'आचार्य देवो भव।' बहुत-से प्रश्न ऐसे होते हैं, बहुत-सी समस्याएँ ऐसी होती हैं, जिनका समाधान न माँ, न बाप, न भाई, न बहन, और न मित्र-सखा के पास होता है। ऐसी स्थिति में एक आध्यात्मिक गुरु की आवश्यकता होती है। 'गुरु' का अर्थ होता है अज्ञान के अंधकार को दूर करने वाला। आध्यात्मिक जीवन की वास्तविक शुरुआत तब होती है जब गुरु मिलते हैं। गुरु-शिष्य का यह सम्बन्ध जीवन का सबसे मधुर सम्बन्ध है।

–स्वामी कैवल्यानन्द सरस्वती

नीराजन

अवसान तो देह का होता है, देही का नहीं। पुरी का होता है, पुरुष का नहीं। वह द्वारिका पुरी नहीं रही, परन्तु द्वारिकाधीश ...। वह जनकपुर भी नहीं है, किन्तु जनक और जानकी ...। राम और रहीम, कृष्ण और करीम, वसिष्ठ-व्यास और संदीपनी, गौड़-गोविन्द-शंकर, कबीर-सूर-तुलसी-रैदास, मीरा और सहजो–कहाँ हैं ये सभी? रामकृष्ण-विवेकानन्द, युक्तेश्वर-योगानन्द, अरविन्द और रमण महर्षि, विश्वानन्द और शिवानन्द, तथा अन्य अनेक संत-महात्मा। और अब परमहंस सत्यानन्द जी।

इसमें कुछ भी नया या आश्चर्यजनक नहीं है। जन्म, जरा, व्याधि और मृत्यु तो प्रकृति के अकाट्य-अटल नियम हैं। चिरंजीवी तो केवल सात हैं–बलि, विभीषण, परशुराम, हनुमान, व्यास, कृपाचार्य और अश्वत्थामा। और इनमें से प्रत्येक से जुड़ी अलग-अलग विशेष कहानियाँ हैं, उनकी चिरंजीविता के पीछे विशेष उद्देश्य हैं।

तो देहावसान एक यथार्थता, एक वास्तविकता है। अनेक सन्त-महात्माओं, साधु-संन्यासियों-सिद्धों और गृहस्थों को भी इच्छामृत्यु की सिद्धि प्राप्त होती है, और तदनुकूल स्वेच्छानुसार ही वे देह-त्याग करते हैं। यह एक स्वीकृत तथ्य है और इसमें भी आश्चर्य की कोई बात नहीं

है। मुख्य बात यह है कि अधिकतर लोग मरते हैं मरने के लिये; वे मर जाते हैं। किन्तु श्री स्वामीजी जैसे लोग ज्योतिर्मय जीवन तो जीते ही हैं, देहावसान के बाद भी वे मानव की आध्यात्मिक यात्रा के दिव्य राजमार्ग पर चिरस्थायी प्रकाशस्तम्भ बन जाते हैं। वे महाकाल की रेत पर ऐसे अक्षर-अमिट चरण-चिन्ह छोड़ जाते हैं, जिनके अनुसरण से व्यक्ति कल्याण के मार्ग पर सहज ही आरूढ़ हो सकता एवं मनोवांछित सफलता प्राप्त कर सकता है। महाकाल, महाप्राण, महाशक्ति और महामाया तो अव्यक्त (परा प्रकृति) के ही अभिन्न अंग होते हैं। उनकी स्थिति तो शाश्वत होती है न! देश-काल-पदार्थ के समान उनकी स्थिति क्षणभंगुर या सतत् परिवर्तनशील नहीं होती।

श्री स्वामीजी के व्यक्तित्व की उत्कृष्टता के अनेक पहलू अथवा आयाम हैं। उनका विवरण, वर्णन और विश्लेषण तो अनेकानेक ग्रन्थों में भी अन्तर्विष्ट नहीं किया जा सकता। वर्तमान और आने वाली पीढ़ियाँ तो इस सन्दर्भ में चिन्तन-मनन-शोध और अन्वेषण करती ही रहेंगी। और यह सब होते हुए भी अन्तिम तथ्य 'नेति-नेति' ही रहेगा। हाँ, ऐसा ही बहुआयामी व्यक्तित्व था उनका। उनके दर्शन-विचारों-कार्यों एवं उपलब्धियों को पढ़ने-समझने तथा अन्वेषण-विश्लेषण का कार्य तो कोई प्रखर प्रतिभा का धनी एवं विशुद्ध आध्यात्मिक अन्तःप्रेरणा से अभिप्रेरित पूर्णतः प्रतिबद्ध साधक ही कर सकेगा, जो शरीर-सम्बन्ध-सम्पत्ति और सम्मान से बिल्कुल विरक्त तथा अर्जुन के समान लक्ष्यदर्शी हो, जिसे लक्ष्य के सिवा और कुछ भी न दिखायी दे, क्योंकि जीवन के आरम्भिक काल से ऐसे ही थे श्री स्वामीजी।

अलमोड़ा का गाँव-घर छोड़ा, ऋषिकेश का गुरु-आश्रम छोड़ा, मुंगेर का अपने स्वयं के पुरुषार्थ से खड़ा किया विश्व-योग-मुख्यालय गंगादर्शन छोड़ा। क्यों न छोड़ते? नचिकेता के समान अटूट-अखण्ड वैराग्य से युक्त जो थे! लेकिन यह इतनी छोटी कहानी नहीं है। पौराणिक कथाओं के समान इस प्रकार की प्रत्येक कहानी के उदर में असंख्य छोटी-बड़ी कहानियाँ समाहित हैं, जिनका वस्तुतः अन्त ही नहीं पाया जा सकता।

हिन्दी में एक मुहावरा है, 'सूर्य को दीपक दिखाना।' किन्तु यह तो नीराजन है। नीराजन सूर्यदेव के लिये भले अप्रासंगिक हो, किन्तु करने वाले को तो स्वान्तःसुख मिलता ही है न! और नीराजन के रूप में ही यहाँ कुछ बिन्दुओं को संक्षेप में प्रस्तुत करने का सहज प्रयास किया जा रहा है।

श्री स्वामीजी के दर्शन, विचारधारा एवं पुरुषार्थ का प्रथम आयाम तो योग ही है। स्वामी शिवानन्दजी, जिनमें उन्होंने प्रथम दिन से ही 'साक्षात् परब्रह्म' को देखा, 'उनका नाम ही योग है', ऐसा अनुभव किया एवं भाव रखा, उनका आदेश था कि 'सत्यम्, तीरे-तीरे, द्वारे-द्वारे योग का प्रचार-प्रसार करो।' अतः सन् 1956 में गुरु-आश्रम से गुरु के मंगलाशीष के साथ विदा होने के समय से ही लक्ष्य स्पष्टतः निर्दिष्ट था। तथापि योजनाबद्ध ढंग से कार्य शुरू करने में कुछ समय लगा। यद्यपि अन्तर्राष्ट्रीय योग मित्र मण्डल की स्थापना राजनन्दगाँव में सन् 1956 में ही हो चुकी थी तथा स्वामी सत्यव्रतानन्द जी एवं स्वामी धर्मशक्ति जी के सक्षम हाथों द्वारा उसका सफल संचालन भी हो रहा था, किन्तु योग के विश्वव्यापी प्रचार-प्रसार का वास्तविक कार्य सन् 1964 में मुंगेर में बिहार योग विद्यालय की स्थापना के साथ ही प्रारम्भ हुआ।

योग के क्षेत्र में श्री स्वामीजी की अभूतपूर्व देन पर प्रमुखतः तीन दृष्टिकोणों से विचार किया जा सकता है—व्यापकता, वैज्ञानिकता एवं समग्रता।

अपने यौगिक मिशन को 'तीरे-तीरे, द्वारे-द्वारे' पहुँचाने के क्रम में श्री स्वामीजी ने भारत समेत विश्व के सभी छः महाद्वीपों—ऑस्ट्रेलिया, एशिया, यूरोप, अफ्रीका और उत्तरी तथा दक्षिणी अमेरिका के दर्जनों देशों के नगरों, उपनगरों तथा ग्रामीण क्षेत्रों के सैकड़ों स्थानों का भ्रमण किया एवं योगाश्रमों तथा योग केन्द्रों की स्थापना हेतु प्रेरणा, मार्गदर्शन और योजना-परियोजना प्रदान की।

वे जानते थे कि इतने बड़े कार्य को अंजाम देना कुछेक व्यक्तियों के वश की बात नहीं है। अतः उन्होंने संन्यास एवं योग-शिक्षक-प्रशिक्षण सत्रों द्वारा सैकड़ों लोगों को तैयार किया, जो प्रतिबद्ध संन्यासी, उत्तम योग साधक तथा सुयोग्य योग शिक्षक बने तथा जिन्होंने सारी दुनिया में फैलकर श्री स्वामीजी के मिशन की सफलता हेतु अपना तन-मन-धन न्योछावर कर दिया। फलतः मात्र बीस वर्षों की अल्पावधि में सत्यानन्द योग की ध्वजा दुनिया के कोने-कोने में लहराने लगी। यह वास्तविक दिग्विजय थी। सदियों के विदेशी हमलों एवं पराधीनता का शिकार रह चुका स्वतन्त्र भारत एक बार पुनः विश्वगुरु के पद पर प्रतिष्ठित हो गया। श्री स्वामीजी को विश्व के किसी भी कोने में कभी किसी भी प्रकार के विरोध का सामना नहीं करना पड़ा।

इसका कारण था उनके दृष्टिकोण की शुद्ध वैज्ञानिकता। बीसवीं शताब्दी के मध्य तक संसार के अधिकतर लोग योग को या तो साधु-संन्यासियों,

त्यागी-वैरागियों और सन्त-महात्माओं की विद्या समझते थे अथवा हिन्दू दर्शन या हिन्दू साधना-पद्धति मानते थे। श्री स्वामीजी ने अपने वैज्ञानिक उपागम द्वारा लोगों की योग सम्बन्धी इस निराधार मान्यता को अति सशक्त ढंग से निर्मूल कर दिया। उन्होंने प्रबल दार्शनिक-तार्किक-सैद्धान्तिक विश्लेषणों तथा प्रयोगात्मक-अनुभवात्मक प्रमाणों के ठोस आधार पर खड़े होकर विश्व को बताया कि योग सम्बन्धी उपर्युक्त दोनों ही अवधारणाएँ सर्वथा गलत हैं तथा यह घोषणा की कि योग भौतिक विज्ञान के समान ही एक विशुद्ध वैज्ञानिक विद्या है, जिसके रहस्य एवं तथ्य शोधगम्य, बोधगम्य एवं अनुभवगम्य हैं। अपने शोध, बोध एवं अनुभव द्वारा उन्होंने सिद्ध कर दिखाया कि योग देश-धर्म-जाति-लिंग निरपेक्ष दर्शन और विज्ञान है, तथा विश्व के किसी भी कोने में रहने वाला कोई भी व्यक्ति किसी भी योगांग का सही मार्गदर्शन में अभ्यास करके शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक शान्ति एवं भावनात्मक सामंजस्य प्राप्त कर सकता तथा सुख-शान्ति-समृद्धि के मार्ग पर अग्रसर हो सकता है।

यही कारण है कि रोम के पोप, बगदाद के सद्दाम, यूरोप के अनुदार-वादियों एवं फेबियन समाजवादियों, आयरलैण्ड के प्रोटेस्टेंट-कैथोलिकों तथा सोवियत रूस के साम्यवादी कॉमरेडों ने समान उत्साह एवं आदर से उनका हार्दिक स्वागत किया। यदि उनका दृष्टिकोण देश-काल-धर्मपरक होता तो ऐसा कदापि संभव नहीं होता। मानव इतिहास की यह एक अभूतपूर्व, अश्रुतपूर्व घटना थीक्र्सम्पूर्ण विश्व में एक शुद्ध विज्ञान के रूप में योग की प्रतिष्ठा। आज का भूमण्डलीय मानव सब-कुछ त्याग सकता है, किन्तु विज्ञान और वैज्ञानिक दृष्टिकोण नहीं। पश्चिम की सफलता का रहस्य भी तो इसी बात में निहित है।

और कोई भी शुद्ध वैज्ञानिक दृष्टिकोण देश-काल-पदार्थ सापेक्ष नहीं हो सकता। निश्चय ही समग्रता अथवा सर्वोपयोगिता उसका प्रधान गुण होगा। श्री स्वामीजी के यौगिक उपागम में यह विशेषता स्पष्टतः परिलक्षित होती है।

उनकी समग्रात्मक यौगिक अवधारणाओं पर दो दृष्टिकोणों से विचार किया जा सकता है। प्रथम, मानव-प्रकृति की विशिष्टताओं को दृष्टि में रखकर उन्होंने समस्त प्रकार की यौगिक विधियों-पद्धतियों, यथा, कर्मयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग, राजयोग, लययोग, नादयोग, स्वरयोग, क्रियायोग, कुण्डलिनी योग, प्राणविद्या, इत्यादि को अपनाया एवं संसार के कोने-कोने में उनका प्रचार-प्रसार किया। द्वितीय, अभ्यासों को उन्होंने इस प्रकार

संकलित-समायोजित किया ताकि किसी भी नियमित-अनुशासित योगाभ्यासी को शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक शान्ति एवं भावनात्मक सामंजस्य की प्राप्ति हो सके और इस ठोस-सन्तुलित प्रक्षेपण-तल पर आत्मविश्वास के साथ खड़ा होकर वह स्वयं को उच्चतर आयाम में प्रक्षेपित कर सके।

हम जानते हैं कि मानव व्यक्तित्व की विशेषताएँ मुख्यत: चार प्रकार की होती हैं–गत्यात्मक, भावनात्मक, बौद्धिक या तार्किक एवं इन्द्रियेतर या अन्तर्मुखी। इन सभी विशेषताओं को महत्त्व देते हुए उन्होंने अपने यौगिक उपागम में क्रमश: कर्मयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग एवं राजयोग को शामिल किया तथा समान महत्त्व दिया। उनका कहना था कि प्रत्येक व्यक्ति बहुआयामी प्रकृति का धनी होता है; हाँ, उसके अन्दर कोई एक विशेषता अधिक उजागर हो सकती है। इसीलिये उन्होंने अपनी आश्रम-व्यवस्था एवं प्रशिक्षण-पद्धति में इन सभी योगों के मूल सिद्धान्तों एवं साधना-पद्धतियों को अति क्रमबद्ध ढंग से समायोजित किया। परिणामस्वरूप योग का एक ऐसा समग्रात्मक रूप सामने आया जिसकी ओर दुनिया के समस्त देशों, धर्मों, समुदायों के लोग सहज ही आकृष्ट हुए, जुड़ते चले गये, और न केवल कर्मठ साधक बने, बल्कि श्री स्वामीजी के सफल संन्यासी शिष्य एवं सत्यानन्द योग के प्रचार-प्रसार के सशक्त माध्यम भी बने।

यौगिक तकनीकों के क्षेत्र में किये गये अपने अन्वेषण एवं शोध के कारण भी श्री स्वामीजी योग साधकों-सिद्धों-शिक्षकों के लिये चिरस्मरणीय रहेंगे। इस सन्दर्भ में पवनमुक्तासन, प्राणायाम-बन्ध-मुद्रा, योगनिद्रा, अजपा-जप एवं अन्तर्मौन के अभ्यास विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं। उनके पूर्व योगाभ्यास का तात्पर्य प्राय: आसनों के अभ्यास से ही लगाया जाता था। उन्होंने प्राणायाम, बन्ध एवं मुद्रा के अभ्यासों को अति क्रमबद्ध एवं स्पष्ट रूप में प्रस्तुत किया, जिसे विश्व के सभी योग साधकों एवं शिक्षकों ने अपनाया।

पहले लोग सुना करते थे कि भगवान विष्णु क्षीरसागर में शेषशय्या पर योगनिद्रा में सोये हुए हैं, किन्तु उन्हें इसके वास्तविक अर्थ की तनिक भी जानकारी नहीं थी। श्री स्वामीजी ने तन्त्र की न्यास-पद्धति को आधार बनाकर योगनिद्रा की एक ऐसी अद्‌भुत विधि का अन्वेषण किया जो शिथिलीकरण के साथ-साथ प्रतिभा के विकास, प्रत्याहार, अन्तर्मुखता एवं आत्मजागृति की एक तकनीक के रूप में समस्त विश्व में स्वीकृत एवं लोकप्रिय हुई। वास्तव में योगनिद्रा आज सत्यानन्द योग का सर्वाधिक लोकप्रिय वैश्विक ट्रेडमार्क है।

योगनिद्रा के समान ही अजपा-जप एव अन्तर्मौन उनके अनुभवात्मक अन्वेषण के परिणाम हैं। अभ्यास करते-करते यदि साधक अजपा-जप का सतत् अभ्यासी हो जाए तो वह तात्त्विक जगत् का अतिक्रमण कर सकता है। इसी प्रकार अन्तर्मौन का नियमित अभ्यासी मन की ऊपरी सतह से अपनी यात्रा प्रारम्भ करके उसकी गहराई में उतर सकता एवं उसके आधारतल को भेदकर शुद्ध चेतना के क्षेत्र में प्रवेश कर सकता है।

उपर्युक्त विवरण श्री स्वामीजी के योग सम्बन्धी दर्शन, विचारों एवं कार्यों की एक अति संक्षिप्त झलक ही है। तत्सम्बन्धी शोध एवं चिन्तन का तो अभी प्रारम्भ ही हुआ है। महत्त्वपूर्ण तथ्यों का विस्तृत विवरण एवं वर्णन तो भविष्य में ही देखने को मिलेगा।

तथापि, उनके दर्शन-चिन्तन-मनन-अन्वेषण एवं प्रेरणा तथा मार्गदर्शन के परिणाम स्पष्टत: सब के सामने हैं। आज विश्व के सभी योगप्रेमी श्री स्वामीजी को श्रद्धापूर्वक नमन करते, उनके योग दर्शन को स्वीकारते तथा किसी-न-किसी रूप में उनकी साधना एवं प्रशिक्षण पद्धति को अपनाते हैं। यथार्थत: दिग्विजयी थे वे। 'शंकर दिग्विजय' तो आर्यावर्त्त तक सीमित थी, लेकिन 'सत्यम् दिग्विजय' का क्षेत्र तो सात महासागरों से घिरे छ: महाद्वीपों तक फैला हुआ है। पूज्य स्वामी निरंजनानन्द जी ने ठीक ही कहा है कि वे आधुनिक युग के महर्षि पतंजलि थे।

–स्वामी ज्ञानभिक्षु सरस्वती

सिद्ध महायोगी के संग कुछ प्रसंग

स्वामी सत्यानन्द जी के प्रथम दर्शन से पूर्व साधु-संन्यासियों के प्रति लगाव होने के कारण अनेक गुमनाम साधु-संन्यासियों के दर्शन किए। साथ-साथ जगत्गुरु शंकराचार्यों और अनेक सन्तों के दर्शनों का सौभाग्य भी प्राप्त हुआ, लेकिन फिर भी दीक्षा लेने का मन नहीं हुआ।

जबलपुर महिला योग मित्र मण्डल के द्वारा सन् 1979 में आयोजित अखिल भारतीय योग सम्मेलन में जब श्री स्वामी सत्यानन्द जी का आगमन हुआ तब उनका दर्शन कर ऐसा लगा कि जैसे उन्हें पहले भी देख चुका हूँ। प्रथम प्रत्यक्ष दर्शन से पहले श्री स्वामीजी हमें स्वप्न में जंगलों में घुमाने ले गये थे और हमें जड़ी-बूटियों का परिचय भी कराया था कि यह जड़ी-बूटी इस

काम आती है, वह जड़ी-बूटी उस काम आती है। कुछ साधना भी करायी थी। जब प्रत्यक्ष दर्शन हुए तो लगा कि ये वही स्वामीजी हैं जो हमें रात में जंगलों में ले गये थे और साधना करायी थी। उसी समय लगा कि यही स्वामीजी हमारे गुरुजी हैं।

इसके बाद पहली बार हम सन् 1980 में मुंगेर के शिवानन्द आश्रम आये। जबलपुर से आने वाली रेलगाड़ी शाम को जमालपुर पहुँची। जब हमने आश्रम में प्रवेश किया तो देखा कि श्री स्वामीजी कुर्सी पर बाहर बैठे हैं। हमने प्रणाम किया तो उन्होंने कहा कि जल्दी से नहा-धो लो, शाम के भोजन का समय हो रहा है। हमने कहा कि स्वामीजी, हम अन्न नहीं खाते हैं। स्वामीजी ने पूछा, 'क्या खाते हो?' तो हमने कहा, 'दूध और फल।' तब स्वामीजी ने कहा, 'बात तो बड़ी अच्छी है, लेकिन यहाँ दूध और फल कौन खिलायेगा? भोजन वैसा खाना चाहिए जो एक गरीब की झोपड़ी में मिल सके—सूखी रोटी और उबली सब्जी। जाओ, खाओ, कुछ नहीं होगा।'

फिर हमने श्री स्वामीजी से दीक्षा ली। आश्रम आते-जाते रहे। सन् 1981 में गुरुपूर्णिमा का आयोजन जबलपुर के मानस भवन में महिला योग मित्र मंडल द्वारा किया गया। उसमें श्री स्वामीजी ने उपस्थित जन-समूह से कहा, 'आप लोग कहते हैं कि बाबा लोग लूटते हैं। मुझे चालीस साल हो गये संन्यासी बने। मैं चालीस साल से लूटता रहता और आप लोग लुटते रहते, ऐसा सम्भव नहीं। किसी को एक बार बेवकूफ बनाया जा सकता है, किसी को दो बार, किसी को तीन बार, लेकिन बार-बार बेवकूफ किसी को भी नहीं बनाया जा सकता। हाँ, मुझे चमत्कार दिखाने का गुरु आदेश नहीं है, पर यदि आप लोग चाहो तो इस मानस भवन में जितने आदमी बैठे हैं उन सबको एक साथ सुला सकता हूँ। लेकिन ऐसा करने से सारी भीड़ हमारे पीछे-पीछे दौड़ेगी। हमें भीड़ वाला बाबा नहीं बनना है।' हमारे पास बैठे व्यक्तियों ने कहा कि यह बाबा जो कहता है, कर भी सकता है, क्योंकि स्वामी शिवानन्द का शिष्य है।

6 दिसम्बर सन् 1992 की एक घटना है। अयोध्या में राम मन्दिर का आन्दोलन चल रहा था। हम स्वामीजी के कुछ भक्तों को लेकर जबलपुर से रेलगाड़ी द्वारा रिखिया जा रहे थे। रेलगाड़ी अठारह घण्टे देरी से जबलपुर आई, पर हम लोग निराश नहीं हुए। पूरे रास्ते में अयोध्या जाने वालों के लिये स्वयंसेवकों द्वारा भोजन की व्यवस्था की गई थी। हमें भी भोजन के पैकेट दे रहे थे, पर हमने नहीं लिये। हमने कहा, 'हम अयोध्या नहीं जा रहे हैं, इसलिए

नहीं लेंगे।' तो स्वयंसेवक कहते हैं, 'आप संन्यासी हैं, ले लीजिये।' हमने कहा, 'नहीं, जिस काम के लिये आप भोजन दे रहे हैं, हम उस काम के लिये नहीं जा रहे हैं।'

जब हम लोगों की रेलगाड़ी पटना स्टेशन रात के बारह बजे पहुँची तो समाचार-पत्र से मालूम हुआ कि सारे देश में कर्फ्यू लगा दिया गया है। जब हमारी ट्रेन जसीडीह स्टेशन पहुँची तो वहाँ सूचना दी जा रही थी कि इस गाड़ी को यहीं रोक दिया गया है, क्योंकि आगे कर्फ्यू लग गया है। हम लोग रिखिया पहुँचे तो श्री स्वामीजी ने कहा कि तुम तो कल आने वाले थे। हमने कहा कि स्वामीजी, ट्रेन वही है, सिर्फ अठारह घण्टे देरी से आई है। फिर हमें मुंगेर जाना था। श्री स्वामीजी ने पूछा, 'कैसे जाओगे?' तो हमने कहा, 'स्वामीजी, यह ड्राइवर है, इसी से पूछें कि कैसे ले जायेगा।' फिर श्री स्वामीजी ने कुछ क्षणों के लिए आँखें बन्द कर लीं। फिर कहा, 'जल्दी चले जाओ।' स्वामी सत्यसंगानन्द जी ने कहा कि वहाँ कहाँ जा रहे हो, वहाँ खतरा है। हमने कहा कि गुरुजी का जब आदेश हो गया है कि जाओ तो अब खतरा कहाँ है। जब हम लोग मुंगेर के लिये रवाना हुए, जिस-जिस शहर को हमारी गाड़ी पीछे छोड़ती जाती, उस-उस शहर में कर्फ्यू लगा दिया जाता। और जैसे ही हमारी गाड़ी ने मुंगेर आश्रम के अन्दर प्रवेश किया, मुंगेर में भी कर्फ्यू लगा दिया गया!

मुंगेर में स्वामी निरंजनानन्द जी ने मजाक में कहा कि हम सोचते थे कि आप लोग जेल चले गये होंगे, छुड़ाने जाना पड़ेगा। हमने कहा कि रास्ते की सारी सुरक्षा गुरुजी ने की है, कैसे जेल जाते? फिर दो दिन बाद हम लोगों को जबलपुर लौटना था तो स्वामी निरंजनानन्द जी पूछते हैं कि कैसे जाओगे, सभी जगह कर्फ्यू लगा है। हमने कहा, 'रिखिया से मुंगेर की सुरक्षा गुरुजी ने की है, मुंगेर से जबलपुर तक की सुरक्षा आपको करनी है।' आदेश हुआ कि जाओ और हम लोग सुरक्षित जबलपुर पहुँच गये। इसे गुरुजी का चमत्कार नहीं कहेंगे तो क्या कहेंगे।

जनवरी सन् 1995 में हमें अखिल भारतीय योग सम्मेलन की तैयारी के लिये राजनाँदगाँव जाने का आदेश हुआ। वहाँ पर योग सम्मेलन को लेकर बहुत दिक्कतें थीं। कार्यक्रम शुरू होने के तीन-चार दिन पहले से मूसलाधार वर्षा हो रही थी। स्वामी निरंजनानन्द जी हमें दूरभाष से निर्देश दे रहे थे और तैयारी की जानकारी भी बीच-बीच में ले रहे थे। 11 जनवरी तक मूसलाधार वर्षा हो रही थी। 12 जनवरी को शाम 6 बजे से कार्यक्रम प्रारम्भ होना था। 12

जनवरी को सुबह बरसात रुक गयी। पूज्य स्वामी निरंजनानन्द जी के आगमन पर विशाल शोभा यात्रा निकाली गयी। चार दिनों तक वर्षा रुकी रही, और जैसे ही योग सम्मेलन का शान्ति पाठ से समापन हुआ, फिर से मूसलाधार वर्षा शुरू हो गयी! पण्डाल वाले को पण्डाल खोलने का मौका भी नहीं मिला। इसे गुरुजी का चमत्कार नहीं कहेंगे क्या?

इसी प्रकार जगदलपुर में योग महोत्सव शुरू होने के पहले पण्डाल उड़ रहा था तूफानी हवाओं में। मानो हवाएँ पण्डाल को उड़ा ले जायेंगी। मौसम विभाग बार-बार चेतावनी दे रहा था कि तूफान का केंद्र बिन्दु जगदलपुर है। लेकिन कार्यक्रम के समय तूफान का रुख गुरुकृपा ने मोड़ दिया और तूफान चला गया विशाखापट्टणम् की तरफ। इसी तरह जब हमें गुरुपूर्णिमा की तैयारी के लिये बैंगलोर जाने का आदेश हुआ, वहाँ भी गुरुजी का चमत्कार हुआ। 2 जुलाई की रात्रि में श्री स्वामीजी, स्वामी शिवानन्दजी महाराज और श्री रमण महर्षिजी ने दर्शन देकर अपनी कृपा प्रदान की।

हम आश्रम में कभी लम्बे समय तक नहीं रहे, पर गुरुजी की इतनी बड़ी कृपा है कि जब हमें पूज्य स्वामी निरंजनानन्द जी के सान्निध्य और मार्गदर्शन में भारतवर्ष के विभिन्न राज्यों में योग के प्रचार-प्रसार के लिये अपरिचित स्थानों में भेजा गया तब गुरुकृपा से सभी जगहों के कार्यक्रम सफल रहे। गुरुकृपा हमारे साथ छाया की तरह रहती है, उसकी अनुभूति हर कार्यक्रम में होती रही। सन् 1993 में सत्यानन्द संन्यास स्वर्ण जयन्ती एवं विश्व योग सम्मेलन हेतु साधु-संन्यासियों को निमंत्रण देने के लिये हमें भेजा गया। हिमालय भविष्यबद्री में भगवान विष्णुजी को निमंत्रण देने के बाद हम रास्ता भूल गये। तब ऐसा लगा कि आगे-आगे श्री स्वामीजी जा रहे हैं। हमने उसी रास्ते को पकड़ लिया और चल दिये। रास्ते में एक अपरिचित आदमी मिला, जिससे हमने तपोवन का रास्ता पूछा। उसने कहा, यही तो है। निमंत्रण देने के बाद जब हम रिखिया गये तो सारी घटना श्री स्वामीजी को बतलायी कि भविष्यबद्री में कोई आदमी नहीं था तो हमने भगवान विष्णु के ऊपर ही निमंत्रण-पत्र रख दिया था। श्री स्वामीजी ने कहा, 'तब तो भगवान विष्णुजी ने जरूर निमंत्रण-पत्र पढ़ लिया होगा। हिमालय में ऐसा होता ही रहता है।' इसी तरह केदारनाथ जी से तीन-चार किलोमीटर की दूरी पर एक गुफा में एक स्वामीजी को जब हमने निमंत्रण-पत्र दिया और कहा कि हमारे स्वामीजी की संन्यास स्वर्ण जयन्ती मनाई जा रही है, कुछ आशीर्वाद दे दीजिये तो वे

कहते हैं कि नहीं, इतने बड़े संन्यासी को हम आशीर्वाद नहीं दे सकते, केवल शुभकामना दे सकते हैं। श्री स्वामीजी से जब हमने पूछा कि हिमालय की गुफाओं में रहने वाले साधु-संन्यासी आपको कैसे जानते हैं, तब श्री स्वामीजी ने कहा, 'खग जाने खग ही की भाषा।'

सन् 1992 में हम कुछ साधना कर रहे थे। अचानक हमारे सामने देवी प्रकट हुईं। हम डर गये। उसी समय श्री स्वामीजी भी प्रकट हो गये। पर तब तक हम इतना डर गये थे कि हमें बुखार आ गया, हम बेहोश होकर लेट गये। उस अवस्था में हमारे सामने कोई शक्ति बोल रही थी। यंत्रों के चित्र सामने प्रकट हो रहे थे। आवाज आ रही थी, 'यह यंत्र इस साधना में काम आता है, वह यंत्र उस साधना में काम आता है। यह सब किताबों में नहीं मिलेगा।' हमने पेन पकड़ कर लिखने का प्रयास किया, पर इतनी भी हिम्मत नहीं हुई कि हम लिख सकें। जब हम श्री स्वामीजी के दर्शन के लिये रिखिया गये तब वहाँ उन्हें सब बातें बतलायीं। श्री स्वामीजी ने आश्वासन देते हुए कहा कि डरना नहीं चाहिए, साधना में ऐसा होता ही रहता है।

एक बार हम अमरकंटक में नर्मदा जी के उद्गम स्थान पर कुछ साधना के लिये गये थे। जिन संन्यासी के साथ हमें साधना करनी थी वे वहाँ हमें नहीं मिले। हमारे मन में विचार आया कि कैसे संन्यासी हैं, हमें बुलाया और खुद गायब हो गये। उनके एक शिष्य ने कहा कि स्वामीजी, हम आपको एक कमरा दे देते हैं, आपको जो भी साधना करनी है, आप कीजिये। हम रुक गये। रात्रि साधना में वह संन्यासी, हमारे श्री स्वामीजी और एक वैष्णव संन्यासी हमारे कमरे में आये और हमें पूरी साधना लिखायी। पर वे तीनों संन्यासी भौतिक शरीर के साथ अमरकंटक में नहीं थे। मुंगेर जाने पर जब हमने पूज्य स्वामी निरंजनानन्द जी को वे लिखे गये मंत्र दिखाये तो उन्होंने कहा कि सब सही है।

सन् 1995 के राजनाँदगाँव योग सम्मेलन के बाद हमें स्वामी निरंजनानन्द जी ने रिखिया जाने का आदेश दिया। हम रिखिया आ गये। एक दिन हम जिस जगह पर सेवा कर रहे थे, वहीं पर पूज्य गुरुदेव आ गये और हमसे कहा, 'तुम बहुत भाग्यशाली हो, तुम पर भगवान की बहुत बड़ी कृपा है। तुम बहुत सरल हो, तुम्हें जो काम करना है, दस साल में कर लोगे। जल्दी क्या है?' ऐसा कहकर वे वहाँ से चले गये।

सन् 1994 में हमें दिल्ली योग सम्मेलन के आयोजन के लिये भेजा गया। हमने तैयारी भी शुरू कर दी। सिरी फोर्ट ऑडिटोरियम को आरक्षित करने के

लिए जाने ही वाले थे कि पूज्य गुरुदेव का आदेश आया कि दिल्ली का समय अभी ठीक नहीं है, इसलिये दिल्ली का सम्मेलन अभी नहीं होगा। कार्यक्रम स्थगित हो गया। हम दिल्ली से चले गये हिमालय की तरफ। जिन तारीखों में दिल्ली का सम्मेलन होना था उसी समय सूरत में प्लेग फैल गया। स्वामी निरंजनानन्द जी और हम उन तारीखों में दिल्ली गये थे। रेलवे स्टेशन आदि सभी जगहों पर लोग मुँह में रूमाल बाँधे चल रहे थे। हमने स्वामी निरंजनानन्द जी से कहा कि गुरुजी को छः-सात माह पहले ही मालूम हो गया कि दिल्ली का समय ठीक नहीं है, क्योंकि ऐसी परिस्थिति में सरकार योग सम्मेलन नहीं होने देती। पूज्य गुरुदेव यह सब पहले ही जान गये थे, इसलिये सम्मेलन स्थगित कर दिया।

भीमताल, नैनीताल में भी अधिकांशत: हम आश्रम से बाहर ही रहते थे। आश्रम की रखवाली भी गुरुकृपा ही करती थी। सन् 2000 की बात है। हम कलकत्ते में योग सम्मेलन की तैयारी में थे। भीमताल आश्रम में हमारे कमरे के पास तीन संन्यासी बरामदे में रात्रि में घूम रहे थे, जबकि भवन का मुख्य द्वार अन्दर से बन्द था, ताला लगा हुआ था। तो ये तीनों संन्यासी अन्दर गये कैसे? अन्दर रहने वाले व्यक्ति डर गये और सुबह हमें दूरभाष द्वारा कलकत्ते में इस घटना की खबर दी। स्वामी निरंजनानन्द जी के कलकत्ता आगमन पर हमने उन्हें यह घटना बतलायी। तो वे कहते हैं कि हिमालय में ऐसा होता ही रहता है।

कलकत्ते का कार्यक्रम सम्पन्न होने के बाद हम रिखिया गुरुजी के दर्शन के लिये गये और भीमताल की सारी घटना सुनायी। तो गुरुजी बहुत जोर से हँसे, पर कुछ बोले नहीं। इसी तरह अनेक योग सम्मेलनों, साधनाओं में गुरुजी के प्रत्यक्ष चमत्कार की अनुभूति प्राप्त हुई है। यदि सभी चमत्कारों का वर्णन करेंगे तो एक पुस्तक बन जायेगी। आज हम जो कुछ भी हैं, गुरुकृपा का ही प्रतिफल है। हम जहाँ भी गये, गुरुकृपा हमारे साथ छाया की तरह रही है। श्री स्वामीजी के महासमाधि में लीन होने के समय भी हमें चमत्कारपूर्वक रिखिया में रोका गया। नहीं तो हम उस दिन ट्रेन में यात्रा कर रहे होते। गुरुकृपा ने ही हमें महासमाधि संस्कार में सम्मिलित होने के लिये रोककर रखा और भौतिक शरीर की अन्तिम सेवा हेतु भी अवसर प्रदान कर हमें अपने चरणों में स्थान दिया।

–स्वामी शिवराजानन्द सरस्वती

श्री स्वामीजी–शिवत्व का पर्याय

श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती, जिन्हें हम परमहंस जी भी कहा करते हैं, एक दिव्य व्यक्तित्व के धनी हैं। नियति ने उनके व्यक्तित्व को गढ़ा और प्रकृति ने निखारा, परम गुरुदेव स्वामी शिवानन्द जी ने शक्ति से परिपूर्ण किया और स्वयं परमेश्वर शिव ने उन्हें शिवत्व प्रदान कर अमरपद दे डाला। जब कोई व्यक्ति अपनी सहज इच्छा शक्ति के बल पर स्वेच्छानुसार शरीर छोड़ और धारण कर सकता है, उसी को तो अमरपद कहेंगे न। हमारे श्री स्वामीजी ने यही तो किया है।

धनबाद में बेरा कोलियरी के पास हमारा आश्रम है। मैं धनबाद में खान सुरक्षा महानिदेशालय में ही पदस्थापित था। धनबाद आश्रम में उन दिनों कोलम्बिया की स्वामी निगमानन्द आचार्या थी और उनकी सहयोगिनी थी स्वामी प्रज्ञानन्द। वहाँ एक विचित्र घटना घटी, जो इस प्रकार है–

उक्त दोनों स्वामी आश्रम में रह रहे थे। वहाँ आमतौर पर बहुत व्यस्तता नहीं रहती थी, इसलिये खाली समय में कुछ गप-शप होना स्वाभाविक ही था। एक दिन दोनों ऐसे ही चर्चा कर रहे थे। चर्चा का विषय हठात् बन गया परमहंस जी का क्रोध! दोनों अपने-अपने अनुभव एक-दूसरे को सुनाने लगे। अचानक फोन की घण्टी बजी। जैसे ही स्वामी निगमानन्द ने फोन उठाया, उधर से आवाज आई, 'मैं सत्यानन्द! निगमानन्द, तुम तुरन्त मुंगेर पहुँचो।'

दोनों थोड़ा आशंकित हुईं कि ऐसा क्या हुआ जो स्वयं परमहंस जी ने फोन किया है? आमतौर पर वे ऐसा नहीं करते हैं। खैर, स्वामी निगमानन्द पहुँची मुंगेर अगले दिन। परमहंस जी ने मिलते ही पूछा– 'क्या बात है, आश्रम में आजकल कुछ काम-धाम नहीं है?' उत्तर में निगमानन्द बचाव की भूमिका में आते हुई बोल पड़ी– 'नहीं, स्वामीजी! ऐसा तो नहीं है।' परमहंस जी ने तुरंत कहा– 'यदि ऐसा नहीं है तो तुम्हें व्यर्थ की गपशप करने का समय कैसे मिल जाता है?' निगमानन्द ने फिर बचाव की कोशिश की तो परमहंस जी ने जो कहा वह किसी को भी दाँतों तले अँगुली दबाने को मजबूर कर सकता है।

परमहंस जी ने कहा, 'क्या यह सच नहीं है कि तुमने ऐसा कहा और प्रज्ञानन्द ने वैसा कहा' और उन्होंने उन दोनों के बीच हुई बातचीत का पूरा ब्यौरा सुना दिया और वह भी जैसे का तैसा। निगमानन्द को काटो तो खून नहीं। एकदम सन्न रह गई वह। मन-ही-मन सोचा कि यह कैसे संभव है? परमहंस जी ने यहाँ मुंगेर में बैठे-बैठे धनबाद में बैठे दो व्यक्तियों के बीच हुई

बातें कैसे सुन लीं? आम धारणा में यह निश्चित रूप से संभव नहीं है। किन्तु देवत्व से भरपूर व्यक्ति के लिए क्या धनबाद और क्या मुंगेर!

अगला विवरण मार्च 2006 में त्र्यम्बकेश्वर महादेव के दर्शन के समय प्राप्त जानकारी पर आधारित है। उसी समय स्वामी निरंजन जी के सान्निध्य में मुम्बई और बाद में नासिक योग सम्मेलन आयोजित हुए थे, जिनमें मैं और मेरी सहधर्मिणी विमलेश भी शामिल हुए थे। त्र्यम्बकेश्वर भगवान के दर्शन करने के बाद हम पहुँचे 'गोशाला'। हम बहुत उत्सुक थे उस स्थान के दर्शन के लिए जहाँ श्री स्वामीजी ने रिखिया जाने के पूर्व साधना की थी। गोशाला के प्रभारी स्वामीजी बड़े प्यार से मिले हम लोगों से और परमहंस जी के उस काल की कुछ अविस्मरणीय बातें बताईं। इस बातचीत के समय हम उसी कमरे में बैठे थे, जिसमें श्री स्वामीजी ने साधना की थी। उस कमरे में श्री स्वामीजी द्वारा प्रज्वलित धूनी आज भी जागृत अवस्था में है। श्री स्वामीजी जहाँ सोते थे जमीन पर, वह स्थान भी वैसा ही सुरक्षित है। उन स्वामीजी द्वारा बतायी बातें, उन्हीं के शब्दों में मैं यहाँ दे रहा हूँ।

गोशाला के सामने गूलर का पेड़ है, उसके चारों ओर एक गोल चबूतरा सीमेंट से बना है। एक दिन मैं गायों की सेवा कर बाहर आया तो उस चबूतरे पर श्री स्वामीजी को बैठे देखा। उस समय मैं ब्रह्मचारी था। मैंने उन्हें प्रणाम निवेदन किया। श्री स्वामीजी ने पूछा, 'यह गोशाला है?' मैंने उत्तर दिया, 'जी हाँ! मैं गायों की सेवा में हूँ।' श्री स्वामीजी बोले, 'मुझे साधना के लिए उचित स्थान चाहिए। इस गोशाला में ही मैं साधना करना चाहूँगा।' मैंने कहा कि इसमें गायों का निवास है और मेरे रहने के लिए एक छोटा-सा कमरा है। इसमें स्थान नहीं है और यहाँ कोई सुविधा भी नहीं है। आप ऊपर पहाड़ी पर स्थित अखाड़े में चलें। वहाँ आपको सभी सुविधायें उपलब्ध हो सकेंगी और आपकी साधना की सामग्री की भी सभी व्यवस्था हो जायेगी।

श्री स्वामीजी बोले, 'नहीं, मुझे यही स्थान चाहिए।' मैंने बहुत समझाने की कोशिश की, किन्तु वे टस-से-मस नहीं हुए। हारकर मैंने कहा कि मैं तो सेवक भर हूँ, मुझे कोई निर्णय लेने का अधिकार नहीं है। हमारे गुरुजी चालीस किलोमीटर दूर रहते हैं। उनकी आज्ञा से ही कुछ हो सकता है। श्री स्वामीजी ने कहा, 'तो चलिये उनके पास।' मैंने कहा कि अभी तो शाम को गायों की सेवा करनी है। हम कल प्रात: गायों की सेवा के बाद गुरुजी से मिलने जा सकते हैं। यह सुनकर वे जहाँ ठहरे थे, चले गये।

प्रात: मैं श्री स्वामीजी को लेकर गुरुजी से मिलने पहुँच गया। गुरुजी ने भी मेरी ही तरह उन्हें समझाने का बहुत प्रयास किया, किन्तु वे एक छोटे बच्चे की तरह अपनी बात पर अड़े रहे। हमारे गुरुजी ने अन्त में कहा–'एक साधु को खाली हाथ कैसे लौटाऊँ। चलिये, आपको गोशाला में कमरा मिल जायेगा।' और फिर मुझ से उन्होंने कहा कि मैं कमरा खाली कर उन्हें दे दूँ। साथ ही गुरुजी ने मुझे उनकी सेवा की जिम्मेदारी भी सौंप दी।

श्री स्वामीजी ने उसी कमरे में अपनी साधना आरम्भ कर दी। मैं उनकी सेवा में रहने लगा। उनका भोजन भी मैं टिफिन में ऊपर से ले आया करता था। करीब एक सप्ताह बाद श्री स्वामीजी ने मुझ से कहा, 'कल से तुम्हें मेरे लिए भोजन नहीं लाना है। मेरे कमरे में भी नहीं आना है और न ही दरवाजा खटखटाना है। मुझे जब भी आवश्यकता होगी, मैं स्वयं बाहर आऊँगा।' मैंने पूछा कि भोजन का क्या होगा। उत्तर में वे बोले,'मैंने जो कह दिया, बस वही है।'

इसके बाद वे लगभग दो माह साधना में लीन रहे और पूरी तरह निराहार! इतनी लम्बी अवधि तक कोई बिना भोजन के कैसे रह सकता है? मैं यही निष्कर्ष निकाल सकता हूँ कि आपके गुरुदेव, नि:सन्देह सिद्ध आत्मा हैं। दो माह तक निराहार रहना कोई साधारण बात नहीं है।

उनसे जुड़ी एक और अन्य घटना है। कभी-कभी वे कमरे से बाहर आकर कुछ देर टहल लेते थे और फिर उसी चबूतरे पर बैठ जाया करते थे। उस समय बरसात की ऋतु थी और यहाँ त्र्यम्बकेश्वर में पानी कुछ ज्यादा ही बरसता है। मैंने कई बार देखा कि श्री स्वामीजी सिर में एक कपड़ा बाँधे चबूतरे पर बैठे हैं। घनघोर वर्षा हो रही है और श्री स्वामीजी का न केवल सिर का कपड़ा सूखा है, बल्कि उनका पूरा शरीर सूखा है; मानो किसी ने उनके ऊपर छाता तान कर रखा है। मुझे विश्वास ही नहीं होता था अपनी आँखों पर। आखिर यह कैसे संभव है। यही कहा जा सकता है कि श्री स्वामीजी दिव्य शक्तियों के स्वामी हैं।

मैंने उनकी धूनी को जागृत रखा है और उनकी साधना स्थली को वैसे ही बनाकर रखा है। मैं अपने को बहुत सौभाग्यशाली मानता हूँ कि सन् 1989 में उनकी सेवा करने का और अब यहाँ रहने का अवसर मिला है।'

इन घटनाओं के बारे में सुनने के बाद श्री स्वामीजी को शिवत्व से भरपूर व्यक्तित्व न कहें तो क्या कहें? और इन सभी बातों पर पूर्ण विराम उन्होंने लगा दिया 5 दिसम्बर की रात अपने प्राणों का उत्सर्ग, अनूठे ढंग से करके।

–स्वामी आत्माभिषेक सरस्वती

श्री स्वामी सत्यानन्द जी इस युग के महान् सन्त थे

मुझे श्री स्वामी सत्यानन्द जी के दर्शन पहली बार सन् 1982 में 16 दिसम्बर को हुए। उस दिन उन्हें भाभा अणु अनुसन्धान केन्द्र (बी. ए. आर. सी.), ट्राम्बे में वैज्ञानिकों को सम्बोधित करने हेतु आमन्त्रित किया गया था। विषय था योग और विज्ञान। व्याख्यान कक्ष खचाखच भरा हुआ था। जैसे ही श्री स्वामीजी पधारे, मैं तो उन्हें देखते ही मन्त्रमुग्ध-सा हो गया। उन्होंने जिस ढंग से विषय को प्रस्तुत किया और विभिन्न प्रश्नों के उत्तर दिये, वह सचमुच अनूठा था। मैं उनकी आभा, प्रतिभा, व्यक्तित्व एवं विचारों से इतना प्रभावित हुआ कि जल्द ही उनके मुंगेर आश्रम जाने की ठान ली।

लगभग दो माह पश्चात् मैं मुंगेर आश्रम दो दिन के लिए आया। मुझे आश्रम का वातावरण और दिनचर्या इतनी अच्छी लगी कि मैंने अपना नाम आगामी योग स्वास्थ्य रक्षा सत्र के लिए लिखवा दिया। इस सत्र के दौरान मैं गंगादर्शन में पन्द्रह दिन के लिए ठहरा और श्री स्वामीजी से मंत्र दीक्षा भी ली। मैं और अधिक अवधि के लिए आश्रम जीवन व्यतीत करना चाहता था, इसलिए मैंने शिक्षक प्रशिक्षण सत्र के लिए भी नामांकन करवा लिया।

सितम्बर 1983 में मैंने इस सत्र में भाग लिया। इस सत्र में आठ भारतीय और पाँच विदेशी प्रतिभागी थे। सत्र के दौरान हमें श्री स्वामीजी का अधिकतम समय एवं सान्निध्य प्राप्त हुआ। उस समय श्री स्वामीजी कुटीर में रहते थे। शायद ही कोई ऐसा दिवस रहा हो जब उन्होंने सत्र के विद्यार्थियों को अपने दर्शन से वंचित रखा हो। वे प्राय: हमें कुटीर बुलवा लेते और वहाँ कभी सत्संग-प्रवचन होता तो कभी वीडियो पर चलचित्र दिखाये जाते। वे चलचित्र का थोड़ा-सा भाग दिखाते, फिर विस्तार से समझाते, विशेषकर विदेशियों की जानकारी के लिए। यह सिलसिला चार दिनों तक चला। मेरे जीवन में यह एक स्वर्णिम अवसर था, जब मैं उन्हें इतने समीप से देख पाया तथा उनके उच्च विचारों को सुन पाया। इस सत्र में एक और यादगार बात रही श्री स्वामीजी का ग्रुप फोटो के लिए पधारना। हालाँकि श्री स्वामीजी ने वर्ष के आरम्भ में ही बिहार योग विद्यालय का अध्यक्ष पद स्वामी निरंजन जी को सौंप दिया था, लेकिन वे हमें अनुगृहीत करने हेतु ग्रुप फोटो के लिए पधारे। यह मात्र फोटो न रहकर एक स्मृति-चिह्न बन गया, विशेषकर मेरे लिए। मैं अपने आपको बड़ा भाग्यशाली समझता हूँ।

इसी सत्र के दौरान मैंने श्री स्वामी जी से कर्म संन्यास की दीक्षा ली। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में मुझे समझाया कि तुम वर्दीधारी हो, अपनी ड्यूटी ठोक

बजाकर करो। जो साधना तुम्हें बतलाई है उसे करते रहो। आध्यात्मिक प्रगति के बारे में अधिक सोचना नहीं। जैसे-जैसे योग मार्ग पर चलोगे उचित समय आने पर सांसारिक विषयों से दूर होते जाओगे और धीरे-धीरे आध्यात्मिक पथ पर आगे बढ़ते जाओगे।

ठीक ऐसा ही हुआ भी। मैंने नौ वर्षों तक परिश्रम और जिम्मेदारी से अपनी ड्यूटी निभाई। फिर स्वेच्छा से सेवा-निवृत्ति ले ली। तब तक श्री स्वामीजी क्षेत्र-संन्यास लेकर रिखियापीठ में आ बसे थे। उनकी महासमाधि तक शायद ही कोई ऐसा अवसर रहा जब हमें प्रतिवर्ष उनका दर्शन प्राप्त न हुआ हो।

अपने गुरु के आदेशानुसार उन्होंने मुंगेर से योग के प्रचार-प्रसार का अभियान देश-विदेश में आरम्भ किया तथा इसे बीस वर्षों में अपनी चरम सीमा पर लाकर स्वामी निरंजन जी को सौंप दिया। इसके बाद अपने गुरु की शिक्षाओं से तीन पहलुओं को अपनाते हुए उन्होंने सेवा, प्रेम और दान का रिखिया में अनूठा उदाहरण प्रस्तुत किया। पिछले बीस वर्षों में रिखिया और आस-पास की अनेक पंचायतों के हजारों-हजार परिवार परोपकार के इन कार्यों से लाभान्वित हुए हैं। आज मुंगेर और रिखियापीठ विश्व के मानचित्र में सहजता से देखे जा सकते हैं। इसका पूरा श्रेय श्री स्वामीजी को जाता है जो सदैव दूर की सोचते थे। वे इतने दूरदर्शी थे कि अपने जीवन काल में ही अपने कुशल और सुयोग्य उत्तराधिकारी नियुक्त कर गये। उनकी महासमाधि के पश्चात् भी हम अपने आपको असहाय एवं अनाथ नहीं समझते, क्योंकि उन्होंने इस पार्थिव भौतिक शरीर का ही तो त्याग किया है। वे तो सदैव हमारे बीच विद्यमान थे, हैं और रहेंगे। वे तो सदैव हमारे हृदय सम्राट् थे, हैं और रहेंगे। यदि हमारी भावना सच्ची होगी तो स्मरण मात्र से वे हमारा मार्गदर्शन करेंगे। इसमें कोई संशय नहीं। फिर स्वामी निरंजन जी और स्वामी सत्संगी जी तो हैं ही, जिनके कुशल हाथों में वे हमें सौंप गये हैं और जो हमें मार्गदर्शित करेंगे।

बिहार योग भारती की स्थापना के पश्चात् सन् 1995 में मैंने प्रथम चातुर्मासिक योग अध्ययन सत्र में भाग लिया। इसी वर्ष रिखिया में प्रथम शतचण्डी महायज्ञ का आयोजन हुआ जो नौ दिनों तक चला। हमारा सत्र बड़ा ही भाग्यशाली था कि हमें सेवा के लिए अधिक समय तक रिखिया में रहने का सुअवसर मिला। शायद ही कोई ऐसी सेवा हो जो हमारे सत्र को न सौंपी गई हो। इतना महान् और शक्तिशाली यज्ञ मैंने अपने जीवनकाल में पहली बार देखा था। इसी यज्ञ में श्री स्वामीजी ने अपनी आध्यात्मिक शक्ति

का स्थानान्तरण स्वामी निरंजन पर किया। इस महायज्ञ के समापन के कुछ ही दिनों पश्चात् हम लोग पुनः मुंगेर से रिखिया आये जहाँ नववर्ष पर हमारे सत्र को श्री स्वामीजी का दर्शन एवं सत्संग प्राप्त हुआ।

अगले वर्ष रिखियापीठ में राम-नाम-आराधना का आयोजन हुआ जो एक मास तक चला। इसमें भी मैं पूरे समय वहाँ रहा। इसी साल से सीता कल्याणम् का शुभारम्भ हुआ जो अब भी प्रतिवर्ष शतचण्डी महायज्ञ के संग मनाया जाता है। शतचण्डी यज्ञ राजसूय यज्ञ में परिणत हो गया जिसकी पूर्णाहूति सन् 2007 में हुई। सन् 2008 से शतचण्डी महायज्ञ के साथ-साथ श्री स्वामीजी का जन्मदिवस योग पूर्णिमा के रूप में मनाया जा रहा है। मुझे इन सभी आयोजनों में आने और प्रतिवर्ष श्री स्वामी जी के दर्शन एवं सत्संग का सौभाग्य मिलता रहा है। मुझे आज भी स्पष्ट रूप से स्मरण है कि सन् 2000 में शतचण्डी महायज्ञ के समय कैसे श्री स्वामी जी ने 'पूर्ण' कहकर आशीष दिया। यह स्वामी निरंजन जी के लिए संकेत था जिन्होंने मुंगेर आते ही मुझे और हरिकृपा जी को विधिवत् पूर्ण संन्यास की दीक्षा दी।

श्री स्वामीजी जैसा विलक्षण बुद्धि वाला महाज्ञानी, महायोगी और संत-शिरोमणि इस युग में मिलना कठिन है। इतने गुणों से सम्पन्न होते हुए भी वे सहज और सरल स्वभाव के थे। भक्ति तो मानो उनके रोम-रोम में समाई हुई थी। उनके प्रति हमारी सच्ची श्रद्धांजलि तो यही होगी कि हम उनके बतलाये मार्ग पर चलें, उनकी शिक्षाओं को अपने जीवन में उतारें तथा आत्मसात् करें। ऐसे सद्‌गुरु के प्रति हम सदैव नतमस्तक रहें। उनके चरणों में हमारा बारम्बार प्रणाम!

–स्वामी श्रीमुखानन्द सरस्वती, जयपुर

श्री स्वामीजी के सान्निध्य में मेरी आध्यात्मिक डायरी के पृष्ठ

स्वामीजी के अनुग्रह से उनके दर्शन का सौभाग्य मुझे वर्ष 1966 में अन्तर्प्रदेशीय योग सम्मेलन, गोंदिया में मिला। विश्व के लगभग 90 वैज्ञानिकों, चिकित्सकों और मनोवैज्ञानिकों ने गेरु वस्त्र में सम्मेलन में भाग लिया। ये मुंगेर के 9 माह के संन्यास सत्र के प्रशिक्षार्थी थे। इन्होंने अपनी भाषा, जैसे, जर्मन, फ्रेंच, स्पेनिश आदि में अपने योग सम्बन्धी अनुभव सम्मेलन में प्रस्तुत किए, जिसका स्वामीजी ने अँग्रेजी में अनुवाद किया।

भारत के तत्कालीन उप-प्रधानमंत्री, माननीय मोरारजी देसाई एवं महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री ने योग सम्मेलन में भाग लिया और संबोधन दिया। इससे मुझे स्वामीजी के योग मिशन से जुड़ने की प्रेरणा मिली।

मैंने 1969 में रायगढ़ सम्मेलन में मंत्र दीक्षा ली। योग सम्मेलन, बिलासपुर के समय मेरे निवास पर स्वामीजी का भोजन हेतु आगमन हुआ। लौटते समय स्वामीजी ने अचानक मेरी धर्मपत्नी को योग कार्यक्रम में भाग लेने हेतु कहा। मुंगेर में नवम्बर, 1969 में स्वामीजी के मार्गदर्शन में मैंने क्रिया योग सत्र में भाग लिया।

मेरी आठ-वर्षीय पुत्री, आत्मज्योति ने स्वामीजी से मंत्र दीक्षा ली थी। उसे प्रतिदिन बारह माला जप करने में कठिनाई होती थी, इसलिए उसने स्वामीजी से कम कराना चाहा। स्वामीजी के प्रवास के समय बिलासपुर स्टेशन पर वह अपनी समस्या नहीं बतला सकी। ट्रेन के चलने पर हम बोगी के साथ आगे बढ़े। स्वामीजी ने उससे समस्या के बारे में पूछा। उसके मात्र बारह कहते ही स्वामीजी ने कहा छः, छः चलेगा। गुरु के साथ उसका यह एक अलौकिक अनुभव था।

स्वामीजी के मार्गदर्शन में उमरिया एवं अमलई में सम्मेलनों का आयोजन हुआ। वर्ष 1972 में कटनी में स्वामीजी के दर्शन के समय अपनी आगामी पदस्थिति की समस्या बतलाई। उस समय वे आकाश की ओर निहार कर मौन रहे। तदुपरान्त मेरी आश्चर्यजनक पदस्थिति रायपुर में हुई। स्वामीजी ने मुझे निर्देशित किया कि रायपुर एवं पूरे प्रदेश में बृहत् स्तर पर उनके मार्गदर्शन में योग की गतिविधियाँ सम्पन्न की जाएँगी।

स्वामीजी के निर्देशन में योग आश्रम, रायपुर का रजिस्ट्रेशन होने पर शासकीय भूमि का अर्जन किया गया। वर्ष 1973 में मैंने परिवार, मित्रों एवं सम्बन्धियों सहित स्वामी सत्यानन्द स्वर्ण जयन्ती सम्मेलन, मुंगेर में भाग लिया और क्रिया योग सत्र में भी भाग लिया। स्वामीजी की कृपा से उस समय मुझे अपने पुराने बवासीर के रोग से हमेशा के लिए मुक्ति मिली।

स्वामीजी ने भूमिपूजन कर वर्ष 1976 में रायपुर आश्रम का उद्घाटन राष्ट्रीय योग सम्मेलन के अवसर पर किया। स्वामी वज्रपाणि के आश्रम का कार्यभार ग्रहण करने तक आश्रम में योग कक्षाओं का संचालन मेरे द्वारा किया गया।

स्वामीजी ने छत्तीसगढ़ योग सम्मेलन का दायित्व मुझे सौंपते हुए मुंगेर से संन्यासियों को योग कक्षाएँ संचालित करने भेजा। छत्तीसगढ़ योग सम्मेलन,

राजनाँदगाँव अत्यन्त सफल रहा। रायपुर आश्रम द्वारा मध्य प्रदेश के अन्य स्थानों, जैसे, धमतरी, जगदलपुर, बालाघाट, सिवनी, बैतूल, इटारसी, भोपाल, इन्दौर, सागर, जबलपुर, सतना और रीवा में स्वामीजी के मार्गदर्शन में योग सम्मेलनों के आयोजन किए गए। वर्ष 1981 में राष्ट्रीय योग सम्मेलन, रायपुर में मुझे स्वामीजी के आशीर्वाद से 'क्रिया एवं योग' की प्रथम प्रति प्राप्त हुई। वर्ष 1983 में स्वामीजी की उपस्थिति में रायपुर आश्रम में गुरु-पूर्णिमा महोत्सव बड़ी धूमधाम से सम्पन्न हुआ।

वर्ष 1985 में मेरी पुत्री के विवाह के बाद, मैं और मेरी पत्नी कर्म संन्यास दीक्षा हेतु मुंगेर पहुँचे। वहाँ हम दोनों तेज बुखार से ग्रस्त हो गये। स्वामीजी की ऑस्ट्रेलिया यात्रा के पूर्व अचानक हमारा बुखार ठीक हो गया और स्वामीजी ने हमें कर्म संन्यास की दीक्षा दी। स्वामीजी के पटना जाने के पश्चात् स्वामी निरंजनानन्द जी ने हमें बतलाया कि स्वामीजी हमारा बुखार अपने ऊपर लेकर गए हैं। हमें इससे बहुत दुःख हुआ। रायपुर वापसी के समय स्वामीजी के निर्देश पर स्वामी वज्रपाणि हमें जमालपुर स्टेशन पर विदा करने आए। उन्हें ट्रेन के लिए प्रतीक्षारत देख हमने मजाक में कहा कि हम लोग बड़े हैं और अपना ख्याल खुद रख सकते हैं। ट्रेन के रवाना होने के पूर्व मैंने अपना बटुआ गायब पाया! स्वामी वज्रपाणि को सूचित करने पर वे ट्रेन में चढ़ गए और उन्होंने हमारे आगे के सफर की व्यवस्था की।

स्वामीजी के परिव्राजक प्रवास के पूर्व उनके साथ गंगादर्शन में कॉन्टिनेन्टल लंच लेने का सौभाग्य मिला जहाँ उन्होंने हमें गेरु वस्त्र प्रदान किए। स्वामीजी की परिव्राजक अवधि में उनके एक बार उत्तराखण्ड में होने की सूचना मिली थी। सन् 1989 में फॉरेस्ट्री कान्फरेंस, देहरादून में भाग लेने के बाद शिवानन्द आश्रम, ऋषिकेश से ज्ञात हुआ कि स्वामीजी एक घण्टा पहले ही उत्तरकाशी के लिए रवाना हुए हैं। हमें स्वामीजी के अनुग्रह से उत्तरकाशी में उनके दर्शन हुए। दूसरे दिन स्वामीजी के साथ जाकर गंगोत्री में प्रथम स्नान करने का सुअवसर भी मिला। वर्ष 1990 में स्वामीजी के आशीर्वाद से पी.सी.सी.एफ. के सर्वोच्च पद से मेरी सेवानिवृत्ति हुई।

स्वामीजी के आशीर्वाद से मुझे शतचण्डी यज्ञ रिखिया में स्वामी निरंजनानन्द जी एवं पण्डितों के साथ पूर्णाहुति में भाग लेने का सुअवसर मिला और भविष्य में योग की गतिविधियाँ भोपाल से संचालन करने का निर्देश मिला। वर्ष 2003 एवं 2005 में इन्दौर और भोपाल में तथा वर्ष 2006

में रायपुर में योग सम्मेलनों का आयोजन इसी परिप्रेक्ष्य में हुआ। मेरे निवास पर स्थित सत्यानन्द योग केन्द्र, भोपाल द्वारा नियमित योग कक्षाएँ संचालित होती हैं। मेरी पौत्री दीक्षा भी महिलाओं की योग कक्षा में सहयोग दे रही है। मेरे महान् गुरु, स्वामीजी के साथ मेरी अनवरत आध्यात्मिक यात्रा जारी रहेगी।

स्वामीजी के अनुग्रह और आशीर्वाद से प्रभावित अपने जीवन के स्मरण मात्र से मेरे नेत्र सजल हो जाते हैं। नवयुग के महान् संत, स्वामीजी को मेरा शत-शत साष्टांग प्रणाम।

–स्वामी व्यासानन्द सरस्वती, भोपाल

त्रिकालदर्शी संत–परमहंस सत्यानन्द सरस्वती

मैं सन् 1986 से रिखिया ग्राम में अपने परिवार के साथ फैक्ट्री में रहा करता था। उस जमाने में रिखिया में न तो बिजली होती थी, न ही टेलिफोन की लाइन थी। दुकानें वगैरह भी कम थीं। केवल एक दिन रविवार के दिन हाट लगा करता था। देवघर जाने-आने की भी कोई सुविधा नहीं थी। चारों तरफ गरीबी और अन्धकार था। हम लोग दिन-रात बिजली के पीछे लगे रहते थे, तब कहीं बिजली उपलब्ध होती थी। इन सारी परेशानियों के बावजूद हम लोग काफी खुश रहते थे। रिखिया के लोग अच्छे और सरल हैं। हम लोगों के साथ अच्छा सम्बन्ध है।

उन्हीं दिनों सितम्बर सन् 1989 में श्री स्वामीजी का रिखिया में पदार्पण हुआ। जिसको भी पता चला, वह रिखिया आश्रम उनके दर्शन के लिए गया। उसी दर्शन के दौरान हमारा दरबान रमाधार सिंह भी गया था। उसने कहा, 'एक बहुत ही बड़े साधु आइल बाड़े। रउआ उनकर दर्शन कर लीहीं।' मैंने उसे टाल दिया यह कहते हुए कि मुझे इन साधुओं में विश्वास नहीं है। किन्तु उस महान् संत की कृपा ही कहेंगे कि परिस्थिति ऐसी बनी कि स्वामी सत्संगी जी एक दिन हमारे निवास स्थल पर पहुँचीं। हम लोग अवाक् थे। काला लिबास पहने हुए उनका संस्कारी संन्यासी रूप अत्यंत प्रभावशाली था। उनके आने पर हम लोगों ने उनका यथोचित स्वागत-सत्कार किया। तब आत्मानुभूति जी ने पूछा कि क्या ऋषिकेश वाले स्वामी शिवानन्द जी यहाँ आये हैं? इस पर उन्होंने बताया कि 'नहीं, स्वामी शिवानन्द जी इनके गुरु थे, जो अब ब्रह्मलीन हो चुके हैं। ये स्वामी सत्यानन्द जी हैं, जो पहले मुंगेर में थे।

योग विद्यालय मुंगेर इन्हीं की देन है। क्षेत्र संन्यास के लिए स्वामीजी ने यहाँ रिखिया ग्राम को चुना है।'

फिर स्वामी सत्संगी जी ने अपने आने का कारण बताया। उन्होंने कहा कि यहाँ तो बिजली की हालत बहुत खराब है। मैं बिजली विभाग गई तो कार्यपालक अभियंता ने आपसे मिलने के लिए कहा। उस समय फोन केवल हमारे ही पास था। इस तरह स्वामी सत्संगी जी से परिचय हुआ। वास्तव में श्री स्वामीजी से हम लोगों को मिलाने का श्रेय स्वामी सत्संगी जी को ही जाता है। इसके लिए हम उनके सदा आभारी बने रहेंगे।

अब तो आत्मानुभूति जी स्वामी सत्संगी जी के माध्यम से बराबर आश्रम आने-जाने लगीं। वे बराबर श्री स्वामीजी के बारे में आकर बताती रहती थीं, उनकी बहुत बड़ाई किया करती थीं। किन्तु यह मेरा कुसंस्कार ही था कि मैं कभी स्वामीजी से मिलने नहीं गया।

एक बार सन् 1990 की बात है। उस समय मैं भागलपुर में था। रविवार के दिन स्वामी सत्संगी जी आत्मानुभूति जी को यह कहते हुए बुलाकर ले गईं कि स्वामी निरंजन जी मुंगेर से पधारे हैं और आपको दीक्षा देंगे। आप जल्दी चलिए। और उनकी मंत्र दीक्षा, आज जो समाधि स्थल है, वहीं पर बिठलाकर स्वामी निरंजनजी ने सम्पन्न की। इस तरह स्वामी निरंजन जी गुरु के रूप में आए। यह भी श्री स्वामीजी की त्रिकालदर्शिता का उदाहरण है।

अब उनकी कृपा मेरी ओर प्रवाहित हुई, जिसके कारण सन् 1990 के मई माह में मेरी शोभा भाभी रिखिया आयीं और जब उन्हें श्री स्वामीजी के बारे में पता चला तो उनसे मिलने की इच्छा जाहिर की और मुझे साथ चलने को कहा। मैं उनका आग्रह नहीं टाल सका और इस तरह मुझे भी श्री स्वामीजी से मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। श्री स्वामीजी एक टेन्ट में अपने कुछ भक्तों के साथ बैठे थे। उसी समय हम वहाँ पहुँचे। श्री स्वामीजी को देखते ही एक चुम्बकीय आकर्षण का अनुभव हुआ। मैं बिल्कुल मंत्रमुग्ध हो गया। उनके प्रश्नों के उत्तर देने की शैली बिल्कुल ही भिन्न एवं अनूठी थी। मैं उनकी शैली, प्रतिभा एवं व्यक्तित्व से बहुत ही प्रभावित हुआ। श्री स्वामीजी मेरे दिलो-दिमाग में समा गये और मैं उनका बनकर रह गया। फिर आश्रम में मेरा बराबर आना-जाना प्रारम्भ हो गया।

सन् 1993 में एक बार जब श्री स्वामीजी से मिलने हम लोग आश्रम गये थे तो रघुनाथ कुटीर में उनके साथ बुजुर्ग स्वामी ओंकारानन्द जी बैठे थे। श्री

स्वामीजी ने हम लोगों को बताया कि ये स्वामी ओंकारानन्द हैं, जो आपके शहर भागलपुर जा रहे हैं। वहाँ आश्रम का उद्घाटन होने जा रहा है और उस आश्रम के ये आचार्य रहेंगे। आप लोग इनकी यथासम्भव मदद कीजियेगा। इस तरह हमारा परिचय कराया।

वक्त ने करवट ली। मैं सन् 1993 में पुन: भागलपुर अपने काम पर लौट आया। इस तरह अपनी क्षमता के अनुसार स्वामी ओंकारानन्द जी को श्री स्वामीजी के प्रतिनिधि के रूप में पूरा सहयोग और सम्मान दिया। जब भी मैं स्वामी ओंकारानन्द जी के सामने होता, तो श्री स्वामीजी मेरे आँखों के सामने होते। इस तरह हम लोग भागलपुर आश्रम में अपना योगदान देने लगे और फिर वहाँ से मुंगेर आश्रम भी आना-जाना होने लगा।

परन्तु मेरी दीक्षा अभी होनी बाकी थी। रिखिया में स्वामी निरंजन जी से दीक्षा के लिए अनुरोध किया तो उन्होंने शिवरात्रि के समय मुंगेर बुलाया। 17 फरवरी, सन् 1995 को शिवरात्रि की रात में स्वामी निरंजन जी ने मुझे और आत्मानुभूति जी, दोनों को कर्मसंन्यास की दीक्षा दी। गुरुजी ने कहा कि यह महाराज जी का ही आदेश है कि मैं दोनों कान पकड़ूँ!

उसी दौरान, सन् 1995 के अप्रैल महीने में श्रीस्वामी जी ने देवघर में एक महाशिविर लगाने का आदेश दिया। उस समय मुझे योग शिविर के बारे में कुछ भी पता नहीं था कि शिविर क्या होता है, कैसे होता है, किन्तु स्वामी निरंजन जी की महानता कि उन्होंने एड़ी-चोटि एक कर दी। उन्होंने कहा कि यह मेरे गुरु का स्थान है, शिविर अच्छा होना चाहिए। और योग शिविर एक बड़े पैमाने पर अच्छे ढंग से सम्पन्न हुआ, जिसमें एक हजार लोगों ने भाग लिया। यह भी श्रीस्वामी जी का आशीर्वाद ही था।

मैं आश्रम से और विशेषत: श्रीस्वामी जी से इतना प्रभावित था कि इसके बाद सन् 1997 में एक वर्षीय संन्यास सत्र में दाखिला लिया और उसे अच्छी तरह पूर्ण किया। इस तरह मेरा जीवन आश्रम के लिए समर्पित हो गया। मुझे रिखिया आश्रम में प्रत्येक कार्यक्रम में सेवा देने का सौभाग्य मिलता था।

रिखिया में रहते हुए श्रीस्वामी जी का सान्निध्य मिलता रहा। मैंने पाया कि श्री स्वामीजी सेवा, प्रेम और दया की प्रतिमूर्ति हैं, जिसका जीता-जागता उदाहरण उन्होंने रिखिया में प्रस्तुत किया है। यह सब को ज्ञात है कि विगत बीस वर्षों में आस-पास की अनेक पंचायतों के हजारों लोगों को सहायता, सेवा और प्रेम मिलता रहा है और साथ ही जरूरत की चीजें माँ के प्रसाद

स्वरूप उपलब्ध होती रही हैं। हजारों परिवारों के बच्चों की कन्याओं और बटुकों के रूप में श्री स्वामीजी ने अपने बच्चों की तरह देख-रेख की है, और उन्हें अच्छे संस्कार दिये हैं। इसका अंदाज इस बात से लगाया जा सकता है कि अच्छे-अच्छे ज्ञानी पंडित, जो यज्ञ करवाते हैं, वे भी कन्या-बटुकों के संस्कार देखकर, उनके संस्कृत के श्लोकों के पाठ तथा रुद्राभिषेक कराने की शैली देखकर दाँतों तले उंगलियाँ दबा लेते हैं। हम बड़े भाग्यशाली हैं कि रिखिया आश्रम के सभी कार्यक्रमों में सम्मिलित होने का सौभाग्य और वहाँ सेवा देने का सुअवसर मिलता रहता है। साथ ही हम रिखिया की टेन्ट से महल तक की यात्रा के साक्षी भी हैं।

श्री स्वामीजी इतनी दूरदर्शिता से काम लेते थे कि उन्होंने अपने जीवनकाल में ही अपने उत्तराधिकारी का चयन कर अपने मिशन की जिम्मेदारी अति सुयोग्य उत्तराधिकारी स्वामी निरंजनानन्द जी एवं स्वामी सत्यसंगानन्द जी के कंधों पर दे दी। ये दोनों ही अति कर्मठ एवं समर्पित शिष्य हैं। यही नहीं, तीसरी पीढ़ी का भी चुनाव अपने रहते ही किया और नन्हे-से सितारे, कर्मठ संन्यासी स्वामी सूर्यप्रकाश को नियुक्त किया। श्री स्वामीजी सचमुच त्रिकालदर्शी थे।

इन गुरुओं के सान्निध्य में हम लोगों का जीवन भी सुधर गया। श्री स्वामीजी अपने शिष्यों पर बराबर दृष्टि एवं कृपा बनाए रखते। हमें तो अनेक बार इसका आभास हुआ है। एक घटना बता देना ही पर्याप्त होगा कि किस हद तक श्री स्वामीजी अपने शिष्यों का ख्याल रखते थे।

उन दिनों मैं देवघर, अपने निवास स्थान पर रहता था। एक दिन बाँका में किसी मुकदमे में मेरी पेशी थी। श्री स्वामीजी को बताकर मैं कार द्वारा अगले दिन सुबह बाँका गया। पेशी के बाद दिन के करीब दो बजे मैं वापस देवघर आ रहा था। गर्मी का मौसम था, कार में अकेले सफर कर रहा था। एक तो गर्मी, दूसरी थकावट, ऊपर से कार की गति 80 किलोमीटर प्रति घण्टा। मुझे झपकी आ गई। झपकी लगी नहीं कि कार ने सड़क छोड़ दी और एक झुरमुट पर चढ़ गयी। एक ऊँचे-से टीले को पार करते हुए कार एक बड़े-से वृक्ष को टक्कर मारने ही वाली थी कि श्री स्वामीजी को याद करते हुए आँखें बन्द हो गयीं। बचने की कोई आशा बची नहीं, मन भय से आक्रान्त था। मन ही मन सोचा कि अब तो मरना निश्चित ही है। किन्तु जब आँखें खुलीं तो आश्चर्य का ठिकाना नहीं था। मैं कार के साथ सकुशल बीच सड़क पर था! मैं तो बराबर सोचता हूँ कि यह जीवन श्री स्वामीजी का ही दिया हुआ है।

श्री स्वामीजी इस युग के महायोगी एवं त्रिकालदर्शी सन्त होते हुए भी बहुत ही सहज और सरल थे। श्री स्वामीजी की शिक्षाओं को हम अपने जीवन में उतार पायें, यही हमारी हार्दिक इच्छा है। कर्म करो, दान करो और दया करो, इन्हीं शिक्षाओं को अपनाकर मैं श्री स्वामीजी के चरण-कमलों में सच्ची श्रद्धांजलि अर्पित करना चाहता हूँ।

—स्वामी महाप्रज्ञानन्द सरस्वती, भागलपुर

शबरी के घर आए राम

मैं रामायण में बराबर पढ़ती-सुनती थी कि भगवान राम माता शबरी के घर आये थे और जूठे बेर खिलाकर शबरी माता ने उनका स्वागत किया था। मुझे यकीन नहीं आता था कि क्या ऐसा वाकई हुआ होगा। किन्तु जब ऐसी घटना मेरे साथ घटी तब समझ में आया माता शबरी का वह निश्चल प्रेम।

यह घटना सन् 2006 के आश्विन महीने की है। श्री स्वामीजी का आदेश था कि आश्रम में आकर नवरात्रि का अनुष्ठान करना। आश्विन नवरात्रि में मैं घर पर कलश वगैरह बैठा कर पण्डित द्वारा तथा अपने आप भी अनुष्ठान किया करती थी। श्री स्वामीजी के आदेशानुसार मैं रिखिया अपने कारखाने में, जो कभी मेरा निवास स्थान हुआ करता था और इन दिनों कन्या अन्नक्षेत्रम् के नाम से प्रसिद्ध है, आ गई और अनुष्ठान शुरू किया। पूजा-पाठ यहाँ और अनुष्ठान रिखिया आश्रम में। मैं बार-बार स्वामी सत्संगी जी से कहती थी कि बगल में मैंने कलश बिठाया है, दुर्गा पूजा कर रही हूँ, कृपया एक दिन आप भी चलिए और देखिए। उन्होंने कहा, हम जरूर आयेंगे आपके यहाँ गुरुजी के साथ।

इस तरह करते-करते नौ दिन बीत गये, पर वे लोग नहीं आये। मैं रोज इन्तजार करती थी। लगता था, आज जरूर आयेंगे, लेकिन कहाँ? आने की कोई उम्मीद नजर नहीं आ रही थी। किन्तु मन के किसी कोने में लगता कि शायद आज आ जायें। नवमी के बाद दशहरा आ गया। श्री स्वामीजी ने सब लोगों को दर्शन दिया। प्रवचन के बाद लोग बाहर निकले। मैं लोगों के साथ थोड़ा उलझी हुई थी, आश्रम वगैरह दिखा रही थी कि महाप्रज्ञानन्द जी ने कहा कि श्री स्वामीजी, स्वामी सत्संगी जी तथा स्वामी निरंजन जी ऋषिकुंज की तरफ गये हैं।

मैंने आव देखा न ताव। जल्दी-जल्दी सब छोड़ कर एक स्कूटर से कारखाना पहुँची। सब ने कहा कि श्री स्वामीजी बगल वाले बगीचे में गये हैं, जो आजकल यज्ञशाला के नाम से प्रसिद्ध है। मैं भी खाली पैर दौड़कर वहाँ पहुँची। मौका मिलते ही मैंने कहा, 'स्वामीजी, जरा बगल में भी अपने चरण कमल रख देते।' उन्होंने तुरन्त कहा, 'हाँ, हाँ मैं जरूर आऊँगा।' उनका इतना कहना था कि मैं खुशी से पागल हो गई। मैं भागते हुए कारखाना पहुँची, किन्तु मेरे पहुँचते-पहुँचते श्री स्वामीजी गाड़ी से पहुँच गये। मैं तो हतप्रभ थी क्या करूँ, क्या न करूँ। वहाँ एक चौकी रखी थी, श्री स्वामीजी खुद ही जाकर उस पर बैठ गये। स्वामी सत्संगी जी उनका जूता लिए खड़ी थीं, स्वामी निरंजन जी हाथ बांधे वहीं खड़े थे। मैं इतनी बेहोश थी कि मैंने उन्हें बैठने को भी नहीं कहा। फिर श्री स्वामीजी मुझे बुला कर कहने लगे, 'अरे, अभी तो यह ठीक लग रहा है। इसके पहले मैं जब आया था तो वीरान लग रहा था।'

अचानक मुझे लगा कि ऐसा मौका फिर नहीं मिलेगा। मैं झट से अन्दर जाकर एक कठौता ले आई, गंगा जल लाई, किन्तु मैं बुरी तरह काँप रही थी। मेरा पूरा चेहरा लाल हो गया था। सुध-बुध खो चुकी थी मैं। कठौता लेकर मैं श्री स्वामीजी के सामने खड़ी हो गई। उन्होंने कहा, 'हाँ रखो, नीचे रखो' और अपने पैर उसमें डाल दिये। फिर कहने लगे, अब पानी डालो। तब जाकर मैं थोड़ा होश में आई और पानी डालने लगी। फिर प्रेम से उनके चरण धोये। इतने कोमल, मुलायम चरण, आज भी मुझे वह एहसास रोमांचित कर देता है। पैर पोंछ कर फिर मैं अन्दर गई। कुछ समझ में नहीं आ रहा था तो मैं एक थाली में थोड़ी-सी मिठाई लेकर आई। श्री स्वामीजी के सामने रखा तो उन्होंने एक टुकड़ा उठाकर महाप्रज्ञानन्द जी को दिया कि ये आप दोनों के लिए और सब को बाँट दो।

इस सन्दर्भ में मैं एक बात और कहना चाहूँगी कि श्री स्वामीजी अगर किसी को कोई बात कहते थे तो वे उसे जरूर पूरा करते थे। एक बार मैंने श्री स्वामीजी से कहा था कि मेरी कुटिया पर एक बार पधारिए। तब उन्होंने पूछा था, 'तुम्हारी कुटिया है किधर? मैं कहाँ जाऊँ।' सच में मैं तो चुप हो गई थी, क्योंकि मेरे पास उस समय अपना कहने को घर नहीं था। मैं रिखिया, देवघर छोड़ चुकी थी। यह उनकी अहैतुकी कृपा ही थी कि उन्होंने मेरी वह चिरवांछित इच्छा अपने तरीके से पूरी कर दी।

दूसरी इच्छा जो मैंने जाहिर की थी वह यह कि सब लोग स्वामी शिवानन्द जी के चरण धोया करते थे, हम लोगों ने वीडियो में देखा था। मैं भी चाहती थी कि श्री स्वामीजी के चरण पखारूँ। लेकिन श्री स्वामीजी कहा करते थे, 'मेरे गुरुजी का स्वभाव तो बाल-सुलभ था, वे सब करवा लेते थे। किन्तु मैं वैसा नहीं हूँ।' पर मुझे लगता है कि श्री स्वामीजी का स्वभाव भी वैसा ही करुणापूर्ण है। वे किसी को भी निराश नहीं करना चाहते थे। शायद इन्हीं सब कारणों से श्री स्वामीजी ने मेरी इच्छापूर्ति हेतु इतना बड़ा काम किया। मैं इस मामले में बहुत किस्मत वाली हूँ। मुझे स्वामीजी ने बेहद प्यार दिया। पिता जी के देहान्त के बाद वे मुझे मिले। मैंने उन्हें अपना पिता माना, अपना इष्ट माना, अपना गुरु माना। वे ही मेरे लिए सब कुछ थे। वे मेरे रोम-रोम में बसे हुए हैं। एक भी क्षण ऐसा नहीं है जिसमें वे नहीं हैं। उनकी कमी कभी-कभी खलती है, लेकिन जब यादों में खो जाती हूँ तो लगता है कि अभी भी पास में ही हैं।

इस तरह मेरे घर आकर श्री स्वामीजी मुझे श्रीराम और माता शबरी की याद दिला गए और यह विश्वास भी दिला दिया कि यह वृत्तान्त वास्तव में हुआ होगा।

–स्वामी आत्मानुभूति सरस्वती, भागलपुर

परमहंसजी के साथ बिताए कुछ क्षण

परमहंस सत्यानन्द जी के पावन श्री चरणों में मुझे भी कुछ क्षण बिताने तथा कुछ सीखने का अवसर मिला। ये क्षण मेरे जीवन के अनमोल क्षण बन चुके हैं।

मेरी मंत्र दीक्षा सन् 1970 तथा कर्म संन्यास दीक्षा सन् 1983 में हुई। सन् 1979 में वे गुरु-पूर्णिमा के अवसर पर बिलासपुर पधारे तथा मेरे आवास 'सत्यम् कुटीर' भी आये। उस अवसर पर मैंने उनसे कहा था, 'मैं एक बुद्धिजीवी हूँ तथा आपने अपने एक ग्रंथ में कहा है कि एक ग्रामीण की अपेक्षा एक बुद्धिजीवी अध्यात्म के क्षेत्र में कम प्रगति करता है। मुझे भी आप में तथा गुरुमंत्र में श्रद्धा नहीं है। ऐसी स्थिति में मैं क्या करूँ?'

उन्होंने कहा, 'ज्ञान योग की साधना करो।' मैंने कहा, 'यह कुछ भी मेरी समझ में नहीं आता, सरल भाषा में कहिए।' उनका उत्तर था, 'मेरा मूल काम पश्चिम में अँग्रेजी भाषा में हुआ है। अपना देश तो हिन्दी भाषी है। तुम मेरे

ग्रंथों का हिन्दी में अनुवाद करो।' अपनी शिक्षा के किसी भी स्तर पर हिन्दी मेरा विषय नहीं रहा। मुझे थोड़ी हिचकिचाहट हुई, लेकिन उन्हें मुझ पर पूरा भरोसा था। उन्होंने रायपुर आश्रम के शिलान्यास के अवसर पर 30 जनवरी, 1975 को मुझे अपना एक ग्रंथ दिया, जो अनुवाद होने के बाद 'योग तरी तीरे तीरे' नाम से प्रकाशित हुआ। बस फिर यह सिलसिला 25 वर्षों तक चला, एक के बाद एक ग्रंथ आता गया। इस प्रकार मेरा अप्रत्यक्ष योग शिक्षण चलता रहा। इस कार्य में मैंने गहन एकाग्रता का अनुभव किया। जब भी मैं उनके श्री चरणों में बैठा, मन में जो भी शंकाएँ, सवाल उठे, पूछता गया और उन्होंने समाधानकारक उत्तर दिया। एक बार उन्होंने मुझसे कहा, 'डॉलर-पौंड कमाने की इच्छा हो तो अँग्रेजी तो जानते ही हो, मैं गेरु चादर देता हूँ, यूरोप चलो जाओ।' मैंने कहा, 'बस, आपका आशीर्वाद पर्याप्त है। मुझे यहीं इतना मिल जाता है कि मेरा काम चल जाता है।'

शिरडी में एक जगह श्री साईं का वचन पढ़ने को मिला–'अपनी चिन्ताओं तथा परेशानियों की पोटली मेरे चरणों में रख दो।' इससे मिलती-जुलती एक बात परमहंस जी ने भी मुझसे कही थी, 'जब भी कोई चिन्ता-परेशानी जीवन में आये, मेरी फोटो के सामने कह दिया करो।' ऐसा अवसर जब भी आता है, मैं अश्रुपूरित नेत्रों से उनके चित्र के सामने कह देता हूँ और आश्चर्य कि मुझे मेरी समस्या का त्वरित समाधान मिल जाता है! इससे मेरा विश्वास पक्का हो गया कि वे एक सिद्ध-संकल्प, सिद्ध-वाणी संत हैं। आज भी ऐसा नहीं लगता कि वे हमसे दूर चले गये हैं या हमें भूल गये हैं।

एक बार वे अपनी विदेश यात्रा के दौरान स्विट्जरलैंड के एक हवाईअड्डे में अपनी उड़ान की प्रतीक्षा में बैठे थे। इसी समय एक पत्रकार ने पूछा– 'स्वामीजी, आपके लाखों शिष्य दुनियाभर में फैले हैं, आप कैसे जानते हैं कौन शिष्य किस परिस्थिति में है तथा उसकी क्या आवश्यकता है?' उनका उत्तर था, 'मैं अपनी ब्रह्माण्डीय चेतना द्वारा अपने हर शिष्य के बारे में जानता हूँ तथा जो कुछ भी भौतिक तथा आध्यात्मिक रूप से जरूरी होता है, करता हूँ।' परमहंस जी ने जो भी आध्यात्मिक कमाई की, वह अपने मानस पुत्र, स्वामी निरंजन जी को सौंप दी। एक बार उन्होंने कहा था, 'जब भी मुझे देखना चाहो, निरंजन में देखो। वह मेरी आत्मा है।' अँग्रेजी कवि वर्ड्सवर्थ भी जब अपने अवकाश के क्षणों में नेत्र बंद करते, तो डेफोडिल के फूलों के सौन्दर्य की याद उनके मन-मस्तिष्क में ताजा हो जाती तथा उन्हें अकथनीय शांति

प्रदान करती थी। हम भी जब साधना के दौरान नेत्र बंद कर बैठेंगे तो परमहंस जी का अपार करुणामय स्वरूप अवश्य हमारे सामने होगा और हमें आश्वस्त करेगा–'मैं हर क्षण तुम्हारे साथ हूँ।'

बस, यही कुछ अमिट यादें हैं जो हमेशा मेरी धरोहर होंगी तथा मेरे बढ़े हाथों को थामेंगी। मेरे जीवन की सर्वाधिक अविस्मरणीय घटना यह है कि बहुत दिनों से मेरे अंतर्मन में पूज्य गुरुदेव के चरण प्रक्षालन करने की इच्छा थी। संयोगवश मुझे बिलासपुर में एक लोटा त्रिवेणी का पवित्र जल मिल गया, जिसे लेकर मैं रिखिया गया। किचन से एक थाली माँग लाया तथा उनके कमरे में पूरी तैयारी से गया। जब कुछ लोग उनके पास बैठे विभिन्न विषयों पर चर्चा में व्यस्त थे, मैं उनके पास गया तथा कहा कि त्रिवेणी का जल लाया हूँ, यदि आप आज्ञा दें तो चरण प्रक्षालन कर लूँ। वे अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक तैयार हो गए। त्रिवेणी के जल से मैंने उनके चरण पखारे, उस समय उनके स्नेह तथा प्रसन्नता की झलक आज भी मेरे मानस पटल पर अंकित है। चरण प्रक्षालन के बाद पुन: पास जाकर मैंने उनसे कहा कि श्रीराम ने जो सम्मान केवट को दिया था वही आज आपने हम दोनों को दिया, मैं आपका अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। उन्होंने मुस्कुराते हुए सिर हिला दिया। वह थाली तथा गमछा आज भी मेरे पास सुरक्षित है। थाली में चरण पादुका मेरे पूजा कक्ष में स्थापित है।

यही कुछ खास घटनाएँ हैं जिनके बारे में जब सोचता हूँ तो मन प्रसन्न तथा गद्‌गद् हो जाता है। अंत में मुझे महात्मा गाँधी की मृत्यु के समय आइन्सटाइन द्वारा कही एक बात याद आती है–'आने वाली पीढ़ियाँ इस बात पर मुश्किल से यकीन करेंगी कि कभी गाँधी नाम का महामानव इस धरती पर हुआ था।' मुझे लगता है कि हमारी भी आने वाली पीढ़ियाँ मुश्किल से विश्वास करेंगी की कभी परमहंस सत्यानन्द नाम का महामानव और संत-शिरोमणि रिखिया नामक एक दूरस्थ ग्राम में रहता था।

–सं. तत्त्वप्रकाश, बिलासपुर (छ.ग.)

गुरुदेव के संग कुछ पावन संस्मरण

मैं पूज्य गुरुदेव, स्वामी सत्यानन्द जी के पावन सान्निध्य में सन् 1970 में आई। उस समय आर्थिक विपन्नता तथा पति की रुग्णावस्था ने मुझे बहुत निराश तथा असहाय कर दिया था। ऐसी परीक्षा की घड़ी में मुझे मंत्र-दीक्षा प्राप्त हुई और

मुझे गुरु रूप में माता, पिता, बंधु, शुभचिन्तक तथा मार्गदर्शक, सभी उपलब्ध हुए। इस दुर्लभ प्राप्ति के फलस्वरूप मेरे भीतर साहस, शक्ति तथा अनन्य विश्वास का उदय हुआ। मैंने उनसे कितना कुछ पाया, यह कहना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है।

अपने पूज्य गुरुदेव, स्वामी शिवानन्द के सन्दर्भ में स्वामी सत्यानन्द जी ने एक बार कहा था, 'मैंने ईसा मसीह को कभी देखा तो नहीं, पर चूँकि मैंने स्वामी शिवानन्द जैसे महापुरुष को देखा है, इसीलिए मुझे पूरा विश्वास है कि ईसा भी इस धरती पर अवश्य रहे होंगे।' यही मत मेरा अपने गुरुदेव के प्रति है।

गुरुदेव को आकाश-गमन की सिद्धि प्राप्त थी। वे कहा करते थे, 'मैं प्रतिदिन ब्रह्ममुहूर्त में अपने हर शिष्य का दरवाजा खटखटाता हूँ। किन्तु खेद, अधिकतर शिष्य सोये मिलते हैं।' मैं भी यथासम्भव इसी मुहूर्त में थोड़ा जप-ध्यान कर लेती हूँ। एक दिन प्रात: मैं सोई रह गई, उस समय मुझे ऐसा महसूस हुआ मानो कोई मुझे हिलाकर जगा रहा है और साधना में बैठने के लिए कह रहा है।

गुरुदेव के जीवन का पवित्र उद्देश्य विश्व में योग को वैज्ञानिक आधार पर पुन: प्रतिष्ठित करना था, जिसे उन्होंने सफलतापूर्वक पूरा किया। यदि मैं यह कहूँ कि उन्होंने लोगों में योग के प्रति ललक उत्पन्न कर एक नव युग, योग युग का श्री गणेश किया तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। जो भी उनके सम्पर्क में आया, कुछ पाकर ही गया। मुझे पूज्य गुरुदेव तथा शिरडी के साँई बाबा में कुछ समानताएँ देखने को मिलीं। गुरुदेव भी श्री साँई की तरह कहते थे, 'अपनी सभी चिन्ताएँ, परेशानियाँ तथा कष्ट मेरे चित्र के सामने कहकर निश्चिन्त हो जाया करो।' मैं उनके इस कथन को समय-समय पर परखती हूँ, तथा मुझे त्वरित उत्तर भी मिलता है।

मैं कम पढ़ी-लिखी, मध्यमवर्गीय परिवार की गृहस्थ महिला हूँ। जब उनके आदेश से मैंने योग सिखाना प्रारम्भ किया तो इस कार्य में मुझे अनपेक्षित सफलता मिली। इससे मेरा यह विश्वास पुष्ट होता गया कि उन्हें याद कर जो भी कार्य प्रारम्भ किया जाए, उसमें सफलता अवश्य मिलती है।

गुरुदेव हमें एकदम अकेला, असहाय नहीं छोड़ गए, बल्कि दो अनमोल संन्यासी रत्न, स्वामी निरंजन और स्वामी सत्संगी दे गए हैं, जो गुरुदेव के परम-समर्पित शिष्य हैं तथा उनके मिशन को सफलतापूर्वक संचालित कर रहे हैं। पूज्य गुरुदेव कहा करते थे, 'निरंजन मेरी आत्मा है, मुझे उसमें देखो।'

मुझे 30 नवम्बर, 1995 का वह दिन आज भी याद है, जब स्वामी निरंजन को समक्ष बिठाकर गुरुदेव हवन करवा रहे थे। उस समय मेरे पति ने मुझसे कहा था, 'देखो शक्तिपात की प्रक्रिया हो रही है।'

हवन के पश्चात् गुरुदेव ने कहा था, 'आज मैंने अपना सब कुछ निरंजन को दे दिया और मैं कंगाल हो गया। मेरा उड़न खटोला यहीं आएगा और मैं उसमें बैठ चला जाऊँगा।' सन् 2009, पाँच दिसम्बर की मध्य रात्रि में उन्होंने अपनी संन्यासी शिष्या, स्वामी सत्संगी जी को बुलाकर कहा, 'मेरे जाने का समय आ गया है। तुम हर बार मुझे रोक लेती हो, इस बार मत रोकना।' यह सुन वे रोने लगीं तो उन्होंने आश्वासन दिया, 'रोओ नहीं, मैं किसी गरीब माँ-बाप के यहाँ फिर आऊँगा और अपना बचा कार्य पूरा करूँगा।' यह कहकर वे पद्मासन लगा कर समाधिस्थ हो गए तथा उसी अवस्था में महाप्रयाण कर गए। आज भी रिखियापीठ की धरती में उनकी पावन उपस्थिति का अहसास होता है। कम-से-कम मुझे तो ऐसा नहीं लगता कि वे हमें अकेला छोड़ गये हैं। समाधि-स्थल में आज भी परम शान्ति और आनन्द का अनुभव होता है।

सूली पर चढ़ने के तीन दिन बाद हजरत ईसामसीह पुनर्जीवित हो गए थे। ईसाई मत के लोग उस दिवस को ईस्टर के रूप में मनाते हैं। हम भी हँसी-खुशी का कुछ त्योहार तब मनाएँगे जब अपने वादे के अनुसार गुरुदेव फिर हमारे बीच नहीं तो हमारी भावी पीढ़ी के बीच दुबारा पधारेंगे। बस आवश्यक केवल इतना है कि हम द्रौपदी, मीरा, ध्रुव तथा प्रह्लाद की तरह दिल से उन्हें पुकारें। जिस तरह श्री कृष्ण नंगे पैर दौड़े आए थे, उसी तरह हमारे प्रिय गुरुदेव भी हमारी सहायता के लिए दौड़े चले आएँगे।

यहाँ मैं यदि चंद शब्द स्वामी निरंजन जी के सन्दर्भ में कहूँ तो शायद अनुचित नहीं होगा। मैं सन् 1996 में मुंगेर में थी तथा मेरे पति योग प्रशिक्षण देने राँची गए हुए थे। उस समय मेरे इकलौते पुत्र को गुजरे दो-तीन वर्ष ही हुए थे। मैं उसके वियोग तथा याद में प्राय: रोया करती थी। उस समय एक दिन स्वामी निरंजन जी ने मुझसे कहा, 'माताजी, राजू की जगह आप मुझे ही अपना पुत्र मान लें। किन्तु मुझसे शादी करके बहू लाने के लिए न कहियेगा।' उनके इस आश्वासन से मुझे बड़ा आत्मबल और संतोष प्राप्त हुआ तथा पुत्र वियोग का दु:ख बहुत हद तक कम हो गया।

एक बार मैं मथुरा गई थी। वहाँ मुझे गोल-मटोल लड्डू गोपाल मिले, जिन्हें मैंने तुरन्त खरीद लिया। मैं आज भी पुत्र-भाव से अच्छी तरह उनकी

सेवा करती हूँ। मुझे इस बात का बड़ा गर्व है कि भले ही परमात्मा ने मेरा इकलौता बेटा वापस ले लिया हो, लेकिन उसकी जगह मैं आज दो लायक बेटों की माँ होने की भावना से गौरवान्वित अनुभव करती हूँ। मेरे इन दो बेटों के नाम हैं—लड्डू गोपाल तथा स्वामी निरंजन। आत्मा की गहराइयों में मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि जब भी मैं पुकारूँ, ये दोनों दौड़े चले आएँगे और मैं शान्तिपूर्वक इस संसार से विदा ले लूँगी। इन्हीं चंद शब्दों के साथ मैं गुरु चरणों में नमन, वंदन, अभिनंदन करते हुए अपनी लेखनी को विराम देती हूँ।

—संन्यासी श्रीनाथ, बिलासपुर

एक परमहंस को श्रद्धांजलि

हे महामानव, आपको शतकोटि प्रणाम! हे महातपस्वी परमहंस सत्यानन्द, हे महायोगी, भारतीय ऋषि संस्कृति के कर्णधार, देश के शुभचिन्तक, विश्व गुरु, आपको शत-शत नमन! हमारे अहोभाग्य हैं कि आपके दर्शन मिले, शिष्य रूप में स्वीकृति हुई, सत्संग का अवसर, सेवा का अवसर, आश्रम के सदस्य होने का अवसर भी प्राप्त हुआ।

सन् 1974 के मध्य भाग के किसी शुभ क्षण में श्री स्वामीजी का प्रथम बार दर्शन प्राप्त हुआ था। पर दर्शन के पूर्व ही यह पूर्वाभास हो चुका था कि मुझे अपने गुरु मिलने वाले हैं। और हृदय के द्वार उन्मुक्त हो गए थे। इसलिए उनका प्रथम दर्शन व्यक्ति रूप में नहीं, बल्कि एक दिव्य, सुन्दर ज्योतिपुँज के रूप में हुआ। उनके स्मित-हास्य ने अब तक के सारे दुःख-सुख को भुला दिया।

क्यों आई हूँ, बताना नहीं पड़ा। साधना मिल गई। मेरे अन्तर जीवन ने दीर्घप्रतीक्षित प्रकाशमय कदम लिया। परन्तु उस समय मालूम नहीं था कि आध्यात्मिक यात्रा के पथ पर पुष्पों से अधिक काँटे होते हैं और अपने को तपा-तपाकर शुद्ध करना पड़ता है। अपने तन, मन, चित्त की अशुद्धियाँ तो विष की तरह तब ऊपर आती हैं जब गुरु हमारी अन्तर आत्मा का समुद्र-मन्थन करता है।

चन्द दिनों की साधना में ही अन्यतर अनुभवों को संचारित किया गया था। संसार निरर्थक-सा लगने लगा। साधन मार्ग पर आगे बढ़ने की ललक जागी। पर कर्म अभी बाकी थे, शोधन अभी होना था। उन्होंने अपनी लिखी एक पुस्तक मुझे पकड़ाई, जिसमें लिखा था, 'यदि तुम इस पथ पर आगे बढ़ना चाहते हो तो संसार की उपेक्षा नहीं कर सकते।' मुझे आगाह कर दिया गया।

अन्तत: एक दिन रिखिया से आह्वान् आया दर्शनों का। देश-देशान्तर से भक्त एवं शिष्यगण सुदीर्घ कतार में उस महान् दर्शन की प्रतीक्षा में शान्त खड़े थे। सबका मन अन्तर्मुखी था। अन्त में हमें अलखबाड़े में प्रवेश मिला। परमहंस जी पंचाग्नि साधना में बैठे थे। अग्नि में लकड़ियाँ डालते हुए भी उनकी एकाग्रता किसी उच्च लोक के साथ युक्त थी, हमारे साथ नहीं। उनकी गौरकाया कृष्ण-ताम्रवर्ण ग्रहण कर चुकी थी। हममें शक्ति का संचरण हो रहा था। दरवाजे के पास लिख दिया गया था– 'फिर मत आना।'

पर एक समय आया जब किसी-किसी भक्त को उनके दर्शनों की अनुमति मिलने लगी। सौभाग्य से एक बार मेरा भी जाना हुआ। एक विशेष उद्देश्य को लेकर ही गई थी। एक शिशु विद्यालय शुरू करने की परिकल्पना मन में थी। उनसे आशीर्वाद लेना था। योगदण्ड और जप-माला लिए मृगछाल पर आसीन परमहंस जी ने स्मित-हास्य से स्वागत किया। सब सुनकर उन्होंने कहा, 'तुम स्कूल शुरू करने की सोच रही हो, यह खुशी की बात है। मैं सोच भी रहा था, तुम्हें कुछ करना चाहिए। पर ध्यान रहे, धर्म वगैरह को नहीं लाना अपने विद्यालय में।' मैं तो चौंक गई, क्योंकि मैंने सोचा था सब धर्मों की प्रार्थना करवाऊँगी, वेद की ऋचाओं का गान करवाऊँगी, आदि-आदि।

उनके दर्शनों के बाद जब मैं लौट रही थी तो मेरे विचार तेजी से बदल रहे थे और उन पर मेरा वश नहीं था। गुरु ने इस शिलाखण्ड को तराशने का काम शुरू कर दिया था। भावी विद्यालय की जो छवि अन्तत: सामने आई वह यह कि यह विद्यालय गुरु को समर्पित होगा, और दूसरा कि यहाँ अध्यापन का माध्यम योग होगा। पर नन्हें बालक-बालिकाओं के अध्ययन में योग का उपयोग कैसे किया जा सकता है, इसका कोई अनुभव मुझे नहीं था। इस तरह के विशेष प्रकार के विद्यालय का संचालन कैसे होगा, यह भी कुछ समझ में नहीं आ रहा था। तो पड़ गई घूर्णावर्त्त में, क्योंकि यह एक पवित्र काम था। इसका निष्कलंक होना आवश्यक था।

मेहनत शुरू हो गई। अध्ययन, शिशु विद्यालयों का निरीक्षण, पठन-पाठन की विधिओं एवं सामग्रियों का चयन, आदि। पूज्यपाद स्वामी निरंजनजी ने भी कुछ साहित्य दिया, चित्र-यन्त्र आदि भी दिए। पर काम तो कठिन ही था। साहस नहीं हो रहा था। यदि कुछ गलती हो गई तो? सहारा देने के लिये भी कोई होना चाहिए।

श्री स्वामीजी के दर्शनों के लिए रिखिया फिर जाना हुआ। इस बीच करीब साल बीत चुका था। पर गुरुदेव ने मुझे देखते ही पूछ दिया, 'तुम्हारे विद्यालय का क्या हुआ?' मैं तो आवाक् रह गई। आखिर इस अधम का भला मूल्य ही क्या है? एक क्षण उन्होंने सोचा और वे समझ गए परेशानी क्या है। मैंने पूछा, 'विद्यालय का नाम क्या रखूँ?' उन्होंने पास में बैठे स्वामी निरंजन जी की ओर इशारा करते हुए कहा, 'इसके नाम से रख लो', और उनसे कहा, 'पटना जाओ तो इसके विद्यालय में चले जाया करना।' गुरु कृपा बरस रही थी!

'स्वामी निरंजनानन्द शिशु निकेतन'–एक सुनहरे सपने का साकार स्वरूप! यह अपने में एक ऐतिहासिक प्रयोग ही था। इतने नन्हे बालकों में योग का प्रयोग पहली बार हुआ था। स्वामी निरंजन जी वहाँ बराबर आया करते। पटना के अखबारों में भी इस अनोखे विद्यालय की चर्चा कई बार हुई। परमहंस जी से तो कोई दूरी जैसे थी ही नहीं। पग-पग पर वे हमें सहारा दे रहे थे।

पर आगे की यात्रा इतनी अनोखी होगी, हमें इसका आभास भी नहीं था। कुछ सालों बाद मेरे पति के सरकारी नौकरी से सेवानिवृत्त होने पर जब स्वामी निरंजन जी ने टेलीफोन पर उनसे कहा, 'यहीं चले आइये, स्कूल यहीं चलेगा।' तो हमारी खुशी का ठिकाना नहीं रहा। गृहस्थी का सामान कबाड़ी को बेचकर, बच्चों को ट्रान्सफर सर्टिफिकेट पकड़ाकर बोरिया-बिस्तर लेकर हम पहुँच गए गंगा दर्शन। किस शक्ति ने करवाया इतना असम्भव काम?

वहाँ पहुँचने के कुछ दिनों के बाद रिखिया से बुलावा आ पहुँचा कि शिक्षण का बहुत काम पड़ा है मेरे लिए। मुझे तो स्वर्ग हाथ में मिल गया और मेरे पति को भी, क्योंकि उनको 'बिहार योग भारती' विश्वविद्यालय में समाहित कर लिया गया।

यह हम दोनों का आध्यात्मिक पथ पर सुदृढ़ कदम था। कभी पथ पुष्पों से सुशोभित होता तो कभी कंटकाकीर्ण। मेरे लिए रिखिया का सबसे बड़ा आकर्षण था प्रति रविवार परमहंस जी का सत्संग। कितनी ज्ञान भरी बातें होतीं उनकी। और उनके विचार थे युग परिवर्तक। वेद, उपनिषद्, गीता, रामायण, तंत्र और योग के ज्ञान की प्राप्ति के साथ-साथ उनके चरणों में बैठकर देश-देशान्तर की सारी खबरें, विज्ञान की अत्याधुनिक खोजें, सरकारों की अर्थनैतिक खामियाँ, भारत के गाँवों का उत्थान, पति-पत्नी के सम्बन्ध, शिशुओं की शिक्षा, माता-पिता के कर्त्तव्य, आहार, शारीरिक स्वास्थ्य आदि के विषय में भी गहन ज्ञान की प्राप्ति होती थी। सत्संग सुनने के बाद कई दिन

लग जाते उस ज्ञान को अपने अन्दर समाहित करने में और इस प्रक्रिया में अपने विचारों का मंथन और शुद्धिकरण चलता। शेष दिनों अगले सत्संग के लिये मन उन्मुख रहता।

मुझे जो कर्मयोग मिला था, वह भी मेरी शक्ति की परीक्षा ही थी, क्योंकि न तो वे और न कोई और आते थे मदद को। अपना ही सारा दिमाग लगाना पड़ता। काम मिला, गाँव की औरतों को पढ़ना सिखाना, ताकि वे आगे जाकर खुद रामायण पढ़ सकें। परमहंस जी ऐसा चाहते थे, पर गाँव की औरतों को साक्षर बनने की आवश्यकता कतई महसूस नहीं होती थी। उनकी चौदह पुश्तों ने कभी लिखना-पढ़ना नहीं सीखा था। प्रौढ़ शिक्षा की सारी पुस्तकें नाकाम थीं। राम, लक्ष्मण, हनुमान आदि शब्दों को पढ़ने की कोई इच्छा उनमें नहीं जागती। पर अन्त में काम आया गुरु का दिया ज्ञान ही। जब उनको बतलाया कि देवनागरी लिपि का एक-एक अक्षर और उसकी एक-एक ध्वनि स्वयं ब्रह्म है, तभी जाकर के वे सीधी होकर बैठीं और उनमें उत्सुकता जागी। अन्त में स्वामी सत्संगी जी ने मुझे बुलाकर कहा कि गुरुजी ने कहा है, इन लोगों को सुन्दरकाण्ड का पाठ करवाना है, इसके बाद परिवर्तन निश्चित है। और सच में जादू हो गया। उसके बाद औरतें मन लगाकर सीखने लग गईं!

पर शायद सबसे महत्त्वपूर्ण परिकल्पना जो गुरुदेव की थी, वह यह कि गाँव की कन्याओं के जीवन को सुधारना। इसका पहला चरण था, उन्हें अँग्रेजी भाषा में पारंगत करना। इस कार्य के लिए कक्षाओं की शुरुआत करनी थी मुझे। सूक्ष्म काम था यह। पर मेरे ईश्वर तो मुझे इतने दिनों से इसी कार्य के लिये प्रशिक्षित कर रहे थे। 'शिशु निकेतन' से आई पठन-पाठन की सामग्रियाँ भी काम आ गईं। अँग्रेजी शिक्षण की कक्षा सफलतापूर्वक चलने लगी एवं उसका उत्तरोत्तर विकास होने लगा।

आश्रम जीवन आसान तो नहीं होता। पर परमहंस जी की अपार ममता ने हमें बाँध रखा था। अपने हाथों से रंग-बिरंगे फल काटकर, हरे पत्ते के दोने में सजाकर किसी के हाथों कभी भिजवा देते थकान के दिनों में। कभी अपने हाथों से बेल का शरबत सब के लिये तैयार करते तो कभी ग्यारह फलों का समावेश करके सबके लिये सलाद काटते, जिसका रंग-रूप और स्वाद अनुपम होता। कभी किसी के लिये नारियल पानी और नारियल की मलाई पहुँच जाती कि वह धूप में थक रहा होगा, प्यासा होगा। एक बार अँग्रेजी की कक्षा का सारा

सामान उन्होंने तीसरी मंजिल से नीचे के कमरे में उतरवा दिया, यह कहकर कि आनन्दप्रिया को ज्यादा ऊपर-नीचे नहीं करना है। स्नेह और करुणा की प्रतियोगिता में शायद ईश्वर भी उनसे हार जाएँगे!

कुछ सालों के बाद संसार के कर्त्तव्यों की पुकार फिर से आ पहुँची। अपने बच्चों की गृहस्थी में जाकर उलझ गई। गुरु-गृह के कर्त्तव्यों की अवहेलना हो गई। गुरुदेव ने इस बार मुझे माया के बंधनों में दीर्घकाल तक रहने दिया, ताकि मैं संसार को पहचान सकूँ और अपने आपको अनासक्ति का पाठ पढ़ा सकूँ। पर अपने अन्तिम दर्शन के दिन उन्होंने पुन: अपनी ज्योति के दर्शन दिए और कहा, बिछोह के दिन तेरे अब खत्म हुए। और अपने उत्तराधिकारी, प्रिय निरंजन जी को कह गए, 'आनन्दप्रिया से कह देना, अब से रिखिया को ही अपना घर समझेगी।' एक संत-हृदय, मातृ-पितृसम गुरु ही ऐसा प्रिय निर्देश दे सकते हैं।

हे महामानव! अब शब्द कहाँ श्रद्धांजलि को? कैसे अर्पित करूँ पुष्प-सुमन, क्योंकि इस नमक की डली की सत्ता तो कब की घुलमिल गई है आपके स्नेह-सागर में। एक ही प्रार्थना है ईश्वर से, गुरु से–

जे निज भगत नाथ तव अहहीं। जो सुख पावहिं जो गति लहहीं॥
सोइ सुख सोइ गति सोइ भगति सोइ निज चरन सनेहु।
सोइ बिबेक सोइ रहनि प्रभु हमहि कृपा करि देहु॥

–संन्यासी आनन्दप्रिया, नयी दिल्ली

पारस मणि

कई वर्ष पूर्व की घटना है। श्री स्वामीजी का आगमन हमारे यहाँ हुआ था। सन्ध्या समय उनके प्रवचन का कार्यक्रम था। घर वालों के विरोध करने पर भी मैं अपनी हठवादिता की साकार मूर्ति रत्ना, सिनेमा हॉल में पहुँच ही गई। खेल समाप्त होने पर दस बजे घर पहुँची तो सन्न हो गई। श्री स्वामीजी उस समय तक सोये नहीं थे और आरामकुर्सी डालकर बाहर ही बैठे हुए थे। मेरे पाँवों में मानों पत्थर ही बन्ध गए। न अन्दर ही जा सकती थी और न बाहर ही खड़े रहने का साहस मिल रहा था। रंगे हाथों जो पकड़ी गई थी। दबे पाँव अन्दर प्रवेश कर ही रही थी कि श्री स्वामीजी ने पुकारा, 'रतन् यहाँ आओ। कहाँ गई थी?'

अवाक् मुख से अकस्मात् सत्य छूट पड़ा, 'जी, पिक्चर।'

'कौन-सी।'

मैंने उत्तर दिया, 'हम पंछी एक डाल के।'

श्री स्वामीजी ने बैठने का संकेत किया। मैं समझ गई कि अब तो मेरे ऊपर मखमली (जूता) बरसने वाली है। मजबूरी बैठना पड़ा।

वे बोले, 'अरे, पंछी तो सभी एक डाल के हैं, पर सभी अलग-अलग शाखा पर बैठे हैं। हमारी शाखा में मीठे फल लगे हैं। कोई बाधा नहीं। बड़ा सरल रास्ता है और रास्ते में फूल बिछे हैं। न हमें ऑफिस जाने की चिन्ता है और न दालरोटी की। और तुम्हारी शाखा में जो फल लगे हैं वे कैसे हैं जानती हो? ऊपर से सुनहले, मोहक! पर भीतर से बड़े कड़ुए! तुम्हारी शाखा में सिर्फ काँटे ही काँटे तो हैं?'

मेरी इच्छा लेक्चर पीने की कतई नहीं थी। मन में हल्की-सी क्रोध की लहर भी उठी, 'बड़े सनकी हैं, कल तो कहते थे कि संन्यास-पथ पर चलना नंगी तलवार पर चलना है और आज एकदम उल्टी ही हाँक रहे हैं।' पर प्रकट में कुछ बोली नहीं। कुछ देर इधर-उधर की गप्प चली। मैंने भी मन से गप्प में भाग लिया। थोड़ी देर में उन्होंने कहा–

'अच्छा बोलो तो रत्ना, यदि तुम्हें बहुत दुर्गन्ध वाली जगह पर ले जाया जाय और कोई ऐसा इन्जेक्शन दे दिया जाय कि तुम्हें दुर्गन्ध का पता न चले तो क्या होगा?'

मैं उनकी अज्ञानता पर मुस्कुरा कर बोली, 'अरे, आप नहीं जानते! प्रत्यक्ष में तो जरूर कुछ नहीं होगा पर बाद में उस दुर्गन्ध का असर अवश्य रंग दिखाएगा।'

वे गंभीर होकर बोले, 'रतन, तुम आगे साइकोलॉजी में पढ़ोगी कि मन तीन हैं–चेतन, अवचेतन, अचेतन। मन हमेशा पहले बुरी बातों को ग्रहण करता है। हमें यह पता नहीं चलता कि वे चीजें कब अचेतन मन में इकट्ठी हो गयीं, क्योंकि हमें चेतना का इन्जेक्शन लगा हुआ है।'

'मैं यह नहीं कहता कि तुम सिनेमा बिल्कुल मत देखो। देखो, किन्तु उसकी मात्रा कम कर दो। एक डॉक्टर ने एक शराबी को सलाह दी–तुम रोज शराब पियो, लेकिन पहले दिन केवल एक प्याला पीकर शराब की बोतल की खाली जगह में पानी भर कर रख लो। दूसरे दिन पुन: उसी बोतल से एक प्याला पीकर सादा जल भर दो। तीसरे दिन भी ऐसा ही करो। रोगी

ने इसी प्रकार किया। और एक दिन ऐसा भी आया जब कि बोतल में शराब बिल्कुल न रही, पानी ही पानी रहा, और शराबी को शराब से चिढ़ हो गई। इसी प्रकार एक दिन तुम्हारी भी आदत हो जाएगी कि सिनेमा देखने का मन भी नहीं करेगा। चलने को तो टट्टू भी चलता है, पर सौ योजन चल कर भी वह टट्टू ही बना रहेगा। पर इन्सान ही तो ऐसा है जो सौ योजन चलने पर या तो शैतान हो जाता है या फिर भगवान। वह मौत भी क्या कि समुन्दर की एक लहर धीरे-से उठी और तट को छूकर पुनः समुद्र में उसी तरह विलीन हो गई मानो कुछ हुआ ही न हो।'

'क्या तुम नहीं चाहती कि जीवन के उस पार जाने के बाद भी दुनिया तुम्हारी याद में फूल चढ़ाए और मजार पर मेला लगे और तुम्हारा नाम इतिहास के पन्नों में खुद जाए! दुनिया के बाजार में अच्छाई-बुराई, दोनों बिकती हैं। तुम जो चाहे खरीदो। लेकिन जान लो, इन्सान जब अपने हाथों दर्द का सौदा करता है तब उसे आँसू खारे नहीं मीठे लगते हैं। काँटों से उलझ कर ही तो फूल तोड़ा जाता है और जब फूल कुचल जाता है तभी इत्र बनता है। मन को वह फूल बनाओ जो कि मायावी रूप और रंग को कुचल कर इत्र बन जाये। छोटी-सी जिन्दगी है, लेकिन चाहो तो बड़ा नाम कमा सकते हो। आदमी जन्म से ही गाँधी और बुद्ध बनकर पैदा नहीं होता।'

श्री स्वामीजी जब चुप हुए तो मेरी तन्द्रा टूटी। श्री स्वामीजी की वाणी में क्या जादू है कि सुनने वाले के अन्तस्तल को छूकर ही रहती है। सीधे-सादे सरल शब्द इतने प्रभावोत्पादक होते हैं कि जीवन की धारा ही बदल जाती है। पारस के बारे में सुना तो बहुत था, पर देखने को यह एक ही मिला। जो भी श्री स्वामीजी के सम्पर्क में आया वह ऐसा बदला कि बदल ही गया। क्या देखा था कभी आपने ऐसी पारस मणि को जो मन की पूरी की पूरी चिन्तन पद्धति को ही बदल डाले!

पारस परस कुधातु सुहाई।

स्वामीजी के ये शब्द मेरी स्मृति-मंजूषा में सुरक्षित हैं। जीवन में जब भी प्रकाश की कमी पाती हूँ तो इन मणियों से प्रकाश और प्रेरणा लेती हूँ, ये शब्द ही मेरी प्रेरणा हैं।

–श्रीमती रत्ना ब्यौहार, रायपुर

एक महायोगी का महाप्रयाण

कहते हैं, 'लायी हयात आयी कज़ा ले चली चले, अपनी खुशी न आये न अपनी खुशी चले।' आम जनों के लिए यह सत्य हो सकता है, लेकिन महान् आत्माएँ जन-कल्याणार्थ स्वेच्छा या भगवद्कृपा से इस पृथ्वी पर पधारती हैं और अपने नियत कृत्यों का समापन कर स्वेच्छा से प्रयाण कर जाती हैं। परमपूज्य परमहंस स्वामी सत्यानंद सरस्वती जी इसी उच्चतम कोटि के दिव्य महायोगी थे, जिनका पदार्पण इस पृथ्वी पर सन् 1923 में हुआ और 5 दिसम्बर, सन् 2009 की मध्य रात्रि के अत्यंत पवित्र 'अजय मुहूर्त' में महाप्रयाण हुआ।

अपने गुरु स्वामी शिवानन्द जी की सेवा में बारह वर्षों तक कठोर तप, साधना और श्रम से ऊर्जावान् हुए इस तपस्वी ने योग को दुनिया के कोने-कोने तक प्रचारित, प्रसारित और प्रतिस्थापित किया, जो उन्हीं के शब्दों में 'भारतीय इतिहास के लगभग हजार साल के काले अंतराल में हिमालय की कंदराओं में सिमट चुका था।' आज तो गली-गली में योग की शिक्षा देने वाले गुरुओं की भरमार है, लेकिन पचास के दशक में योग को साधु-संतों, महात्माओं या फिर गृह-त्यागियों की तपस्या मान आम लोग उस मार्ग से परहेज़ करते थे। यह परमहंस जी की अदम्य ऊर्जा, अपरिमेय इच्छाशक्ति और लोक-कल्याण की अति-प्रबल भावना थी, जिसके परिणामस्वरूप आज योग को सारे विश्व ने एक 'जीवनशैली' के रूप में स्वीकार किया है।

यह भारत और उससे अधिक बिहार का महान् गौरव ही कहा जायेगा कि परमहंस जी ने पतंजलि मुनि के अष्टांग योग को सरल बनाकर सारे विश्व को योगमय करने हेतु अपना केन्द्र मुंगेर में स्थापित किया। आदिकाल के 'कर्ण चौरा' पर विश्व-विख्यात 'गंगा दर्शन' आज योग अभिलाषियों का मार्गदर्शक केन्द्र बन चुका है। साधना, उपलब्धि, समर्पण और त्याग का जो अद्भुत समन्वय इस महान् योगी में था, वह विरले ही द्रष्टव्य है। गुरु-आश्रम में कठोर साधना, सारे विश्व-भ्रमण के दौरान विभिन्न संस्कृतियों का अध्ययन और समग्र मानवता की आवश्यकता के अनुरूप भारत की अति-प्राचीन योग संस्कृति को सरल और उपयोगी बनाकर जन-जन तक उसे पहुँचाकर उत्कट त्याग की भावना से प्रेरित हो उन्होंने मुंगेर को भी त्याग दिया और फिर कभी लौटकर नहीं आये।

कल्पना कीजिये कि करोड़ों-अरबों की आश्रम सम्पदा, जिसके लिये प्रतिवर्ष सैकड़ों कथित संत संघर्षरत रहते हैं, उसको वृक्ष से प्राकृतिक रूप

से टूटकर अलग होने वाले पत्ते की भाँति परमहंस जी ने बिना किसी दिखावे के त्याग दिया। और फिर उनके जीवन का एक नया अध्याय शुरू हुआ, जो और भी अधिक विस्मयकारी प्रमाणित हुआ। झारखंड के सुदूर ग्रामीण क्षेत्र रिखिया में उन्होंने अपना प्रवास बनाया, जहाँ उनके लिये और उस इलाके के अति-गरीब, पिछड़े एवं उपेक्षित निवासियों के लिये कुछ भी साधन उपलब्ध नहीं था।

सन् 1989 से 2009 के बीस वर्षों के अपने प्रवास में उन्होंने एक ग्राम रिखिया से प्रारम्भ कर पचास से अधिक गाँवों के गरीबों और उपेक्षितों की जीवनधारा बदल डाली। कोई कल्पना नहीं कर सकता कि जहाँ एक शाम का भोजन आम लोगों को नसीब नहीं होता था, वहीं उनके बच्चे-बच्चियाँ आज अंग्रेज़ी बोलने एवं कम्प्यूटर चलाने में पारंगत हैं और ऊँचे घरानों के 'कुमार-कुमारियों' के साथ प्रतिस्पर्धा कर रहे हैं। उनके माता-पिता, भाई-बहन, जो इस दौड़ में काफी पीछे छूट चुके थे, उनकी आर्थिक स्थिति में भी बहुत सुधार हुआ है। जो जिस योग्य थे, उन्हें वही रोज़गार, व्यवसाय, कृषी योग्य सुविधायें देकर, उन्हीं के कार्यस्थल पर उनको नियोजित कराकर अपने पैरों पर उन्हें खड़ा कर स्वावलम्बी बना दिया गया।

श्री स्वामीजी ने प्रतिवर्ष आयोजित होने वाले सीता-कल्याणम् एवं शतचण्डी महायज्ञ में एक बार कहा था कि यदि उनकी तरह भारत के सकल संन्यासी, महात्मा और साधु भारत का एक-एक ग्राम भी अंगीकृत कर लें तो दस वर्षों में भारत में कायाकल्प लाया जा सकता है और वह भी बिना अपनी संस्कृति का त्याग किये।

श्री स्वामीजी के बारे में कहने को तो बहुत कुछ है, पर उतने शब्द कहाँ हैं जो अपनी भावना को व्यक्त कर सकूँ? अंत में यही कहा जा सकता है–

हजारों साल नरगिस अपनी बेनूरी पर रोती है ।
बड़ी मुश्किल से होता है चमन में दीदावर पैदा ।।

परमहंस जी का स्वेच्छा से पारगमन जो रिक्तियाँ छोड़ गया है, उसकी भरपाई असम्भव है।

–शशि भूषण वर्मा, संयुक्त सचिव (सेवा निवृत्त), बिहार सरकार, पटना

ऐसे संत के चरणों में क्यों न झुकें हम!

एक आदमी एक जीवन में इतना कुछ कर सकता है, परमहंसजी की उपलब्धियाँ देख यकीन नहीं होता। राजपरिवार में पैदा हुए, फिर सब छोड़ दिया, फकीर बन गए। एक मित्र छुट्टी मना कर लौटे हैं इजिप्ट, जॉर्डन, वगैरह से। पिरामिड, ममी, डेड-सी जैसी चीजें देख कर। प्रकृति के विविध रहस्यों-रूपों से स्तब्ध। कई हजार वर्षों पुराने रहस्य-तकनीक देख कर विस्मित। पर जब से रिखिया (देवघर) से मैं लौटा, जीवन रहस्य देख कर निरुत्तर हूँ। बनारस के विश्वविद्यालय प्रकाशन व अनुराग प्रकाशन से छपी कुछ पुस्तकें पहले पढ़ी थीं।

विश्वनाथ मुखर्जी की भारत के महान् योगी (8-10 खण्डों में), डॉ. भगवती प्रसाद सिंह की गोपीनाथ कविराज जी पर 'मनीषी की लोकयात्रा' और भारत के महान संतों-साधुओं-संन्यासियों-वैरागियों का जीवन वृत्त। पर कई अविश्वसनीय प्रसंगों को पढ़कर लगा कि क्या ऐसा सचमुच संभव है? द्वंद्व का भाव। अविश्वास का बोध।

पॉल ब्रंटन जैसे रेशनलिस्ट (बुद्धिवादी) की पुस्तकों (खासतौर से गुप्त भारत की खोज) को पढ़कर भी कई चीजों पर सहजता से यकीन नहीं होता। पर परमहंस सत्यानंद सरस्वती का समाधिस्थ होना, तो जीवन-संसार को भिन्न दृष्टि से देखने के लिए विवश करता है। तब से यह प्रसंग मन-मस्तिष्क पर छाया है कि जीवन, जो हम जानते व देखते हैं, उससे कितना भिन्न-अलग है?

वर्ष 2009 में, दो दिसंबर (पूर्णिमा) को भरी सभा में उन्होंने बताया कि अगले वर्ष यहाँ नहीं रहेंगे। यह संकेत, जो पा सकते थे, पा गये। आठ-दस माह पूर्व एक दिन उन्होंने स्वामी सत्संगी जी को बताया कि हमारी समाधि कहाँ रहेगी, किस मुद्रा में रहेगी, किस दिशा में चेहरा होगा। एक-एक बात बारीकी से बताई। इसके बाद फिर कन्या भोज के दिन न रहने की चर्चा की। पर सबसे बड़ा आश्चर्य, जिस दिन समाधि ली, रात दस बजे के बाद स्वामी सत्संगी जी को बुलाया। रात में वे अपनी कुटिया में अकेले रहते थे। लोग बताते थे कि रात को वे ध्यान-साधना में ही लीन रहते थे। स्वामी सत्संगी जी पहुँचीं। परमहंस जी पद्मासन में बैठे थे। कहा, अब जा रहा हूँ। शोक नहीं। हमारी मान्यता है कि आत्मा अमर है।

उनके चेहरे पर अद्भुत शांति और कांति थी। सत्संगी जी से कहा, बिल्कुल परेशान नहीं होना है। कुछ नहीं करना है। मौत जीवन का अभिन्न अंग है।

सरल-सहज। उन्होंने आगे कहा, मौत के पूर्व कामना है कि इन्हीं आँखों से विराट् का साक्षात्कार हो। स्वामी सत्संगी जी अंतिम दृश्य का उल्लेख करती हैं, उनके चेहरे पर अलौकिक और अपूर्व तेज था, जो विस्मृत नहीं होता। स्वामी जी ने जब शरीर छोड़ा, तब वे सिद्धासन मुद्रा में थे। उन्होंने बैठे-बैठे प्राणों को त्यागा। दृष्टि आसमान में। उनकी यह अंतिम तस्वीर समाचार पत्रों में छपी। इसी मुद्रा में उन्हें समाधि भी दी गयी। कई जगह विवरण पढ़ा था कि योगी इच्छा से शरीर भी छोड़ते हैं। गोपीनाथ कविराज और विश्वनाथ मुखर्जी की पुस्तकों में ऐसे योगियों की चर्चा है।

देर रात स्वामीजी ने शरीर त्यागा। स्वामी निरंजनानंद जी रात तीन बजे तक मुंगेर से रिखिया पहुंच चुके थे। स्वामीजी का इस तरह शरीर छोड़ना ही अद्भुत घटना है। जीवन का जो पक्ष हम नहीं जानते, उस पर एक रोशनी की तरह है।

श्री स्वामीजी का जीवन विशिष्ट रहा। मोटे तौर पर उनके जीवन में 20-20 वर्षों का चक्र रहा। घर में 20 वर्ष रहे। फिर 20 वर्षों तक ऋषिकेश में, स्वामी शिवानंद सरस्वती के साथ। कठोर तप, व्रत, संयम और श्रम। फिर मुंगेर में 20 वर्षों तक रहे। योग को विश्व के कोने-कोने में पहुँचाया। फिर 1989 में रिखिया पहुँचे। यहाँ भी 20 वर्ष रहे, दिसंबर 2009 तक। इसे वे जागृत जगह मानते थे। 2 दिसंबर, 2009 को गाँववालों से बहुत कुछ कहा। बड़े पैमाने पर बच्चे-बच्चियाँ थे। उनसे पूछा, तुम्हें साल में पाँच बार ड्रेस कौन देता है? किताबें कौन देता है? अंग्रेजी सीखने, कम्प्यूटर पढ़ने की व्यवस्था कौन करता है? फिर पूछा, तुम्हारा पिता कौन है? बच्चों ने कहा, 'आप!' वहाँ बच्चों के माँ-बाप और अभिभावक भी बैठे थे। फिर स्वामीजी ने अभिभावकों से कहा, 'घर में शराब पीते हो? औरत पर अत्याचार करते हो? बच्चों को पीटते हो? घर की लक्ष्मी को पीटते हो, पर उसे एक बाथरूम मुहैया नहीं करा सकते! यह सब बंद करो।'

आज रिखिया पंचायत के लगभग 60,000 परिवारों का आश्रम से रिश्ता है। हर परिवार की जरूरत पर आश्रम गौर करता है। कम्बल, जूता, बाल्टी, बरतन, कपड़े। शादी के बाद लड़कियों की विदाई, अपनी बेटी की तरह। साज-सामान के साथ। 2500 कन्या-बटुकों को आश्रम मदद करता है। देहात के बच्चे अंग्रेजी-कम्प्यूटर में पारंगत। उच्चारण अद्भुत ढंग से शुद्ध और सही। पिता रिक्शा चलाते हैं, ठेला लगाते हैं, बच्चे देश के श्रेष्ठ-महंगे स्कूलों के

बच्चों की तरह ज्ञान-संपन्न। पर उनसे अधिक संस्कारवान्। वृद्ध लोगों को महीने में एक बार भोजन पर निमंत्रण। वृद्धों को परमहंस जी 'फेलो ट्रेवलर्स' (साथी सहयात्री) पुकारते थे। नवरात्रि या शिवरात्रि जैसे विशिष्ट अवसरों पर भी वृद्ध आमंत्रित रहते थे।

यह सब आश्रम कहाँ से करता है? श्रद्धालुओं के सहयोग से। स्वामीजी की पुस्तकों की आमद से। कहीं कोई बड़ी राशि नहीं। जो आया सो गया। पर इन एक-एक चीजों का श्रेष्ठता से प्रबंध और अनुशासन बेमिसाल है। परमहंस जी का एक और प्रोजेक्ट था। बच्चों को शाम का भोजन मुहैया कराने का। विशालकाय किचेन बन कर तैयार है। कई हजार बच्चे एक साथ भोजन कर सकते हैं।

स्वामीजी की समाधि की सूचना पाकर 42 देशों से लोग आये। सब कुछ इतना अनुशासित, स्वच्छता-सौंदर्य से भरा-पूरा। जबरदस्त भीड़, पर एक अलौकिक शांति का माहौल। आश्रमवासियों के अनुसार परमहंस जी कहा करते थे कि दो पंख हैं, योग और सेवा के। योग केंद्र, मुंगेर। सेवा केंद्र, रिखिया। हर जगह लोग समर्पण के साथ अपने-अपने काम में डूबे हैं। क्या यही अनासक्ति योग का व्यावहारिक चेहरा है?

आश्रम की सादगी, नैतिक भव्यता और अनुशासन देख कर बार-बार सवाल उठा। परमहंस जी के पास क्या था? सम्पन्न परिवार में पैदा हुए। फिर सब छोड़कर फकीर बन गये। न सत्ता थी, न धन, न राज्य की कामना, न निजी इच्छा। एकांत साधना में रमे। घोर तप किया। पर जब समाधि ली, तो कम-से-कम पाँच-सात पंचायतों के किसी घर में चूल्हा नहीं जला। बयालीस देशों के लोग आये। पूरे देश से श्रद्धालु पधारे। श्रेष्ठ साधकों ने संदेश दिया, इतना बड़ा अब कोई दूसरा साधक नहीं है। समाधि के दिन से ही देश-विदेश से हजारों स्त्री-पुरुष उमड़े। अलग-अलग धर्मों के, भिन्न-भिन्न परिवेशों से। आश्रम की ओर खींचे हुए, बहते हुए, खोजते हुए, जो जन-प्रवाह देखा, वह अपने में एक अनुभव था। यह लोक ताकत है। आज ऐसी लोक आस्था और श्रद्धा कहाँ दिखाई पड़ती है? जिनके पास सत्ता, वैभव है, लोग उन्हीं की परिक्रमा करते हैं। पर सत्ता-पैसा जाते ही कोई पूछनहारा नहीं। मन पूछता है, स्वामीजी के पास क्या लौकिक चीजें थीं? वे तो कभी-कभार ही मिलते थे? तन पर मामूली वस्त्र, एकांत साधना, यही न! पर यहाँ यह जन-सैलाब क्यों? क्योंकि संतों का जीवन ही दूसरों के लिए होता है। उनका जीवन तो और

विशिष्ट रहा। वे देवत्व की श्रेणी में पहुँचे। जीते जी किंवदंती बन कर। चोला त्याग कर। समाधि लेकर। योग-सेवा का रास्ता दिखा कर। प्रचार-संसार से दूर रह कर।

एक आदमी एक जीवन में इतना कुछ कर सकता है? परमहंस जी की उपलब्धियों को देखकर यकीन नहीं होता। पर वे तो परमहंस थे। ऋषि थे। इतनी पुस्तकें, इतनी संस्थाएँ, दुनिया में योग का प्रचार। सेवा का काम। फिर सब छोड़-छाड़ दिया। एक चीज भी अपने पास नहीं। आश्रम के लोगों को लगता था कि कभी यहाँ से भी यह सब छोड़-छाड़ कर चल न दें। यह विरक्ति, वैराग्य, जीवन की अंतिम घड़ी-क्षण-पहर तक। संतों के संदर्भ में सुना था, परमारथ के कारण, साधुन धरा शरीर! परमार्थ के लिए ही परमहंस सत्यानंद जी ने जीवन जीया। उनके न रहने पर जिस तरह हर धर्म, समुदाय, राज्य और देश के लोगों ने उन्हें स्मरण किया, यह उदार भारत का चेहरा है। उनकी हर बातचीत (जिसे मैंने खुद सुना) का सार यही था, भारत कैसे जगतगुरु बने, समृद्ध हो, आधुनिक हो, नैतिक हो, सामाजिक बुराइयों से परे हो। उनकी समाधि का संदेश भी यही है।

–श्री हरिवंश, प्रधान सम्पादक, प्रभात-खबर, राँची

मेरे गुरुदेव, मेरे जीवनदाता

जून, 1979 में स्वामी सत्यानन्द जी का बी.एच.ई.एल. भोपाल में कार्यक्रम था। मैं उन दिनों बैतूल जिले के पाथाखेड़ा क्षेत्र (वेस्टर्न कोलफील्ड्स का क्षेत्र) में पदस्थ था। पाथाखेड़ा क्षेत्र के तत्कालीन महाप्रबन्धक श्री एम.एल. दूगड़ (स्वामीजी के पुराने शिष्य) ने मुझे भोपाल चलने हेतु कहा। उस वक्त स्वामीजी के बारे में मुझे कोई जानकारी नहीं थी, लेकिन महाप्रबन्धक के साथ जाने का अवसर खोना नहीं चाहता था। भोपाल में बी.एच.ई.एल. के सभागार में स्वामीजी का तेजस्वी स्वरूप और प्रभावी वक्तव्य देखने-सुनने को मिला। दोपहर के प्रसाद के बाद वापस लौटने का कार्यक्रम था, किन्तु वहीं पता चला कि अपराह्न 3 बजे मन्त्र दीक्षा होगी और इच्छुक लोग वहाँ उपस्थित रहें। मैंने भी निवेदन किया कि मुझे मन्त्र दीक्षा लेनी है, जिसे उन्होंने स्वीकार किया और इस तरह मेरी मन्त्र दीक्षा सम्पन्न हुई। इसके बाद जब भी अवसर मिलता, स्वामीजी के दर्शन हेतु उनके कार्यक्रमों में पहुँचने का प्रयास करता। साथ ही

स्वामीजी की पुस्तकों का अध्ययन और गुरु मन्त्र की एक माला का नियमित जप चलता रहा।

यहाँ अपने जीवन की तीन मुख्य परिस्थितियों का उल्लेख कर रहा हूँ, जिन्हें मैं घटनाएँ कहूँ या उपलब्धियाँ, मुझे खुद नहीं मालूम—

1. 5 फरवरी, सन् 1996 की शाम को 6 बजे मुझ पर प्राणघातक हमला हुआ। उन दिनों मैं विश्रामपुर क्षेत्र (एस.ई.सी.एल. का एक क्षेत्र) में महाप्रबन्धक के पद पर पदस्थ था। दूसरे दिन होश में आने के बाद मुझे जानकारी मिली कि पेट पर सात और जाँघ एवं हाथ पर एक-एक वार हुए थे। मुझे तो बस इतना याद है कि जब किरपाण से वार हो रहे थे तब गुरुमन्त्र अनायास ही मुँह से निकल पड़ा और स्वामीजी की छवि आँखों में आ गई। इसके बाद मैं कब बेहोश हो गया, मुझे नहीं पता। अगले दिन जब होश आया तो पता चला कि छः घण्टे ऑपरेशन हुआ, छः बोतल खून चढ़ा, छोटी आँत का लगभग एक मीटर का हिस्सा और लिवर का कुछ भाग काटा गया है। उसी समय पुलिस एवं न्यायिक अधिकारी भी मेरा बयान लेने हेतु उपस्थित थे। मृत्यु को छूकर लौटने की अनुभूति और किस तरह अन्त समय में एक फिल्मरील-सी चिदाकाश पर दिखाई देती है, वह पुनर्जन्म का सा अनुभव आज भी आँखों के सामने आ जाता है।

इसके बाद प्रोन्नति पर सन् 1998 में सी.एम.पी.डी.आई. में डायरेक्टर और सन् 1999 में ई.सी.एल. में डायरेक्टर के पद का कार्यभार मिला। ई.सी.एल. दिशेरगढ़ (पश्चिम बंगाल) से रिखिया मात्र तीन घण्टे का सफर है और उस समय स्वामीजी हर रविवार सुबह डेढ़ से दो घण्टे का सत्संग करते थे। परिवार के साथ शनिवार रात्रि रिखिया पहुँचकर रविवार सुबह सत्संग का लाभ करीब दो वर्षों तक पाने का सौभाग्य मिला।

2. एक प्रश्न अन्तर्पटल पर उभरने लगा कि आखिर मेरा पुनर्जन्म स्वामीजी ने क्यों किया। सेवानिवृत्ति के बाद अपने जन्म स्थान, भीलवाड़ा आकर रहने की इच्छा तो पहले ही थी, पर भीलवाड़ा में एक 'मिनी-मुंगेर' बनाने का बीज निश्चित रूप से स्वामीजी ने ही रखा। सन् 2001 में जब एक सत्संग के बाद स्वामीजी से निवेदन किया कि भीलवाड़ा भी योग प्रशिक्षण का केन्द्र बने तब स्वामीजी ने स्वामी निरंजन से बात करने को कहा। देखते-देखते किस तरह स्वामीजी ने इतने बड़े केन्द्र का निर्माण कुछ लोगों को निमित्त बनाकर करवा दिया, इसका उत्तर मैं आज तक नहीं खोज पाया हूँ।

3. सन् 2008 में इन्दौर में गुरुपूर्णिमा के दिन दोपहर का प्रसाद लेते वक्त मेरी पत्नी, श्रीमती मंजुला चेचानी खाना नहीं खा पा रही थी और थोड़ा बहुत जो खा पायी थी, वह भी बाहर निकल गया। गले में कुछ समस्या तथा खाना गटकने की शिकायत पिछले कुछ दिनों से थी और छोटा-मोटा इलाज भी चल रहा था। भीलवाड़ा लौटते ही जाँच करवाने पर पता चला कि फूड-पाइप का कैन्सर है और स्टेज III पार कर रहा है। राजीव गाँधी कैन्सर हॉस्पिटल, दिल्ली और भगवान महावीर कैन्सर हॉस्पिटल, जयपुर में किमोथेरेपी के छः दौर हुए, तब जाकर बीमारी पर कुछ नियन्त्रण हुआ। जुलाई, 2009 में बॉम्बे हॉस्पिटल, मुंबई में ऑपरेशन कर फूड-पाइप और पेट के कुछ हिस्से को काटकर निकाला गया तथा भगवान महावीर कैन्सर हॉस्पिटल, जयपुर में पैंतालीस दिनों तक रेडियेशन किया गया। बिहार योग विद्यालय द्वारा कैंसर पर किये गये अनुसन्धान पर आधारित आसन-प्राणायाम का मार्गदर्शन भी वहाँ से प्राप्त हुआ। 14 फरवरी, 2011 के चेकअप में बॉम्बे हॉस्पिटल के डॉ. पी.बी. देसाई ने बीमारी को नियंत्रण में बताते हुए कहा, 'आप लोगों पर भगवान ने बहुत बड़ी कृपा की है।'

उपर्युक्त घटनाओं के अलावा जीवन में ऐसी कई परिस्थितियाँ आईं, जहाँ स्वामीजी ने आत्मबल की परीक्षा ली और पास भी किया। उनके तीस वर्षों के सान्निध्य ने जीवन की सोच ही बदल दी। कौन कहता है कि स्वामीजी नहीं रहे? आज भी आँखें मूँदकर ध्यान करने से स्वामीजी की उपस्थिति का अहसास किया जा सकता है। अब तो बस एक ही अभिलाषा है कि हर जन्म में स्वामीजी का सान्निध्य मिले, चाहे वह किसी भी रूप में हो। गुरु-शक्ति और गुरु-कृपा का अहसास कुछ जन्मों में नहीं हो सकता।

–रामकुमार चेचानी, भीलवाड़ा

श्री स्वामी सत्यानन्द जी–किसानों और ग्रामीणों के मसीहा

मैंने ब्रह्मलीन पूज्य गुरुवर स्वामी सत्यानन्द जी महाराज से पुराने शिवानन्द आश्रम में सन् 1978 की कृष्णाष्टमी के दिन मंत्र-दीक्षा ली थी। उसके पहले भी मैं बराबर आश्रम जाता था और उनसे मिलता-जुलता रहता था। प्रतिदिन सुबह-शाम सत्संग होता था, जिसमें श्री स्वामीजी शिवानन्द मठ के लॉन में बैठकर सत्संग किया करते थे।

बाद में जब गंगा दर्शन बन कर तैयार हो गया, तो सत्संग कार्यक्रम वहाँ शुरू हो गया। कुछ वर्षों के बाद श्री स्वामीजी ने गंगा दर्शन को एकाएक छोड़ दिया और कुछ समय के लिए परिव्राजक की तरह भ्रमण करते रहे। तत्पश्चात् वे रिखिया आकर रहने लगे। जब शिष्यगणों को पता चला कि श्री स्वामीजी रिखिया में रह रहे हैं, तो वे उनके दर्शन के लिये रिखिया जाने लगे।

उस समय रिखिया जाने के लिये कोई साधन नहीं था। शिवगंगा से रिखिया सात किलोमीटर दूर था, पैदल ही जाना पड़ता था। शिष्य लोग देवघर से पैदल चलकर उनके दर्शन करते थे और प्रतिदिन स्वामीजी के साथ सत्संग हुआ करता था।

कुछ समय बाद श्री स्वामीजी का आदेश हुआ कि रिखिया पंचायत में बीज वितरण का कार्यक्रम होगा। अत: इसके लिये बीज खरीदना है। मुझे रिखिया पंचायत के गाँवों का सर्वेक्षण कर यह प्रतिवेदन देने का आदेश मिला कि वहाँ कौन-कौन सी फसल होती है तथा कितनी जमीन में होती है। मैं सौभाग्यशाली था कि मुझे श्री स्वामीजी के सान्निध्य में रहकर रिखिया पंचायत में बीज सर्वेक्षण का दायित्व सौंपा गया।

रिखिया पंचायत में चौबीस दिन रह कर मैंने सभी गाँवों का सर्वेक्षण किया। मेरे साथ सहयोग के लिए नवाडीह के टेटू रमानी रहते थे। सिंचित और असिंचित जमीन का अलग-अलग ब्योरा दिया। सिंचाई नदी से होती है या कुँए से, इसका भी अलग-अलग ब्योरा दिया। अपने सभी ब्योरों को स्वामी सत्यसंगानन्द जी को भी दिखाया, जिसे देखकर वे बहुत प्रसन्न हुईं। इस प्रतिवेदन के आधार पर श्री स्वामीजी ने विभिन्न तरह के बीज खरीदवा कर मँगवाये और किसानों में वितरण करवाये।

उसी समय पूज्य स्वामी निरंजनानन्द जी महाराज ने मुंगेर आश्रम से एक अभियान चलाया—योग गाँव की ओर। इस अभियान के अन्तर्गत एक कर्म-संन्यासी एवं दो जिज्ञासु-संन्यासियों से युक्त दल बनाये गये और प्रशिक्षण के लिए सभी दलों को मुंगेर आश्रम बुलाया गया। मैं भी इस अभियान में भाग लेने गंगा दर्शन आया। चूँकि मैं रिखिया में रह रहा था, इसलिए मुझे रिखिया पंचायत ही भेजा गया। यह अभियान पन्द्रह दिनों के लिये था। प्रत्येक दल को एक सौ आठ रुपये देकर भेजा गया। हमें रिखिया ही प्रचार के लिये भेजा गया, क्योंकि उसके पहले 'हरा रिखिया, भरा रिखिया' का कार्यक्रम हुआ था।

स्वामीजी का आदेश था कि अगर गाँव वालों से भोजन नहीं मिला, तो भिक्षाटन करके भोजन का इन्तजाम कीजियेगा। वैसे तो गाँव वाले चन्दा करके भोजन करवाते थे, लेकिन एक दिन ऐसा हुआ कि भिक्षाटन भी करना पड़ा। भिक्षाटन में मिले अन्न को बेचकर चूड़ा-चीनी खरीदकर खाया।

उस समय रिखिया में गरीबी बहुत थी। अनेक परिवारों को दो वक्त का भरपेट भोजन भी नसीब नहीं होता था। एक गाँव में एक व्यक्ति ग्रामीणों द्वारा दिये गये अन्न के लिये जिद्द करने लगा कि आज आपका भोजन मैं बनाऊँगा। इसका कारण यह था कि हमें खिलाकर वह बचा हुआ भोजन सपरिवार भरपेट खा सके! रिखिया पंचायत की इस दयनीय स्थिति की वजह से ही शायद श्री स्वामीजी वहाँ वस्त्र, बर्त्तन, गाय, रिक्शा, ठेला आदि वितरण करते रहे। गाँव की लड़कियों की शादी भी करवा देते और शृंगार आदि देकर विदा करते। वहाँ के सब लड़के-लड़कियों की शिक्षा-दीक्षा में भी सहायता करते।

योग परिचय सत्र में गाँव में सुबह के समय आसन-प्राणायाम कराते और दोपहर में योग निद्रा कराते थे। शाम में गाँवों के लोग सार्वजनिक स्थान पर जमा होते थे, जहाँ भजन-कीर्तन किया जाता था और लोगों को योग के सम्बन्ध में समझाया जाता था। ग्रामीण लोग भी अपने कुछ मनपसन्द कीर्तन-भजन करते थे। संगीत वाद्यों का भी गाँव से इन्तजाम हो जाता था। रिखिया क्षेत्र के गाँवों में योग का प्रचार-प्रसार करके हम लोग मुंगेर आश्रम लौट आये।

आज भी मेरे हृदय में ऐसा प्रतीत होता है कि परम गुरुदेव स्वामीजी हम से दूर नहीं हुए हैं, बल्कि सूक्ष्म रूप से हमारा मार्गदर्शन कर रहे हैं।

–संन्यासी कर्मप्रेमानन्द, बरियारपुर

सम्राट् संन्यासी–श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

6 दिसम्बर, 2009 की सुबह लगभग चार बजे अचानक नींद खुल गयी और पहला विचार आया श्री स्वामीजी का। उनके विचार के साथ और भी विचार जुड़ते गये। दो दिसम्बर को सम्पन्न हुई योग पूर्णिमा के उपलक्ष्य में हुए सारे कार्यक्रम और वहाँ के दृश्य मेरे मानस पटल पर फास्ट-फॉरवर्ड तस्वीरों की तरह तैरने लगे।

लम्बे समय से श्री स्वामीजी के साक्षात् दर्शनों का सौभाग्य तो प्राप्त होता ही रहा था, उनके सूक्ष्म सान्निध्य के सुअवसर भी उपलब्ध होते रहे हैं। मैं

अधिकतर अकेले ही आश्रम जाती रही हूँ। जब भी मैं उनके समक्ष जाती, वे पूछते, 'किसके साथ आई हो?' मेरा संक्षिप्त उत्तर होता, 'अकेले।' इस पर उनकी प्रतिक्रिया होती, 'अच्छा है, बहुत अच्छा है।' उनके इन शब्दों में आशीष और कृपा की ध्वनि होती।

मेरे मन ने अब तक किसी व्यक्ति में समग्रत: ऐसे गुण या विशेषताएँ नहीं देखीं जिनके आधार पर उसे आदर्श माना जा सके। लेकिन पता नहीं क्यों, उषा काल की उस बेला में यह विचार आया कि श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती, जिन्हें हम आदर और स्नेह के साथ श्री स्वामीजी कहते हैं, जैसे व्यक्ति ही मेरे आदर्श पुरुष हो सकते हैं। जितना मैं उनके विषय में सोचती जा रही थी, उतना ही उनके व्यक्तित्व से अभिभूत होती चली जा रही थी। ऐसा लग रहा था मानो मैं अनन्त आकाश को निहार रही होऊँ और उनके व्यक्तित्व की विलक्षण विशेषताएँ अंतरिक्ष में असंख्य ज्योति पुँजों की भाँति जगमगा रही हों। ऐसी अनुभूति पहले कभी नहीं हुई थी।

भारतवर्ष की प्राचीन संस्कृति के अभिन्न अंग एवं जीवन के आधार, योग को श्री स्वामीजी ने आधुनिक युग के अनुरूप विकसित किया। उनके द्वारा प्रतिपादित योग पद्धति सारे संसार में 'सत्यानन्द योग' के नाम से प्रचलित हुई है। यह अतिशयोक्ति नहीं होगी कि दृढ़ संकल्प, सुविचारित उद्यम और अपने क्रांतिकारी विचारों से उन्होंने योग को विश्व के कोने-कोने तक पहुँचा कर अपने गुरु के मिशन, योग के व्यापक प्रचार को सफलता के उच्चतम शिखर तक पहुँचा दिया। इसके साथ-साथ 'सेवा-प्रेम-दान' के गुरु-प्रदत्त व्रत उनकी तपस्या और साधना के अभिन्न अंग बन गये।

श्री स्वामीजी परम ज्ञानी, महान् संत और सिद्ध योगी तो थे ही, वे करुणा के सागर भी थे। बच्चों के प्रति उनके अन्दर सहज स्नेह का निर्झर प्रवाहित होता रहता था। रिखिया आश्रम में कन्याओं एवं बटुकों के लिए तरह-तरह के जो कार्यक्रम चल रहे हैं, वे इसी के प्रमाण हैं। कन्याओं के लिए उन्होंने जो किया उससे सारा संसार अवगत है। उनका कहना था कि बालिकाओं का समुचित ढंग से पालन-पोषण और संरक्षण होना चाहिए, क्योंकि उन्हीं पर परिवार का भविष्य निर्भर है। उनकी करुणा केवल बच्चों तक सीमित नहीं थी। गरीबों और जरूरतमंदों को विपन्न स्थिति से बाहर निकालने के लिए उन्होंने अनेक उपाय किये। राजसूय यज्ञ का विषद् संकल्प इसी दिशा में किया गया उनका एक चिरस्मरणीय महत् सत्कार्य था।

श्री स्वामीजी के सम्पूर्ण जीवन एवं उनकी कार्यशैली का आकलन करने पर एक पराक्रमी, प्रजापालक और कोमल-हृदय सम्राट् की छवि उभरती है। श्री स्वामीजी के विराट् व्यक्तित्व का दर्शन मैं मानसदृश्यों में कर ही रही थी कि सुबह लगभग साढ़े पाँच बजे फोन की घण्टी बजी। एक गुरुभाई ने उद्वेलित स्वर में सूचित किया, 'श्री स्वामीजी ने कल रात महासमाधि ले ली।'

तब मेरी समझ में आया कि वे सारे दृश्य-विचार क्यों इस तरह मेरी चेतना में उभर कर मुझे अभिभूत कर रहे थे। श्री स्वामीजी ने अपने बन्धनयुक्त शरीर से मुक्त होकर अनन्त आकाश की व्यापकता धारण कर ली थी। और, उस निस्सीम अंतरिक्ष में विचरण करने की अनुमति देकर उन्होंने मुझे अनुगृहीत कर दिया था।

–संन्यासी आनन्दरत्नम्, पटना

नारी जाति के पथ-प्रदर्शक बाबा सत्यानन्द

सन्त हृदय नवनीत समाना। कहा कबिन्ह परि कहै न जाना।
निज परिताप द्रवइ नवनीता। पर दुःख द्रवहिं संत सुपुनीता॥

परमहंस सत्यानन्द जी कहा करते थे कि स्त्री और पुरुष मनुष्य-जीवन रूपी गाड़ी के दो चक्के हैं। जब तक दोनों चक्के सन्तुलित नहीं रहेंगे तब तक गाड़ी ठीक से नहीं चलेगी। और इस गाड़ी के एक चक्के की उपेक्षा करना समाज को पंगु बनाना है।

समाज में सबसे ज्यादा उपेक्षित विधवायें होती हैं। रिखिया में महिलाओं के इस वर्ग के उत्थान के लिए बाबा ने इन सबको सिलाई-कढ़ाई, रामायण पाठ और महामंत्र का जप सिखाया। जप के प्रत्येक घंटे की पगार भी देते थे ताकि रुपये से उनका पेट भरे और मंत्र से परलोक सुधरे। उन्होंने विधवाओं को रंगीन वस्त्र, चूड़ी, जेवर, सब दिया।

उन्होंने गाँव-गाँव में मुझे भेजकर रामायण की शिक्षा दिलवाने का कार्य किया। ग्रामीण महिलाओं का हृदय निर्मल और श्रद्धा से परिपूर्ण होता है। और ऊपर से बाबा की कृपा। बाबा कहते थे कि गाँव की महिलाओं में भरपूर सूझ-बूझ और सोच-समझ होती है। उनका उत्साह और मनोबल बढ़ाने का बाबा ने भरसक प्रयास किया। शुरू-शुरू में तो सत्संग वगैरह में ये ग्रामीण महिलाएँ

आगे बैठना नहीं चाहती थीं, पर बाबा कहते थे कि ये मेरे वी.आई.पी. हैं, आगे बिठाओ इन्हें। आज कितनी स्मार्ट बन गयीं हैं सब!

मनु महाराज की उक्ति को स्वामी सत्यानन्द जी ने चरितार्थ किया, *'यत्र नार्यास्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:।'* सच में आज सारे देवी-देवता रूप बदल-बदल कर रिखियाधाम में कन्या-बटुकों के रूप में पधारे हैं। ये बच्चे सौन्दर्य-लहरी, रामचरितमानस, भगवद्गीता जैसे ग्रन्थों का पाठ कितनी सरलता और सुगमता से कर लेते हैं। नन्हीं-नन्हीं बच्चियाँ पारम्परिक रीति से श्रीयंत्र का अभिषेक सम्पन्न करती हैं, जिसकी जानकारी अच्छे-अच्छे पण्डितों को नहीं होती। सुना है कि सीता-रामजी के विवाह में लक्ष्मी, सरस्वती आदि देवियाँ स्वयं पधारीं थीं; जब इन कन्याओं को नृत्य करते देखते हैं तो लगता है ये साक्षात् देवियाँ स्वर्ग से सारे नृत्यों को धराधाम पर उतार लायीं हैं।

बाबा पहले गाँव की औरतों को गौ-पालन की शिक्षा भी दिया करते थे। सीता कल्याणम् के समय सीता जी की सहेली भी गाँव की महिलाओं को ही बनाया जाता था। और उन्हें गीत गाने के लिए प्रेरित किया जाता था। सीता-राम विवाह में वे बहुत सुंदर डांडिया नृत्य करतीं थीं।

परमहंस बाबा ने महिला वर्ग को आगे लाने के लिए जो सबसे बड़ा बीड़ा उठाया वह यह कि महिलाओं को दशनामी संन्यास परम्परा में दीक्षित करने लगे। यह परिकल्पना स्वामी शिवानन्द जी महाराज की थी, पर साकार रूप हमारे परमहंस बाबा ने दिया। एक सिद्ध महात्मा नारी-पुरुष में भेद नहीं करते, क्योंकि आत्मा तो सबकी समान है। शरीर तो यंत्र है, चाहे नारी का हो चाहे पुरुष का, उन्होंने उसमें भेद नहीं किया। उनकी पहली शिष्या माता धर्मशक्ति बनीं और उनको भी उन्होंने सन् 1968 में दशनामी परम्परा में पूर्ण संन्यास की दीक्षा दी। स्वामी सत्यसंगानन्द जी को रिखियापीठ की प्रथम पीठाधीश्वरी के रूप में प्रतिष्ठित कर उन्होंने महिलाओं के समक्ष एक और आदर्श प्रस्तुत किया। स्वामी सत्यसंगानन्द जी भी अब महिलाओं को आगे बढ़ाने का बीड़ा उठा चुकी हैं।

मैं जब आध्यात्मिक क्षेत्र में नासमझ थी तब मुझे रिखिया में एक बार ऐसा लगा कि इतने बड़े सन्त होकर बाबा औरतों को क्यों आश्रम में रखते हैं। मन में यह भाव उठा ही था कि गुप्त रूप से सजा भी मुझे मिल गयी। मेरे चेहरे पर जला जैसा दाग बड़ा हो गया। तभी मैं समझ गयी कि सिद्ध पुरुष पर शक करने की यह सजा है।

आज मैं जो कुछ रामायण के क्षेत्र में कर पा रही हूँ वह सब बाबा का ही आशीर्वाद है। वैसे मेरे अन्दर बीज था, जो मुझे विरासत में मिला था, लेकिन इस बीज को अंकुरित, पल्लवित, पुष्पित और फलित बाबा ने ही किया।

आज कृष्णा दीदी रामायणी भी यही बताती हैं कि मैं जो भी हूँ, परमहंस बाबा की ही देन है। 'मानस कोकिला' की उपाधि भी बाबा का ही प्रसाद है। एक बार सन् 1974-75 के आस-पास पुराने आश्रम में वे कथा कह रही थीं। इसी बीच में उनका पुत्र, मानस, जो बहुत ही छोटा था, रोने लगा। आवाज सुनकर कृष्णा दीदी चुप हो गयीं। बाबा एक माँ के दिल को भाँप गये। उन्होंने बीच में ही कीर्तन शुरू कर दिया और कृष्णा दीदी को बच्चा सम्भालने को भेज दिया। थोड़ी देर बाद पुनः आकर कृष्णा दीदी ने कथा जारी की।

नारी जाति के उत्थान में बाबा की देन अद्भुत है। हमारे परमहंस बाबा सिद्ध योगी होने के साथ-साथ पूर्ण साधु थे। रामचरित मानस की इस उक्ति को उन्होंने चरितार्थ किया–

साधु चरित सुभ चरित कपासू। निरस बिसद गुनमय फल जासू ॥
जो सहि दुख परछिद्र दुरावा। बंदनीय जेंहि जग जस पावा ॥

नारी जगत् के मसीहा रूपी बाबा को मैं बार-बार कोटि-कोटि नमन् करती हूँ, जिन्होंने समाज के इस उपेक्षित वर्ग को पूजनीय बनाया।

–संन्यासी मंत्रनिधि, मुंगेर

परमहंस जी की स्मृति में

रामचरित मानस में गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं– *करन चहऊँ रघुपति गुन गाहा। लघु मति मोरि चरित अवगाहा ॥* श्रीराम की भाँति ही परमहंसजी भी गुणों के सागर हैं, जिनके बारे में लिखना एक मन्द बुद्धि व्यक्ति के लिए बहुत कठिन है। ऐसा कोई विषय नहीं जिसका उन्हें गहन ज्ञान न हो। प्रत्येक विषय पर वे धाराप्रवाह बोल सकते थे। जब वे बोलते तब ऐसा लगता था मानो मन में उठे प्रत्येक प्रश्न का उत्तर दे रहे हों। जो भी उनके सत्संग में एक बार बैठ जाता, वह उठने का नाम ही नहीं लेता, चाहे कितना ही महत्त्वपूर्ण कार्य क्यों न हो।

परमहंसजी कहते हैं कि देश को सुधारने के लिये हमें बच्चों को सुधारना होगा, जो कल भारत के नागरिक बनेंगे। वही कार्य उन्होंने मुंगेर के बाल योग

मित्र मण्डल के बच्चों और रिखिया के कन्या-बटुकों के साथ किया। आज उनको जहाँ योगाभ्यास, कम्प्यूटर और अँग्रेजी भाषा की शिक्षा दी जा रही है वहीं दूसरी ओर हवन, कीर्त्तन, भजन, स्तोत्र पाठ, मंत्र और अभिषेक आदि भी सिखाया जा रहा है। जो संस्कार रिखिया या मुंगेर के बच्चों को मिल रहे हैं, वैसा और कहीं मिल पाना सम्भव नहीं है।

जिस तरह भवन निर्माण में भवन की नींव ही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण होती है, उसी तरह बच्चे समाज और देश की नींव हैं। यदि वे मजबूत रहेंगे तो एक स्वस्थ, सबल समाज का निर्माण कर सकेंगे। भविष्य की आवश्यकताओं के अनुसार ही परमहंसजी ने सभी को ज्ञान और शिक्षा दी।

रिखियापीठ और गंगादर्शन, परमहंसजी ने इन दोनों विशाल स्मारकों की स्थापना की, जो आज पूरे विश्व में विख्यात हैं। यहाँ आने वाला प्रत्येक व्यक्ति, चाहे वह संन्यासी हो, विद्यार्थी हो या फिर कुछ समय रहने वाला अतिथि ही क्यों न हो, यहाँ स्थापित आध्यात्मिक ऊर्जा का अपने अन्दर अनुभव जरूर करता है और उसे अवश्य मार्गदर्शन प्राप्त होता है, जिससे वह अपने जीवन को व्यवस्थित और संयत कर, एक सुखमय जीवन व्यतीत कर सकता है। रिखिया और मुंगेर में हो रहे कार्यों का कोई अंत नहीं है। यह उनके संकल्प और उनके गुरु के आशीर्वाद का ही परिणाम है।

परमहंसजी ने बच्चों के साथ-साथ संन्यासियों और योग के उच्च साधकों को भी सेवा, प्रेम और दान की शिक्षा देकर जीवन में इसके महत्त्व को दर्शाया है। रिखियापीठ और गंगादर्शन इसके जीते-जागते उदाहरण हैं। एक सिद्ध संत ही इतना बड़ा कार्य कर सकता है। यह किसी सामान्य व्यक्ति के बस की बात नहीं।

परमहंसजी पारस के समान थे, जो भी उनके सम्पर्क में आया, उसके जीवन का रास्ता ही बदल दिया। संत के गुण बताते हुए तुलसीदास जी कहते हैं–बिछुरत एक प्रान हरि लेहीं। संत तो बिछुड़ते समय प्राण हर लेते हैं, अर्थात् संतों का बिछुड़ना मरने के समान दुःखदायी होता है। परमहंसजी आज सशरीर हमारे साथ नहीं हैं। दुःख तो होता ही है, लेकिन उनकी पावन उपस्थिति का अनुभव रिखिया और मुंगेर में सदा होता रहेगा। और उनका आशीर्वाद और मार्गदर्शन हमें हमेशा प्राप्त होता रहेगा। रामचरितमानस में काकभुशुण्डिजी कहते हैं–

जीवन जन्म सुफल मम भयऊ। तव प्रसाद संसय सब गयऊ ॥

अर्थात् मेरा जीवन और जन्म सफल हो गया। आपकी कृपा से सब सन्देह चला गया। परमहंसजी के सम्पर्क में आने से हम भी इतने ही धन्य और भाग्यशाली हो गये कि हमारा भी यह जन्म सार्थक हो सका। रिखिया में समय-समय पर उनके सत्संग और दर्शन से मेरे जीवन की धारा ही बदल गई। पूज्य गुरुदेव के चरणों में कोटि-कोटि प्रणाम, आपकी कृपा सदा हम पर बनी रहे यही प्रार्थना है।

–संन्यासी श्रद्धामति

देवी आराधना

'बाह्य स्वतंत्रता की ओर ज्यादा ध्यान न देकर आंतरिक स्वतंत्रता, मन की स्वतंत्रता को विकसित करने की दिशा में कदम बढ़ाना चाहिए। तब कुछ विशेष उन्नति सम्भव है। इसलिए भारतीय नारी को कम-से-कम यह अवश्य समझ कर अपने अंतर को स्वतंत्र करने का प्रयत्न करना चाहिए।'

–स्वामी सत्यानंद सरस्वती

स्वामी सत्यानन्द जी को गुरु और भगवान के रूप में बहुतों ने पूजा है। यदि महिलाओं के दृष्टिकोण से देखा जाए तो परमहंसजी ने उनकी जरूरतों को समझा भी है और आध्यात्मिक जीवन में उन्हें एक सम्माननीय पद भी दिया है।

हम एक ऐसी दुनिया में रहते हैं जहाँ स्त्री को माँ और देवी के रूप में पूजा तो जाता है, लेकिन उसके साथ सामाजिक समस्याओं की एक बहुत लम्बी सूची भी जुड़ी है। हमारे समाज में लड़की को गृहलक्ष्मी माना जाता है, मगर आज भी बहुत से घरों में उसे जन्म से पहले मार देते हैं, या फिर लड़कों की तुलना में उसे कम पोषण मिलता है, उसके स्वास्थ्य पर कम ध्यान देते हैं, और फलस्वरूप हजारों लड़कियाँ पाँच साल की उम्र से पहले मर जाती हैं। इसके आगे भी लम्बी लिस्ट है, जैसे दहेज के लिये जलाना, बाज़ार में बेचना आदि। भारत, नेपाल, अमेरिका और अफ्रीका के देशों में औरतों पर हर जगह इतने ज़ुल्म होते हैं कि संयुक्त राष्ट्र संघ हर साल दस दिन इन तथ्यों को उद्घाटित करता है। मैंने स्वयं ऐसी संस्थाओं के साथ काम किया है जो अमेरिका और अफ्रीका में इन औरतों की सहायता करती हैं। लेकिन जब तक समाज की मानसिकता नहीं बदलेगी तब तक महिलाओं की स्थिति में वास्तविक परिवर्तन नहीं आएगा।

इस अंधेरे में परमहंसजी ने महिलाओं के लिए संन्यास के द्वार खोलकर उनके लिए एक ऐसा सकारात्मक मार्ग प्रशस्त किया है, जिसमें वे अपनी शक्ति, सामर्थ्य और मातृ-भावना को एक सुन्दर रूप दे सकती हैं, जिसमें उनकी उन्नति हो सकती है और वे सुरक्षित और स्वतंत्र रह सकती हैं।

औरत अपने आपको दुनिया के बाहरी नजरिये से नापती है और ज्यादातर खुद को लायक नहीं पाती है। रूप-रंग की सुन्दरता, खूबसूरत केश-सज्जा और वेश-भूषा, पति, दो बच्चे और आजकल तो अच्छी नौकरी भी होनी चाहिए। चाहे भारत हो या अमेरिका, जब तक औरत दुनिया के बताए हुए रास्ते पर चलती है, दुनिया उसका आदर करती है। लेकिन अगर वह शादी न करे, अपना श्रृंगार न करे, अपना मन किसी दूसरी चीज में लगा दे, तो उसका जीवन कठिन बन जाता है।

संन्यास में कहा जाता है कि सिर मुड़वा लो, अपने आपको संसार की माया से मुक्त करो, एक अच्छा इन्सान बनो, अपनी आन्तरिक खूबसूरती को निखारो। महिला संन्यासियों को हिम्मत के साथ कठिनाइयों का सामना करना सिखाया जाता है। उन्हें मज़बूत बनना पड़ता है। बार-बार गिरकर भी रोना नहीं, डरपोक नहीं बनना। जबकि समाज में तो औरत को डरने और दबकर रहने की आदत है। वह खुद को औरत होने के नाते ही असुरक्षित पाती है और उसकी इस दुर्बलता का फायदा भी उठाया जाता है।

अगर यह संन्यास प्रशिक्षण हर महिला को मिले तो चाहे वह शादी करके घर-गृहस्थी बसाये या पूर्ण संन्यास लेकर आश्रम में रहे, लेकिन कोई भी उस पर हाथ उठाने की नहीं सोचेगा और हर औरत एक शक्ति-पुंज बन कर, प्रेम, सेवा और कर्त्तव्य-परायणता से भरा जीवन जीयेगी। इस सन्दर्भ में परमहंसजी की प्रथम शिष्या, स्वामी धर्मशक्ति (अम्माजी) एक ऐसी ही शक्ति-स्तम्भ हैं, जिनका जीवन और चरित्र हर औरत के लिए प्रेम, आत्म-बल और पवित्रता की जीती-जागती मिसाल है।

बाल योग मित्र मण्डल की एक छोटी-सी बच्ची से जब पूछा गया कि क्या परमहंसजी को भगवान माना जा सकता है, तो उसने जवाब दिया कि नहीं, उन्हें भगवान से ज्यादा मानना चाहिए, क्योंकि उन्होंने इतना कुछ करके भी अपने आपको कुछ नहीं माना!

आजकल तो लोग कुछ भी नहीं करते, लेकिन फिर भी अपने आपको बहुत कुछ मानते हैं। परमहंसजी ने महिलाओं को आध्यात्मिक जीवन जीना सिखाया

है। चाहे वह गृहस्थी चलाए या आश्रम का कोई विभाग, रामायण मण्डली की सदस्या बने या रिखियापीठ की पीठाधीश्वरी, वह इस पवित्र परम्परा से जुड़कर, सेवा, समर्पण और भक्ति भाव सीखकर, अपनी आध्यात्मिक चेतना को जगा सकती है, जो अन्तत: उसे एक अच्छी बेटी, बहन, पत्नी, माँ और शिष्या बना सकती है।

–स्वामी दिव्यज्योति, नई दिल्ली

अतीत जो वर्तमान का सहारा है–गुरुजी के साथ कुछ क्षण

अपने संन्यास गुरु, स्वामी सत्यानन्द जी से मेरा प्रथम परिचय तब हुआ जब वे पहली बार जबलपुर आए। जबलपुर के हजारों लोग उनका दर्शन करने और प्रवचन सुनने जाया करते थे। प्रारम्भ से ही मुझे दिव्य गुरुजनों के प्रति लगाव रहा है। मेरे माता-पिता भक्त स्वभाव के थे और उनको देखते-देखते मेरे मन में भी आध्यात्मिक रुचि का अभ्युदय हुआ। मैं स्वामीजी के दर्शन हेतु गई, पता चला कि वे अभी आराम कर रहे हैं। हम इन्तजार करते रहे, पर उनके दर्शन नहीं हो सके। हम वापस आ गए। दूसरी बार जब वे जबलपुर आए तब मैंने उनके दर्शन किए। योग साधना शिविर में भाग लिया, योग निद्रा का अभ्यास भी किया। इस शिविर में खास बात यह थी कि इसका संचालन स्वामीजी स्वयं कर रहे थे। वे आसनों के बारे में बतलाते जाते थे, और उनका एक शिष्य प्रदर्शन करता जाता था। अन्त में योग निद्रा कराते थे जिसमें हम सदैव सो जाते थे।

उनके सुडौल व्यक्तित्व और मीठी वाणी ने मुझे सदैव अंतरतम तक प्रभावित किया। योग ने मुझे प्रभावित किया और मैंने प्रतिदिन उसका अभ्यास प्रारम्भ कर दिया। ध्यान में मेरा मन शनै:-शनै: रमता गया। यह आकर्षण इतना जबरदस्त था कि मन लगे-न-लगे, आसन के बाद ध्यान जरूर करती थी।

स्वामीजी जबलपुर अक्सर आते थे, मैं उनके दर्शन करने सदैव जाती, पर कभी उनसे कोई बात नहीं करती। मुझे याद है अंतिम बार जब वे जबलपुर आए थे, मैंने उनसे एक ही प्रश्न किया था कि ध्यान में मन इधर-उधर भटक जाता है, क्या करें। उन्होंने कहा, 'उसे भटकने दो। तुम अपना काम किए जाओ, उसे अपना काम करने दो।' फिर उन्होंने सुझाव दिया कि नाड़ी-शोधन

प्राणायाम देर तक करो। इतने वर्षों के दर्शन में मुझे गुरु की यही व्यावहारिक सलाह प्राप्त हुई।

योग और ध्यान साधना चलती रही, ध्यान की कई सीढ़ियाँ पार करती गई। एक बार पटना आना हुआ तो संयोगवश वहाँ से मुंगेर आने का सुअवसर मिला। सितम्बर-अक्टूबर का महीना था। आश्रम में प्रतिदिन स्वामीजी के दर्शन होते। आधा घण्टा प्रवचन चलता। सुबह के इस सत्संग में वे जिज्ञासुओं के प्रश्नों का समाधान करते थे। मैंने एक बार एक प्रश्न किया। उसका विश्लेषण उन्होंने इतनी सरल भाषा में और सुन्दर ढंग से किया कि उनकी विद्वता को मैं कभी भूल नहीं सकती।

मेरे आश्रम प्रवास के दौरान उन्होंने स्वामी मुक्तानन्द से कहा कि इसको योग सिखाओ और जाँच करो कि ठीक हो रहा है या नहीं। उनके निर्देशन में मैंने योग की बारीकियों को ध्यान से समझा और उनका अनुकरण किया।

आश्रम में शाम को प्रतिदिन संकीर्तन चलता था। उसमें भी मैं जाती थी और कीर्तन गाया करती थी। सब लोग खूब नाचते-गाते थे। स्वामी निरंजन जी और गोरखनाथ जी तो इतने लय के साथ ढोलक बजाते कि पैर अपने आप थिरक उठते थे। धीरे-धीरे सब लोग मुझे जानने लगे।

मुंगेर आश्रम छोड़ने का मन ही नहीं करता था। आश्रम का नियम था कि वहाँ जो भी रहे, वह आठ घण्टे का श्रम अवश्य करे। आश्रम का हर काम शिष्य ही करते थे—साग-सब्जी पैदा करना, बगीचा लगाना, खाना बनाना और वितरित करना, प्लम्बर का काम, बढ़ई का काम, आश्रम की साफ-सफाई का काम, इत्यादि। सुबह से ही बोर्ड पर नोटिस लग जाता था कि आज कौन-सा शिष्य कौन-सा काम करेगा। आश्रम के चारों तरफ इतनी सफाई रहती थी कि आश्चर्य होता कि बिना किसी नौकर-जमादार के यह आश्रम इतना स्वच्छ कैसे रहता है। आश्रम में खुद की बेकरी थी, डबलरोटी आश्रम में ही बनाई जाती थी।

स्वामीजी संन्यासियों के लिए श्रम आवश्यक समझते थे। जब मैं मुंगेर आश्रम में थी तब मैंने देखा कि कैसे एक जगह का सामान दूसरे स्थान पर सरलता से ले जाया जाता था। स्वामीजी स्वयं सामने खड़े हो जाते और आश्रम के सभी संन्यासी एक कतार में लग जाते। एक-दूसरे के हाथ में सामान रखते-रखते सामान अपने स्थान पर कब पहुँच जाता पता ही नहीं चलता था।

लेकिन स्वामीजी ने मुझसे कभी कोई बोझिल काम नहीं करवाया। पुस्तकों के अनुवाद का काम ही देते थे। मैंने स्वामी निरंजन जी से कहा कि मेरी अंग्रेजी इतनी अच्छी नहीं, कृपया स्वामीजी से कहकर दूसरी सेवा दिलवा दीजिए। दूसरे दिन स्वामी निरंजन जी आए और बोले कि गुरु जी की आज्ञा है आप यही काम करें। मैंने शुरू-शुरू के पाँच पृष्ठ अनुवाद करके दिए और स्वामी निरंजन जी से कहा, 'आप जाँच कर लें कि काम ठीक चल रहा है या नहीं।' दूसरे दिन उन्होंने कहा कि गुरु जी की आज्ञा है कि किसी किस्म की जाँच की आवश्यकता नहीं, आप काम पूरा करें। वे कितनी दृढ़ता से यह बात कह रहे थे! उनकी संकल्प शक्ति ने ही मुझसे यह काम करवा लिया।

आश्रम का नियम-अनुशासन इतना पक्का था कि स्वामीजी की इच्छा के विरुद्ध जाना तो दूर, उनके छोटे-से-छोटे निर्देश को निष्ठा और श्रद्धापूर्वक क्रियान्वित किया जाता था। इसका एक उदाहरण अनुकरणीय है। स्वामीजी की कुटिया जाने के रास्ते में अशोक का एक पेड़ पड़ता था। एक दिन मैंने देखा एक शिष्य उस पेड़ के चारों तरफ गढ्ढा खोद रहा है। मैंने पूछा, 'यह क्या कर रहे हो?' उसने कहा कि गुरु जी इसे दूसरी जगह लगवाना चाहते हैं। मैंने कहा, 'इतना पुराना पेड़ उखाड़ोगे तो दुबारा लगेगा नहीं।' वह बोला, 'मैं यह सब नहीं जानता, मेरे गुरु जी की आज्ञा हुई है और मैं वही कर रहा हूँ। जब तक यह पेड़ जड़ से नहीं निकालूँगा तब तक गढ्ढा तो खोदना ही पड़ेगा।' ऐसी थी वह गुरु-भक्ति जो वहाँ के सभी शिष्यों के रोम-रोम में रची-बसी थी।

शिवरात्रि के दिन वे अपने सभी शिष्यों को एक-एक करके अपने कक्ष में बुलाते और अपने हाथ से उनके भाल पर चंदन से त्रिपुंड लगाते। मुझे भी उसी दिन उन्होंने कर्म संन्यास की दीक्षा दी। गेरु में रंगे हुए वस्त्र दिए और त्रिपुंड का तिलक लगाकर मंत्र दिया। हम सब उस दिन निहाल हो गए। दूसरे दिन जब मैं उनके दिए वस्त्र पहन कर उनके दर्शन के लिए गई तो उन्होंने हँसते हुए कहा, 'अब तुम अच्छे लगते हो।'

शरद पूर्णिमा और दीपावली के शुभ अवसर पर मैं मुंगेर में ही थी। उत्सव-पर्व के अवसर पर गुरु जी शिष्यों के साथ ऐसे खेलते थे मानो वृंदावन के कृष्ण-कन्हैया गोप-ग्वालों के साथ खेल रहे हों। शरद पूर्णिमा की रात को सब शिष्य श्री स्वामीजी के साथ घास पर बैठ जाते। आश्रम में बनाई डबलरोटी, मूँगफली आदि सब लोग लूट-लूट कर खाते थे। वे दिन कभी भूलते नहीं, आज भी आँखों के सामने मुझे चित्रवत् दिखते हैं।

दीपावली का त्योहार खूब धूम-धाम से मनाया जाता था। स्वामीजी के आश्रम में आठ वर्ष की अवस्था से संन्यास दिया जाता है, इसलिए बच्चों की कमी नहीं थी। छोटे-छोटे बच्चे तरह-तरह की आतिशबाजी छुड़ाते, खूब धूम-धड़ाका रहता। स्वामीजी के सामने टोकरी में ढेर सारे भोज्य पदार्थ रहते थे, फल, डबलरोटी, मूँगफली, आदि। सभी शिष्य वहाँ से लूट-लूट कर खाते थे। स्वामीजी ने अपने हाथ से मुझे पत्ते पर मूँगफली, डबलरोटी डाल कर दी। थोड़ी देर बाद कहा, 'और लो ना।' मैंने गर्दन हिलाई, अब नहीं। वे जोर से हँसते हुए बोले, 'निरंजन, देखो इनका तो हो गया।' उनकी वह हँसी कभी नहीं भूलती।

एक बार उनकी गाड़ी पेट्रोल भराने जबलपुर में हमारे पेट्रोल पम्प पर आई। हमारे यहाँ जन्माष्टमी का कीर्तन चल रहा था। मैं भागी-भागी गई, बहुत प्रार्थना की, एक बार घर के अन्दर चरण पड़ जाएँ, पर वे गर्दन हिलाते रहे। मैं एकदम रुआँसी हो गई तो जाते वक्त बोले, 'मैं आऊँगा जरूर, पर अभी नहीं।'

कुछ वर्ष बाद सुबह छ: बजे अचानक उनकी कार हमारे घर के सामने आकर रुक गई। हम उस समय योगाभ्यास कर रहे थे। दौड़े-दौड़े बाहर गए। उनके चरण-स्पर्श किए, गाड़ी से उतारा और अन्दर ले आए। उन्होंने कहा, 'मैं मुंगेर छोड़ आया हूँ। केवल पाँच रुपये लेकर मैं गाड़ी में बैठा था, पता नहीं कैसे इन लोगों ने पता लगा लिया और फिर मेरे साथ जुड़ गए। मैंने जहाँ-जहाँ वादा किया था अब उन सभी स्थानों पर जा रहा हूँ। हिंगलाज तो पाकिस्तान में है, पता नहीं वहाँ जाने को मिलेगा या नहीं। बाकी कई तीर्थस्थानों में, मंदिरों में पुन: आने का वादा किया था, वे सब वादे पूरे कर रहा हूँ।'

मुझसे बोले कि मैं अकेले रहना चाहता हूँ, तुम किसी को खबर न देना। मैं उनकी सेवा में लगी रही। उसी दिन रात को मैंने निवेदन किया, 'स्वामीजी, मुझे कुछ सेवा बताइए तो कृपा होगी।' उन्होंने कहा, 'मैं वृंदावन जाना चाहता हूँ, वहाँ मेरे लिए ठहरने का कोई इंतजाम करवा सकती हो तो करवा दो।' मैं तो गद्‌गद् हो गई। वृंदावन तो मेरे गुरु, पूज्य स्वामी अखण्डानन्द जी का स्थान है। उस समय तक पूज्य महाराज श्री का शरीर शांत हो चुका था। मैंने आश्रम के प्रभारी को फोन कर उन्हें सूचना दी कि स्वामीजी आ रहे हैं, उनके साथ हम दोनों भी आ रहे हैं। ठहरने की व्यवस्था कराने की कृपा करें। दूसरे

दिन हम अपनी गाड़ी लेकर वृन्दावन आए। स्वामीजी वहाँ तीन दिन रहे। बरसाने, नन्दगाँव, गोकुल, मथुरा, खूब घूमे।

रात में स्वामीजी के कक्ष में उनका सत्संग हुआ। आश्रम के अनेक अंतेवासी वहाँ मौजूद थे और प्रश्न किये जा रहे थे। एक ने पूछा, 'क्या कैवल्य प्राप्त होने के बाद भी गुरुजन पृथ्वी पर आते हैं?' उन्होंने कहा, 'हाँ, आते हैं। आज मैं जो कुछ कर रहा हूँ, उसका आदेश मुझे गुरु जी से ही मिलता है।' दूसरे ने पूछा, 'कैसे मिलता है?' उन्होंने ऊपर देखते हुए कहा, 'मेरे सामने लिखता जाता है और मैं पढ़ता जाता हूँ।' और भी कई प्रश्न हुए। एक प्रश्न और उद्धरित करना जरूरी समझती हूँ। प्रश्न था, 'आपको काम यातना कभी नहीं सताई?' उन्होंने कहा, 'हाँ, खूब सताती थी। मैंने अपने गुरु जी से पूछा मुझे क्या करना चाहिए? मैं स्त्री सेवन तो करूँगा नहीं, कुछ ऐसा बतायें कि काम उत्पन्न ही न हो।' तब गुरु जी ने बताया, 'गाँजा-चरस पियो। गाँजा-चरस काम को मारता है।' फिर हँसकर स्वामीजी बोले, 'मैंने बरसों तक गाँजा-चरस पिया और फिर छोड़ दिया।'

उन्होंने अपनी तीर्थयात्रा का जिक्र करते हुए बताया, 'मैं वैष्णव देवी गया था। पहाड़ चढ़ते-चढ़ते तमाम देवी स्तुति, दुर्गा सप्तशती बोलता रहा, मुझे याद ही नहीं। मंदिर के बाहर बैठकर आँख मूंदी तो तीन दिन तक बैठा रहा। न खाया, न पिया। यही हाल केदारनाथ जाते वक्त भी हुआ। मैं मंदिर पहुँचने के घण्टे भर पहले ही शिव-स्तुति करता हुआ मंदिर के दरवाजे पर पहुँच कर गिर पड़ा। वहीं दोनों हाथ पसारे खामोश पड़ा रहा।' उनके संस्मरण सुनकर मेरी आँखों में आँसू आ गए। साधु बड़े निर्मोही होते हैं। मैंने उनसे आखिरी प्रश्न किया, 'इस दौड़-भाग के बाद कहाँ जाएँगे?'

उन्होंने कहा, 'मेरे जीवन का उद्‌देश्य है, भगवान शंकर का सशरीर दर्शन। जैसे तुम्हें देख रहा हूँ, वैसे उन्हें देखूँ।' पता नहीं उनका संकल्प पूरा हुआ या नहीं, पर रिखिया में उनके दर्शन के लिए जब गई तो मुझे लगा वे साक्षात् शंकर स्वरूप बनकर सामने खड़े हैं। नील वर्ण, एक कौपीन पहने, सिर पर एक कपड़ा बंधा था, शिव जी की जटा के समान। ऊपर लिखा था, 'अब फिर न आना।' मेरी आँखों से झरझर आँसू बह रहे थे। यही मेरा अंतिम दर्शन था।

–स्वराज्य मणि अग्रवाल, जबलपुर

स्वामी सत्यानन्द जी–आश्रम संस्कृति के कर्णधार

मैंने स्वामी सत्यानन्द जी के दर्शन सर्वप्रथम जून 1986 में किए और उसी समय मुझे उनसे मंत्र दीक्षा तथा आध्यात्मिक नाम पाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। बाह्य रूप से मेरी उनसे कभी विशेष बातचीत नहीं हुई, परन्तु आन्तरिक स्तर पर मैंने हमेशा उनकी अनुकम्पा को अनुभव किया है और जब कभी जीवन में कोई कठिनाई आई है, उनके अदृश्य हाथों ने ही मुझे सहारा दिया है।

मुंगेर आश्रम से वापस जाने से पहले जब मैं उनसे मिली तो उन्होंने मुझसे कहा, 'आश्रम से सम्पर्क बनाए रखना।' उस समय मुझे आश्रम-जीवन के महत्त्व का ज्ञान नहीं था, किन्तु जैसे-जैसे मैं आश्रम आने लगी, मुझे इसकी अमूल्य भूमिका का अहसास होने लगा। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में श्री स्वामीजी का योगदान तो अद्भुत और अभूतपूर्व रहा है, जिसे शब्दों में व्यक्त करना असम्भव है। यहाँ मैं केवल आश्रम-जीवन के प्रति उनके दृष्टिकोण तथा इस क्षेत्र में उनके योगदान के बारे में कुछ शब्द व्यक्त करना चाहूँगी।

श्री स्वामीजी आश्रम को समाज में बच्चों, युवाओं तथा वयस्कों के सर्वांगीण प्रशिक्षण और विकास का आधार मानते हैं। वे अपने बारे में बतलाते हैं कि जो कुछ भी उन्होंने गुरु के आश्रम में सीखा, वही उनके जीवन में काम आया। चाहे वह लेखन, व्याख्यान, प्रबन्धन, प्रशासन, संगठन, शिक्षण-प्रशिक्षण का कार्य हो अथवा योग के प्रचार-प्रसार का, इन सब में उनकी दक्षता और कुशलता, आश्रम के क्रियाकलापों में उनकी पूरी भागीदारी का ही परिणाम है।

श्री स्वामीजी के अनुसार जो सर्वोत्तम शिक्षा हमें ग्रहण करनी है, वह तो जीवन को सही ढंग से जीने की शिक्षा ही है। आश्रम में विभिन्न परिस्थितियों, तरह-तरह के लोगों, समस्याओं तथा स्वयं की मनोदशाओं से हमारा सामना होता है और उनका समाधान ढूँढने का हम प्रयास करते हैं। बच्चों को इस अनुभव से अधिक लाभ होगा, क्योंकि वे आश्रम जीवन को सीधे एवं सरल भाव से अपने हृदय से स्वीकार करते हैं। माता-पिता को अपने बच्चों को छोटी उम्र में ही आश्रम ले जाना चाहिए ताकि उनके जीवन की नींव मजबूत और दृढ़ हो। कितनी बड़ी शिक्षा है यह।

आज हम देखते हैं कि छोटी-छोटी बात पर बच्चे न केवल आत्म-हत्या की धमकी देते हैं, बल्कि कर भी डालते हैं। हम उनके बौद्धिक स्तर (आई. क्यू.) की तरफ तो ध्यान देते हैं, परन्तु भावनात्मक स्तर (ई. क्यू.) को भूल जाते हैं। इसी का परिणाम हमें भुगतना पड़ता है।

श्री स्वामीजी ने विशेष रूप से रिखिया के बच्चों का तो कायाकल्प ही कर दिया है। आत्म-विश्वास, अनुशासन, सृजनात्मकता, अभिव्यक्ति, मन्त्रोच्चारण, कीर्तन, नृत्य, जिम्मेदारी के साथ कार्य करना, इत्यादि में शहरों के बच्चे तो क्या, बड़े भी उनके आगे कहीं नहीं टिकते। यह सब आश्रम-जीवन तथा श्री स्वामीजी की अनुकम्पा का ही परिणाम है।

रिखिया आश्रम ने तो पूरे इलाके में राम-राज्य स्थापित कर दिया है। इसकी गतिविधियाँ सारी दुनिया के लिए एक मिसाल हैं, जिनका अनुसरण किया जाये तो मैं समझती हूँ यह धरती स्वर्ग बन जाए। द्वापर-युग में श्रीकृष्ण ने अर्जुन को जिस कर्मयोग का सैद्धान्तिक ज्ञान दिया था, कलि-युग में श्री स्वामीजी ने हमें उसका व्यावहारिक ज्ञान दिया है और इसके प्रशिक्षण के लिए आश्रम का उत्तम वातावरण उपलब्ध कराया है। उन्होंने हमें सिखलाया है कि आश्रम में हम अपने सामान्य जीवन से हटकर केवल अपने लिए नहीं, दूसरों के लिए भी जीते हैं, जिससे मन को असीम शान्ति मिलती है। आश्रम हमें आत्म-विश्लेषण का अवसर देता है, इसलिए आश्रम में रहने के बाद हमारे भीतर सकारात्मक एवं स्थायी परिवर्तन आते हैं।

आश्रम-जीवन का एक और पहलू भी है। शहर के लोगों के लिए आश्रमों का विशेष रूप से महत्त्व है, क्योंकि यहाँ पर उनको वे संस्कार मिलते हैं जिनका उनके जीवन में सर्वथा अभाव है। शहरी लोग तो गीता, रामायण, उपनिषद् आदि सब भूल गये हैं, जो भारतीय संस्कृति के परिचायक और विधायक तत्त्व हैं। यहाँ आकर आश्रम के शुद्ध वातावरण में जब वे इनके पठन-पाठन में भाग लेते हैं तब इन ग्रन्थों की शिक्षाओं के साथ-साथ गुरु-मुख से सुने प्रवचनों का उनके जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ता है और एक नई दिशा, एक नई प्रेरणा प्राप्त होती है। उनके सम्पर्क में जो अन्य शहरी लोग आते हैं, वे भी उनसे प्रभावित होते हैं और इस प्रकार सुसंस्कार फैलते जाते हैं।

मैंने स्वयं आश्रम आने से पहले कभी भगवद्-गीता का पाठ नहीं किया था, क्योंकि संस्कृत ही नहीं पढ़ी थी। लेकिन आश्रम में इन कार्यक्रमों में भाग लेने मात्र से अब मैं स्वत: ही सही उच्चारण के साथ गीता एवं अन्य स्तोत्रों का पाठ कर सकती हूँ। मेरे लिए यह बहुत बड़ी उपलब्धि है।

श्री स्वामीजी के अनुसार, 'आश्रम-संस्कृति आधुनिक युग के लोगों के लिए वरदान सिद्ध होगी। इसमें उन्हें एक सकारात्मक वातावरण प्राप्त होगा, जो उनकी प्रसुप्त रचनात्मक क्षमता के विस्फोट में सहायक होगा।'

निस्सन्देह आज विश्वभर से लोग आश्रम-जीवन जीने के लिए मुंगेर तथा रिखिया आश्रम में खिंचे चले आ रहे हैं। श्री स्वामीजी शारीरिक रूप में भले ही हमारे बीच विद्यमान न हों, किन्तु उनकी दिव्य उपस्थिति की अनुभूति आज भी हमें रिखिया के कण-कण में होती है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे वे हमारे रोम-रोम में बस गए हों ।

मैं अपने आपको बहुत सौभाग्यशाली मानती हूँ जो मुझे ईश्वर तुल्य गुरु से दीक्षा प्राप्त हुई और आगे के मार्ग-दर्शन के लिए स्वामी निरंजन जैसे गुरु उन्होंने हमें दिए। मैं ईश्वर से प्रार्थना करती हूँ कि वे मुझे उनके बताए हुए रास्ते पर चलने की शक्ति दें। उनकी शिक्षाओं पर अमल करना ही मेरे विचार से उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

–संन्यासी सौम्यशक्ति, जम्मू

प्यारे परमहंस बाबा को प्यार

छः दिसम्बर अलसुबह की उस हिला देने वाली सूचना ने कि श्री स्वामीजी ने महासमाधि ले ली, जैसे समय के प्रवाह को ही रोक दिया था। आसमान उदास था, तारे धूमिल दिखे, परन्तु शायद दूर कहीं क्षितिज आनन्दित था, और यह आनन्द था मिलन का। श्री स्वामीजी सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड से एकाकार जो हो गये थे। परन्तु हम तो सामान्य मनुष्य ठहरे, हृदय तो दुःख से फटा जा रहा था। और यह स्थिति समाप्त हुई रिखिया में श्री स्वामीजी हेतु आयोजित षोडशी पूजा में, जब हमें यह अहसास हुआ कि बाबाजी तो यहीं हैं, एवं समाधि दर्शन के पश्चात् तो लगा जैसे कुछ हुआ ही नहीं है।

मैं शायद उन सैकड़ों शिष्यों में से एक हूँ जिसने न कभी श्री स्वामीजी से प्रत्यक्ष बात की और न ही चरण स्पर्श किए। जब भी दर्शन हुए, बस दूर से ही, परन्तु जब भी उनके विषय में सोचा, उन्हें सबसे निकट पाया, अत्यधिक निकट। हर क्षण वे हमें प्रेरणा दे गये। उनकी उपस्थिति सदैव हमारे साथ रही। कबीरदास जी ने सत्य ही कहा है–

सोऊँ तो सपने मिलूँ, जागूँ तो मन माहीं।

मेरी लेखनी में इतनी शक्ति नहीं कि वह श्री स्वामीजी जैसे महान् युग पुरुष के विषय में कुछ लिख सके, किन्तु भावनाओं को व्यक्त करने हेतु शब्दों के जाल की आवश्यकता नहीं है।

श्री स्वामीजी के पावन स्पर्श ने तो रिखिया पंचायत का परिदृश्य ही बदल दिया है। विगत पन्द्रह वर्षों में रिखिया में जो परिवर्तन होते देखा है, वह आश्चर्यजनक है। रिखिया ही क्यों, परिवर्तन तो उन सारे स्थानों पर हुआ है, जहाँ उनसे जुड़े हजारों-लाखों शिष्य, उनकी प्रेरणा से सेवारत हैं। कभी बंजर रही रिखिया भूमि पर आज खुशहाली लहलहा रही है। योग शिक्षा से सम्पूर्ण विश्व को आलोकित करने अनेक इमारतें रिखिया में तैयार खड़ी हैं। श्री स्वामीजी के आशीष से तैयार अनेक योगी एवं संन्यासी इस पवित्र भूमि पर सेवा करने को तत्पर हैं। और सबसे सुखद आश्चर्य तो रिखिया पंचायत की वे सहस्र कन्याएँ एवं बटुक हैं, जो श्री स्वामीजी की छाया में पले-बढ़े, जिनकी फर्राटेदार अँग्रेजी रिखियापीठ आने वाले भक्तों को दाँतों तले अँगुली दबाने पर विवश कर देती है, और जिनका संस्कृत के मन्त्रों का उच्चारण पण्डितों के उच्चारण को भी मात देता है।

रिखिया में वर्ष भर होने वाले आयोजनों को ये कन्याएँ एवं बटुक ही संचालित करते हैं। राजसूय यज्ञ की पूर्णाहुति में श्री स्वामीजी के ये उद्‌गार थे कि ये कन्याएँ एवं बटुक ही सम्पूर्ण विश्व में फैलेंगे एवं पूरे संसार को बदल देंगे। परमहंस सत्यानन्द सरस्वती एक महान् सन्त थे, जिनके अपार, अनुपम योगदान के लिए सम्पूर्ण मानव समाज एवं संसार सदैव उनका ॠणी रहेगा।

यह सत्य है कि वे आज रिखिया में सशरीर उपस्थित नहीं हैं, परन्तु उनकी कृतियों की सुरभि न केवल रिखिया में, वरन् पूरे विश्व में फैल गई है। नि:सन्देह वे आज जीवित हैं, उन सभी योगियों एवं संन्यासियों में जिन्हें उन्होंने तैयार किया, वे जीवित हैं उन सहस्रों कन्याओं एवं बटुकों में जो श्री स्वामीजी की छाया में बड़े हुए हैं, वे जीवित रहेंगे अपने लाखों शिष्यों के हृदयों में, वे जीवित रहेंगे उन विचारों में जो उन्होंने विश्व को दिए हैं। नि:सन्देह वे जीवित रहेंगे आकाश में आलोकित उस देदीप्यमान् तारे में, और अपने अदृश्य हाथों से सदैव हम सब पर अपने स्नेहाषीश की वर्षा करते रहेंगे।

उस महान् सन्त एवं योगीराज को प्यार, प्यार और ढेर सारा प्यार ...।

–सुकीर्ति, राजनाँदगाँव

मेरे गुरु, मेरे ईश्वर

किसी ने कहा है, 'वह योगी ही क्या जो आसन जमाकर हिमालय में अपनी तपस्या करता रहे, जब इन्सानियत को उसकी सख्त जरूरत हो।' बहुत सही कहा है, और आज के युग में एक परोपकारी योगी का सर्वोत्तम उदाहरण है हमारे परमपूज्य गुरुदेव, श्री स्वामी सत्यानन्द जी, जिन्होंने अपना जीवन मानवता के कल्याण के लिए समर्पित कर दिया।

वह योगशास्त्र, जो हज़ारों सालों से एक गुप्त ज्ञान हो गया था, उसे श्री स्वामीजी ने तंत्र शास्त्र से निकालकर सरल और सर्वसुलभ बनाया और एक विज्ञान के रूप में बिहार योग विद्यालय के माध्यम से प्रचार-प्रसार किया। कहने के लिए सन् 2010 में यह बहुत ही आसान और मामूली-सी बात लगती है, पर जरा सोचिये, सन् 1956 में जब स्वामी शिवानन्द जी ने यह काम उन्हें सौंपा था, तब उस समय यह ज्ञान, हिमालय की गुफाओं में कोई विरला सिद्ध गुरु अपने किसी लायक शिष्य को ही दिया करता था। और अब बिहार योग भारती दुनिया का पहला योग विश्वविद्यालय है जहाँ योग में स्नातकोत्तर डिग्री भी प्राप्त की जा सकती है।

क्या कोई साधारण आदमी बीस सालों में इतना कुछ कर सकता है? जबकि बीस सालों में हमारे स्वामीजी ने तो अपने आप को रिटायर भी कर लिया। योगविद्या को हर देश के कोने-कोने तक पहुँचाने के साथ-साथ दूसरी पीढ़ी को भी तैयार कर दिया और अपने आप को रिटायर करते समय, योग आन्दोलन की बागडोर स्वामी निरंजनजी के काबिल हाथों में सौंप दी। अरे, इस कलियुग में तो एक बाप भी अपने होनहार बेटे को व्यापार-धंधे के गुर नहीं सिखाता!

पहली बार जब मैं रिखिया गया था, वह एक बहुत ही सुनसान जगह थी। यह करीब 1990 की बात है। वहाँ के गाँववालों के पास तन ढकने के लिए कपड़ा तक नहीं था। और अब रिखिया को देखिये, किसी स्वर्ग से कम नहीं। हमारे स्वामीजी ने तो इन उपेक्षित ग्रामवासियों और इनके बच्चों को मानो पलकों पर बिठाकर पाला है!

हमारे स्वामीजी के कन्या-बटुकों की अंग्रेजी, संस्कृत, कीर्तन और कम्प्यूटर में महारत की दूर-दूर के देशों में चर्चा की जाती है। जो जगह हिन्दुस्तान के नक्शे पर भी नहीं थी, श्री स्वामीजी की तपस्या के बाद वह झारखण्ड की शान बन गयी है।

अब आप बताइये, यह समृद्धि और यह सफलता किसकी देन है? क्या हम इसे मात्र गाँव वालों का सौभाग्य कह सकते हैं? या फिर एक फरिश्ते की करामात? क्या आपको इसमें भगवान का हाथ दिखाई नहीं देता?

व्यक्तिगत तौर पर मैंने श्री स्वामीजी की कृपा और आशीर्वाद को अपने जीवन में हमेशा महसूस किया है। यह उनकी प्रेरणा और कृपा का ही फल है कि जापान जैसे सुदूर देश में अपना व्यवसाय करने के साथ-साथ मैं नियमित रूप से सत्यानन्द योग की कक्षाएँ भी चला रहा हूँ। श्री स्वामीजी ने शायद हमें यही सबसे बड़ी सीख दी है—कर्म योग के माध्यम से अपने आप को पहले खाली करो, पवित्र करो। फिर देखो कैसे तुम गुरु कृपा के ट्रांसमिटर बनते हो। सचमुच, मेरे गुरुदेव जैसा कोई नहीं। मेरे गुरु, मेरे भगवान!

—गोगी आनन्द (सं. आत्मधर्मा), जापान

परम गुरुदेव स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

श्रद्धेय परम गुरुदेव स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के विषय में कुछ लिखना, अनादि काल से ब्रह्माण्ड में प्रज्वलित अखण्ड ज्योति के दर्शन करने के समान है। जब सूर्य का दिव्य प्रचण्ड प्रकाश बिखर रहा हो, तब नयनों में प्रकाश ही प्रकाश भर उठता है, कुछ और दृष्टिगोचर नहीं होता। हम जैसे साधारण जनों के लिए उस दिव्य प्रकाश को सहन कर पाना भी असह्य हो जाता है। ऐसी स्थिति में किसी आशामयी किरण को सहेज कर रखना, गुरुकृपा से ही सम्भव हो पाता है।

हिमालय की शीतल पर्वत मालाओं की ओट से उदित हुआ वह बाल सूर्य, मानो सूर्यवंश की ध्वजा लेकर ही संसार के क्षितिज पर उतरा। अपने गुरु श्रद्धेय स्वामी शिवानन्द सरस्वती की झोली के वे अनमोल रत्न, गुरु आश्रम में 20 वर्ष अथक परिश्रम-साधना, समर्पण, आज्ञा पालन से ज्योतिपुँज बन चमचमा उठे और सम्पूर्ण विश्व उनकी चकाचौंध से दमक उठा। योगाकाश गौरवान्वित हो उठा। अपने गुरु स्वामी शिवानन्द सरस्वती और अपने प्रिय शिष्य स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती सहित अन्तरिक्ष में सितारों के रूप में स्थित होना दुंदुभिनाद है, भविष्य के लिए। उनकी गूंज अनन्त काल तक जगती को झंकृत करती रहेगी, उनका प्रकाश योगमार्गियों, आध्यात्मिक पथिकों तथा भूले-भटकों को मार्गदर्शन देता रहेगा और उनका स्नेह दु:खी-पीड़ित जनों, अभावग्रस्तों और रिक्त हृदयों को परिपूरित करता रहेगा।

योगगंगा को हिमालय की कंदराओं से धरती पर अवतरित कर सर्व साधारण के लिए योग को सुलभ बनाने के जो भगीरथ कार्य उन्होंने देश-विदेश में किये हैं, उसके लिए विश्व सदैव उनका ऋणी रहेगा। उनके जीवन का प्रत्येक क्षण और महासमाधि संसार के लिए प्रेरणास्रोत एवं आशीष बन गये, धरा पुण्यवती, कृतार्थ हो गई। रिखियापीठ विख्यात हो गया।

मुंगेर बना उनका कर्मक्षेत्र एवं योग की राजधानी, जो अखिल विश्व जन को विजित कर, उनके हृदयों में राज कर रही है, और योगनगरी के नाम से प्रसिद्ध हो रही है। केन्द्र बिन्दु बना गौरवान्वित रिखियापीठ–श्री स्वामीजी की आशीष स्थली, शिव का कैलाश, मानसरोवर और तप:स्थली, शक्ति की क्रीड़ा स्थली, और परम पावन तीर्थ-स्थली जहाँ उन्होंने विश्व में योग की गौरवमयी पताका फहराने तथा सबके हृदयों पर विजय प्राप्त करने के उपरान्त अनवरत 12 वर्षों तक राजसूय यज्ञ किया। धन्य हो उठे वे जनमानस जिन्होंने यज्ञ का प्रसाद पाया। अनगिनत रूपों में हम सबने मन्त्रमुग्ध हो उस वातावरण का एक अंग होना ही अपना परम सौभाग्य माना। पंचाग्नि तप तथा अन्य अनेक अनुष्ठान जो श्री स्वामीजी ने किए, हम पर कृपा बरसाते रहे।

दिन-प्रतिदिन कन्याओं एवं बटुकों के नन्हे कदमों की चंचल, किन्तु सधी आहट, उनके भावविह्वल कर देने वाले कीर्तन, वेद, उपनिषद्, गीता, रामायण एवं अन्य शास्त्रों के कठिनतम श्लोकों का स्पष्ट एवं सुमधुर गायन, अतिथियों का स्नेहयुक्त स्वागत एवं मार्गदर्शन, समस्त कठिन से कठिनतर कार्यों का सुखद एवं सहज रूप से संचालन, ग्रामीणों एवं वृद्धों की विश्वास एवं सन्तुष्टि से भरी निगाहें, स्वयं माँ अन्नपूर्णा, माँ लक्ष्मी और माँ सरस्वती की उपस्थिति कदम-कदम पर जीवन्त हो उठती। मनोरम आश्रम, संन्यासियों की स्नेहमयी, स्वागत भरी वाणी, समर्पित व्यक्तित्व, बाहें पसारे सभी को हृदय में समेट लेने को आतुर श्री स्वामीजी का विस्तार बन, कठोर हृदयों को भी रूपान्तरित कर देता है कि हम समय-समय पर यहाँ आकर स्वयं को कृतार्थ कर सकें। शत्-शत् नमन उन महापुरुष को, जो उदित हुए योगाकाश में, अपनी उज्ज्वल प्रभा विश्व में प्रसारित की और समा गये सर्वत्र, जहाँ से वे अनेक आशीष अनवरत लुटा रहे हैं।

एक बार हम सपरिवार देवघर आए। रात्रि विश्राम सर्किट हाउस में किया और प्रात:काल इस युग के महानतम जीवनमुक्त संत, श्री स्वामीजी के दर्शन के लिए रिखिया आए, उत्साह और अनेक प्रश्नों से भरे। कदम धरती पर

नहीं पड़ रहे थे। धड़कते हृदय से ज्यों ही कुटीर में प्रवेश किया तो देखा श्री स्वामीजी दिव्य छटा से परिपूर्ण, ज्योर्तिमय गेरु वस्त्रों से सुशोभित सामने विराजमान हैं। उनके दर्शन मात्र से हृदय पूर्णतः शान्त और तिरोहित हो गया। वज्र-सी कठोरता और नवनीत-सी कोमलता का अद्भुत संगम प्रत्यक्ष देखा। उसी क्षण सहज, सुमधुर मुस्कान के साथ उन्होंने हमें पास बुलाया, और बैठने का निर्देश दिया। वे अभिवादन ले रहे थे, कुशल-क्षेम पूछ रहे थे और सत्संग दे रहे थे, चमकती और कड़कती हुई बिजली की तरह, प्रश्नों के मेघों को छिन्न-भिन्न करते हुए। हम तो बस मन्त्रमुग्ध से उनके शिवस्वरूप के दर्शन पा रहे थे।

जब श्री स्वामीजी को मालूम हुआ कि हम सर्किट हाउस, देवघर में रुके हैं तो उन्होंने कहा कि आश्रम भी तो अपना घर है, यहीं आ जाओ। हम तो निहाल हो गये इतना स्नेह पाकर। शीघ्र ही सामान मँगवाया और निर्देशानुसार आश्रम में रुके। श्री स्वामीजी के सान्निध्य में रहने का वह प्रथम शुभ अवसर और स्वामी सत्यसंगानन्द जी का स्नेह भरा मार्गदर्शन अमूल्य धरोहर है हमारे जीवन की, जिसे हम कभी भुला नहीं सकेंगे।

–श्रीमती एवं श्री आर. के. कटारिया, राँची

मेरे गुरु, मेरे भगवान

सर्वप्रथम 14 जनवरी 1979 को मैंने परमगुरु सत्यानन्द जी महाराज के दर्शन मुंगेर के पुराने शिवानन्द आश्रम में किये। उस दिन मकर संक्रान्ति थी। वहाँ हम सब ने प्रसाद भी ग्रहण किया और परम गुरुदेव के आशीर्वचन भी।

ब्राह्मण परिवार में जन्म लेने के बावजूद भी मैं पूर्णतः नास्तिक था। पिताजी मंदिर में पुजारी थे और अपने क्षेत्र के अच्छे ज्योतिषाचार्य थे, मगर मेरी न तो ईश्वर में आस्था थी और न ही श्रद्धा।

परन्तु जिस क्षण मैंने परमहंस जी के दर्शन किये, मुझे अद्भुत अनुभव हुआ। जैसे साक्षात् भगवान शिव मेरे सामने उपस्थित हों। मैं अवाक् रह गया। एक मिनट में ही सारी नास्तिकता जाती रही। उनके उपदेश ने मेरे मन की सारी शंकायें दूर कर दीं। वह अनुभूति वर्णनातीत है।

फिर गंगा दर्शन योग सीखने जाने लगा। उन दिनों गंगा दर्शन में निर्माण कार्य चल रहा था। ज्योति-मंदिर में स्वामी विद्यानन्द सरस्वती जी योग

सिखाया करते थे। मार्च सन् 1980 में परमहंस जी ने बरियारपुर सम्मेलन में दीक्षा दी। इसके बाद मेरा आध्यात्मिक जीवन शुरू हुआ। गुरु पूर्णिमा पर हर बार मुंगेर आश्रम जाता, वहीं रामचरितमानस एवं गीता का पाठ सीखा। पहली बार गायत्री मंत्र एवं महामृत्युंजय मंत्र का पाठ किया।

परमहंस जी तंत्र एवं योग के आधुनिक पतंजलि थे। उन्होंने योग को घर-घर और द्वार-द्वार पहुँचाने में जो भूमिका निभायी, वह अद्वितीय है। बिहार योग विद्यालय के विदेशों में जितने केन्द्र हैं, उतने किसी और संस्था के नहीं हैं। और इसका सारा श्रेय स्वामीजी को ही जाता है। योग को वैज्ञानिक आधार देने का सारा श्रेय भी स्वामीजी को ही है। ऐसे संत कई सदियों बाद अवतरित होते हैं।

सन् 1986, 1987 एवं 1988 की गुरु पूर्णिमा के शुभ अवसर पर स्वामीजी द्वारा 'सौन्दर्य लहरी' का पाठ सुबह 4 बजे से कराया जाता था। हम सब कई बार 3 बजे ही साधना स्थल पहुँच जाते, मगर वहाँ स्वामीजी पहले ही विराजमान रहते। मुझे संस्कृत नहीं आती थी, मगर यह सद्‌गुरु की कृपा का ही फल था कि आज मैं सौन्दर्य-लहरी का पाठ रोज कर लेता हूँ।

परमहंस सत्यानन्द जी मेरे गुरु ही नहीं थे, वरन् मेरे भगवान, मेरे जीवन दाता एवं आध्यात्मिक पिता हैं। दो संस्मरण लिख रहा हूँ उनकी कृपा के प्रत्यक्ष प्रमाण के रूप में। एक बार गंगा दशहरा पर मैं अपने मित्र विनय सिन्हा जी के साथ मुंगेर गया। गंगा जी में स्नान करने की इच्छा हुई। गंगा जी में स्नान हेतु पहले मैं गया। विनय जी किनारे पर ही रहे सामान की देखभाल हेतु। कष्टहरणी घाट की बात है। जैसे ही मैं पानी में थोड़ा आगे बढ़ा, पानी में डूबने लगा। मुझे तैरना नहीं आता है। मौत को करीब जान मैं चिल्लाने लगा। उस समय न तो गुरुदेव याद आये और न ही भगवान, हालाँकि गंगा दर्शन सामने ही था। मैं लोगों को बचाने के लिए चिल्ला रहा था, मगर ज्यादा भीड़ होने एवं शोरगुल होने से मेरी आवाज शायद किसी ने नहीं सुनी। इस बीच मैं कई बार पानी में ऊपर-नीचे हो गया। मैं निराश हो चुका था।

इसी बीच मैंने देखा कि मेरे से कुछ दूरी पर दस-बारह वर्ष के दो बालक स्नान कर रहे हैं। मैंने सोचा अगर मैं इन बच्चों को पकड़ लेता हूँ तो ये भी चिल्लाने लगेंगे और इससे लोगों का ध्यान हमारी ओर हो जायेगा। यह विचार आते ही मैंने उन बच्चों को पकड़ने के लिए अपना हाथ आगे बढ़ाया। मगर तुरंत ही मैंने अपना बढ़ा हाथ वापस खींच लिया यह सोचकर कि मेरे साथ-साथ ये बच्चे भी कहीं डूब न जायें। हाथ वापस खींचा ही था कि उनमें से एक

बच्चा खिलखिलाकर हँस पड़ा। और उस हँसी से मेरे मन के तार खुल गये। वह हँसी मेरे गुरु सत्यानन्द जी की थी (जब कभी हम लोग अनाप-शनाप सवाल उनसे पूछते तो वे खिलखिलाकर हँस देते थे) बस उसी क्षण मैंने अपने गुरु को याद किया और कहा, 'अब तुम जानो।' और तुरंत ही किसी ने मुझे पानी से निकालकर किनारे पर रख दिया और गायब। वाह रे मेरे दाता! तेरी लीला अजीब है। यह मेरे लिए मानो दूसरा जीवन है।

दूसरी घटना मेरी पुत्री से सम्बन्धित है। उसकी शादी सन् 2002 में हुई थी। शादी के तीन साल गुजर जाने पर जब उसके कोई संतान नहीं हुई तो मैंने स्वामीजी से प्रार्थना की। उन्होंने सौन्दर्य लहरी का पाठ करने की सलाह दी। उनकी कृपा से मेरी पुत्री ने एक लड़की को जन्म दिया। ऐसे कृपालु हैं मेरे सद्गुरु!

ये दो तो बानगी थी। ऐसी न जाने कितनी घटनाएँ मेरे जीवन में आईं जब उन्होंने मुझे पूरा सहारा दिया।

उन्होंने 5 दिसम्बर 2009 को महासमाधि ली, वह अपने आप में बेमिसाल है। हमें तो ऐसा एहसास ही नहीं होता कि वे अब हमारे बीच नहीं हैं। वरन् अब तो ऐसा प्रतीत होता है कि वे हमारे ज्यादा करीब आ गये हैं, ज्यादा ध्यान दे रहे हैं और हमें पूरा विश्वास है कि अपनी छत्र-छाया से हमें हमेशा पल्लवित करते रहेंगे।

सन् 1989 में मैंने परमहंस निरंजन जी से कर्म संन्यास की दीक्षा ली। वे भी पूर्ण समर्थ गुरु हैं। सुचारु रूप से उन्होंने अपने गुरु के मिशन को आगे बढ़ाया है।

30 मार्च सन् 2010 को मैं भीलवाड़ा से रिखिया समाधि दर्शन हेतु गया। वहाँ स्वामी सत्संगी जी के दर्शन हुए। पिछले बीस वर्षों से वे ही रिखिया आश्रम का सुचारु रूप से संचालन कर रही हैं। अब तो रिखियापीठ की वे पीठाधीश्वरी हैं।

भगवान एवं गुरु से सदैव प्रार्थना करते हैं कि स्वामी निरंजन जी, स्वामी सत्संगी जी एवं स्वामी सूर्य प्रकाश जी को सुन्दर स्वास्थ्य, दीर्घायु एवं सुन्दर मन प्रदान करें, ताकि वे अपने गुरु के मिशन को आगे बढ़ाने में समर्थ बनें।

ध्यानमूलं गुरोर्मूर्तिः पूजामूलं गुरोर्पदम् ।
मन्त्रमूलं गुरोर्वाक्यं मोक्षमूलं गुरोर्कृपा ॥

–कृष्ण कुमार शर्मा, भीलवाड़ा (राजस्थान)

दिव्य अनुभूति

तीस-चालीस वर्ष पूर्व योग का प्रचार-प्रसार इतना व्यापक नहीं था और न ही योग प्रचारकों का इतना प्रभाव ही था। किन्तु किसी-किसी के व्यक्तित्व में इतना आकर्षण होता है कि उसको अपना प्रभाव दिखाने की आवश्यकता नहीं रहती। ऐसा ही आकर्षक व्यक्तित्व था स्वामी सत्यानन्द जी का। 5 मार्च 1979 का दिन था, उन दिनों हम मध्य प्रदेश, जिला बैतूल के पाथाखेड़ा क्षेत्र (कोल इण्डिया लिमिटेड का कोयला उत्पादन क्षेत्र) में कार्यरत थे। जानकारी मिली कि स्वामीजी आठनरे गाँव में योग केन्द्र की स्थापना के भूमि पूजन के लिए पधार रहे हैं। एक सज्जन पुरुष ने चार बीघा जमीन आठनरे में आश्रम निर्माण के लिए उपलब्ध कराई थी। बताया गया कि आठनरे पश्चिमी क्षेत्र का योग केन्द्र भी बनेगा।

नियत तिथि और समय पर श्री स्वामीजी अपने कुछ शिष्यों के साथ आठनरे पहुँचे, आश्रम निर्माण की नींव रखी गई। स्वामीजी द्वारा बैतूल जिले के एक गाँव में आश्रम का भूमि पूजन उस क्षेत्र के लिए बड़ी चर्चा का विषय बना। 6 मार्च को स्वामीजी का आगमन हमारे पाथाखेड़ा के अतिथि-गृह में हुआ, जहाँ वे करीब दो घण्टा विश्राम करके मध्यप्रदेश विद्युत विभाग के अतिथि-गृह आगे के कार्यक्रम के लिए पधारे। यह अतिथि-गृह सतपुड़ा की पहाड़ियों पर स्थित है, जहाँ से सतपुड़ा बांध की अथाह जलराशि के दर्शन होते रहते हैं।

7 मार्च को प्रातः गुरु-दीक्षा का कार्यक्रम निश्चित था। प्रातः 7 बजे कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। स्वामीजी अपनी निर्मल छवि के साथ प्रसन्न मुद्रा में अपने आसन पर बाहर ही लॉन में विराजमान थे। दो संन्यासी उनके साथ थे। एकदम सरल एवं सादा वातावरण। हम समय से पूर्व ही वहाँ उपस्थित हो गये थे। मैं करीब 8 बजे प्रातः स्वामीजी के आसन के सामने प्रणाम कर बैठ गया। स्वामीजी ने प्रेम से मधुर मुस्कान के साथ पुनः नाम पूछा, कुछ क्षण देखते रहे और फिर गुरु-मंत्र दिया। न किसी प्रकार का आडम्बर, न कोई आवरण। गुरु-मंत्र देने के कुछ देर पश्चात् स्वामीजी ने कहा, जाओ। कुछ ही समय में क्या हो गया कुछ भी समझ में नहीं आया। स्वामीजी ने क्या कहा, यह भी नहीं मालूम, पर नजरें स्वामीजी के चरणों से हट नहीं रही थीं। एक चमत्कार-सा हुआ जा रहा था, एक दिव्य अनुभूति जैसा कुछ लगा, पलकें भी नहीं झपकाई जा रही थीं। स्वामीजी ने पुनः हाथ लगाकर कहा, जाओ। अचानक झटका-सा लगा। स्वामीजी ने जो रुद्राक्ष की माला, प्रसाद आदि दिया था वह लेकर

वहाँ से विदा हुए। इस प्रकार गुरु का साक्षात्कार गुरु दीक्षा के रूप में हुआ। उसी दिन शाम को स्वामीजी भोपाल के लिए प्रस्थान कर गये। कुछ वर्षों तक यूँ ही चलता रहा, स्वामीजी के कार्यक्रमों की जानकारी आठनरे आश्रम के संयोजक द्वारा होती रही। जिस वर्ष श्री स्वामीजी गुरु पूर्णिमा पर कहीं पधारते, हम भी वहाँ पहुँचने का प्रयास करते। जबलपुर, भोपाल, गोंदिया और अन्तिम बार 1983 में रायपुर (म.प्र.) में स्वामीजी के सान्निध्य में गुरु पूर्णिमा उत्सव मनाया। स्वामीजी की उपस्थिति में मनाये 1983 के गुरु पूर्णिमा उत्सव में उनके द्वारा दिया गया उद्‌बोधन आज भी याद है। क्या आदेशात्मक वक्तव्य था उनका, एक-एक शब्द ब्रह्म-वाक्य के समान अन्तर्मन में प्रवेश कर रहा था। उसके पश्चात् स्वामीजी ने भी प्रत्यक्ष रूप से गुरु पूर्णिमा पर कहीं बाहर जाना बन्द कर दिया।

श्री स्वामीजी के कार्यक्रमों की जानकारी योगविद्या के माध्यम से मिलती रहती थी। दर्शन की इच्छा तो रहती ही थी, किन्तु सांसारिकता में या यूँ कहें कि गुरु दर्शन की अनुमति ही नहीं थी। उन दिनों स्वामीजी रिखिया में ही विराजते थे। सन् 2001 अप्रैल में हमने स्वामीजी के दर्शन का कार्यक्रम बनाया। मैं उन दिनों नागपुर में कार्यरत था। हम स्वामीजी के दर्शन की इच्छा लिए रिखिया पहुँच गये। उस दिन रविवार था और ऐसी सम्भावना थी कि आज स्वामीजी बाहर नहीं आयेंगे। किन्तु जब हमने अन्दर प्रवेश किया तो देखते हैं कि स्वामीजी हमें दर्शन देने के लिए हॉल में विराजमान हैं। स्वामीजी के साथ था उनका प्यारा भोला, जो हमें इधर-उधर से सूँघकर उनके पास जा बैठा। एक-दो और संन्यासी भी थे जो अपने-अपने काम में लग गये।

कुछ देर स्वामीजी सामने बैठे रहे। उन्होंने हमारा हाल-चाल पूछा, भीलवाड़ा में सत्यानन्द वेद एवं योग विज्ञान संस्थान की रूप-रेखा एवं निर्माण के बारे में बातें कीं, कुछ निर्देश भी दिये। आज भीलवाड़ा का विशाल आश्रम उनकी प्रेरणा और कृपा का ही प्रसाद है। स्वामीजी तो विनोदी स्वभाव के थे ही, कुछ दृष्टांत, कुछ चुटकुले, कुछ पुरानी बातें सुनाते रहे। हम लोगों के पास कैमरा था, हमने कई फोटोग्राफ भी लिए। कभी स्वामीजी के चरणों में सिर रखे, कभी उनके गोद में सिर रखे, कभी उनका हाथ सिर पर रखा, ऐसी कई स्थितियाँ बनाईं और इस प्रकार करीब दो घण्टे स्वामीजी के सान्निध्य में, उनके पास बैठे रहने का अवसर मिला। कभी कल्पना भी नहीं की थी इस प्रकार दर्शन लाभ की। कभी सोचा भी नहीं कि उनके सान्निध्य में इतना स्नेह,

निकटता, अपनापन, वात्सल्य एक साथ मिल सकेगा। जिस प्रकार एक पिता पुत्र को गोदी में बिठाकर प्यार करता है, वही स्नेह था उनका।

जब-जब भी उनकी याद आती है, बरबस ही आँखें छलक जाती हैं एवं परम आनन्द का अनुभव होता है, जिसको बयाँ नहीं किया जा सकता। वे क्षण जब उनकी गोद में सिर था, जीवन के अपूर्व क्षण थे। एक दिव्य अनुभूति-सी हुई थी जो शब्दों से परे है और जिसकी याद उस झलक को एक चित्र के समान स्पष्ट कर देती है।

उसके बाद श्री स्वामीजी का दर्शन और उनकी अमृतवाणी का रसास्वादन रिखिया में सीता कल्याणम् उत्सव में होता रहा। 6 दिसम्बर 2009 को प्रात: करीब 10 बजे एक फोन आया कि रात्रि को स्वामीजी ने महासमाधि ले ली है। हम सांसारिक जीव कर ही क्या सकते हैं। स्वामीजी तो महान् हैं, उनके आदर्श, स्नेहिल एवं सरल भाव, गाम्भीर्य, विद्वत्ता, तेज, वाणी का ओज, ईश्वर के प्रति विश्वास और विश्व को योग के रूप में दिया गया ज्ञान कभी भुलाया नहीं जा सकता। वे तो ईश्वर के दूत थे जिन्होंने योग रूपी विद्या को व्यापक रूप से प्रसारित किया। विश्व में योग का वर्त्तमान स्वरूप उन्हीं की देन है।

मैं अपने आपको बहुत भाग्यशाली और खुशकिस्मत समझता हूँ और मेरी यह धारणा है कि निश्चित रूप से पूर्वजन्म में भी मुझे श्री स्वामीजी का सान्निध्य मिला ही होगा जो इस जन्म में गुरु के रूप में स्वामीजी के साक्षात्कार हुए और उनका प्यार, दुलार, मार्गदर्शन एवं सान्निध्य मिला। स्वामी सत्यानन्द जी मेरे गुरु ही नहीं बल्कि मेरे सब कुछ हैं, मेरे लिए ईश्वर समान हैं। मुझे सदैव उनका मार्गदर्शन मिलता ही रहेगा।

–बंशीलाल नन्दवाना, भीलवाड़ा

गरीब-नेवाज गुरु महाराज

मेरे दरवाजे पर नारियल के दो पेड़ हैं। प्रतिवर्ष उनमें फल आया करते हैं। 5 दिसम्बर 2009 की रात्रि लगभग 1 बजे एक कच्चा नारियल पेड़ से गिरा। आमतौर पर पेड़ से नारियल गिरने पर एक-दो उछाल लेकर स्थिर हो जाता है, लेकिन उस दिन वह नारियल गिरकर फट गया तथा उसका पानी बह गया। जब मैंने देखा तो मन में कई तरह की आशंकाएँ होने लगीं। पूज्य गुरुदेव के बारे में भी सोचा कि कहीं उन्होंने शरीर तो नहीं छोड़ दिया। लेकिन 2006 में

अपने एक प्रवचन में उन्होंने कहा था कि मुझे एक्सटेंशन मिला है, इसलिए मन इस बात पर नहीं ठहरता था। अगले दिन सवेरे पाँच बजे पता चला कि पूज्य गुरुदेव मध्यरात्रि के समय महासमाधि में लीन हो गए।

मानस-पटल पर बरसों पुरानी घटनाएँ तैरने लगीं। मन में वे सब प्रसंग बरबस आने लगे जब श्री स्वामीजी की अहैतुकी कृपा अनायास प्राप्त हुई थी। एक बार मैं गाँव के कुछ लोगों के साथ भाड़े की गाड़ी लेकर शतचण्डी यज्ञ पहुँचा था। यज्ञ के अन्तिम दिन रात को मैंने सभी को घर चलने के लिए कहा। रास्ता जंगल से गुजरता था, लूट-पाट की घटनाएँ सामान्य थीं। कुछ लोग जो अपने परिवार के साथ थे, जाने में डर रहे थे। एक सज्जन ने काफी जोर देकर कहा कि आप जबर्दस्ती कर रहे हैं। मैंने कहा कि गुरुजी पर भरोसा रखिए, कुछ नहीं होगा। और मैंने गाड़ी बढ़वा दी। उक्त सज्जन काफी डरे हुए थे, लेकिन जंगल में घुसने के पहले उनका चेहरा प्रसन्न दिखाई देने लगा। काफी आगे बढ़ने पर मैंने प्रश्न किया कि आप बहुत प्रसन्न दिखाई दे रहें हैं, क्या बात है? उन्होंने कहा मैं गाड़ी के बोनट पर एक तरफ बड़े स्वामीजी और दूसरी तरफ छोटे स्वामीजी को बैठा हुआ देख रहा हूँ, इससे बढ़कर खुशी की क्या बात होगी!

एक अन्य साल मैं शतचण्डी यज्ञ में शामिल होने के लिए मोटर-साइकिल से रिखिया के लिए चला। पन्द्रह-बीस किलोमीटर चलने के बाद मोटर-साइकिल में गड़बड़ी आ गयी, गति चालीस किलोमीटर प्रति घण्टा से अधिक बढ़ाने पर बन्द हो जाने लगी। रास्ते में कहीं कोई मेकेनिक भी नहीं मिला। कितना भी संभाल कर चलाते, जहाँ मन भूलता, गति बढ़ती, वह तुरन्त बन्द हो जाती। इस प्रकार मोटर-साइकिल लगभग दस-बारह बार बन्द हुई, तब जाकर देवघर पहुँचा।

कार्यक्रम की समाप्ति के समय मंच से घोषणा की गयी कि अगले दिन झारखण्ड बन्द है, इसलिए जिन लोगों को निकलना है आज रात तक निकल जाएँ, नहीं तो अगला सारा दिन बेकार चला जायेगा। शतचण्डी यज्ञ के आखिरी दिन गाँव से कुछ लोग ट्रेकर लाकर सम्मिलित हुए थे। वे लोग रात को ही लौट रहे थे। मैंने सोचा कि इन्हीं लोगों के साथ घर वापस लौट जाऊँ। रात्रि के आठ बज गये थे। हम लोग साथ-साथ चल दिये, लेकिन उनका ट्रेकर मुझसे बहुत आगे निकल गया, क्योंकि मैं चालीस की रफ्तार से आगे बढ़ाने में डर रहा था। खैर, मैंने गुरुजी को याद किया और धीरे-धीरे रफ्तार बढ़ानी शुरू की। मोटर-साइकिल जब बन्द नहीं हुई तो मैंने गति थोड़ी और बढ़ाई।

आश्चर्य की बात, मोटर-साइकिल बिना बन्द हुए चलती रही और कुछ ही देर में मैंने ट्रेकर वाले को पकड़ लिया। फिर क्या था, बिना बन्द हुए मेरी मोटर-साइकिल 60-70 की रफ्तार से चलती हुई ट्रेकर को कभी पीछे छोड़ती, फिर साथ ले लेती। एक सौ दस किलोमीटर की यात्रा मैंने मात्र ढाई घण्टे में पूरी कर ली। फिर दूसरे दिन मुंगेर में मेकेनिक के पास जब मोटर-साइकिल लेकर गया तो करीब 18 किलोमीटर की दूरी तय करने में पाँच बार बन्द हुई!

एक बार ऋषिकेश से स्वामी चिदानन्द महाराज रिखिया पधारे थे। उनके दर्शन का समय दोपहर 12 से 1 बजे तक निर्धारित था। मेरे छोटे भाई को संत-दर्शन का निमंत्रण मिला था। वे संयोगवश भागलपुर से गाँव आ गये, जहाँ उन्होंने मुझे बताया कि अगले दिन रिखिया में दोपहर के समय संत-दर्शन का सुअवसर है, मुझे निमंत्रण मिला है, मैं तो जरूर जाऊँगा। मैंने सोचा गुरु के यहाँ जाने में निमंत्रण की क्या जरूरत है और निश्चय किया कि कल मैं भी मोटर-साइकिल से चलकर रिखिया पहुँचूँगा।

दूसरे दिन मैं एक साथी को लेकर घर से 8 बजे सुबह चला। बारह बजने में अभी बीस मिनट बाकी थे और हम आश्रम के मुख्य द्वार पर पहुँच गये। मोटर-साइकिल एक तरफ खड़ी करके हम दोनों अन्दर जाने की कतार में लग गये। करीब पाँच मिनट बीते होंगे कि स्वामी निरंजन जी आये, और उन्होंने पूछा कि बरियारपुर से कौन लोग आये हैं। हम दोनों ने हाथ खड़ा किया। उन्होंने हमें बुलाया और गणेश कुटीर साथ लेकर गये। हम लोग स्वामीजी के पीछे-पीछे चल रहे थे। जैसे ही अन्दर पहुँचे, पूज्य गुरुदेव ने पूछा, 'कौन आया है निरंजन!' उन्होंने हम लोगों की ओर इशारा किया। गुरुदेव ने कहा, 'संत-दर्शन के लिए बुलाया है, यहाँ आकर बैठ जाओ।' और सबसे पास वाली पंक्ति में बैठा दिया। लगा कि हमारा रोम-रोम गुरुकृपा की वृष्टि से भीग गया है। हम लोग सबसे पहले बैठे और सबसे अन्त में उठे।

विगत एक वर्ष से मेरी कुछ निजी समस्या चली आ रही थी। अन्दर से थोड़ा परेशान रहा करता था। वर्ष 2009 के शतचण्डी यज्ञ में हम लोग बच्चों सहित सम्मिलित थे। तीसरे दिन मण्डप परिक्रमा चल रही थी। मैं तपोवन परिसर में गेट ड्यूटी पर था। अचानक मेरे मन में ख्याल आया, क्यों न मैं माँ से अपनी समस्या कह दूँ। यह सोचकर मैं गेट छोड़कर माँ से आरजू करने चल दिया। मैं तपोवन भवन के पास पहुँचा ही था कि मुझे लगा पूज्य गुरुदेव मुझे ही देख रहे हैं और मानो कह रहे हैं, 'माँ को मालूम है कि तुम्हें क्या

चाहिए।' मेरी आँखें गुरुदेव के इस मूक आशीर्वाद से नम हो गईं। मैं तुरन्त अपनी ड्यूटी पर लौट गया। और एक महीना बीतते-बीतते मेरी समस्या का सुन्दर समाधान हो गया।

वैसे तो गुरु महाराज के बारे में जितनी बातें बतायी जायें कम हैं। सांसारिक झंझावातों से संतप्त दीन-दु:खियों पर जिस तरह वे अपने आशीष लुटाते हैं, वह बेमिसाल है। आज भी हम अपने जीवन में उनकी कृपा का अनुभव करते हैं।

–अवधेश सिंह, जवायत

गुरु चरणों में सविनय समर्पित

सन् 1964 का मार्च महीना, संध्या का समय और प्यासा हिरण जैसे रेगिस्तान में पानी की खोज में भटकता है, मेरी स्थिति भी कुछ ऐसी ही थी। लेकिन मुझे रेगिस्तान में एक आश्चर्य मिला और मेरी प्यास को विराम लग गया और यह मीठा नहीं अति मीठा जल मुझे किसी अनजान संन्यासी के चरणों में मिला, जब मुझे महामानव श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के दर्शन हुए। स्वामी सत्यानन्द सरस्वती युग-पुरुष थे, जिनकी छाया तले हमारा परिवार फलता-फूलता, हँसी-खुशी के साथ जीवन व्यतीत कर रहा था। मैं और मेरी पत्नी ने विद्यालय में चल रहे आसन-प्राणायाम के सत्रों में भी भाग लिया। पत्नी जब तक जीवित रहीं, आसन-प्राणायाम करती रहीं। परिवार में अनेक उतार-चढ़ाव भी आए, लेकिन उनके आशीर्वाद से सब कुछ संभल गया।

5 दिसम्बर सन् 2009 को रात्रि के समय अचानक मैं बेचैन हो गया, लगा कुछ बहुत-ही बहुमूल्य वस्तु खो गयी। मुझे लगा वह बंधन से मुक्त होने की प्रक्रिया थी, जैसे वे कह रहे हैं–अब मैं चला, तुम लोग खुश रहो। यह सुन मैं अवाक् हो गया, आँखों से आँसू टपक पड़े। फिर क्या था, रात से सुबह हो गयी। मन बेचैन था, तभी मेरे एक दोस्त आए और बोले, 'तुम्हारे गुरुदेव ने महासमाधि ले ली।' मुझे रात में घटित घटना, जो एक स्वप्न था, वह सही प्रतीत हुई। मेरे संत, मेरे सुख-दु:ख के भागीदार ने मुझसे नाता तोड़ लिया था, लेकिन जैसे आश्वासन दे रहे हों कि 'तुम घबराना नहीं, मैंने अपनी सारी विद्या अपने मानस पुत्र स्वामी निरंजन को दे दी है, वे तुम्हें संभालेंगे।' यह तो दुनिया की रीति है, इसे कौन झुठला सका है। गुरुदेव के आश्वासन का आभास पाकर मन को तसल्ली मिली।

आदरणीय परमहंस जी के सान्निध्य में कुछ ऐसे पल थे, जिनको हम साधारण मनुष्य चमत्कार ही मान सकते हैं। नीचे कुछ संस्मरण हैं, जो मेरे साथ घटित हुए और जिन्हें मैं आजन्म नहीं भूल सकता।

मेरे मँझले लड़के के बायें हाथ की हड्डी साइकिल से गिर जाने के कारण टूट गयी थी, लेकिन कुछ कारणवश 'एक्स-रे' नहीं हो सका और हम लोग उसे लेकर घर लौट रहे थे। संध्या का समय था, देखा विद्यालय का गेट खुला हुआ है। मैं और मेरी पत्नी अंदर चले गये, गुरुजी के चरण-स्पर्श किये और एक ओर बैठ गये। उन्होंने पूछा, 'क्या हुआ?' लड़के को लेकर गुरुजी के पास गये। सूजा हुआ हाथ देखकर उन्होंने लड़के को अपनी गोद में बैठा लिया और हाथ से सहलाते हुए बोले, 'कुछ नहीं हुआ है, गर्म पानी में जरा-सा नमक डालकर सेंक देना।' हम लोग घर आये और सेंक दिया, फिर उसे कभी दर्द नहीं हुआ, वह पूरी तरह स्वस्थ था!

मैं अपनी पत्नी का इलाज एम्स, दिल्ली में करवा रहा था। डॉक्टर के निर्देशानुसार साल में दो बार दिल्ली जाना पड़ता था। मैंने गुरुजी से कहा, दिल्ली जाना है। तो उन्होंने कहा, 'जाओ, घूम-फिर कर आना।' जब मैं दिल्ली के अस्पताल में गया तो मालूम हुआ कि डॉक्टर जर्मनी गये हैं और उनको लौटने में समय लगेगा। हम लोग वापस अपने घर मुंगेर आ गये। आश्रम जाकर मेरी पत्नी गुरुजी से ऐसे बात कर रही थी जैसे एक बच्चा अपने माँ-बाप से झगड़ा करता है, और गुरुजी मेरी पत्नी की बात सुनकर हँसते रहे।

मैं और मेरी पत्नी ने आपस में एक फैसला किया कि गुरुजी को होली के दिन अपने यहाँ आमंत्रित किया जाय। कुछ लोगों से विचार-विमर्श किया, तो उन लोगों ने कहा, 'गुरुजी जब गोयनका जी के यहाँ भोजन करने नहीं जाते, तब आप ऐसा प्रयास करने की जिद क्यों करते हैं?' मैं और मेरी पत्नी थोड़ा निराश हो गये, किन्तु मन में संशय लिये हुए गुरुजी के चरणस्पर्श कर खड़े हो गये। युग-पुरुष तो महान् थे, वे हमारे मन की उलझन को समझ गये और उन्होंने खुद प्रश्न किया, 'क्या बात है? कुछ बोलना चाह रहे हो, पर बोल नहीं रहे हो।' तब मेरी पत्नी ने अपने मन की बात कुछ सकुचाते हुए गुरुजी के सामने रख दी कि हम लोग चाहते हैं कि आप एवं अन्य संन्यासी होली के दिन हमारे यहाँ पधारें। उन्होंने कहा, 'तुम तो जानती हो कि मैं किसी के यहाँ नहीं जाता।'

गुरुजी के मुख से ऐसा सुनकर हम लोगों की आँखों में आँसू आ गये। उन्हें विचारमग्न देखकर हम लोगों ने कहा कि इस बार हम लोग होली नहीं

मनायेंगे। यह सुनकर गुरुजी को पता नहीं क्या हुआ, उन्होंने कहा, 'नहीं जी, ऐसा मत बोलो, हम सभी आश्रमवासियों के साथ दस बजे आयेंगे, वहीं कीर्तन-भजन होगा।' मेरे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा, मन तो जैसे काबू में नहीं आ रहा था। वहीं कुछ महिलाएँ थीं, तुरंत गुरुजी से बोल पड़ीं, 'हम लोगों ने भी आपसे अनुरोध किया था, पर आपने कहा कि मैं आश्रम के बाहर नहीं जाता।' इस पर गुरुजी बोल पड़े, 'कान्ता (मेरी पत्नी) मेरी पुरानी सखा है, इसे मैं कभी इन्कार नहीं कर सकता।' होली के दिन हम लोगों के लिए महामानव का आना और कीर्तन-भजन का होना एक ऐतिहासिक क्षण था। यह कार्यक्रम हम लोगों के यहाँ सन् 1985 तक चलता रहा, जिसे याद कर हम लोग अभी भी अपने को गौरवान्वित महसूस करते हैं।

जिस दिन उन्होंने मुंगेर से विदा ली, उस दिन सुबह लगभग साढ़े पाँच बजे मेरे यहाँ एक गाड़ी आकर रुकी। उस समय मैं गौ-सेवा कर रहा था। गौ-सेवा का आदेश गुरुजी का ही था और मैं अपने कर्म में मग्न था। इधर घर की बैठक में युग के महान् संत, मेरे गुरुजी और स्वामी अमृतानन्दजी बैठे हुए थे। जब मैंने गाड़ी देखी तो पहचान लिया और दौड़े-दौड़े घर के अंदर आया। देखा मेरे धर्मपिता शान्तचित्त बैठे हुए हैं, मेरे मुँह से चीत्कार-सा निकल गया। उन्होंने पूछा, 'कान्ता कहाँ है?' मेरी पत्नी जो उस समय सोई हुई थी, आवाज सुनकर उठ गयीं। मुँह पर पानी का छींटा मारते हुए वे गुरुजी के चरणों में गिर पड़ीं। हम लोगों ने बहुत अनुरोध किया कि वे मुंगेर न छोड़ें, पर उन्होंने तो अटल निर्णय ले लिया था, जिसे तोड़ने का साहस हम साधारण मनुष्यों को नहीं था।

रिखिया जब गुरुजी का पावन धाम बन गया, उस समय मैं जसीडीह में अपनी सरकारी सेवा पर था। समय मिलने पर मैं गुरुजी का आशीर्वाद लेने चला जाता। गुरुजी हाल-समाचार पूछ लेते और कहते, 'शर्माजी, साढ़े दस हो गया है, आप ऑफिस जाओ।' गुरुजी के पास से जाने का मन नहीं करता, परन्तु समय से बँधे रहने के कारण भारी मन लेकर उठता।

उनके सान्निध्य में ऐसे बहुत-से पल थे जिन्हें हम आजीवन नहीं भूल सकते। उनकी कृपादृष्टि अभी भी मुझ पर और मेरे परिवार वालों के ऊपर बनी हुई है। हम लोग उनके आशीर्वाद तले अपनी जिन्दगी गुजर-बसर कर रहे हैं और आशा ही नहीं हमें पूर्ण विश्वास है कि उनकी छत्र-छाया में हमारा पूरा परिवार हँसी-खुशी फलता-फूलता रहेगा।

–के. सी. शर्मा, मुंगेर

स्वामी सत्यानन्द जी के सान्निध्य में मेरे संस्मरण

स्वामी सत्यानन्द जी अपने गुरु स्वामी शिवानन्द जी के आदेश की पूर्ति के लिए मुंगेर आये और योग के प्रचार के लिए उन्होंने यहाँ बिहार योग विद्यालय की स्थापना की। अपने गुरु आश्रम में वे अथक परिश्रम करते थे और जीवन पर्यन्त कर्मयोगी का जीवन जीते रहे।

स्वामीजी से मेरा सम्पर्क सन् 1963 में हुआ, जब वे आनन्द भवन में रहते थे। उस समय मेरी अवस्था लगभग 36 वर्ष की थी। स्वामीजी ने मुझे योग अपनाने की प्रेरणा दी और आसन-प्राणायाम आदि बतलाये। उन्होंने कहा कि शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के लिए योग अति आवश्यक है। और इसका लाभ मुझे मिला। इच्छुक व्यक्तियों को मैंने योग सिखाना भी शुरू किया। स्वामीजी कहते थे कि योग विश्व में एक संस्कृति के रूप में उभरेगा और यह मानव कल्याण का एक साधन होगा। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए बिहार योग विद्यालय की स्थापना हुई और योग के प्रसार के लिए योग शिक्षक तैयार करने का कार्यक्रम बना।

उस समय बिहार योग विद्यालय का कार्यालय शिवानन्द आश्रम में था। गवर्निंग बॉडी की मीटिंग वहीं होती थी। प्रेमनीति बाबू, कल्लू बाबू और मैं उसके सदस्य थे, इसलिए स्वामीजी से मिलने का अवसर बराबर मिलता था। उन दिनों बिहार योग विद्यालय के विकास के लिए कर्णचौड़ा की जमीन मिली थी। नए काम में कुछ-न-कुछ समस्याएँ आती ही हैं। आयकर विभाग में कुछ कठिनाई हो रही थी।

इसी सिलसिले में एक दिन स्वामीजी ने मुझे खबर दी कि आप फिर पटना जाइये। स्वामी वज्रपाणी को मेरे साथ भेजा। उन्होंने कहा कि अच्छे काम में बाधाएँ आती ही हैं, पर विचलित नहीं होना। मैं स्वामी वज्रपाणी के साथ दुबारा पटना गया। आयकर अधिकारियों का आश्चर्यजनक सहयोग मिला। उन्होंने कहा कि यह लोक-कल्याण की संस्था है और इसमें बाधा नहीं होनी चाहिए। कर्णचौड़ा पर आश्रम निर्माण के सभी व्यवधान हटा दिये गये। मुझे पूरा विश्वास है कि यह स्वामीजी की महिमा ही थी।

एक संस्मरण और है। स्वामीजी मुंगेर छोड़कर रिखिया चले गये थे। उसके बाद एक बार मैं, प्रेमनीति बाबू और कल्लू बाबू रिखिया गये थे। स्वामीजी लकड़ी के तख्ते के झूले पर बैठे हुए थे। स्वामीजी ने कहा कि मेरी इच्छा है कि आप लोग मेरे साथ झूले पर बैठें। मैं और प्रेमनीति बाबू स्वामीजी

के साथ झूले पर बैठे। स्वामीजी ने कल्लू बाबू को झूले पर बैठने के लिए कहा, लेकिन कल्लू बाबू तख्ते पर नहीं बैठे, स्वामीजी के चरणों के पास नीचे बैठे। स्वामीजी ने फोटो खिंचवाया और फिर खिलखिलाकर हँसने लगे। ऐसी आत्मीयता और सान्निध्य था स्वामीजी में।

एक और आश्चर्यजनक घटना। मैं एक बार यज्ञ के समय रिखिया गया था। कार्यक्रम चल रहा था। मैं जहाँ बैठा था वहाँ से थोड़ी दूर पर स्वामीजी बैठे हुए थे, लेकिन मुझे दिखाई नहीं दे रहे थे। मेरी हार्दिक इच्छा थी कि स्वामीजी से मिलूँ। लेकिन भीड़ पार करके जाना सम्भव नहीं था। थोड़ी देर में कीर्तन शुरू हुआ। लोग खड़े हो गये और कीर्तन करने लगे। स्वामीजी भी खड़े होकर कीर्तन करने लगे और नाचते-नाचते मेरे सामने आ गये और मेरे हाथ पकड़ कर नाचने लगे। मेरी इच्छा उन्हें ज्ञात हो गई। मेरा मन श्रद्धा और भक्ति से विभोर हो गया था! ऐसी और भी कई स्मृतियाँ हैं।

स्वामीजी ने योग को अधिक व्यावहारिक दिशा देने के लिए योग रिसर्च फाउण्डेशन की भी स्थापना की। उन्होंने योग को विश्व के कोने-कोने तक पहुँचा दिया और पाश्चात्य देश में रहने वालों के मन में विश्वास पैदा कर दिया कि भारत के पास ज्ञान-विज्ञान का अपार भण्डार है। इसके अलावा सेवा की दिशा में बढ़कर शिवानन्द मठ की स्थापना, जिससे गरीब दुखियों और असहाय लोगों की सहायता की जा सके। स्वामीजी का पार्थिव शरीर आज हमारे बीच नहीं है लेकिन उनकी आत्मा हम लोगों के बीच विचरती हुई हमें प्रेरणा दे रही है और देती रहेगी। सचमुच स्वामीजी मानव रूप में साक्षात् देव-शक्ति थे।

–रामगोपाल खण्डेलिया, मुंगेर

श्री स्वामी सत्यानन्द जी–एक संस्मरण

बात सन् 1955-56 की है। एक दिन मेरे चाचा जी ने बताया कि अपने समीपस्थ गाँव रायपुर कर्चुलियान में एक बहुत अच्छे संन्यासी आये हुये हैं, जिन्हें देखने और सुनने के लिये हमेशा लोगों की भीड़ लगी रहती है। यह सुनकर मैं भी स्वामी जी के दर्शन का लोभ संवरण न कर सका और अपने आवश्यक काम निपटाकर अपने दो-एक संगी-साथियों के साथ जा पहुँचा रायपुर। श्री स्वामीजी इन दिनों रायपुर में श्री नरेन्द्र सिंह के आवास पर ठहरे

हुए थे, जो ऋषिकेश के परमगुरु स्वामी शिवानन्द जी के शिष्य थे। एक गुरुभाई के नाते स्वामी जी की श्री नरेन्द्र सिंह जी के प्रति विशेष आत्मीयता और स्नेह था और इसी कारण जब स्वामी जी अपने परिव्राजक काल में पूरे देश का भ्रमण कर रहे थे, बरसात में चातुर्मास व्यतीत करने के लिये उन्होंने विशेष रूप से इस स्थान का चुनाव किया था।

यहाँ पर यह बता देना प्रासंगिक होगा कि रायपुर कर्चुलियान नामक ग्राम मध्यप्रदेश के रीवा जिले में रीवा नगर से 28 किलोमीटर दूर, हाईवे नं. 6, जबलपुर-वाराणसी मार्ग पर स्थित है। यह एक ऐतिहासिक गाँव है, जो कभी वीरभूमि के नाम से जाना जाता था। यहाँ एक से बढ़कर एक शूरवीर हस्तियाँ हुईं जिनके अमित शौर्य, त्याग, बलिदान, दानशीलता और न्याय की कहानियाँ किसी समय घर-घर सुनी जाती थीं, लेकिन समय बीतने के साथ कालान्तर में इसका भारी पतन हुआ। और जिन दिनों स्वामी जी का यहाँ पहली बार आगमन हुआ, इस गाँव की हालत काफी खराब थी। गाँव में निपट गरीबी और बेकारी थी, आये दिन चोरी और सेंधमारी आम बात थी। समाज में कुरीतियाँ, अंधविश्वास, अन्याय और अधर्म फल-फूल रहे थे। देश की स्वाधीनता के बाद भी यह गाँव पूरी तरह उपेक्षित था। उन दिनों यहाँ कोई राजनीतिक पार्टी नहीं थी, बल्कि तीन प्रमुख सरदारों-श्री रविनन्दन सिंह, श्री शत्रुसूदन सिंह और श्री मोहन सिंह के बीच पूरा क्षेत्र विभक्त था, और इन तीन चक्कियों के बीच क्षेत्र की जनता बुरी तरह पिस रही थी। इनकी हमेशा आपस में रंजिश और मारा-मारी मची रहती थी। जो कोई कसर बाकी थी, उसे शराब ने पूरा कर दिया था। वहाँ अन्य सुख-सुविधाओं की भले ही कमी हो, लेकिन शराब की होली जरूर थी। राजपूत घरानों के बिगड़े हुए लड़के हमेशा दारू के नशे में चूर रहते थे तथा गाली-गलौच, लड़ाई-झगड़ा व मारपीट के कार्यों में लिप्त रहते थे, जिससे गाँव में सर्वथा भय और अविश्वास का वातावरण व्याप्त था।

इस भीषण परिस्थिति में इस गाँव के जागरण व उद्धार के लिये स्वामी जी का आगमन यहाँ शायद दैव-निर्दिष्ट था, इसीलिये वे आये। हम लोग भी सचमुच में बड़े भाग्यशाली थे। जिस दिन हम पहली बार श्री स्वामीजी के पास पहुँचे, उसी समय सौभाग्य से वे रायपुर ग्रामवासियों की एक सभा को सम्बोधित करने वाले थे और वहाँ पहले से ही भारी जन-समुदाय एकत्र था। यह सभा श्री नरेन्द्र सिंह जी की हवेली के सामने और वहाँ के एक पुराने मन्दिर

के बीच खुली चौगान में चल रही थी। हमने वहाँ जाकर देखा कि एक ऊँचे तख्त पर श्री स्वामीजी विराजमान हैं। एक तेजस्वी युवा संन्यासी जिनका एक विशेष चुम्बकीय आकर्षण था व जिनके सौम्य चेहरे से एक मधुर मुस्कान और आभा बिखर रही थी। हमने स्वामीजी को प्रणाम किया। श्री नरेन्द्र सिंह जी से हमारे अच्छे सम्बन्ध थे। अत: उन्होंने स्वामी जी से हमारा परिचय कराया और हमने सभा में अपना स्थान ग्रहण किया।

अपने निर्धारित समय पर सभा प्रारम्भ हुई। सर्वप्रथम श्री स्वामीजी ने अपने भक्तिपूर्ण गीतों से एक समा बाँध दिया, तदुपरान्त शुरू हुआ उनका प्रवचन। स्वामीजी ने अपने प्रवचन में इस ग्राम के गौरवमय अतीत का स्मरण दिलाते हुए इसकी वर्तमान हालत पर लोगों का ध्यान आकृष्ट किया और इसकी ज्वलन्त समस्याओं और उसके कारणों पर गहरी चोट की। उन्होंने अपने निर्भीक शब्दों में कहा कि आपसी रंजिश, कलह और वैमनस्य से यह गाँव रसातल की ओर जा रहा है। रविनन्दन सिंह कहते हैं कि शत्रुसूदन सिंह बहुत खराब है, शत्रुसूदन सिंह कहते हैं कि मोहन सिंह बहुत खराब है और मोहन सिंह कहते हैं कि रविनन्दन सिंह बहुत खराब है। टोटल हुआ तीनों खराब। अच्छा हो कि परस्पर में लड़ने-झगड़ने के बजाय लोग अपनी शक्ति का प्रयोग आपसी मेल-जोल और सृजनात्मक कार्यों में करें जिससे गाँव का विकास व हित हो सके। उन्होंने इस ग्राम के नवनिर्माण के लिये एकजुट होकर लोगों का आवाहन किया और इस गाँव के प्रति अपनी शुभकामना व्यक्त करते हुए कहा कि मैं चाहता हूँ कि यह गाँव वृन्दावन बने, जिसकी गलियों में हम जैसे साधु नित्य सुबह झाड़ू लगाया करें।

स्वामीजी की इस तेजस्वी वाणी को सुनकर जनता मंत्रमुग्ध थी, उनके एक-एक शब्द गोली के समान लोगों के मर्म पर गहरी चोट कर रहे थे। इसके पहले लोगों ने ऐसी वाणी कभी नहीं सुनी थी। स्थानीय जनता जहाँ पहले तीन प्रमुख ठाकुरों से थर-थर काँपती थी, वहीं भरी सभा में स्वामीजी की निर्भीक हुँकार को सुनकर अवाक् रह गई। स्वामीजी के प्रवचन से लोगों को बड़ी प्रेरणा मिली।

स्वामीजी के इस तेजस्वी व्यक्तित्व एवं उनकी सद्भावनाओं का मुझपर भी गहरा प्रभाव पड़ा। फिर तो चस्का ऐसा लगा कि जब तक दिन में एक बार स्वामीजी से मिल न लेता तब तक चैन ही न पड़ती थी। रायपुर में अपने निकट का बाजार था, वहाँ स्कूल था, पोस्ट ऑफिस था और वहीं के मजदूर

अपने खेतों पर काम करने आते थे। अतएव किसी-न-किसी बहाने स्वामीजी से भेंट हो ही जाती थी। वे सर्वथा अपने आत्मीय लगे, जिनसे हम पूरी तरह अपना दिल खोलकर बात कर सकते थे। उन्होंने भी हमें अपना भरपूर स्नेह दिया और बराबर हमारा उत्साहवर्द्धन किया। तब मेरी उम्र 24 वर्ष की थी और मन में भारी उमंग, दिल में कुछ करने और बनने की एक आग थी। स्वामीजी अक्सर कहा करते थे कि विश्वविद्यालय नहीं, ठोकर और घूँसे ही आदमी को सच्चा इंसान बना देते हैं।

चाहे कोई गरीब हो या अमीर, छोटा हो या बड़ा, हमने देखा कि सबके लिये स्वामीजी का दरवाजा हमेशा खुला रहता था। सबको वे समान दृष्टि से देखते थे और सब पर समान रूप से अपना प्यार और स्नेह लुटाया करते थे। वे हमेशा लोगों से घिरे रहते थे। उनकी बातें हम सब बड़े ही गौर से सुनते और कब कितना समय गुजर गया, इसका पता ही न चलता।

जब उनके पास कोई न होता, तब प्राय: वे छोटे-छोटे बच्चों को अपने चारों ओर इकट्ठा कर लेते और हारमोनियम पर उनका गीत शुरू हो जाता। वे स्वयं गाते और बच्चों से गवाते। 'कैसे छुवैं प्रभु के चरनियाँ, हे मैं तो जात के भिलनियाँ' जैसे सुन्दर और आर्त्तभाव से प्लावित उनके गीत सबको भाव-विभोर कर देते थे। वे बहुत अच्छा गाते थे तथा उनका स्वर भी अत्यन्त मधुर था। जब वे अपने उच्च स्वर में 'माझी! ओ माझी!! कितनी दूर किनारा' गीत गाते, तब हम लोग अनायास ही अपने तन-मन की सुधि खोकर किसी और ही लोक में विचरण करने लगते थे। इसी तरह 'शिवोऽहम् शिवोऽहम्' 'नमामीशमीशान निर्वाणरूपं' 'दर्शन दो घनश्याम नाथ ये अँखियाँ प्यासी रे' आदि उनके प्रिय गीत थे। गुरु स्तोत्रम् तो वे गाते ही रहते थे।

और कुछ समय बाद रायपुर ग्राम में तो स्वामीजी का जादू सिर चढ़कर बोला। श्री रविनन्दन सिंह, जो उन दिनों उस क्षेत्र के बेताज बादशाह थे और जिन्होंने कभी किसी के सामने सिर नहीं झुकाया था, वे स्वामीजी के पूरे भक्त बन गये। यह सुयोग पाकर स्वामी जी ने नरेन्द्र सिंह जी, जिन्हें वे 'प्रेमशक्ति' कहते थे, के आवास से चलकर श्री रविनन्दन सिंह जी के घर में आसन जमाया। और जिस घर में पहले मदिरा के पियक्कड़ों व अवांछित तत्त्वों का हमेशा जमघट लगा रहता था, वहीं पर अब स्वामीजी के भजन, कीर्तन और प्रवचन चलने लगे। निश्चित रूप से सत्संग का प्रभाव तो होता ही है, यहाँ पर भी कुछ ऐसा ही नजारा देखने को मिला। 'सठ सुधरहिं सतसंगति पाई'

के अनुसार यहाँ के वातावरण का प्रवाह भी अब उलटी दिशा में अशुभ से शुभ की ओर मुड़ता हुआ परिलक्षित हुआ। किसी के सामने न झुकने वाले रविनन्दन सिंह अब स्वामीजी के समक्ष छोटे से आज्ञाकारी बालक जैसे बन गये। उन्होंने अपनी दण्ड-बैठक की कसरत छोड़ दी और योगासन करने लगे। स्वामीजी का निर्देश पाते ही वे 4 बजे सुबह लंगोट पहनकर सीधे शीर्षासन में खड़े हो जाते थे। स्वामीजी के सत्संग से उनके आचरण में काफी परिवर्तन हुआ। इस तरह बहुत-से लोग स्वामीजी के उपदेशों से प्रभावित हुए और कई लोग स्वामीजी के शिष्य बने जो कालान्तर में प्रशिक्षण के लिये मुंगेर विद्यालय भी गये। इनमें से 'धर्मदास मिश्रा' का नाम प्रमुख है, जिन्हें स्वामीजी ने संन्यास दीक्षा दी।

यद्यपि रायपुर एक बड़ा गाँव यानी कस्बा था, लेकिन राजनीतिक दृष्टि से उपेक्षित होने के कारण उसका समुचित विकास अवरुद्ध था और वह अपने अधिकारों से वंचित था। जनपद क्षेत्र के मध्य में होने के बावजूद क्षेत्र के नेता और विधायक लोग गलत तरीके से जनपद कार्यालय को सुदूर किनारे पर अपने गाँव में ले जाने को आतुर थे। हमें अच्छी तरह याद है, उन्हीं दिनों रायपुर पंचायत में मध्यप्रदेश के पंचायत डॉयरेक्टर आये हुए थे। सौभाग्य से स्वामीजी उस सभा में मौजूद थे। स्वामीजी ने उस सभा में जनपद कार्यालय के लिये रायपुर का पक्ष इतने सबल ढंग से प्रस्तुत किया कि डॉयरेक्टर को उनकी बात माननी पड़ी और अन्ततः नेताओं के विरोध के बावजूद सरकार को रायपुर में जनपद का मुख्यालय खोलना पड़ा।

कुछ समय बाद स्वामीजी का रायपुर में पुनः आगमन हुआ। अबकी बार उनके साथ उनकी शिष्या लीला श्रीवास्तव व लीला जी के पुत्र भी थे। इस बार स्वामीजी श्री नरेन्द्र सिंह जी के यहाँ ठहरे हुए थे, जहाँ पर नित्य शाम को लीला जी एवं स्वामीजी के प्रवचन होते थे, तथा समय-समय पर लीला जी व उनके पुत्र आसनों का प्रदर्शन करते व स्वामीजी उनसे होने वाले लाभों पर प्रकाश डालते थे।

इसी तरह सन् 1960 में स्वामीजी का आगमन ग्रीष्म काल में हुआ था। इस दौरान हम लोगों के विशेष आग्रह पर स्वामीजी ने हमारी एक सामाजिक संस्था, 'उत्थान मण्डल' के पंचदिवसीय शिविर में भाग लिया था, जो रायपुर के शासकीय विद्यालय में आयोजित हुआ था। इस शिविर के दौरान नित्य सुबह 4 बजे सभी प्रतिभागी योगासन करते थे, जिनका प्रदर्शन स्वामीजी के

निर्देशन में श्री रविनन्दन सिंह जी करते और उनका अनुकरण सभी शिविर के लोग करते थे।

इसी शिविर के दौरान एक विशेष सभा रायपुर की हरिजन बस्ती में हुई, जिसमें बड़ी संख्या में विभिन्न समुदायों से हरिजन एकत्रित हुए। वहाँ एक साथ सबका भोजन-पानी भी हुआ। इस सभा में पूरे समय तक स्वामीजी की उपस्थिति उल्लेखनीय रही। इस महती सभा को सम्बोधित करते हुए स्वामीजी ने यह कहकर सबको चौंका दिया कि भगवान सबसे बड़े चमार हैं। बाद में इसकी व्याख्या करते हुए उन्होंने बताया कि चमड़े का काम करने वाले लोग चमार कहे जाते हैं। भगवान ने सभी जीव-जन्तुओं और हम मनुष्य का शरीर चमड़े से ही बनाया है, इसलिये वे सबसे बड़े चमार हैं। इस तरह की विचारधारा रायपुर ग्राम के लिये एक ऐतिहासिक क्रान्ति थी।

इसी शिविर में उत्थान मण्डल के सदस्यों की ओर से 'नवप्रभात' नामक एक नाटक खेला गया, जिसमें स्वामीजी के प्रयास एवं प्रभाव के फलस्वरूप पहली बार रायपुर के राजपूत घरानों की महिलाओं ने पर्दा प्रथा का परित्याग कर इसमें भाग लिया। इस अभिनय के दौरान पूरा पण्डाल दर्शकों से खचाखच भरा था। नाटक में वर्तमान समय में व्याप्त सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं धार्मिक बुराइयों का दिग्दर्शन व समाधान के रूप में आध्यात्मिक मूल्यों पर बल दिया गया था। इस नाटक को देखकर स्वामीजी इतने अभिभूत व प्रसन्न हुए थे कि अपना हर्ष और धन्यवाद व्यक्त करते हुए अपना भगवा आँचल पात्रों के कन्धे पर डाल दिया।

सन् 1961 में उत्थान मण्डल का ग्रीष्मकालीन शिविर गोबिन्दगढ़ में हुआ, जिसमें हमारे विशेष आमंत्रण पर श्री स्वामीजी पधारे और फिर इस शिविर में भी पाँच दिनों तक रहे। अबकी बार स्वामीजी बस से इलाहाबाद होते हुए अपने दो बड़े ट्रकों के साथ आये थे, जिनमें फिल्म दिखाने के उनके प्रोजेक्टर, स्क्रीन और टेपरिकॉर्डर आदि यंत्र थे। साथ में उनकी शिष्या लीला जी भी थीं। इस शिविर में उत्थान मण्डल के अतिरिक्त भारत सेवक समाज व हरिजन सेवक संघ के कार्यकर्ता भी शामिल हुए थे। नगरपालिका गोबिन्दगढ़ का पूरा सहयोग प्राप्त हुआ था। स्वामीजी ने पूरे शिविर का मार्गदर्शन किया तथा प्रोजेक्टर के माध्यम से योगासन आदि का प्रदर्शन किया, जिससे हजारों लोग लाभान्वित हुए। इस शिविर में श्री नरेन्द्र सिंह, श्री रविनन्दन सिंह, लीला जी सहित राजनाँदगाँव के सत्यव्रत जी और धर्मशक्ति जी भी

शामिल हुए थे और यहीं पर 'योग मित्रमण्डल' नामक संस्था की रूपरेखा तैयार हुई थी।

इस शिविर की समाप्ति के बाद स्वामीजी ने अपना कुछ समय पुन: रायपुर ग्राम में श्री नरेन्द्र सिंह जी के निवास पर बिताया और अपनी उपस्थिति से ग्रामवासियों में एक नई स्फूर्ति और चेतना का संचार करते रहे। स्वामीजी का इस गाँव के जागरण और उत्थान में जो योगदान है, वह कभी भुलाया नहीं जा सकता।

इसके पश्चात् श्री स्वामीजी का कार्यक्षेत्र बढ़ता गया तथा भारत के बाहर यूरोप, अफ्रीका, अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया आदि अनेक देशों में उनकी यात्राएँ होने लगीं, मुंगेर में आश्रम बना, जिससे उनकी व्यस्तता निरन्तर बढ़ती गई और उनका रायपुर में आना नहीं हुआ। हाँ, एक बार रीवा नगर में उनका कार्यक्रम अवश्य हुआ था। इस दौरान वे वहाँ के स्वागत भवन में ठहरे थे, जहाँ पर उनसे मिलने हम लोग गये थे।

हमारे क्षेत्र में स्वामीजी का आवागमन बन्द हो जाने के बावजूद उनका सम्पर्क लोगों से बना रहा, उनका स्नेह और उनकी कृपा बराबर बनी रही। व्यक्तिगत रूप से मैं उनके अमित स्नेह के प्रति अत्यंत ऋणी और आभारी हूँ। अपने रायपुर प्रवास में तीन बार वे हमारे घर पधारे, भोजन ग्रहण किया, फिर हमारे गाँव महसुबा के ग्रामवासियों को सम्बोधित किया तथा उन्हें योगासन और प्राणायाम का प्रशिक्षण दिया, जिसका पर्याप्त प्रभाव पड़ा। हमारे गाँव के प्राय: सभी नवयुवक नियमित रूप से आसन करने लगे, जिससे उनके स्वास्थ्य में सुधार हुआ। उन दिनों मुझे एलर्जी की शिकायत थी, जिस कारण मैं छींक और सर्दी से ग्रस्त रहता था। इसके लिये स्वामीजी ने मुझे नेति क्रिया का अभ्यास करवाया और नित्य सुबह उषापान व नाक से एक गिलास गुनगुना दूध पीने की सलाह दी, जिसका पालन मैं लम्बे समय तक करता रहा।

पत्रों के माध्यम से काफी समय तक स्वामीजी के साथ सम्पर्क बना रहा। कोई भी समस्या अथवा कठिनाई हो, पत्र के माध्यम से उन्हें सूचित करता और स्वामीजी बराबर उसका उत्तर देते थे। मोती जैसे सुन्दर अक्षरों से अंकित उनके पत्र कितने प्रेरक होते थे, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। गुरुपूर्णिमा के अवसर पर स्वामीजी स्वयं पत्र लिखकर अपनी चेतना का संचार करते थे।

कई वर्षों तक मैं श्री स्वामीजी का डाकिया बना रहा। समय-समय पर योगसाधना भाग 1 एवं 2, योगनिद्रा तथा आसन-प्राणायाम सम्बन्धी ढेर सारी

प्रकाशित सामग्री मेरे पास आती रही, जिसे मैं अपने साइकिल के कैरियर में रखकर रायपुर, महसूबा व बरेही आदि गाँवों में स्वामीजी के प्रेमियों और श्रद्धालुओं को वितरित करता था।

सन् 1976 के दौरान स्वामीजी फिर हमारे निकटस्थ हाईवे नं. 6 से गुजरे। अबकी बार वे अकेले नहीं थे, बल्कि उनके साथ पाँच-छः कारों का एक काफिला था, जिसमें अनेक विदेशी लोग सवार थे। इस यात्रा के दौरान स्वामीजी ने अपनी मण्डली सहित उक्त रोड के किनारे एक भक्त की कोठी में रात का विश्राम किया। स्मरणीय है कि इस बीच रायपुर छोड़कर श्री रविनन्दन सिंह जी यहीं रहने लगे थे। इस बात की खबर फैलते देर न लगी और समाचार मिलते ही अपने कुछ संगी-साथियों सहित मैंने अपनी साइकिल उठाई और जा पहुँचे स्वामीजी के पास। वहाँ जाकर हमने देखा कि श्री स्वामीजी ऑस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैण्ड, इंग्लैण्ड, आदि अनेक देशों से आये हुए अपने शिष्यों से घिरे हुए थे। सभी गौरांगों के मुण्डित केश, भाल पर तिलक तथा गले में रुद्राक्ष की मालाएँ सुशोभित थीं। यह देखकर हमारे गाँव के पंडित जी से रहा नहीं गया। वे बड़े विनोदी स्वभाव के व श्री रविनन्दन सिंह जी के अनन्य मित्र थे। उन्होंने विनोद में कटाक्ष किया, 'क्या कमाल है इन गौरांग लोगों का। हमारे देश का धन-धान्य, सोना-चाँदी और हीरा-जवाहरात तो ये पहले ही लूटकर ले गये, बची हमारे पास केवल माला, उसे भी अब ये अपने साथ लिये जा रहे हैं।' पंडित जी की बात सुनकर विदेशी शिष्य उनकी ओर देखने लगे, लेकिन उनकी समझ में कुछ नहीं आया। तब श्री स्वामीजी ने पंडित जी के कथन का अंग्रेजी में अनुवाद किया, जिसे सुनकर सभी खिलखिला उठे और हँसी का एक फव्वारा फूट पड़ा। स्वामीजी के पास यथेष्ट समय बिताने के बाद हम लोग अपने घर लौट आये।

दूसरे दिन सुबह 9 बजे स्वामीजी अपने काफिले के साथ मेरे गाँव पहुँचे। उस समय तक मेरे गाँव में माँ मन्दिर का निर्माण हो चुका था। अतः वे सीधे माँ मन्दिर पहुँचे। माँ मन्दिर के प्रांगण में बैठकर उन्होंने गाँव के सभी प्रेमी श्रद्धालु जनों से भेंट की। तदुपरान्त अपने शिष्यों सहित वहाँ की शिशुशाला में बैठकर चाय-नाश्ता लिया। फिर हिन्दी-अंग्रेजी भाषाओं में प्रकाशित अपनी पुस्तकों का एक पूरा सेट माँ मन्दिर के पुस्तकालय में भेंटकर स्वामीजी अपने गन्तव्य स्थान की ओर रवाना हो गये। पूज्य स्वामीजी से हमारी यह अन्तिम भेंट थी।

आठ-दस साल पहले की बात है। तब तक मैं श्री अरविन्द आश्रम, दिल्ली आ गया था और स्वामीजी भी मुंगेर से अपनी तपस्थली रिखिया पहुँच चुके थे। उसी समय हमारे एक मित्र, श्री कृष्ण मुरारी जी अग्रवाल स्वामीजी के दर्शनार्थ रिखिया गये हुए थे। वहाँ से लौटकर जब वे वापस दिल्ली आए, तब उन्होंने बताया कि भेंट के दौरान स्वामीजी आपका नाम ले रहे थे और आपके बारे में मुझसे पूछ रहे थे। यह सब सुनकर मुझे आश्चर्य मिश्रित आनन्द हुआ। स्वामीजी की इस महती स्मृति, उनकी कृपा और स्नेह के प्रति मेरे शत-शत नमन।

–श्री त्रियुगी नारायण, नई दिल्ली

शाश्वत संत स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

एक थे महान् संत। योग एवं अध्यात्म का प्रसाद बाँटने वाले परम गुरु। सेवा, प्रेम और दान को जीवन का मूलमंत्र मानने वाले महामानव। अपने ज्ञान की अलौकिक आभा से विश्व को सत्य की राह दिखाने वाले पथ-प्रदर्शक, स्वामी सत्यानन्द सरस्वती।

पिछले दिनों ही परमहंस जी ब्रह्मलीन हुए। 5 दिसम्बर 2009 की मध्यरात्रि के अजेय मुहूर्त्त में, गुरु को अपने हृदय में अवस्थित कर, ईशवंदना करते हुए, संन्यासियों एवं भक्तों के समक्ष वे महासमाधि में प्रवेश कर गए। स्तब्ध रह गया संसार। अभी योग पूर्णिमा के अवसर पर ही तो प्रसन्नचित्त मुद्रा में उन्होंने भक्तों को दर्शन दिए थे। दुनिया की सारी शक्तियाँ उनमें समाहित थीं। वे कायाकल्प के भी जानकार थे। पर अनायास ही एक योगी की तरह शरीर त्यागकर हतप्रभ कर दिया सभी को। एक ही विचार जन-मन को उद्वेलित कर रहा था कि स्वामीजी ने ऐसा क्यों किया, कैसे किया? प्रसंगवश साभार हम उनके गुरुभाई स्वामी ज्योतिर्मयानन्दजी की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत कर रहे हैं–

गंभीर गगनगामी होमा पक्षी ने 3-4 अण्डे जने। शून्य आकाश में ही वे गिरने लगे। रास्ते में ही इनसे पंखयुक्त बच्चे फूट निकले। कुछ तो चल पड़े आकाश की ओर माँ-माँ की रट लगाते और एक चल पड़ा मर्त्यलोक की ओर, अमरत्व का संदेश सुनाने और वही है सत्यम्–स्वामी सत्यानन्द सरस्वती।

अब सत्यम् अमरत्व का संदेश दुनिया को सुनाने लगे। सम्पूर्ण सांसारिक दु:खों के नाश की एकमात्र विधि, सर्वांग योग के बारे में बताने लगे। इसी योग को सर्वप्रथम शिव ने पार्वती को बतलाया था। भारतवर्ष से लुप्तप्राय हो

रही इस महान् विद्या को स्वामीजी ने पातंजल योग सूत्रों से पुनर्व्याख्यायित कर, शोध कर, विभिन्न भागों में विभक्त कर उसका सरलीकरण कर दिया। निष्काम-कर्म की मथनी से प्राप्त इस अमृतफल को सम्पूर्ण विश्व में समान रूप से बाँट दिया। मानवता के कल्याण के लिए अपना सम्पूर्ण जीवन समर्पित कर दिया। वे पूर्णता की पराकाष्ठा पर पहुँचे। अपने सारे मंत्र लिख डाले। छन्दों को बन्धनमुक्त कर दिया। स्वयं स्वीकार किया कि मेरी सारी इच्छाएँ एवं संकल्प पूरे हो चुके हैं और इसीलिए अपने भौतिक शरीर का एक योगी की तरह त्याग कर दिया। चर-अचर जगत् में व्याप्त हो गये। और, होमा पक्षी ने पुन: अनंत आकाश की ओर रुख कर लिया।

परमहंस जी ने एक योगी की तरह भौतिक शरीर का त्याग किया, रोगी की तरह नहीं। योगी के देहत्याग पर शोक नहीं किया जाता। इसलिए कोई मातमी धुनें नहीं बजीं और दिखावटी आँसू भी नहीं बहे। एक महान् संत की महासमाधि के पश्चात् जैसे अनुष्ठान होने चाहिए, हुए। रिखियापीठ में परमहंस परम्परा के अनुसार षोडशी पूजा का विधान विधिपूर्वक सम्पन्न हुआ। गुरु का आवाहन कर विभिन्न धार्मिक अनुष्ठानों और समष्टि भोज का आयोजन हुआ। निरंतर भजन-कीर्त्तन, मंत्रोच्चार, हवन, रुद्राभिषेक और अखण्ड रामायण पाठ के आध्यात्मिक आयोजन होते रहे। दक्षिण से आई ललिता महासमाजम् मठ की योगिनियों ने श्रीयंत्र पूजा विलक्षण विधान से पूर्ण कर गुरु के प्रति अपना सम्मान प्रकट किया। गुरु के इष्ट त्र्यम्बकेश्वर एवं गुरु शिवानन्द आश्रम, ऋषिकेश तक आराधना का सिलसिला जारी रहा। सम्पूर्ण विश्व ने उन्हें विविध तरीकों से श्रद्धांजलि अर्पित की।

'स्वामीजी ने सम्पूर्ण विश्व को सुन्दर बना दिया'—इन्टरनेट पर एक ऐसे शख्स ने ये उद्‌गार प्रेषित किये हैं जिसने न उन्हें कभी देखा और न ही दीक्षा ली थी। पुस्तकों के माध्यम से ही उसने स्वामीजी को जाना है। एक ऐतिहासिक घटना भी घटी। परमहंस जी के सम्मान में जगन्नाथपुरी के ध्वज को नीचे कर दिया गया और स्वामी सत्यानन्द की ध्वजा ऊपर लहराई गई। यह ईश्वरीय सम्मान था।

ऐसा क्यों कहा जाता है कि संन्यासी का कोई घर-बार नहीं होता, परिवार नहीं होता। स्वामीजी को श्रद्धांजलि देने एक विशाल जन-समूह उमड़ पड़ा था। हजारों की संख्या में देशी-विदेशी अनुयायी पहुँचे थे। देश-विदेश के विभिन्न आश्रमों के प्रधान जुटे थे। मुख्यमंत्री से लेकर सांसद तक, सभी आए।

हर कोई स्वामीजी के समाधिस्थल पर श्रद्धा-सुमन चढ़ाने को आतुर था। फिर हम कैसे माने कि संन्यासी का कोई घर-बार और रिश्तेदार नहीं होता। सच तो यह है कि संन्यासी का रिश्ता सम्पूर्ण संसार से होता है।

महापुरुष प्रतिकूल परिस्थितियों में संघर्ष कर आगे बढ़ते हैं। स्वामीजी के जीवनवृत्त पर एक नजर डालने से भी इस सत्य की जाँच होती है। वे माता-पिता की इकलौती संतान थे। बचपन से ही प्रखरता एवं तेजस्विता का विलक्षण संस्कार दृष्टिगोचर हो रहा था। 19 वर्ष की अवस्था में घर छोड़ दिया। गुरु की खोज ऋषिकेश के शिवानन्द आश्रम में जाकर पूरी हुई। गुरु आज्ञा से कर्मयोग की अग्नि में शरीर को ऐसा तपाया कि खालिस सोना बन गये। परिव्राजक जीवन अपनाकर विश्व के एक कोने से दूसरे कोने तक योग का प्रचार-प्रसार करते रहे। फिर मुंगेर को अपनी कर्मभूमि बनाकर बिहार योग विद्यालय, गंगा दर्शन की स्थापना की। अंतर्राष्ट्रीय योग मित्र मण्डल एवं योग शोध संस्थान की स्थापना की। उन्होंने 80 से अधिक पुस्तकों का प्रणयन किया।

अपने इष्ट की प्रेरणा से रिखिया क्षेत्र में सती की चिताभूमि के समीप अपनी तपस्थली बनाकर पूर्णरूपेण परमहंस जीवन शैली को अपना लिया। यहाँ पंचाग्नि की घोर साधना की। एक अनजान आदिवासी क्षेत्र रिखिया, सुखिया बन गई। देश-विदेश के जिज्ञासु जमा होने लगे। दान-पुण्य का क्रम चलने लगा। लक्ष्मी का ब्लैंक-चेक जो उनके पास था। शायद द्वापर के कर्ण ने ही स्वामी सत्यानन्द के रूप में कलयुग में जन्म लिया था। किसानों को खेती के औजार, गृहिणियों को गृहस्थी के उपकरण, बच्चों को शिक्षा-दान एवं नववधुओं एवं बेटियों को शृंगार-मंजूषाएँ प्रदत्त की जाने लगीं। राजसूय यज्ञ एवं सीता कल्याणम् जैसे आध्यात्मिक अनुष्ठान आयोजित होने लगे। उनका जीवन नित्य प्रवाहमान रहा गंगा की तरह। न रुके, न झुके। कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा। निरंतर चलते रहे। राह में आने वाली बाधाओं को आत्मसात् कर लिया और सम्पूर्ण विश्व को अपनी उर्वरा शक्ति से सिंचित कर दिया। वे दिग्विजयी बने। सत्यानन्द योग परम्परा अभी भी अविरल प्रवाहमान है, सिर्फ इस विजययात्रा में पताका पकड़ने वाले हाथ बदले हैं, पीढ़ियाँ बदली हैं।

श्री स्वामीजी ने कहा था, 'योगविद्या भारतवर्ष की सबसे प्राचीन संस्कृति एवं जीवन पद्धति है। इसी के बल पर भारतवासी प्राचीन काल में सुख-समृद्धि के साथ स्वस्थ जीवन व्यतीत करते थे।' योग, तंत्र, सांख्य, वेदान्त एवं कुण्डलिनी के रहस्यों पर उनका पूरा अधिकार था। उनकी योग की परिधि

अत्यंत विशाल है। यह सम्पूर्ण जीवन जीने की कला है, समन्वय की साधना है। सत्यानन्द योग में ज्ञान एवं भक्ति का, कर्म एवं संन्यास का, कला एवं विज्ञान का, नूतन एवं पुरातन का और अन्ततः आत्मा से परमात्मा का योग है। इसलिए स्वामी सत्यानन्द सरस्वती सिर्फ एक योगाचार्य ही नहीं थे, एक क्रांतिकारी विचारक भी थे। उन्मुक्त चिंतक और दैवी-शक्ति से युक्त वक्ता भी थे। वे रूढ़ियों को तोड़कर आगे बढ़े थे। वे समझते थे कि गेरुआ वस्त्र पहनकर रामनाम का पोथा पड़ने से ही एक संन्यासी के कर्म की इतिश्री नहीं हो जाती। एक क्रांतिकारी संन्यासी का हस्तक्षेप जीवन के हर क्षेत्र में होता है। उन्होंने एक बार कहा कि धान रोपने के लिए कृषक औरतों को गम-बूट पहनने की आवश्यकता है, क्योंकि वे घण्टों पानी में खड़ी रहती हैं। यह विचार एक ऐसे ही मनीषी के मन में आ सकता है जो जीवन के हर क्षेत्र से, हर बारीकी से अपने आप को जोड़ कर रखता है। दूसरी पीढ़ी के संत, स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती कहते हैं कि जिन बच्चों का कोई भविष्य नहीं, वे देश का भविष्य कैसे बन सकते हैं। पहले उन बच्चों का भविष्य बनाने की जरूरत है। सत्यानन्द योग आन्दोलन रूपी रथ की बागडोर अब तीसरी पीढ़ी के एक कर्मठ नवयुवक स्वामी सूर्यप्रकाश के हाथों में है। नवीन ऊर्जा से भरपूर एक नये सारथी ने शंखनाद किया है।

एक संत के सपनों का साकार रूप है मुंगेर का गंगादर्शन, रिखियापीठ गुरुकुल और देश-विदेश में फैले उनके अनेकानेक आश्रम। स्वामी शिवानन्द जी के विचार और स्वामी सत्यानन्द जी के संकल्प के निमित्त ये संस्थान आज विश्वविख्यात हैं। भारतीय ऋषि परम्परा, वैदिक जीवनशैली और सनातन संस्कृति की ठोस नींव पर टिकी हैं इनकी भव्य इमारतें। नालंदा एवं विक्रमशिला जैसे प्राचीन आध्यात्मिक केन्द्रों की तरह इन संस्थानों ने एक बार फिर विश्व को अपनी ओर आकृष्ट किया है। स्वामीजी के परम शिष्य एवं संन्यास उत्तराधिकारी परमहंस स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती एवं रिखिया पीठाधीश्वरी स्वामी सत्यसंगानन्द सरस्वती के नेतृत्व में मानव कल्याणार्थ इन प्रभावी कार्यों को आगे बढ़ाया जा रहा है।

आकाश के उत्तरीय भाग में आलोकित सप्तऋषि तारामंडल सप्त शाश्वत ऋषियों का प्रतीक है। विश्वामित्र, जमदग्नि, भरद्वाज, गौतम, अत्रि, वशिष्ठ एवं कश्यप–इन शाश्वत ऋषियों की परम्परा में ही स्वामी शिवानन्द, सत्यानन्द एवं निरंजनानन्द, तीन नये देदीप्यमान तारों को अन्तर्राष्ट्रीय नक्षत्र

रजिस्ट्री द्वारा जारी सर्टिफिकेट में स्थान दिया गया है। इन तीन तेजस्वियों को संसार ने हृदय से स्वीकार किया है।

सत्यम्—होमा पक्षी के इस बच्चे ने जब ऊँचाइयों की हद ही पार कर दी तो आसमान से जा टकराया और परमात्मा से एकाकार हो गया। किन्तु उसे फिर से जन्म लेकर मृत्युलोक में ही आना है। सत्यम् ने साफ शब्दों में अपने आराध्य से कह दिया था कि जब तक धरती पर वापसी का टिकट नहीं दोगे, प्राण त्याग नहीं करूँगा। मोक्ष नहीं, बार-बार जन्म लेकर गरीबों की सेवा करना ही मेरी आकांक्षा है।

—मधु-शिव कुमार रूँगटा, मुंगेर

एक योगी-यति-तपस्वी-संन्यासी

संत सहहि दुख परहित लागी । पर दुख हेतु असंत अभागी ॥
संत विटप सरिता गिरिधरनी । पर हित हेतु संतन कइकरनी ॥
निजपरिताप द्रवई नवनीता । पर दुख द्रवेहि सुसंत पुनीता ॥

यह महामंत्र संत श्री गोस्वामी तुलसीदास जी द्वारा रचित 'श्री रामचरितमानस' से उद्धृत है। संतों के स्वभाव तथा उनके गुण-कर्मादि का इतना सुन्दर उदाहरण अन्यत्र कहीं खोजे नहीं मिलता है। इन्हीं प्रमाणों के अनुरूप त्याग-तप-परोपकार से युक्त संस्कारित तथा संकल्पित जीवन की अनुपम झाँकियाँ सम्पूर्ण रूपेण दृश्यमान हुईं तो पूज्यपाद स्वामी सत्यानन्द सरस्वती जी के सत्तासी वर्ष के जीवन काल में।

सन् 1923 में उत्तराखण्ड के एक छोटे-से गाँव अल्मोड़ा में इनका जन्म हुआ। मात्र उन्नीस वर्ष की अल्पावस्था में अपने घर-परिवार की मोह-ममता का परित्याग कर दिया और ऋषिकेश के समर्थ गुरु, स्वामी शिवानन्द सरस्वती जी महाराज के सान्निध्य में सर्वोत्तम आध्यात्मिक जीवन-कला का ज्ञान सफलतापूर्वक प्राप्त किया। तदुपरान्त अपने गुरु के परमपावन लोक-कल्याण के मिशन निमित्त योग-विद्या के प्रचारार्थ सम्पूर्ण विश्व के चप्पे-चप्पे का उन्होंने न केवल भ्रमण किया, बल्कि इस महाविद्या का अत्यन्त प्रभावी ढंग से प्रचार-प्रसार किया। उनके द्वारा वैज्ञानिक ढंग से बतलायी गयी योग-विद्या का विश्लेषण पढ़-सुन-समझकर जगत् के सभी प्रज्ञा-प्राणी

उनके अनन्य अनुयायी हो गये। आज सारा विश्व उनके द्वारा संस्थापित बिहार योग विद्यालय, मुंगेर तथा रिखियापीठ की ओर योग के लिए आमुख हो गया है। दिव्य जीवन जीने के लिए योग एक सुन्दरतम पाथेय बन गया है। आखिर उनका उद्‌बोधन कि 'आज का योग कल भारत की संस्कृति होगी' बिल्कुल सत्य प्रमाणित होता स्पष्ट दिखाई पड़ रहा है। ऐसे उदात्त भाव से ओत-प्रोत महामानव, जिसने त्याग-तप-दान-अनुष्ठान आदि से अपना जीवन यापन किया हो, विरले ही होते हैं। तभी तो उनके गुरुदेव ने उन्हें 'ओजस्वी तेजस्विता तथा नचिकेता वैराग्य की प्रतिमूर्ति' से सम्बोधित किया था।

विलक्षण व्यक्तित्व वाले यह मनीषी ऋषि-मुनियों के आश्रमों, कन्दराओं तथा गुफाओं से हमारी खोयी हुई सर्वोत्कृष्ट धरोहर, योग-रश्मि को घर-घर तक लाकर सम्पूर्ण जगत् में इसे प्रकाशित कर योग-पिता महर्षि पतंजलि के अग्रणी दूत प्रमाणित हुए। योग-विद्या का गहन वैज्ञानिक विश्लेषण, अत्याधुनिक पद्धति द्वारा योग साहित्य का प्रकाशन तथा सहज ग्रहणीय प्रशिक्षण द्वारा सारे विश्व को अपनी ओर आकृष्ट करने का सफल प्रयास कर ये द्वितीय स्वामी विवेकानन्द सिद्ध हुए। ऐसे महापुरुष के दिव्य अलौकिक जीवन की अविस्मरणीय गाथाओं का वर्णन करते समय सारे विशेषण फीके प्रतीत होते हैं।

यद्यपि श्रीस्वामीजी अब हमारे बीच सशरीर नहीं रहे, फिर भी ध्यान में सतत् उनकी प्रशान्त मुखाकृति तथा मृदुल स्वभाव का स्मरण कौंधता रहता है। ऐसा लगता है मानो श्री स्वामीजी हमारी अन्तरात्मा में सूक्ष्म रूप से बिल्कुल समाहित हो गये हैं।

हमें दृढ़ विश्वास है कि श्री स्वामीजी का पुनः सशरीर हमारे बीच आविर्भाव होना सुनिश्चित है। इस तथ्य के साक्षी हमारे वेदान्ती धर्मग्रन्थ हैं। प्रश्नोपिषद् का एक ज्ञान-प्रसंग है। महामुनि पिप्पलाद जी का आश्रम है। छः ऋषियों का समूह ब्रह्म-ज्ञान की जिज्ञासा से उनके पास पहुँचता है। उनमें से सर्वप्रथम विदर्भदेशीय भार्गव और कत्य के प्रपौत्र कबन्धी ने अपनी जिज्ञासा महामुनि के समक्ष प्रकट की। उन्हें समझाते हुए महामुनि ने बताया कि इस जगत् में जो लोक-कल्याण की कामना वाले ऋषि आदि हैं, वे यज्ञादि द्वारा देवताओं का पूजन करना, दुःखी प्राणियों को सेवा उपलब्ध कराना आदि इष्ट कर्मों तथा कुआँ, तालाब, बाग-बगीचा, विद्यालय, औषधालय, पुस्तकालय आदि लोकोपकारक चिरस्थायी स्मारकों की स्थापना करना आदि पूर्तकर्मों को श्रेष्ठ समझते हैं तथा इसके लिए उपासना, अर्थात् विधिवत् अनुष्ठान करते हैं।

यह उस संवत्सर स्वरूप परमेश्वर के दक्षिण अंग की उपासना है। इसी को ईशावास्योपनिषद् ने असम्भूति की उपासना के नाम से देव, पितर, मनुष्य आदि शरीरों की सेवा बताया है। इसके प्रभाव से वे चन्द्रलोक को प्राप्त होते हैं और वहाँ अपने कर्मों का फल भोगकर पुनः इस लोक में लौट आते हैं। यही पितृयाण मार्ग है। इस कथन के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि श्री स्वामीजी ने भी पितृयाण मार्ग की अनन्य उपासना में ही अपने लम्बे जीवन की इहलीला समाप्त की है। फलस्वरूप उन्हें पुनर्जन्म के साथ इस धरा पर अवतरित होकर विशेष कार्यों को पूरा करना है तथा हम प्राणियों को सशरीर दर्शन देना है।

अतएव ऐसे श्रोत्रीय, ब्रह्मनिष्ठ, महापुरुष, परमपूज्य गुरुदेव स्वामी सत्यानन्द सरस्वती जी महाराज की अहैतुकी कृपा हमारे प्रति सदैव बनी रहे। इस कामना के साथ उन्हें हमारा शत-शत-नमन्, कोटिशः नमन। स्वामीजी अमर हैं।

–कृष्ण वल्लभ प्रसाद सिंह 'अकिंचन', मराँची

झाँकी एक परमहंस की

मैं 1966 में परमपूज्य स्वामी सत्यानन्द सरस्वती जी के सम्पर्क में आया। उस समय मैं बराबर पेट की बीमारी से ग्रस्त रहता था। डॉक्टरी इलाज से थककर मेरे पूज्य पिताजी (स्व. श्री रामेश्वर मिस्त्री) ने मेरी मुलाकात पूज्य स्वामीजी से करायी। मेरे पिताजी पूर्व से ही श्री केदारनाथ गोयनका जी की कृपा से श्री स्वामीजी के सम्पर्क में थे।

जब मेरे पिताजी ने मेरा परिचय स्वामीजी से कराया तो वे बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने मुझे प्रतिदिन प्रातः चार बजे योग विद्यालय में आने का निर्देश दिया। मैं उनके निर्देशानुसार प्रतिदिन प्रातःकाल विद्यालय जाने लगा। तब तक विद्यालय में अखण्ड ज्योति प्रशाल बन चुका था। उसी में प्रातःकाल पूज्य स्वामीजी अपने कुछ शिष्यों के साथ योगाभ्यास कराते थे। सबसे पहले वे एक प्रार्थना अपने स्वर में गाते थे और हम लोग उसे दुहराते थे। उस प्रार्थना के बोल थे–

भवसागर तारण कारण हे, रविनन्दन बन्धन खण्डन हे।
शरणागत किंकर भीत मने, गुरुदेव दया कर दीन जने॥

इस प्रार्थना के बाद स्वामीजी हम लोगों को लगभग एक घण्टे तक योगाभ्यास कराते थे। यह अभ्यास छः माह तक निरंतर प्रतिदिन चलता रहता था। इस अवधि के बीच तीन बार वे शंखप्रक्षालन भी कराते थे। जल्द ही मेरी पेट की सारी बीमारी दूर हो गई। इसके बाद भी मैं समय-समय पर होने वाले कार्यक्रमों और स्वामीजी के सत्संगों में नियमित भाग लेता रहा और स्वामीजी से निकटता बढ़ती गई। उन्होंने बड़े ही आत्मीय भाव से मुझे अपने साथ ले लिया। जो भी कार्यक्रम या समारोह होता, स्वामीजी के निर्देशानुसार उसमें सक्रिय भाग लेता था।

इस बीच मेरे पिताजी कैंसर रोग से पीड़ित हो गये। श्रद्धेय गोयनका जी की कृपा से उनका इलाज कलकत्ता और बम्बई में हुआ परन्तु कोई फायदा नहीं हुआ और घर पर ही डॉक्टरों द्वारा बतायी गयी दवाओं का सेवन होता रहा।

30 मार्च, 1967 को योग विद्यालय में पूज्य स्वामीजी का सत्संग था। मैं पिताजी की अनुमति लेकर सत्संग में संध्या समय सम्मिलित हुआ। स्वामीजी का सत्संग चल ही रहा था कि उन्होंने अचानक मुझे बुलाया और कहा कि तुम अभी घर चले जाओ, तुम्हारे पिताजी तुम्हें बुला रहे हैं। मुझे गोयनका जी की गाड़ी में घर भेज दिया। घर पहुँचने पर मैंने देखा कि बड़ी भीड़ लगी हुई है। पता चला पिताजी शरीर छोड़ चुके हैं। मुझे आज तक यह समझ में नहीं आया कि पूज्य स्वामीजी को अचानक मेरे पिताजी की याद कैसे आयी और सत्संग के बीच ही में मुझे पिताजी के पास कैसे भेज दिया।

इस तरह पूज्य स्वामीजी के प्रति मेरी श्रद्धा दिनोंदिन बढ़ती गई और उनसे निकट का सम्बन्ध स्थापित हो गया। अन्तर्राष्ट्रीय योग मित्रमण्डल के सम्मेलन में, जिसमें पूज्य शंकराचार्य एवं अन्य आचार्यगण आये थे, स्वामीजी के निदेशानुसार मैं बड़े मनोयोग से व्यवस्था में जुड़ा रहा। पूज्य स्वामीजी मेरे निवास स्थान को भी अपने चरण रज से पवित्र कर चुके हैं। इस तरह कई वर्षों तक मैं उनके निकट सम्पर्क में रहा और जैसा भी आदेश होता था, आश्रम का कार्य करता रहा।

मैं शिक्षा विभाग में लिपिक के पद पर कार्यरत था। अचानक मेरी बदली दुमका हो गई और मुझे यहाँ से जाना पड़ा। पर जब भी यहाँ आता था तो उनका दर्शन जरूर करता था। उनके द्वारा बताये गये आसन-प्रणायाम का अभ्यास बराबर करता रहा।

इस अन्तराल में मैं श्री रामाश्रम सत्संग, मथुरा के संस्थापक, श्री चतुर्भुज सहाय जी के सत्संग से जुड़ गया और उन्हीं के द्वारा बतायी गई ध्यान क्रिया को करता रहा। इसमें मुझे बड़ी शान्ति और आनन्द मिला। इस दरम्यान श्री रामाश्रम सत्संग, मथुरा के एक विशेष समारोह का आयोजन करने का यहीं गोयनका धर्मशाला में अवसर मिला। इस सत्संग समारोह में मथुरा के कई आचार्यगण आने वाले थे, उन्हें ठहराने की व्यवस्था करनी थी। मैं पूज्य स्वामीजी से मिला और उन्हें सारी बातें बतायीं। वे बड़े प्रसन्न हुए और सहर्ष उन्होंने अपने विद्यालय में ही ऊपर के कमरों में उन आचार्यों को ठहराने एवं भोजनादि की व्यवस्था कराने की कृपा की। समय पर सत्संग समारोह सम्पन्न हुआ। स्वामीजी सभी आचार्यों से मिल कर बहुत प्रसन्न हुए। मैं धन्य हो गया।

ज्ञातव्य है कि मेरे पिताजी समाज सेवी तथा स्वतंत्रता सेनानी होने के साथ उच्च कोटि के कलाकार थे। गोयनका जी के घर के मन्दिर में प्रत्येक वर्ष झूलन के अवसर पर पाँच दिनों तक भगवान की झाँकी नित्य नये रूप में सजती थी। हमारे पिताजी ही वह झाँकी बनाते थे। वहीं पर यदा-कदा पूज्य स्वामीजी का दर्शन होता था। पिताजी के स्वर्गवास के पश्चात् मुझे ही झाँकी बनानी पड़ती थी और धीरे-धीरे मैं भी इस कार्य में दक्ष हो गया। कुछ वर्षों के पश्चात् श्रद्धेय गोयनका जी का स्वर्गवास हो गया। इसी बीच सौभाग्यवश मुझे उनके पुत्र, श्री कृष्ण कुमार गोयनका जी द्वारा स्वामीजी के रिखिया आश्रम में झूलन के अवसर पर झाँकी बनाने का आमंत्रण मिला और आज कई वर्षों से रिखिया आश्रम में स्वामीजी की कृपा से झाँकी तैयार कर रहा हूँ।

प्रथम बार जब रिखिया आश्रम गया था तो लगा कि श्री स्वामीजी मुझे भूल गये होंगे, परन्तु उस समय बड़ा हर्ष और आश्चर्य हुआ जब पहले ही दर्शन में मेरा नाम लेकर कहा, 'जलेश्वर, तुम आ गये!' तदुपरान्त उन्होंने स्वामी निरंजन जी और स्वामी सत्संगी जी से मेरा परिचय कराते हुए कहा कि इनके पिताजी बहुत अच्छे कलाकार और समाज-सेवी थे। मैं तो धन्य हो गया।

एक बार रिखियाधाम में झूलनोत्सव के प्रथम दिन ही मुझे श्री स्वामीजी के दर्शन की प्रबल अभिलाषा हुई। मैंने स्वामी निरंजन एवं स्वामी सत्संगी से उनके दर्शन के लिये निवेदन किया। उस समय श्री स्वामीजी बड़ी मुश्किल से दर्शन देते थे। परन्तु उस दिन उन्होंने तुरंत एक संन्यासी को भेजकर मुझे बुलवाया। मिलते ही उन्होंने कहा, 'जलेश्वर, तुम क्या समझते हो कि मैं तुम्हें देख नहीं रहा हूँ? मैं तुम्हें उस समय से देख रहा हूँ जब से तुम आये हो। तुम्हारी

हर गतिविधि पर मेरी नजर है। मेरे दिमाग में वीडियो कैमरा लगा है, मैं यहीं से देखता हूँ कि तुम क्या बनाते हो।' तब उन्होंने बारीकी से बतलाया कि मैंने कल क्या बनाया था और आज क्या बना रहा था! मैं तो एकदम अवाक् रह गया। उनकी वाणी को सुनकर निहाल हो गया। उनके चरण स्पर्श कर मूक होकर वापस अपना झाँकी का काम बड़े मनोयोग से करता रहा।

इसी तरह प्रथम वर्ष जब झाँकी बनाने गया था तब जिस दिन वापस आना था प्रात:काल 5 बजे ही पूज्य श्री स्वामीजी ने अपनी कुटिया में मुझे बुलाया और विदाई कहकर एक पैकेट मुझे देने लगे। मैंने कहा कि स्वामीजी मैं आपसे विदाई नहीं लूँगा, आप कृपा कर मुझे आशीर्वाद दें। तब उन्होंने मुझे आशीर्वाद स्वरूप कुछ पुस्तकें दीं, जो आज भी मेरे अन्त:करण को आलोकित कर रही हैं।

एक साल मुझे पूज्य स्वामी निरंजनानन्द जी के साथ उनकी ही गाड़ी से रिखियाधाम जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उस यात्रा में मुझे जो प्रेरणा हुई, उसे मैं टूटी-फूटी भाषा में पूज्य स्वामी जी के चरणों में अर्पित कर रहा हूँ–

जिस तरह प्रभु राम के दर्शन का फल भरत जी जैसे भक्त का दर्शन है, उसी तरह मुझे पूज्य बड़े गुरु जी के दर्शन से जो फल प्राप्त हुआ है, वह स्वामी निरंजनानन्द जी जैसे गुरु-भक्त का सत्संग है। उनसे मैंने मंत्र दीक्षा, जिज्ञासु संन्यास दीक्षा तथा कर्म संन्यास की दीक्षा ली और मेरा जीवन सफल हुआ।

–श्री जलेश्वर मिस्त्री (सं. आत्मबिन्दु), मुंगेर

करुणासागर गुरुदेव

गंगा दर्शन, पादुका दर्शन एवं रिखियापीठ के वर्तमान भव्य एवं सर्वसुलभ साधन-सम्पन्न स्वरूप का अवलोकन करने से आज के हर व्यक्ति के मन में यह भाव जाग्रत होगा कि ऐसी संस्था के संस्थापक, परमहंस स्वामी सत्यानन्द जी का जीवन बहुत सुविधाजनक, वैभवपूर्ण, सुखमय रहा होगा। किन्तु श्री स्वामीजी ने जो अभावपूर्ण, कष्टप्रद विपन्नता का जीवन जिया और हँसते हुए सभी कष्टों को सहनकर मानवता को पुन: योग की संस्कृति देने का अपना स्वप्न साकार किया, यह एक अद्भुत मिसाल है। लोगों को जो शान्ति, आनन्द और सुखमय जीवन योग के माध्यम से प्राप्त कराया है, यह तो कोई अवतारी ही कर सकता है।

दीवान बहादुर केदारनाथ जी गोयनका के सम्पर्क में आने के पूर्व भी श्री स्वामीजी मुंगेर आते थे। कई बार तो उन्होंने गंगा दर्शन में, जो उस समय कर्ण चौरा के नाम से जाना जाता था और किंवदन्ती के अनुसार राजा कर्ण जिस चबूतरे पर बैठकर सवा मन सोना अपनी प्रजा को दान करता था, उसी चबूतरे पर कई बार शयन कर रातें काटी थीं। उस चबूतरे पर स्वामीजी को कई दिव्य अनुभव हुए। उन्होंने यही पर संकल्प लिया कि जहाँ राजा कर्ण बैठकर सोना दान करता था, वहाँ से मैं विश्व को शान्ति बाँटूँगा और योग को भविष्य की संस्कृति के रूप में विकसित करूँगा।

1960 के दशक में योग के बारे में यह भ्रामक धारणा प्रचलित थी कि यह साधु-संन्यासियों का विषय है, गृहस्थों और महिलाओं को योग का अभ्यास नहीं करना चाहिए। ऐसे समय श्री स्वामीजी ने जनसाधारण के लिए योग की उपयोगिता सिद्ध की।

गोयनका जी के सम्पर्क में आने के बाद श्री स्वामीजी गंगा किनारे बने उनके आनन्द भवन के अन्दर गोल कोठी में रहने लगे और इसी जगह उन्होंने बिहार योग विद्यालय के निर्माण के पूर्व चातुर्मास किया था। इस चातुर्मास के समय भक्तों को प्रात: आसन-प्राणायाम सिखाया जाता एवं दोपहर सत्संग होता। चातुर्मास के दिनों में मुंगेर नगर के कई परिवारों से लोग आने लगे। इसी समय मेरे बड़े भाई, स्व. विश्वनाथजी राजगढ़िया एवं बड़ी बहन, बुल्लो देवी भी स्वामीजी के सम्पर्क में आये। वे श्रीस्वामीजी के व्यक्तित्व से बहुत अधिक प्रभावित हुए और इस बात की चर्चा समाज एवं नगर के संभ्रांत परिवारों में होने लगी। बुल्लो देवी का नगर की महिलाओं में बड़ा सम्मान था। उनकी कोई औलाद भी नहीं थी। वे अधिकतर महिलाओं से मिलने-जुलने का कार्य करतीं और उनके पारिवारिक कार्यों में सहयोग देती थीं।

19 जनवरी 1964 को बसन्त पंचमी, सरस्वती पूजा के शुभ मुहूर्त्त में आश्रम का उद्‌घाटन हुआ एवं अखण्ड ज्योति बड़े हॉल में प्रज्वलित की गई। इसके बाद नि:शुल्क 15-15 दिनों का सत्र प्रारम्भ किया गया। इन सत्रों में स्वामीजी स्वयं क्लास लेते थे। चौथे दिन शंख-प्रक्षालन, कुंजल क्रिया एवं नेति करायी जाती। इन अभ्यासों से पेट बिल्कुल साफ हो जाता था। शंख-प्रक्षालन के पश्चात् आसन करने में बहुत मन लगता तथा हर व्यक्ति अधिक ऊर्जावान् एवं प्रफुल्लित अनुभव करता। बुल्लो देवी के प्रयास से प्रारम्भ में बहुत-सी महिलायें एवं बच्चे इन सत्रों में आने लगे। सत्र के बाद प्रतिभागियों

के प्रफुल्लित व्यवहार को देखकर लोग और अधिक संख्या में भाग लेने लगे। आसन-प्राणायाम के 15 दिनों के अभ्यास से ही लोगों को जो स्वास्थ्य एवं ऊर्जा की प्राप्ति होती उससे उनके मन में श्री स्वामीजी के प्रति श्रद्धा और सम्मान बढ़ने लगा। उन्हें लगता कि थोड़ा हाथ-पैर हिलाने से मनुष्य कैसे इतना अधिक ऊर्जावान् हो सकता है। उन्हें लगने लगा कि श्री स्वामीजी दैवी शक्ति-सम्पन्न व्यक्ति हैं, जिनके स्पर्श मात्र से शक्ति की प्राप्ति होती है। बुल्लो देवी का भी सम्मान बढ़ गया।

बुल्लो देवी ने इस बीच एक लड़का गोद ले लिया, उनकी अपनी कोई सन्तान जो नहीं थी। लड़के का विवाह तय हुआ और विवाह बड़े धूम-धाम से हुआ। विवाह के कुछ महीने बाद ही लड़का अपने साथियों के साथ मुंगेर के कष्टहरणी घाट पर गंगा स्नान करने गया था और दुर्भाग्यवश नहाते समय गंगा में डूब गया। दो घण्टे बाद उसका शव मिला। उसे लेकर तुरन्त अस्पताल ले गये लेकिन डॉक्टरों ने मृत घोषित कर दिया। बुल्लो देवी का रोते-रोते बुरा हाल था। नगर की सैकड़ों महिलायें उनके घर पर जमा थीं। कुछ महिलाओं ने श्री स्वामीजी से जीवनदान प्राप्त करने का सुझाव दिया। नगर के कई पुरुष-महिलायें श्री स्वामीजी के पास इस प्रार्थना के साथ पहुँच गये।

श्री स्वामीजी के पास उस समय श्री डी.एन. गुप्ता एवं मैं स्वयं मौजूद था। हमने स्वामीजी को इस अवसर पर बुल्लो देवी के घर न जाने का अनुरोध किया। लड़का मर चुका था और उसके जीवित होने की कोई उम्मीद नहीं थी। ऐसी स्थिति में श्री स्वामीजी के वहाँ जाने से बड़ा उपहास होने का डर था। बुल्लो देवी के घर न जाने के हमारे सुझाव के बावजूद भी श्री स्वामीजी शीघ्रता से उठे और बुल्लो देवी के घर के लिए प्रस्थान कर गये। मैं भी उनके साथ हो लिया।

घर पहुँचकर श्री स्वामीजी ने बड़े ही गम्भीर, स्नेहपूर्ण और शान्त भाव से बुल्लो देवी से कहा कि अगर लड़के की आयु शेष बची होगी तो वह अवश्य जी उठेगा, लेकिन अगर इतनी ही आयु मिली होगी तो इसका दाह-संस्कार करना उचित होगा, ताकि उसकी आत्मा को कल्याण एवं शान्ति प्राप्त हो। उन्होंने आगे कहा कि पत्थल कोयले की एक अंगीठी जलाकर लड़के के सिरहाने रखनी है। एक घण्टे के अन्दर लड़का जीवित नहीं हुआ तो समझ लेना की इतनी ही आयु मिली है, तथा इसका दाह संस्कार करना उचित है। इतना कहकर श्री स्वामीजी वहाँ से चले आये।

लोगों के मन में लड़के के जीवित होने की आशा जगी और तत्काल एक पत्थल कोयले की अंगीठी जलाकर लड़के के सिरहाने रखी गयी। अंगीठी की गर्मी से लड़के की सिर की नसें तनने लगीं, लगा कि जान वापस आ रही है। लोगों में कौतूहल बढ़ा, किन्तु धीरे-धीरे पूर्ववत् स्थिति हो गई। बुल्लो देवी बड़े ध्यान से यह सारा घटनाक्रम देख रही थी। अचानक उन्होंने रोना बन्दकर शव के पास जाकर कहा, 'इसकी आयु पूर्ण हो गयी है। अब शेष कुछ नहीं है। इसके कल्याण के लिए दाह संस्कार की तैयारी की जाए।' वहाँ खड़ी महिलाओं ने भजन करना शुरू कर दिया।

मुझे यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि जहाँ मुझे श्री स्वामीजी के उपहास का डर और चिन्ता सता रही थी, उसके विपरीत लोगों के मन में श्री स्वामीजी के प्रति अधिक श्रद्धा और आदर का भाव था। श्री स्वामीजी की सभी प्रशंसा करते दिखे। मैंने यह पाया कि श्री स्वामीजी में वह अलौकिक शक्ति थी जिससे किसी भी घटना के परिणाम का पूर्वाभास उन्हें हो जाता था तथा उनकी उपस्थिति मात्र से मंगलमय वातावरण बन जाता था। हमारी सलाह पर स्वामीजी बुल्लो देवी के घर नहीं जाते तो उसका परिणाम बहुत बुरा होता। लोग शायद यह सोचने लगते कि संकट के समय स्वामीजी ने अपने शिष्यों की सुध नहीं ली। श्री स्वामीजी की कृपा से बुल्लो देवी का शेष जीवन बहुत ही सुखमय एवं शान्तिपूर्ण रहा। उनकी विधवा पुत्रवधू में भी सेवाभाव जगा और भजन-कीर्तन, रामायण पाठ आदि के साथ अपना जीवन-यापन करती है। उन्होंने अपने घर को भी सत्संग भवन में परिणत कर दिया है।

–श्री काशी प्रसाद राजगढ़िया, मुंगेर

पद्यांजलि

विश्वास हमारा सम्बल है

जब ज्योति गगन की ओर चली,
जग स्तम्भित-विस्मित मौन हुआ।
उसने क्या छोड़ा इस जग को,
उसको पाकर जग धन्य हुआ।

जितनी करुणा थी उस मन में,
सागर समेट क्या पायेगा?
बहुजन हिताय उसका जीवन
बहुजन सुखाय उसका चिन्तन।

जग नश्वर है जग के निमित्त,
उसका जग ही परमेश्वर है।
जो सुख है जग की सेवा में,
उसके आनन पर बसता था।

क्यों छलकें आँखों में आँसू,
वह आँखों से बस ओझल है।
मुस्कान बाँटता रहा सदा,
ले गया समेट सारे आँसू।

वह सत्यम् दिव्य सनातन है,
न आता है न जाता है।
वह निर्मम निरा अकेला है
पर पल भर दूर नहीं हम से।

तुम आगे बढ़ते जाओ तो,
वह हर क्षण है तेरे पीछे।
पर मुड़कर पीछे मत देखो,
विश्वास हमारा सम्बल है।

–स्वामी शंकरानन्द सरस्वती

महासमाधि

परमहंस सत्यानन्दम्, वन्दे गुरुवर तेजस्वी।
रविसम आलोकित तव कीर्ति, शिवम् सत्यम् सरस्वती॥
महिमा ज्ञान ध्यान कर्ममय, योग विज्ञान वाचस्पती।
हंस विवेक वंश संन्यासी, दशनामी अवधूत यती॥
सदा सेव्य मानव तन पीड़ित, गंगादर्शन कर्मस्थली।
सत्य सनातन सत्यानन्दम्, वसुधैव कुटुम्ब मनस्थली॥
त्याग तपस्या करुणा जनहित, जन्मजात से जुड़ी कड़ी।
याद कर रहे जीवन-दर्शन, गंगा-गीता सी गायत्री॥
नया अर्थ विज्ञान योग वेदान्त भाव तपसी अवधूत।
न्यास संन्यास मोक्ष साधना, मंडित महिमा रूप अनूप॥
दशनामी संन्यासी ऋषिवर, आदि गुरु शंकर सेवित।
सहज सरल अरु क्रान्ति प्रबोधक, धीर वीर हे मूर्तिवत्॥
रखा मानसम्मान सनातन, मानव का अन्तर तोड़ा।
स्वयं कीर्ति बन गई जीवनी, गंगा दर्शन जब छोड़ा॥
वस्त्र त्याग कौपीन भस्म तन, तप पंचाग्नि जप माला।
तीर्थ बना रिखिया का अंचल, विश्व प्रेम दर्शन वाला॥
आत्म पूर्ण कर सत्य बनाया, जीवन महासमाधि लिया।
सार्थकता युग पुरुष बन कर, श्रद्धा वंदन भाव दिया॥

–स्वामी ओंकारानन्द सरस्वती

शत-शत-शत सहस्त्र नमन !

हे! योगश्रेष्ठ! शिष्य शिवानन्द
योगाम्बर शत-शत नमन,
हे! गुण सागर! योग नियामक
सत्यानन्द शत-शत नमन।
हे! परम पूज्य श्रद्धेय सद्गुरु
सत-चित्-आनन्द तव नमन,
हे! दुःख भंजक योग दिवाकर
योग शीर्ष शत-शत नमन।

हे! आनन्द घन विश्व धरोहर
योगेश्वर शत-शत नमन,
हे! प्रेरक हे! पथ- प्रदर्शक
योग बोध शत-शत नमन।
हे! योग प्रीत हे! भक्ति सागर
दानवीर शत-शत नमन,
हे! तपोनिष्ठ पंचाग्नि साधक
योग स्रोत शत-शत नमन ।
हे! योग व्योमत्रविज्ञान पीठ
योग सिद्ध! शत-शत नमन,
हे! बम लहरी के श्री सर्जक
काव्य दीप शत-शत नमन।
हे! रिखिया पीठ-अधीश्वर
योग मेघ! शत-शत नमन,
हे! राजसूय यज्ञ आयोजक
योग मित्र शत-शत नमन।
हे! प्रखर पुंज! योग प्रभाकर!
योग दूत शत-शत नमन,
हे! योग शिरोमणि करुणा सागर!
शत-शत-शत सहस्र नमन।

—संन्यासी आत्मरूपानन्द, रायगढ़

साधना वह जो साधक को सत्यम् बना दे

बुद्धि वह जो मानव को बुद्ध बना दे
ज्ञान वह जो मानव को 'विवेक' बना दे
साधना वह जो साधक को सत्यम् बना दे ।
दधीचि पर्याय है त्याग का
विष्णु पर्याय है क्षमा का
सत्य वह जो मानव को हरिश्चन्द्र बना दे
साधना वह जो साधक को सत्यम् बना दे ।

कर्ण पर्याय है दान का
कृष्ण पर्याय है योग का
मर्यादा वह जो मानव को राम बना दे
साधना वह जो साधक को सत्यम् बना दे ।
प्रताप पर्याय है वीरता का
शिवा पर्याय है सम्मान का
अहिंसा वह जो मानव को गाँधी बना दे ।
साधना वह जो साधक को सत्यम् बना दे ।

–संन्यासी आनन्दयोगम्, राजनाँदगाँव

सत्याः हृदयं इति सत्यम्

सतयुग का है यह लोकविदित प्रसंग
प्रजापति दक्ष के प्रख्यात यज्ञ में जब
माँ सती कर न सकी पति-तिरस्कार सहन,
योगाग्नि में कर दिया प्राणों का उत्सर्जन...
सत्या: हृदयं इति सत्यम् ...

सती-निधन का समाचार पाकर शिव हुए मतवाले
कंधे पर सती-शव लादे, पूरे ब्रह्माण्ड का चक्कर लगा डाले
अंत में नारायण ने किया वह शव क्षत-विक्षत
औ' पृथ्वी पर गिरे सती-देह के खण्ड चौंसठ ...
सत्या: हृदयं इति सत्यम् ...

सती का पवित्र हृदय जहाँ हुआ प्रतिष्ठित
वह त्रैलोकपावन स्थल कहलाया 'हृदयपीठ'
और देवी ने तय कर डाला आगे का घटना-क्रम
युगों बाद यहीं से होगा मेरी शक्ति का पुनर्जागरण...
सत्या: हृदयं इति सत्यम् ...

युग बदला, त्रेता आया, निज-नगर में लंकापति रावण
जब चला करने शिव के ज्योतिर्लिंग का प्रतिष्ठापन
उस समय आकाश मार्ग से लंका जाते हुए
शिवजी को हुआ 'हृदयपीठ' का अकस्मात् दर्शन...
सत्या: हृदयं इति सत्यम् ...

स्मरण हो आया सती का अनुपम बलिदान
प्राण तजे, देह तजा, न तजा पति का मान
'यहीं न हुआ था सती का हृदय दफन!
मैं भी अब रहूँगा इस पावन पीठ में जनम-जनम...'
सत्या: हृदयं इति सत्यम् ...

ऐसा कौतुक रचा कि ज्योतिर्लिंग वहीं ठहर गया
और वैद्यनाथ धाम के शुभ नाम से विख्यात हुआ
प्राणप्रिया सती के सान्निध्य में मानो
भगवान मृत्यंजय ने पाया नवजीवन...
सत्या: हृदयं इति सत्यम् ...

द्वापर युग के जाते-जाते
और कलि युग के आते-आते
होने लगा मानव सभ्यता का घोर पतन
औ' मातृ-शक्ति का शोचनीय शोषण...
सत्या: हृदयं इति सत्यम् ...

नारी-जाति के संताप के ताप से
पिघला माँ का कोमल अंत:करण
उनके हृदय में उठा एक करुण कम्पन
औ' चला कूर्मांचल वह दिव्य स्पन्दन...
सत्या: हृदयं इति सत्यम् ...

माँ के मायके, कुमाऊँ में जन्मा और पला
वह स्पन्दन, वह नर-रत्न धर्मेन्द्र कहलाया
अधर्म का निर्मूलन और धर्म का प्रतिष्ठापन
यही था उसके जीवन का दिव्य प्रयोजन...
सत्या: हृदयं इति सत्यम् ...

जन्म से सर्व-गुण-सम्पन्न था नन्हा धर्मेन्द्र
निर्मल और निरंजन था उसका उज्ज्वल चरित्र
बचपन में बड़ी बहन थी सखा निकटतम
जिसके संग देखा करते भविष्य के सुनहरे स्वप्न...
सत्या: हृदयं इति सत्यम् ...

छोटी उम्र से होने लगे अनुभव विलक्षण
संतों ने कहा, साधुता के होते यही लक्षण
जागी मन में अध्यात्म की तीव्र लगन
औ' पहली गुरु बनी योगिनी सुखमन...
सत्या: हृदयं इति सत्यम् ...

सुखमन से तंत्र मार्ग भली-भाँति जाना
और स्त्री को शक्ति-स्वरूपा पहचाना
बाला-युवा-वृद्धा, सुरूपा-कुरूपा, सुमना वा दुर्मना
हर स्त्री में किया दिव्यता का प्रत्यक्ष दर्शन...
सत्या: हृदयं इति सत्यम् ...

इसी बीच हुआ बहन का दु:खद निधन
स्त्रियों के उद्धार का प्रबल हुआ प्रयोजन
घर-परिवार की मोह-ममता त्यागकर
निकल पड़े करने सद्‌गुरु का अन्वेषण...
सत्या: हृदयं इति सत्यम् ...

'सती-हृदयम्' ने जब पाया 'शिव-आनन्दम्'
सचमुच अलौकिक था वह मिलन का क्षण
सद्‌गुरु के चरणकमलों में पाकर शरण
शिष्य धर्मेन्द्र का प्रारम्भ हुआ प्रशिक्षण...
सत्या: हृदयं इति सत्यम् ...

परमगुरु शिवानन्द ने नाम दिया 'सत्यम्'
कच्चे हीरे को बना दिया सुन्दर आभूषण
पाकर गुरुदेव से योग-प्रचार का मिशन
सत्यम् ने किया शुरू परिव्राजक जीवन...
सत्या: हृदयं इति सत्यम् ...

नौ वर्षों तक किया नगर-नगर और डगर-डगर भ्रमण
देखा जन-जन का दु:ख, सुना जनमानस का क्रन्दन
उधर 'नेत्र पीठ' में राह देख रहे थे माँ के सजल नयन,
वहीं किया 'बिहार योग विद्यालय' का संस्थापन...
सत्या: हृदयं इति सत्यम् ...

आश्रम में योग-संन्यासादि का प्रशिक्षण पाने
देश-विदेश से लगे हजारों आने
सत्यम् ने स्त्रियों में कभी न किया किसी कमी का दर्शन
बल्कि उनको सदा देते रहे प्रेम, प्रेरणा और प्रोत्साहन...
सत्या: हृदयं इति सत्यम् ...

भले ही इस भावना का किसी-किसी ने अनुचित लाभ भी उठाया
पर सत्यम् ने महिलाओं को ही अपने मिशन का आधार बनाया
हर रूप में नारी मातृ-स्वरूपा है, पूज्या है
यही रहा सत्यम् का दृढ़ संकल्प औ' अटल प्रण...
सत्या: हृदयं इति सत्यम् ...

सत्यम् का सत्कार्य रिखिया में भी जारी रहा
सीता-कल्याणम् रचाकर महिलाओं का मान बढ़ाया
मुक्तहस्त दिये स्त्रियों को नाना प्रसाधन
चाहे उनका जन्म हो या विवाह या द्विरागमन...
सत्या: हृदयं इति सत्यम् ...

रिखिया की कन्याओं को देवी-पद प्रदान किया
उन्हें हर खुशी दी, हर जरूरत को पूरा किया
यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते तत्र रमन्ते देवता:
किया चरितार्थ यह सिद्धान्त पुरातन...
सत्या: हृदयं इति सत्यम् ...

हृदयपीठ में शक्ति के पुनर्जागरण का शंखनाद कर
नारी-जाति के उद्धार का उज्ज्वल मार्ग प्रशस्त कर
सत्यम्—वह अद्भुत, अलौकिक स्पन्दन
लौट चला अपने दिव्य उद्गम...
सत्या: हृदयं इति सत्यम् ...

—स्वामी शिवध्यानम् सरस्वती

श्रद्धांजलि सप्ताह

गंगादर्शन में 30 दिसम्बर 2009 को समर्पित श्रद्धांजलियाँ

स्वामीजी के लिए श्रद्धांजलि-सभा, यह मेरे मन में कुछ अटपटा-सा लगता है। श्रद्धांजलि तो उसको दी जाती है जिसके न होने का एहसास होता है। लेकिन जो हमेशा अपने बीच मौजूद हो उसे कैसे श्रद्धांजलि दी जाय, यह बात मेरी समझ में नहीं आती। लेकिन रस्म-रिवाज के मुताबिक आज यह श्रद्धांजलि-सभा है।

एक योग गुरु के रूप में, एक संन्यासी के रूप में या एक इन्सान के रूप में, स्वामीजी को किस तरह से मैं श्रद्धांजलि अर्पित करूँ, यह बात मेरी समझ में नहीं आती। स्वामीजी के इन तीनों गुणों को बड़ी करीबी से मैंने देखा और उनको देखने के बाद मुझे ऐसा लगता है कि भारत की पाँच हजार वर्षों की सभ्यता में ऋषि-मुनियों और गुरुओं में इतनी ताकत और शक्ति होती थी कि वे गुफाओं, कन्दराओं, जंगलों में रहा करता थे, लेकिन चाहे वह रामायण काल हो या महाभारत काल, राजा का बेटा राजमहल में पैदा होकर भी गुरु से शिक्षा लेने जंगलों की कन्दराओं और गुफाओं में जाया करता था। शायद उसी परम्परा के तहत परम पूज्य स्वामी सत्यानन्द सरस्वती जी को इन्सान के रूप में मैंने देखा था और उसी हैसियत से मैं उनको गुरु भी मानता था।

आज मुझे खुशी है कि मुंगेर की जिस जगह पर उन्होंने योग और संन्यास, दोनों के बीज समाहित किये, वे भली-भाँति फल-फूल रहे हैं। बीज की यही ताकत होती है कि आने वाले दिनों में वह विशाल रूप ले लेता है और लोगों को हर तरह से लाभ पहुँचाता है। मुझे उम्मीद है, यकीन है कि मानव सभ्यता के लिए स्वामीजी ने जो संदेश यहाँ से लेकर रिखिया तक हम लोगों को दिया है, वह आगे के दिनों में चरितार्थ होता देखने को मिलेगा। आज मैं इन्हीं चन्द शब्दों के साथ स्वामी सत्यानन्दजी के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ और यकीन और विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि जिस बीज के तहत उन्होंने हम सब लोगों को खींचा है, बढ़ाया है, उस बीज के

तहत इस पृथ्वी के लोग ज्यादा शान्ति से जिन्दगी गुजार पाएँगे। इसी आशा और विश्वास के साथ हरि ॐ।

–श्री दिग्विजय सिंह, सांसद

श्रद्धेय स्वामी निरंजनानन्दजी, स्वामी सत्यसंगानन्दजी, स्वामी सूर्यप्रकाशजी, यहाँ पूज्य स्वामी सत्यानन्दजी के अन्य अनुयायी, मुंगेर योग विद्यालय और रिखियापीठ से जुड़े हुए और उनके प्रति आस्था रखने वाले सभी बहनों और भाइयों, स्वामी सत्यानन्दजी की स्मृति में जो श्रद्धांजलि का सप्ताहभर का कार्यक्रम गंगादर्शन, मुंगेर में आयोजित हुआ है, आज उसका समापन हो रहा है। यह कार्यक्रमों का समापन है, लेकिन मुझे पूरा विश्वास है कि स्वामी सत्यानन्दजी ने जो जीवन जीया और अपने कर्म, साधना एवं तप के माध्यम से समाज को जो संदेश दिया है, वह और तेजी से फैलता जायेगा। मेरा अपना पक्का विश्वास है कि उसमें स्वामी निरंजनानन्दजी पूरे तौर पर सफल होंगे और स्वामी सत्यानन्दजी के शिष्य के रूप में अपने गुरु के मार्ग का अवलम्बन करते हुए लोगों के मन को प्रेम से भर देंगे।

जो सबसे बड़ी बात हमारे इन सन्तों ने सिखायी है, वह है प्रेम और भाईचारा। हम तो स्वामी निरंजनानन्दजी की कृपा से कुछ मिनट योगासन कर लेते हैं और समाज में जब भी चर्चा होती है, हम योग के पक्ष में कुछ बोलते रहते हैं, पर मुझे उसका अधिक ज्ञान नहीं है। लेकिन इतना जरूर लगता है कि अगर मनुष्य नियमित रूप से कुछ समय के लिए भी कुछ योगासन ही कर ले, तो उसका मन बहुत शान्त रहता है और ऐसा लगता है कि अन्दर ऊर्जा में वृद्धि होती है, कहीं वायुमण्डल से कुछ ऊर्जा मिल जाती है जिससे मनुष्य और ज्यादा काम करता है।

मेरा ज्ञान तो बहुत सीमित है, लेकिन इतना तय है कि जो संदेश है प्रेम का, वह सबसे अहम है। हम अनावश्यक तनाव में जीते हैं। और तनाव में जीना कोई जीना नहीं है। स्वास्थ्य के लिए भी नुकसानदेह, अपने लिए भी नुकसानदेह और समाज के लिए भी नुकसानदेह। इसलिए मेरी जो सीमित भूमिका है समाज में, उसके तहत मैं यही चाहता हूँ और प्रयत्न करता रहता हूँ कि समाज में शान्ति हो, सद्भाव हो, प्रेम और भाईचारे का वातावरण हो। मुझे खुशी है कि आप सब लोगों के आशीर्वाद से ऐसा कुछ वातावरण धीरे-धीरे निर्मित हो रहा है।

हम तो यहाँ पर आये हैं स्वामी सत्यानन्दजी के चरणों में श्रद्धा-सुमन अर्पित करने के लिए और इसमें हमारा एक ही स्वार्थ है। जो उनके उपदेश हैं, वे उनके दोनों शिष्य, एक रिखियापीठ की पीठाधीश्वरी, जिन्हें सब लोग स्वामी सत्संगी जी कहते हैं, और दूसरे हमारे स्वामी निरंजनानन्द जी, आगे बढ़ाते रहें। और मुझे पूरा विश्वास है कि ये सब काम सुचारू रूप से चलते रहेंगे। समाज में इसका अपने आप प्रभाव कायम रहेगा और मैं तो समझता हूँ कि हम लोगों के कारण नहीं, बल्कि इस प्रभाव के कारण, आप जैसे सन्तों-संन्यासियों के कारण ही यहाँ वातावरण ठीक हो रहा है।

जब हम यहाँ आ रहे थे, तब हमारे हेलीकॉप्टर के पायलट ने बिहार की कुछ खास जगहों की तस्वीरें ऊपर आसमान से खींची हुई थीं। रास्ते में उन्होंने मेरे हाथ में वे तस्वीरें दे दीं और कहा, यह देखिए, बिहार के कुछ गौरवों को मैंने आपके हाथों में दिया है। बहुत सारी तस्वीरों को हम पहचान रहे थे, लेकिन एक तस्वीर को हम पहचान नहीं पा रहे थे। लेकिन हेलिकॉप्टर ज्यों ही यहाँ से गुजरा, हमारे साथ काम करने वाले साथी ने देखते ही कहा कि यह तो मुंगेर योग विद्यालय की तस्वीर है। और यह तो वाकई बिहार का गौरव है।

जैसा स्वामी निरंजनानन्द जी ने भी बताया, हम लोग तो चाहेंगे कि इसका प्रभाव बढ़ता जाए, नई पीढ़ी को ऐसा परिवेश मिले, ऐसा वातावरण मिले कि लोग अच्छा सोचें और अच्छा करें। सबसे बड़ी बात यही है कि लोग अच्छा सोचें और अच्छा करें। पूज्य स्वामीजी का प्रभाव तो दुनियाभर में है। योग को उन्होंने फिर से दुनियाभर में प्रतिष्ठित किया। आज तो योग की बहुत चर्चा होती है। योग से सम्बन्धित जो हमारा पुरातन ज्ञान है, उस पर धूल की परतें जमी थीं, जिनको पूज्य स्वामीजी ने अपने पूज्य गुरु स्वामी शिवानन्द जी की प्रेरणा से हटाया। आज दुनियाभर में योग की मान्यता है। इसलिए हम देखते हैं कि दुनिया के अनेक मुल्कों के लोग इस ओर आकृष्ट होते हैं।

मुझको पिछले साल रिखिया जाने को मौका मिला था। एक बार पहले मैं स्वामी सत्संगी जी से मिला था, उस समय पूज्य स्वामी सत्यानन्द जी दर्शन नहीं देते थे। जिस जगह पर उन्होंने तप किया था, हम तो उस स्थान को निहारते रह गये। हम जैसे व्यक्ति, जो सांसारिक जीव हैं, सचमुच हमें तो यह बात लगी कि कितना कठोर तप है, कैसी साधना इन्होंने की है। उस तपस्या-स्थल को देखने के बाद मेरे मन में इच्छा हुई कि कभी तो उनका दर्शन हो।

पिछले वर्ष स्वामी निरंजनानन्द जी ने मुझको योग सिखलाने के लिए, ताकि मैं ठीक से योग कर सकूँ, यहाँ से एक स्वामीजी को भेजा था। उन्होंने मुझको रिखिया के बारे में जानकारी दी, वहाँ के कार्यक्रमों की रूप-रेखा बतायी और उसी समय मुझको लगा कि मैं रिखिया जाऊँगा। मैं रिखिया पहुँचा और मैं अपने आपको सौभाग्यशाली मानता हूँ कि मुझे स्वामीजी का दर्शन हुआ, उनको देखने का अवसर मिला, कुछ-कुछ उनको सुनने का भी अवसर मिला। इस बार जब उन्होंने शरीर का त्याग किया, ब्रह्मलीन हो गये और मुझे जानकारी मिली तो स्वभाविक है कि सांसारिक जीव होने के नाते मन में एक कसक हुई कि काश इस वर्ष भी रिखिया जा पाते। लेकिन मुझको ऐसा लगता है कि ऐसी जगहों पर जाना कभी-कभी अपने हाथ में नहीं होता। पिछली बार मेरा सौभाग्य था तो वहाँ पहुँच पाया, इस बार नहीं था। फिर बाद में अपनी श्रद्धा निवेदित करने के लिए वहाँ पहुँचा और आज यहाँ आने का सौभाग्य हमको मिला है।

हम तो कर्म करते हैं, योग से कुछ काम करने की ताकत मिल जाती है, मन थोड़ा शान्त रहता है। यह फायदा तो हमेशा होता है। अगर बीच में योग किसी कारण से छूट जाय, तो उसका प्रभाव भी हमको दिखायी पड़ता है। लेकिन मूलत: हम लोगों को प्रभु ने जो अवसर दिया है, वह कर्म करने के लिए दिया है और हम अपने कर्म से ही यह कोशिश करते हैं। आज मैं इतना ही कहूँगा कि मैं और उत्साह के साथ, अपने कर्म के जरिये ही वही करने की कोशिश करूँगा जिससे समाज में प्रेम फैलता हो, भाईचारा फैलता हो। यही हमारे लिए सबसे बड़ी सीख है।

पूज्य स्वामीजी की स्मृति में मैं अपनी हार्दिक श्रद्धा निवेदित करता हूँ। जैसा आप लोगों ने कहा कि उन्होंने शरीर त्यागा तो अपनी इच्छा से त्यागा। रिखिया में हमने स्वामी सत्संगी जी को कहते सुना था कि वह एक अजेय मुहूर्त था और वे चाहते तो अभी और जी सकते थे। लेकिन उन्होंने निर्णय कर लिया और जैसा उनकी इस कविता में सुनाया गया, 'छन्द मेरे खुल चुके हैं, मैं गीत सारा लिख चुका हूँ।' सब कुछ कर चुकने के बाद उन्होंने शरीर तो त्याग दिया, लेकिन अब वे कण-कण में विराज गये। अब वे नजर रखेंगे कि कौन कैसा कर रहा है।

हम लोग तो सन्त हैं नहीं, स्वामी हैं नहीं। तप और साधना तो हमने की है नहीं कि हमें इच्छा से शरीर त्यागने का सौभाग्य मिलेगा। लेकिन शरीर तो

सबको छोड़ना ही है, यही सबसे बड़ा सत्य है। और शरीर छोड़ने के बाद कहीं-न-कहीं जाकर अपने जीवनभर का कोई-न-कोई हिसाब तो देना ही पड़ेगा। अगर किसी ने यह शरीर दिया है, तो हिसाब लेने वाला भी जरूर होगा। मुझको तो ऐसा लगता है कि स्वामी सत्यानन्दजी उस हिसाब लेने वाले में शामिल हो गये।

हम लोग अच्छा करें, प्रेम का ही प्रचार करें, व्यवहार करें और समाज को बनाने में, जोड़ने में अपना समय और शक्ति लगायें तो शायद यह सबसे बड़ी श्रद्धांजलि होगी। इन्हीं शब्दों के साथ पूज्य स्वामी सत्यानन्दजी के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ और स्वामी निरंजनानन्द जी तथा स्वामी सत्संगी जी के प्रति अपनी श्रद्धा का भाव प्रकट करता हूँ। यह जो गंगादर्शन है, यह जरूर और प्रगति करेगा और इसके काम का प्रभाव बिहार ही नहीं, देश और दुनिया में पहले से भी ज्यादा तेज गति से फैलेगा। इस विश्वास के साथ मैं अपनी बात को यहीं पर समाप्त करता हूँ।

बहुत-बहुत धन्यवाद!

–श्री नितीश कुमार, माननीय मुख्यमंत्री, बिहार

स्वामी निरंजन जी, माननीय मुख्यमंत्री जी और मुंगेरवासियों को मेरा प्रेम भरा हरि ॐ। आज यहाँ उपस्थित होकर मैं धन्य हूँ। मुंगेर मेरे लिए अनजान जगह नहीं है। हाँ, मैं रिखिया में रहती जरूर हूँ, पर मेरा आध्यात्मिक जन्म मुंगेर में ही हुआ है। अट्ठाइस साल पहले यहाँ गंगादर्शन मुंगेर में गुरुदेव से मुझे संन्यास दीक्षा प्राप्त हुई। उस वक्त, गंगादर्शन की जो यह इमारत आप यहाँ देख रहे हैं, यह बनी भी नहीं थी, इसकी नींव रखी गई थी। तब से मेरा मुंगेर से परिचय रहा है। आज इतने साल बीत गये। हम जब गुरुदेव के साथ रहे और हमने उनसे जो शिक्षा प्राप्त की, उसके बारे में थोड़ा बहुत हम आपको बतलाना चाहते हैं।

एक कुशल जीवन के दो आधार-स्तम्भ हैं, एक है ज्ञान और दूसरा है कर्म। जो कर्म हम करते हैं अगर उसमें ज्ञान की झलक नहीं, तो वह कर्म किसी काम का नहीं। और यदि हम केवल ज्ञान ही प्राप्त करते हैं, उसको कर्म में प्रवाहित नहीं करते, तो वह ज्ञान भी किसी काम का नहीं है। ज्ञान बाँटने से और बढ़ता है और यही मुख्यत: श्री स्वामीजी की शिक्षा थी। इसीलिए अपने जीवनकाल में उन्होंने दो बहुत ही प्रभावशाली केन्द्र स्थापित

किये। एक गंगादर्शन मुंगेर, जिसे उन्होंने ज्ञान का माध्यम बनाया। यहाँ से जो ज्ञान की धारा बाहर जा रही है, उसकी कोई तुलना नहीं। केवल भारत में ही नहीं, दुनिया भर में। हम तो दुनियाभर में घूमें हैं। हम आपको सच्ची बात बतला सकते हैं कि दुनियाभर में इसकी और कोई तुलना नहीं। इसीलिए तो आप देखते हैं कि आज दुनियाभर से लोग यहाँ खिंचे आ रहे हैं। यहाँ उच्च कोटि की शिक्षा मिलती है और लोग वही चाहते हैं। इसीलिए बरबस खिंचे आते हैं।

दूसरा आधार उन्होंने जो बनाया, वह है कर्म कैसे करना। उसकी शिक्षा उन्होंने स्थापित की रिखियापीठ में। ये दो आधार स्तम्भ हैं, जहाँ आप ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं और जहाँ आप कर्म कैसे करना है यह सीख सकते हैं। एक पंछी दो पंखों के बिना उड़ नहीं सकता है। अगर आप उसका एक पंख काट दें तो वह लाचार हो जाता है। उसी तरह अगर जीवन में हम ये दो कलाएँ नहीं सीखते हैं तो हमारा जीवन कभी कुशल नहीं हो सकता।

जाते-जाते श्री स्वामीजी ने भी इसी बात पर जोर दिया, इसी बात पर हमारा ध्यान आकृष्ट किया। आखिर जीवन में हम खुशी चाहते हैं और हमारा प्रयास हमेशा इसी ओर रहता है कि कैसे हम खुश रहें। पर क्या आपने कभी सोचा कि मृत्यु भी सुखद होनी चाहिए? और सुखद मृत्यु हम कैसे पा सकते हैं? इसी प्रश्न का उत्तर उन्होंने इन दो आधार-स्तम्भों के द्वारा दिया। जब हम अपने कर्म ज्ञान के सहारे करते हैं और उनमें ज्ञान की झलक आती है, जब हम दूसरों के बारे में सोचते हैं, खासतौर से जो हमारे नहीं हैं, जिनसे हमारा कोई नाता नहीं, तब उनको अच्छे कर्म कहते हैं। और वही अच्छे कर्म आपको एक सुखद मृत्यु देंगे।

5 दिसम्बर को श्री स्वामीजी ने एक योगी की भाँति, स्वेच्छा से अपना शरीर छोड़ा। उनको शरीर छोड़ने की कोई आवश्यकता नहीं थी, जैसे उनको मुंगेर छोड़ने की कोई आवश्यकता नहीं थी। मुंगेर उन्होंने छोड़ा स्वेच्छा से, क्योंकि उनको कोई आसक्ति नहीं थी। सन् 1988 में अपना झोला उठाया, बगीचे में घूमे और बाहर निकल गए। किसी को अन्दाज भी नहीं कि स्वामीजी फिर कभी यहाँ नहीं लौटेंगे। ठीक उसी तरह, 2 दिसम्बर के दिन, जो उनका जन्मोत्सव था, उन्होंने सबको सम्बोधित किया और 5 दिसम्बर को अपना शरीर छोड़, अपने अच्छे कर्म लेकर वे चले गए। और किसी को अन्दाज ही नहीं था। सब आश्चर्यचकित! और वे स्वेच्छा से गए।

उस रात उन्होंने मुझे बुलाया 9 बजे और मुझसे कहा, 'हमारे जीवन में जो भी हमने किया उसका प्रयोजन था और अब हमारी मृत्यु का भी प्रयोजन है। हमने जाने का विचार कर लिया है।' कभी आपने ऐसा सुना है किसी के बारे में कि वे स्वयं अपनी मृत्यु को आमंत्रण दें! यह ऐसा ही व्यक्ति कर सकता है जिसने हमेशा अच्छे कर्म किये हों, जिसको कोई चिन्ता, आसक्ति या ग्लानि नहीं, जिसने जीवन में सब कुछ किया हो। नहीं तो भय आता है मृत्यु से। जो भी उन्होंने किया, ठीक ढंग से किया और सब कुछ व्यवस्थित ढंग से छोड़कर, उसकी तैयारी करके वे गए।

इसलिए जिस कार्यक्रम में हम सब उपस्थित हैं और जो रिखिया में हुआ, वह एक शोक का कार्य नहीं है। श्री स्वामीजी कभी यह नहीं चाहते थे कि उनके जाने से हम शोक मनायें। वे तो हमेशा कहते थे कि हम तो रिखिया अपना शरीर छोड़ने आये हैं। उन्होंने कभी नहीं कहा कि हम रिखिया आश्रम बनाने आये हैं। रिखिया वे अपना शरीर छोड़ने आए थे। और वे हमेशा कहते भी गए कि जैसे ही मेरे को रिटर्न टिकेट मिलेगा, मैं निकल जाऊँगा। तो 5 दिसम्बर को, अजेय मुहूर्त में उनको रिटर्न टिकट मिल गया। वे चले गए और जाते-जाते उन्होंने कहा कि जिस तरह कपड़ा मैला होने पर व्यक्ति उसको उतारकर नया वस्त्र धारण करता है, उसी तरह जीव पुराना शरीर छोड़कर एक नया शरीर धारण करता है। इसको अन्त नहीं कहते, परिवर्तन कहते हैं। जीवन केवल एक शरीर छोड़ने से खत्म नहीं होता है, वह अनादि है। और इसी चीज पर हम लोगों को विश्वास करना है, क्योंकि यही गीता कहती है, यही उपनिषद् कहते हैं, यही वेद कहते हैं और यही स्वामी सत्यानन्द जी ने कहा है। इसी से में अपना सम्बोधन समाप्त करती हूँ।

नमो नारायण!

—स्वामी सत्यसंगानन्द सरस्वती

हरि ॐ

5 दिसम्बर की मध्य रात्रि को श्री स्वामीजी ने महासमाधि में प्रवेश किया और उस समय उन्हें रिखिया आये बीस साल बीत चुके थे। आप जानते हैं और उनके श्री मुख से सुना भी होगा कि उनका जीवन बीस-बीस साल के अध्यायों में बँटा हुआ था। अपने जीवन के प्रथम बीस वर्ष वे घर में रहे, अगले बीस वर्षों तक उन्होंने ऋषिकेश में अपने गुरु के आश्रम में रहकर सेवा की।

बीस वर्षों के तीसरे अध्याय में श्री स्वामी शिवानन्द जी के आदेश के अनुसार योग का प्रचार नगर-नगर, द्वार-द्वार करने के लिए उन्होंने मुंगेर आकर, मुंगेर को अपना कर्म-क्षेत्र बनाया। यहाँ गुरु आज्ञा का पालन करते हुए योग को एक विश्वव्यापी आन्दोलन के रूप में स्थापित कर, मुंगेर में एक विशाल योग-स्मारक खड़ा कर, उसे अपने गुरु के चरणों में समर्पित कर दिया। वे कहते थे, 'यही आदेश तुम्हारा था, जिसे मैंने पूरा किया और तुम्हें ही समर्पित करता हूँ। अब मैं अपने कर्त्तव्यों से मुक्त हो गया हूँ।' इस प्रकार मुंगेर में बीस वर्ष बिताकर उन्होंने मुंगेर भी छोड़ दिया।

उनके जीवन का अन्तिम अध्याय रिखिया में बीता, और वह भी बीस साल का ही रहा, सन् 1989 से 2009 तक। रिखिया में उन्होंने अपने गुरु की शिक्षाओं और संन्यास परम्परा के आदर्शों को मूर्त रूप देने के लिए अपना जीवन समर्पित कर दिया।

श्री स्वामीजी हमेशा कहते थे कि जब मुझे शरीर छोड़ना होगा, मैं अस्पताल में शिष्यों से घिरा हुआ नहीं, नाक और मुँह में ट्यूब लगाकर नहीं, बल्कि ध्यान की अवस्था में शरीर छोड़ूँगा। उन्होंने एक कविता में कहा है–

वस्त्रहीन शरीर और खाली हाथों के साथ
घूमने दो मुझे गंगा के पावन तट पर
मेरे होठों पर शिव का नाम,
मेरे मन में देवी और दुर्गा का ध्यान
मुझे ज्ञान भी न हो कि मैं हूँ
और जब बुलावा आए तो मुझे
ज्ञात भी न हो कि जा रहा हूँ।

और अन्त में उन्होंने यह सिद्ध भी कर दिखाया। जो व्यक्ति सिद्ध होता है वह अपने जीवन में संकल्प के अनुसार कार्य करता है, अपनी इच्छा या वासना के अनुसार नहीं। श्री स्वामीजी के जीवन में उनकी संकल्प शक्ति और उनके द्वारा संकल्पित कार्य स्पष्ट रूप से देखने में आते हैं। उन्होंने दुनियाभर में योग और बिहार योग पद्धति के झण्डे को फहराया और बिहार को गौरव प्रदान किया। तत्पश्चात् रिखिया उनकी तपोभूमि बनी। वहाँ उन्होंने पंचाग्नि जैसी अनेक कठिन साधनाएँ कीं, जो हमारे शास्त्रों में परमहंस ऋषियों के लिए बतलायी गयी हैं। आप सब उस साधना के साक्षी

भी रहे हैं। उनका जीवन अत्यन्त सरल था, एक संन्यासी का सादा जीवन। संन्यास माध्यम होता है अपने भीतर स्थित गुरु और परमेश्वर को जानने और प्राप्त करने का। रिखिया में श्री स्वामीजी ने अपना जीवन अपने गुरु की शिक्षाओं के अनुसार ढाला और दूसरों को भी इन शिक्षाओं का आचरण करने के लिए प्रेरित किया। अपने गुरु की मूल-भूत शिक्षाओं–सेवा, प्रेम और दान का शंखनाद रिखिया में फूँककर श्री स्वामीजी ने इस छोटे-से गाँव को रिखियापीठ में रूपान्तरित कर दिया, जिसका लक्ष्य इन मौलिक आध्यात्मिक निर्देशों का व्यापक प्रचार-प्रसार है।

आध्यात्मिक जीवन का मूल-मंत्र अपने जीवन को सुधारना और उन्नत बनाना है। जीवन उन्नत तब बनता है जब हम अपने स्वार्थ के सीमित दायरों से बाहर निकलकर, सेवा, प्रेम और दान के माध्यम से दूसरों से जुड़ पाते हैं। यही प्रेरणा श्री स्वामीजी ने स्वयं हम सबको रिखिया में प्रदान की।

अंतिम दर्शन और श्रद्धांजलि

महासमाधि के पश्चात् श्री स्वामीजी ने 6 दिसम्बर को सबको अंतिम दर्शन दिया। उस दिन हजारों की संख्या में शिष्य, श्रद्धालु, भक्त एवं ग्रामवासी अपने सिद्ध गुरु का अंतिम दर्शन करने रिखियापीठ में एकत्र हुए। गोधूलि बेला के समय पंचाग्नि वेदी में श्री स्वामीजी का पूर्णाभिषेक किया गया और उसके बाद पर्ण कुटीर में उन्हें भू-समाधि दी गई।

तत्पश्चात् रिखियापीठ में सोलह दिन का पारम्परिक षोडशी अनुष्ठान, 7 से 22 दिसम्बर तक सम्पन्न हुआ। इस अनुष्ठान में रिखिया के प्रतिभाशाली कन्या-बटुक प्रतिदिन हवन, रुद्राभिषेक तथा भगवद्-गीता, रामचरितमानस एवं अन्य स्तोत्रों का पाठ सम्पन्न किया करते थे। प्रतिदिन रिखिया पंचायतवासियों को भण्डारे के लिए आमंत्रित किया जाता था और पाँच सौ से अधिक परिवारों को श्री स्वामीजी की ओर से भरपूर प्रसाद दिया जाता था। दक्षिण भारत से आयी योगिनियों ने विशेष पूजा द्वारा श्री-यंत्र के मण्डल में गुरु-तत्त्व की स्थापना की तथा वाराणसी से आये पण्डितों ने विशेष रुद्राभिषेक सम्पन्न किया। अनुष्ठान के अंतिम दिन अलग-अलग सम्प्रदायों और परम्पराओं के संतों-संन्यासियों के लिए भोज भी आयोजित किया गया।

इन सोलह दिनों में दुनियाभर से हजारों की संख्या में लोग रिखियापीठ आये। अनेक लोग आँखों में आँसू लिए आते, लेकिन श्री स्वामीजी की

समाधि के दर्शन के बाद उन्हें एक अनूठी शान्ति और सन्तोष का आभास होता। सभी के ये उद्गार रहते कि मैंने श्री स्वामीजी को अपने भीतर में अनुभव किया है।

24 से 30 दिसम्बर तक गंगादर्शन, मुंगेर में श्रद्धांजलि सप्ताह का आयोजन किया गया। भजन-कीर्तन, हवन-पूजन, मंत्र-पाठ एवं भोज के दैनिक कार्यक्रम में यहाँ भी हजारों लोगों ने भाग लेकर श्री स्वामीजी के प्रति अपनी श्रद्धा निवेदित की।

भविष्य

बहुत-से लोगों के मन में प्रश्न है कि श्री स्वामीजी की महासमाधि के पश्चात् अब क्या होगा। श्री स्वामीजी की अनुपस्थिति से अब संस्था, योग, मुंगेर तथा रिखिया का भविष्य क्या होगा? इन प्रश्नों का मेरे पास एक ही उत्तर है–श्री स्वामीजी ने सन् 1988 में मुंगेर और योग का कार्य छोड़ दिया और तब से गंगादर्शन और योग के विकास का दायित्व मेरे कन्धों पर आ गया। सन् 2008 में मैंने योग आन्दोलन का कार्यभार स्वामी सूर्यप्रकाश को सौंप दिया। मेरे पच्चीस साल और स्वामी सूर्यप्रकाश के दो साल के नेतृत्व में गंगादर्शन प्रगति पथ पर निरन्तर बढ़ते हुए उस लक्ष्य की ओर अग्रसर रहा है जिसके लिए श्री स्वामी सत्यानन्द जी ने इस योग स्मारक की स्थापना की थी।

स्वामी सत्यानन्दजी की तरह दूर-दृष्टि वाला इस संसार ने देखा नहीं है। जितनी भी संस्थाओं या संतों का इतिहास हमने देखा है, यही पाया है कि वे अच्छा कार्य अवश्य करते हैं, लेकिन भविष्य की तैयारी नहीं करते। श्री स्वामीजी तो सत्ताईस वर्ष पूर्व ही गंगादर्शन का कार्यभार छोड़कर स्वतंत्र हो गए। लेकिन गंगादर्शन के माध्यम से योग के क्षेत्र में जो उत्तरोत्तर विकास पिछले पच्चीस वर्षों में हुआ है, वह निश्चित रूप से अनूठा और अद्वितीय रहा है और यह कार्य आगे भी अनवरत रूप से चलता रहेगा।

इसी तरह रिखियापीठ का पूरा संचालन पिछले बीस वर्षों से स्वामी सत्यसंगानन्द जी बहुत ही सहजता और सक्षमता से करती आयी हैं। श्री स्वामीजी की केवल शारीरिक उपस्थिति और प्रेरणा रही, लेकिन रिखिया का सारा प्रबंधन और विकास कार्य स्वामी सत्यसंगानन्द द्वारा किया गया।

इसलिए जहाँ तक मुंगेर और रिखिया का सवाल है, यहाँ का काम तो रुकने वाला है नहीं। श्री स्वामीजी के आशीर्वाद और उनकी कृपा से यह कार्य

प्रतिदिन आगे बढ़ता रहेगा, इसमें वृद्धि होती रहेगी, क्योंकि यही उनके गुरु का आशीर्वाद था। और हम लोग भी आज अपने जीवन में भगवत्कृपा के रूप में इस आशीर्वाद का अनुभव करते हैं। दोनों आश्रमों की गतिविधियाँ बराबर चलती रहेंगी और श्री स्वामी शिवानन्द जी और श्री स्वामी सत्यानन्द जी के योग और अध्यात्म के सन्देश का प्रचार-प्रसार होता रहेगा।

लोग दूसरा प्रश्न करते हैं, अब स्वामी निरंजनानन्द क्या करेंगे? मैं अब उस मार्ग पर चलने के लिए स्वतंत्र हूँ जिसका निर्देश श्री स्वामीजी ने मुझे इस वर्ष दिया था। मार्च 2009 में उन्होंने मुझे अपना परिव्राजक जीवन समाप्त करने का निर्देश दिया और साथ ही मुझे अपने जीवन के अगले दौर की स्पष्ट रूपरेखा भी बतायी। उन्होंने मुझसे कहा, 'तुम पिछले चालीस सालों से एक परिव्राजक का जीवन व्यतीत करते आ रहे हो। तुम देश और विदेश में, हर महीने और हर साल भ्रमण करते रहे हो। यह अध्याय जो पिछले चालीस सालों से खुला था, इसके बन्द होने का समय आ गया है और अब एक नया अध्याय शुरू होगा।' उन्होंने आगे कहा, 'अब तुम एक जगह स्थिर होकर योग के विकास, संन्यास परम्परा और जन-कल्याण के लिए कार्य करो।' उन्होंने मेरा रास्ता साफ कर दिया, मेरी संकल्प-शक्ति को सुदृढ़ बनाया और उस दिशा की ओर इंगित किया जिस ओर मुझे अब चलना है।

अब मैं मुंगेर या रिखिया का संन्यासी नहीं, स्वामी सत्यानन्द जी का संन्यासी हूँ। लोग कहते हैं कि आप स्वामी सत्यानन्द जी के उत्तराधिकारी हैं। यह सच है। मैं उनका उत्तराधिकारी हूँ, लेकिन किसी संस्था का नहीं। किसी भी संस्था में लोग बदलते रहते हैं। अपने गुरु से मुझे संन्यास का उत्तराधिकार मिला है। संन्यास के प्रति उनकी अटूट श्रद्धा और आस्था ही मुझे धरोहर के रूप में प्राप्त हुई है। मुझे उनके समर्पण, त्याग और तपस्या के पथ पर आगे बढ़ना है। इसलिए मैं आज सबके सामने कह रहा हूँ कि अब मैं मुंगेर या रिखिया का संन्यासी नहीं हूं। मैं स्वामी सत्यानन्द जी का एक साधारण संन्यासी शिष्य मात्र हूँ। मुंगेर और रिखिया के बीच मेरा आना-जाना बना रहेगा, लेकिन मैं अब किसी स्थान विशेष से जुड़ा नहीं हूँ।

अपनी प्रार्थनाओं में एक प्रार्थना मेरे लिए भी जोड़ दीजिये कि यह संन्यासी अपने पथ पर आगे बढ़ सके, अपने गुरु के संन्यास का योग्य उत्तराधिकारी बन सके, उनके संकल्प, आस्था, श्रद्धा, विश्वास और

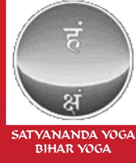
तपस्या को आत्मसात् कर सके और योग एवं संन्यास की दो परम्पराओं से सारे समाज, राष्ट्र और विश्व को गौरवान्वित करे। मुझे विश्वास है कि आप सबकी शुभकामनाओं के साथ मैं वह मार्ग तय कर सकूँगा जिसे श्री स्वामीजी ने मेरे लिए निर्दिष्ट किया है। आप लोगों की इस आश्रम, श्री स्वामी सत्यानन्द जी और उनके कार्यों के प्रति जो सद्भावना हमेशा रही है, वह कायम रहनी है। साथ ही आप अपनी आस्था, श्रद्धा और समर्पण की भावना को भी निरन्तर विकसित करते रहिए। और हम लोग समय-समय पर मिलते रहेंगे, गंगादर्शन या रिखिया में, जब तक मुझे पुनः संसार में बाहर आने का निर्देश नहीं मिलता।

श्री स्वामीजी की आध्यात्मिक शक्ति और प्रेरणा ही हमारे जीवन का आधार है और आज हम उसी शक्ति एवं प्रेरणा का यहाँ आवाहन करते हैं कि वह हम सबके जीवन में अवतरित होकर, हम सब के जीवन को पल्लवित करे। आइये, हम सब श्री स्वामीजी को अपने हृदय-सिंहासन पर विराजमान होने के लिए आमंत्रित करें, उन्हें अपने हृदय का चक्रवर्ती सम्राट् बनायें ताकि हमें उनकी अनुकम्पा की शीतल छाँव सदा मिलती रहे।

हरि ॐ तत्सत्

–स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती





सन् 2013 में बिहार योग विद्यालय की स्वर्ण जयन्ती के अवसर पर बिहार योग परम्परा के मौलिक प्रकाशनों को 'स्वर्णिम संग्रह शृंखला' के नाम से पुनर्प्रकाशित किया गया है।

इस शृंखला के अंतर्गत इस छठी पुस्तक में पचास से अधिक वर्षों की अवधि में भक्तों, शिष्यों और शुभचिंतकों द्वारा श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के प्रति समर्पित स्तुतियों, स्मृतियों और श्रद्धांजलियों का स्वर्णिम संकलन है। पुस्तक का प्रथम खण्ड सन् 1954 में दिव्य जीवन संघ, ऋषिकेश द्वारा प्रकाशित अभिनन्दन ग्रन्थ 'स्वामी सत्यानन्द–हिज़ लाइफ एण्ड वर्क' से संकलित है, द्वितीय खण्ड सन् 1963 से 2009 के बीच योगविद्या पत्रिका में प्रकाशित संस्मरणों का संकलन है और तृतीय खण्ड श्री स्वामीजी की महासमाधि के पश्चात् अभिव्यक्त श्रद्धांजलियों का संग्रह है।



[bar code here]

ISBN : 978-93-81620-99-1